

जे उपनिषद् हैं सो ब्रह्म आत्माकी अभेदताके बोधक हैं परन्तु उन
 में सृष्टिकरण अरु प्राणादिकोंकी उपासना आदिक अन्य प्रसंगभी
 हैं अरु इस उपनिषद्में केवल ओंकारके प्रतिपादनसे ब्रह्मआत्मा
 की अभेदताही प्रकाशित है, तिससे इतर सृष्टिकरणादिक नहीं,
 अतएव यह उपनिषद् केवल ब्रह्म आत्माकी अभेदताका बोधक
 होनेसे सर्व उपनिषदोंमें मुख्य है । अतएव उक्त हेतुओंकरके इस
 उपनिषद्को मुख्यत्व होनेसे श्रीशंकराचार्य महाराजके परमगुरु
 श्रीगौडपादाचार्य कृत इसके अर्थबोधक श्लोकबद्ध कारिका है,
 तिस कारिकाके चारप्रकरण हैं, नहाना, प्रथम आगमप्रकरण, द्विती-
 य वैतथ्याख्यप्रकरण, तृतीय अद्वैताख्य प्रकरण, चतुर्थ अलातशा-
 न्ताख्य प्रकरण, इसप्रकार चार प्रकरण हैं ॥ अरु इन चारोंप्रकरण
 से बाह्य इसभाषा भाष्यकारकृत सर्व उपनिषदोंमेंसे संग्रहकिया
 प्रणवोपासना, अरु सप्तसिद्धान्तियों के मतानुसार प्रणवोपासना
 अरु प्रणवके ओंकारादिदशनामोंके अर्थविचार, अरु अन्य ऋषियोंके
 मतानुसार मात्राओंके भेदसे उपासनविचार, अरु अकारादि मात्रा
 का क्रमशः लय चितवनविचार, इन सर्वके संग्रहका, एक संग्रह
 प्रकरणनाम पंचम प्रकरणभी कहा है, सो एतदर्थ है कि प्रणवोपा-
 सनाके जिज्ञासुको इस एकही पुस्तक के अवलोकन से अनेक
 ऋषियोंके मतानुसार ओंकारकी उपासना जानने में आवे ॥ अरु
 श्रीगौडपादीय कारिका सहित इस उपनिषद्पर श्रीभगवत्पाद
 पूज्य श्रीशंकराचार्यजीकृत संस्कृत भाष्य है अरु तिसभाष्यपर
 संस्कृतमें आनन्दगिरिकृत टीका है, अरु तिसभाष्य अरु टीकाके
 अनुसारही द्विजवर श्रीपंडितराज पीताम्बरजी महाराज कृत
 भाषा दीपिकानामटीका है । अरु जैसे सम्यक् प्रकार संस्कृत
 विद्याके अभ्यास विना अरु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे
 अध्ययन किये बिना सभाष्य उपनिषदोंका अर्थ जानने में आवे
 नहीं, अरु तैसेही जो केवल भाष्यके अक्षरानुसारही जे पंडित
 पीताम्बरजी कृत अक्षरार्थ टीका तिसका भी यथार्थ जानना सर्व

साधारणपुरुषों को सुगम नहीं । एतदर्थ मैं श्रीपरिव्राजाचार्य परमहंस स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजका अतिअल्पज्ञ शिष्य यमुनाशंकर नामक नागर ब्राह्मण, उक्त भाष्यकार अरु टीकाकार के कहे अनुसारही भाषाभाष्य नामक टीका करताहों तिसमें अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार कुछ विशेष भी कहोंगा ॥

सर्वसे साधारण विनय ॥

मुझ अल्पज्ञकरके कहेहुये इस मांडूक्यउपनिषद् के भाषा भाष्य में जो कुछ अनुचित कथनहोय तिसको सर्वविवेकी पाठकजन क्षमाकरके सुधारलेवें इति ॥

सूचना इस भाषाभाष्यान्तर चिह्नोंकी ॥

॥ इस चिह्नान्तर में भाषान्तर मूल श्रुति, श्लोक ॥

॥ इस चिह्नान्तर में भाषान्तर श्रुति, श्लोकके अक्षरार्थ ॥

॥ इस चिह्नान्तरमें प्रमाणविषयक अन्य श्रुति, श्लोक ॥

॥ इस चिह्नान्तरमें प्रमाणविषयक श्रुतिश्लोकके अक्षरार्थ ॥

॥ इस चिह्नान्तरमें संक्षेपसे आनन्दगिरिका अक्षरार्थ ॥

॥ इस चिह्नान्तर में भाषाभाष्यकारकृत अर्थानुवाद ॥

॥ इत्यादि-चिह्न साधारण विराम ॥

इति चिह्नसूचना ॥

अथ शान्तिपाठः ॥

ॐ सह नावतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहे । तजस्वी नाय
धीतमस्तु मा विद्विषावहे ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शान्तिः पाठगुरुस्तुति ॥

ॐ शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्च्यमाशन्न इन्द्रो बृहस्पतिः
शन्नो विष्णुरुक्रमः नमो ब्रह्मणे नमस्तेवायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि श्रुतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्माम
वतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः, ३ ॥

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम् ॥

ॐ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म । “सोयमात्मा” “नांतः प्रज्ञं न वहिः
प्रज्ञं नो भवतो प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं अदृष्टमव्यवहार्यमग्रा
ह्यमलक्षणम् चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं
शिवमद्वैतं चतुर्थमन्यन्ते” “स आत्मा, अपहृतपाप्मा विजरो विमृ
त्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोन्वेष्टव्य
सविजिज्ञासितव्यः” “तद्वद्वेति” “इहैवान्तःशरीरे सौम्यसपुरुषः”
“निहितं गुहायां” “दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः”
“आत्मा वा अरे दृष्टव्यो श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिष्यासितव्यो साक्षा
त्स्पर्शितः” “स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति”

“नातः परमस्ति”

“ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति”

“द्वेधातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यं”

“एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं”

“भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्न मामि”

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ अथर्ववेदीय ॥

मांडूक्योपनिषद्

श्रीगौडपादीयकारिका सहित मांडूक्योपनिषद्प्रारम्भ्यते ६ ॥

श्रीभाष्यकारस्वामी श्रीशंकराचार्यकृत ॥

मंगलाचरणम्

प्रज्ञानांशुप्रतानैःस्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्यलो-
कान् भुक्त्वाभोगान् स्थविष्ठान् पुनरपिधिषणोद्भासितान्-
कामजन्यान् ॥ पीत्वासर्वान् विशेषान् स्वपितिर्मधुरभु-
ञ्जाययाभोजयन्नोमायासंख्यातुरीयं परममृतमजं ब्रह्म
यत्तन्नतोऽस्मि १ ॥

हे सौम्य! भाष्यकार श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि "परममृत-
मजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि" (अमृत अज जो परब्रह्म है तिसको
मैं नमता (नमस्कारकरता) हूँ) [अर्थात्, श्रीगौडपादाचार्य
को श्रीनारायणके (वा श्रीशुकाचार्यके) प्रसाद से प्राप्तहुये, अरु
मांडूक्यउपनिषद्के अर्थको प्रकटकरनेके परायण जो श्रीगौडपा-
दाचार्यकृत कारिका संज्ञक श्लोक तिनसंहित मांडूक्योपनिषद्के
व्याख्यान करनेको इच्छा करतेहुये भगवान् भाष्यकार श्रीशङ्करा-
चार्य आपकरके करने को इच्छित, जे भाष्य तिसकी निर्विघ्न
समाप्ति के अर्थपर देवता के स्वरूप के स्मरणपूर्वक शिष्टाचाररूप
प्रमाणकरके सिद्ध तिस पर देवताके अर्थ नमस्कार रूप मंगला-
चरणकोकरतेहुये, अर्थसेइसग्रन्थके आरंभविषे बांछित विषयादिक

[अर्थात् ग्रन्थके प्रयोजन, विषय, सम्बन्ध, अरु अधिकारी] चार प्रकारके अनुबंधको भी सूचित करते हैं । तिनमें विधिमुखसे वस्तु का प्रतिपादन है, इस प्रक्रिया को देखावते हैं । अरु यहाँ { ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि } (जो परब्रह्म है तिसको मैं नमता हों) इस कहने करके मैं (इसअहं) शब्दके विषयत्वंपदके लक्ष्यार्थकी तिस तत् शब्दके लक्ष्यार्थसे एकता के स्मरणरूप नमनको सूचित करनेवाले आचार्य ने तत्पदके लक्ष्यार्थरूप ब्रह्मका प्रत्यगात्मापना सूचन करके तत्पद अरु त्वंपदके अर्थकी एकतारूप ग्रन्थका विषय सूचित किया । अरु “यत्” (जो) इस शब्दको प्रसिद्ध अर्थका प्रकाशक होनेसे वेदान्तशास्त्र करके प्रसिद्ध जो ब्रह्म है तिसको मैं नमता हों, इस संबन्ध से मङ्गलाचरणभी श्रुतिकरके ही करते हैं । अरु ब्रह्मको अद्वितीय होनेसे ही जन्ममरण के अभाव से [अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण अखण्डब्रह्म में जन्ममरणके हेतुरूप द्वैतका अभाव है ताते] “अमृतमजं” (अमृत अरु अजन्मा) इस प्रकार कहा है अरु जन्म मरणरूप जो बन्ध है सोई ‘संसार’ है । अरु ब्रह्म में जन्ममरणरूप बन्धलक्षण संसारका अत्यन्ताभाव है । ताते तिस बन्धके निषेधसे [आत्माविषे] स्वरूपसे ही असंसारीभावके देखावनेवाले आचार्यने, यहाँ सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप इस ग्रन्थका प्रयोजन प्रकाशित किया है] ॥ वो परब्रह्म कैसा है “पूजानांशु पूतानैः” { पूकृष्ट ज्ञानरूप है } अर्थात् [जब वेदान्तशास्त्र उपनिषद् प्रमाणसे सिद्ध ब्रह्म, स्वरूपसे अद्वितीय अरु असंसारी हैं तब तीन अवस्था करके युक्त भोक्ता जीव है इस प्रकारका अनुभव कैसे होता है । अरु । जीवको दुःखसुखका । भोगावनेवाला कोई, ईश्वर है इस प्रकार कैसे श्रवण होता है । अरु विषयोंका समूहरूप भोक्ष्य (भोगनेयोग्यसामग्री) । ब्रह्मसे । भिन्न कैसे दृष्ट आवती है । सो यह सर्व एक अद्वैतविषे विरोधको प्राप्त करेगा । यह आशंका करके एक अद्वैत ब्रह्मविषे जीव, जगत्, अरु ईश्वर, यह सर्व । रज्जुमें सर्पवत् । कल्पित संभवे है , इस अभिप्रायसे यहाँ कहते

ह] जन्मादि । जायते । अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, विपक्षीयते
 विनश्यति, यह पदभाव । विकार रहित प्रकृत ज्ञानस्वरूप जो
 ब्रह्म है “प्रज्ञानं ब्रह्म” (प्रज्ञान ब्रह्म है) इस श्रुति प्रमाणसे, । तिस
 सूर्यवत् विम्बस्थानी ब्रह्मके किरणरूप, जो सूर्यके प्रतिविम्ब के
 तुल्य निरूपण किया है । अरु विम्बके तुल्य ब्रह्मसे पृथक् वा भेद
 करके असत्य चिदाभास (चैतन्यब्रह्मका आभास) जीव है, तिनके
 वृक्षादिक स्थिर, अरु मनुष्यादिक चर, इस प्रकारके उद्भिजादि
 चार खानिके स्थिर चर प्राणियों के समूह विषे व्यापनेवाले वि-
 स्तारों से लोक जो विषय तिनके अर्थ व्याप्त होके [इस कथनसे
 उक्त विषयोंसे जीवोंका सम्बन्ध कहा] देवताके अनुग्रह सहित
 बाह्येन्द्रियोंद्वारा बुद्धिके तिस तिस विषयाकार परिणामसे जन्य-
 तारूप अतिशय स्थूलतावाले सुखदुःखके साक्षात्काररूप भोगों
 को भोगिके, अर्थात् [यहां ‘तान्मुक्ता’ (तिनको भोगके) इस
 पदसे अरु “स्वर्पितीति” । सोवता है । इस अग्रिम कहने के
 पदसे सम्बन्ध है । इस कथनसे जाग्रदवस्था ब्रह्मविषे कल्पित
 है, ऐसा कहा जानना] पुनः [यहांसे तिसही ब्रह्मविषे स्वप्नकी
 कल्पनाको देखावते हैं] भी बुद्धिसे प्रकाशित हुये, अरु, अविद्या,
 काम, अरु कर्म, से जन्य भोगोंको भोगके सर्व [इस प्रकार ब्रह्म
 विषे । जाग्रत् स्वप्न । दोनों अवस्थाकी कल्पना की देखावके अब
 तहांहीं सुषुप्ति की कल्पनाको देखावें] जाग्रत् अरु स्वप्नरूप
 स्थूल अरु सूक्ष्म विषयों को अज्ञातरूप अपने आत्मा विषे लय
 करके जो ब्रह्म सोवता है, अर्थात् कारणके अभावसे स्थित
 होता है, अरु जो मधुरभुक् [सुषुप्तिविषे आनन्दकी प्रधानता है
 इस अभिप्रायसे ब्रह्मको । मधुरभुक् वा आनन्दभुक् । यह विशेष-
 पण देते हैं] (आनन्दका भोक्ता) है, अरु जो ब्रह्म प्रतिविम्बके
 तुल्य हुआ हमारे विषे मायाकृत मिथ्यारूपा, तीनों अवस्थाके संब-
 न्धीपनेवत् सम्बन्धीपनेको सम्पादन करके हमको मायासे भोगा-
 वता हुआ वर्तता है । अरु निममायाकल्पित मिथ्यासंग्याकी अपे-

योविश्वात्मा विधिर्ज विषयान्प्राश्यभोगान्स्थविष्ठा
 न् पश्चाच्चान्यानस्वमति विभवान्ज्योतिषास्वेनसूक्ष्मा
 न् । सर्वानेतान्पुनरपिशनैःस्वात्मनिस्थापयित्वा, हि
 त्वासर्वान्विशेषान्विगतगुणगणः पात्वसौनस्तुरीयः २
 ज्ञासे तुरीय (चतुर्थ) अर्थात् शुद्ध आत्माकोचतुर्थ संख्यासे कहा
 है सो मायाकरके कल्पित जे जाग्रदादि तीनोंअवस्था तिसकीअपे-
 क्षासे है नतु सर्वसंख्याऽतीत विषे संख्या कोई नहीं। [तिसही
 ब्रह्मकोतीनोंअवस्थासे पृथक्होनेकरके तिसकीज्ञानमात्र स्वरूप-
 ता हो देखावे हैं] मरणरहित अमृत अरु जन्मरहित अज, पर
 [अर्थात् ब्रह्मको मायावी होनेकरके तिस विषे निकृष्टभावकी
 प्राप्तिकी आशंकाकरके तिसके निवारणार्थ "पर" यह पदकरके
 उरठपताही कहिये है, क्योंकि ब्रह्मकोमाया (आरोप) द्वारातिस
 मायासे सम्बन्धके हुयेभी स्वरूप करके मायासे ब्रह्मका सम्बन्ध
 नहीं। क्योंकितुल्य जातीय बाधर्मादिकवालों का सम्बन्ध सम्भ-
 वे है अरु ब्रह्म सत्यचैतन्य आनन्द निर्गुण एकरसहै अरु माया
 तिससे विपरीति असत्य जड़दुःख सगुणनानारूप वालीहै, ताते
 उक्त प्रकारके ब्रह्माका उक्तप्रकारका मायासेसम्बन्ध स्वरूप सेही
 संभवे नहीं। एतदर्थ ब्रह्मविषे कैसे निकृष्टताहोवेगी किन्तु किसी
 प्रकार भी नहीं। यह अर्थहै] ब्रह्मकेअर्थमें नमस्कार करताहों १॥
 हे सौम्य! जो [प्रथमश्लोक विषे विधिमुखसेवस्तुके प्रतिपादन
 की प्रतिज्ञाको आश्रयकरके 'तत्' पदके लक्ष्यार्थसे आरंभ करके
 तिसकी 'त्वं' पदके लक्ष्यार्थ भूत प्रत्यगात्मस्वरूपता प्रतिपादन
 किया। अरुविषय अरु फलके कथन से, सम्बन्ध, अरु अधिकारी
 सूचनकिये। अब इस द्वितीय श्लोकविषे निषेधमुखद्वारा वस्तु
 मात्रके प्रतिपादनकी प्रतिज्ञाको आश्रय करके 'त्वं, पदकेवाच्यार्थ
 से प्रारम्भकरके तिसकी 'तत्', पदके लक्ष्यार्थ भूतअसंसारी
 शुद्ध ब्रह्मरूपताकी प्रतीति करावने हैं। तहाँ प्रथम 'त्वं, पदके

लक्ष्यार्थरूप स्वतःसिद्ध चिदात्माविषे आरोपित जाग्रदवस्थाको उदाहरण करते हैं] यह प्रत्यगात्मा अविद्या अरु कालसे उत्पन्न हुये जे धर्म अधर्मरूप विधि तिससे जन्यजे सूर्यादिक देवता तिनके अनुग्रह सहित बाह्यकरण (चक्षुरादि इन्द्रिय) द्वाराबुद्धि के परिणाम विषय होने करके अत्यन्त स्थूल अरु भोगने के योग्य होनेकरके भोगशब्दके वाच्य भोग्योंको साक्षात् अनुभव करके स्थितहुआ, पंचीकृत पंच महाभूत अरु तिनका कार्यरूप स्थूल जगन्मय विराट्का शरीररूप विश्व है तिस जाग्रत् स्थानरूप विश्वविषे अहंमम (मैं अरु मेरा) यह अभिमान बान्नुहुआ विश्व (विश्वाभिमानी) जीवरूप होता है । अरु पश्चात् [अबतिसही चैतन्य आत्मा विषे स्वप्नावस्थाके आरोपको कहते हैं] जे जाग्रत् के हेतु कर्महैं तिनके क्षयहोने से अनन्तर स्वप्नके हेतुजे कर्महैं तिनके उद्भव होनेसे जाग्रत्के स्थूल विषयों से इतर, अरु तिसही हेतुसे सूक्ष्म, अरु बाह्य इन्द्रियोंको विषयों से निवृत्त होनेकरके 'अविद्या, काम, अरु कर्म', इनसे प्रेरणाको प्राप्तहुई अपनी बुद्धि तिसके प्रभावसेही उत्पन्नहुये अन्तःकरणकी वासनामय, अरु स्वप्नविषे भी सूर्यादिकों के प्रकाश के । जो केवल जाग्रत्के सूर्यादिकों के प्रकाशके संस्कार युक्त बुद्धिकरके कल्पित हैं । अस्तहुये केवल । स्वयंज्योतिः । आत्मरूप प्रकाश करकेही प्रकाशित हुये (विषय किये गये जे भोग्यवदार्थ तिनको अनुभव करके, अपंचीकृत । तन्मात्रारूप । पंचमहाभूत अरु तिनके कार्यरूप सूक्ष्म प्रपंचमय हिरण्यगर्भ के शरीररूप स्वप्नावस्थाके ताई अभिमान । अहंमम (मैं मेरा) भाव । करता हुआ । चैतन्यआत्माही । तेजसनामक जीवरूप होता है । पुनः [अब तिसही चिदात्माविषे सुषुप्ति अवस्थाकी कल्पना को देखावे हैं] भी स्थूल अरु सूक्ष्म उभय शरीररूप उपाधिद्वारा जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभय अवस्थारूप स्थानोंविषे प्रवृत्ति होनेसे हुआ जो श्रम तिमकी उत्पत्तिके अनन्तर तिस श्रमके परित्याग करने

की इच्छाके होनेसे स्थूल अरु सूक्ष्मके विभागकरके जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभयस्थानों विषे स्थित, इन प्रसंग विषे प्राप्तहुये सर्व भी भोग्यरूप विशेषों को धीरेसे । क्रमशः वा बिनाही क्रमशः । अज्ञात कारणरूप अपने स्वरूप विषे । अर्थात् सुषुप्ति से उठके कहता है कि ऐसे सोये जो कुछ भी खबर न रही इस अज्ञात लक्षणवान् कारण अविद्या तिसकी पृथक्सत्ताका अभावहै, क्योंकि उस अज्ञात अविद्याका परिणाम उसके प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान ज्ञानस्वरूप आत्माविषे होता है जैसे कल्पित सर्पका रज्जुविषे, अरु जिसका परिणाम जिस अधिष्ठानरूप होताहै सो उसहीका स्वरूप होताहै, ताते अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे अव्यस्त अविज्ञातरूप अविद्या भी सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूपही है । स्थापन करके अव्याकृतरूप उपाधिकी प्रधानतावाला हुआ । वोही चैतन्यआत्मा । प्राज्ञनामक जीवरूप होताहै । सो [अव जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों करके युक्त, अरु “नान्तःप्रज्ञंनवहिःप्रज्ञं” (अन्तःप्रज्ञनहीं, बाह्यप्रज्ञनहीं) इत्यादि निषेधमुख श्रुतिवाक्य श्रवणसे उत्पन्नहुआ जो प्रमाणज्ञान तिसविषे आरूढ़हुये तिसही प्रत्यगात्माके कार्य कारणरूप सर्व अनर्थ विशेषों को श्रुतिप्रमाण जन्यज्ञानके प्रभाव सेही त्यागकरके निरुपाधि परिपूर्ण ज्ञानरूप सेही सिद्धहुये तत्त्वको कथन करते हैं । अरु संगलार्थ तिसकी प्रार्थना करते हैं] यह सर्वगुणोंके समूहकी कल्पनासे रहित अरु नित्य ज्ञानरूप स्वस्वभाववाला तुरीयरूप परमात्मा सर्व कार्य कारणरूप अनर्थोंके भेदोंको भी श्रुतिप्रमाण जन्य ज्ञानके प्रभाव सेही परित्याग करके, अरु व्याख्यानके कर्त्ता होनेकरके अरु श्रोताहोने करके स्थितहुये हमको पुरुषार्थ विषे विघ्नकारी कारण के । अर्थात् पुरुषार्थ विषे जे विघ्नों के कारण तिनके । निषेध (अभाव) पूर्वक मोक्षके प्रदानसे अरु तिसकेहेतु ज्ञानके प्रदान से रक्षणकरो २ ॥

इति भाष्यकारकृतमंगलाचरणम् ॥

अथ भाष्योपरिटीकाकारस्वामीआनन्दगिरि
कृतमंगलाचरणम् ॥

ॐपरिपूर्णपरिज्ञानपरितृप्तिमतेराते । विष्णवेजिष्णवेतस्मैकृ
ष्णनामभूतेनमः १ शुद्धानन्दपदाम्भोजद्वन्द्वमद्वन्द्वतास्पदम् ।
नमस्कुर्वेपुरस्कर्तुन्तत्त्वज्ञानमहोदयम् २ गौडपादीयभाष्यंहिप्र-
सन्नमिवलक्ष्यते । तदथोऽतिगम्भीरव्याकरिष्येस्वशक्तितः ३
पूर्वैयद्यपिविद्वांसोव्याख्यानमिहचकिरे । तथापिमन्दबुद्धीनामु-
पकारायत्यते ४ ॥

ॐमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भव
द्भविष्यदितिसर्वमोकारएव- । यच्चान्यत्रिकालातीतं त
दप्योकारएव १ ॥

हे सौम्य, ! यह [जिसको उद्देश करके मंगलाचरण किया,
तिसको कथन करने को आदिविषे व्याख्यान करनेयोग्य मंत्रके
प्रतीक । प्रथमपद । को ग्रहणकरते हैं] ॐ इसप्रकारका जो अ-
क्षरहै, सो यह सर्वहै । तिसका उपव्याख्यान वेदान्त [यह क्या
शास्त्रपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है, वा प्रकरणपने
करके व्याख्यान करने को इच्छितहै । तहां जो प्रथमपक्ष कहो
कि शास्त्रपने करके व्याख्यान करनेको इच्छितहै, सो बने नहीं,
क्योंकि इसविषे शास्त्रके लक्षणके अभावसे इस ग्रन्थको अशा-
स्त्रपनाहै ताते । अरु एक प्रयोजन से सम्बन्धवाला सर्व अर्थका
प्रतिपादक शास्त्रहोताहै । सो इस ग्रन्थविषे एक मोक्षरूप प्रयो-
जनपना तो है परन्तु सर्व अर्थका प्रतिपादकपनानहीं । एतदर्थ
शास्त्रके लक्षणके अभावसे इसग्रन्थको अशास्त्रपना युक्तही है ॥
अरु जो द्वितीयपक्ष कहो कि इसको प्रकरणपने करके युक्त होने
से व्याख्यान करने को इच्छित है, तो सो भी बने नहीं, क्योंकि
प्रकरणके लक्षण का भी इसविषे अभाव है । यह आशंका करके
कहेहैं यहां यह अर्थहै कि शास्त्रके एकदेशसे सम्बन्धवाला अरु

शास्त्रके अन्यकार्य विषे स्थित जो होय सो प्रकरण ऐसा कहते हैं । अरु यह ग्रन्थ प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है क्योंकि यह निर्गुण वस्तुमात्र का प्रतिपादक है ताते, अरु तिसके प्रतिपादन के संक्षेपरूप अन्यकार्योंका भी होना है ताते, इसग्रन्थ विषे प्रकरणके लक्षण सर्वही हैं ताते । यहग्रन्थ व्याख्यान करने को इच्छित है ।] शास्त्रके अर्थकासार संग्रहरूप चारप्रकरणवाला “ ॐ मित्येतदक्षरमित्यादि ” (यह ॐ इसप्रकारका अक्षर है) इत्यादिरूप ग्रन्थ है तिसका आरम्भ करते हैं [इसग्रन्थ को प्रकरण रूपहुये भी विषयादिक अनुबन्ध रहिततारूप दोषकी की हुई इस ग्रन्थके व्याख्यान करनेकी अयोग्यता है, यह आशंका करके कहते हैं] याहीते इससे पृथक् सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजन कथनकरनेको योग्य नहीं, किन्तु जो वेदान्तशास्त्रविषे सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजन हैं सोई यहाँ कथनकरनेयोग्य हैं । तथापि प्रकरणके व्याख्यान करनेकी इच्छावाले पुरुषकरके संक्षेपसे कथन करनेयोग्य है । तहाँ श्रीभाष्यकार स्वामीकरके प्रयोजनादि अनुबन्धके कथनकी योग्यताके सिद्धहोनेसे शास्त्रअरु प्रकरणकेमोक्षरूप प्रयोजनवान्पनेकी प्रतिज्ञा करते हैं] प्रयोजनवत् साधनोंका प्रकाशक होनेकरके विषयसे सम्बन्धवाला जो शास्त्र सो परम्परा से श्रेष्ठ ‘विषय, सम्बन्ध, अरु प्रयोजनवाला होता है ॥ प्र० ॥ पुनः तिसका प्रयोजन क्या है, ॥ उ० ॥ तहाँ कहते हैं, जैसेरोगकरके आतुरपुरुषको रोगकी निवृत्ति होनेसे स्वस्थता होती है, तेसेही । अन्तःकरणदि उपाधिवाला दुःखी आत्माको । दुःखकेहेतु । द्वैतप्रपञ्चकी निवृत्तिके होनेसे जो अद्वैतभावरूप स्वस्थताहोवे है सोई प्रयोजन है । अरुद्वैतप्रपञ्च अविद्याका किया है अतएव विद्याकरके तिसकी निवृत्ति होती है एतदर्थ ब्रह्मविद्याके प्रकाशनार्थ इसग्रन्थ का आरम्भ करते हैं “यत्र हि द्वैतमिव भवति” । “यत्र वाऽन्यद्विद्वत्स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यद्विजानीयात्” “यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्केन कं तद्विजानीयात्, इत्यादि” (जहाँही

द्वैतवत् होता है, जहांवा अन्यवत् होता है, तहां अन्य अन्यको देखे, अन्य अन्यको जाने । अरु जहांतो इसको सर्व आत्माही होता हुआ तहां किसकरके किसको देखे कि मरकरके किसको जाने । इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणकरके इसअर्थकी सिद्धि है । तहां [विषय प्रयोजनादि अनुबन्धके आरंभद्वारा ग्रंथके आरंभके स्थितहुये आदिषिये इस कारिकारूपां ग्रंथके चारप्रकरण एकते एकअमिलित विषय, ज्ञानकी सुगमताके अर्थ सूचनकरनेको योग्य है, इस प्रकार कहके प्रथम प्रकरणके विषयको निरूपण करते हैं] [गौड़पादीय कारिकाविषय] प्रथम ॐकारके निर्णयार्थ आगमप्रधान आत्मतत्त्वके निश्चयका उपायरूप प्रथम प्रकरण है । अरु रज्जुआदिकों विषे सर्पादिकोंके विकल्पकी निवृत्ति होनेसे रज्जुके यथार्थ स्वरूपकी प्राप्तिवत्, जिस [अब वैतथ्यनामक द्वितीय प्रकरणके अवान्तर विषयको देखावते हैं] द्वैतप्रपंचकी निवृत्ति होनेसे अद्वैतकी प्राप्ति होती है, तिस द्वैतके हेतुसे मिथ्यापनेके प्रतिपादनार्थ द्वितीय प्रकरण है । [अब अद्वैत नामक तृतीय प्रकरणके अर्थ विशेषके कहनेका आरंभ करते हैं] तैसे अद्वैतको भी द्वैतकी सापेक्षतासे मिथ्यापनेकी प्राप्ति के हुये युक्तिसे तिसके परमार्थपने के ज्ञावनेके अर्थ तृतीय प्रकरण है [अब अलातशान्ति नामक चतुर्थ प्रकरणके अर्थ विशेष को कहते हैं] अद्वैतके परमार्थभावके निश्चयके विरोधीरूप जे वेदभिरुद्ध अन्यवाद हैं तिनको परस्पर में विरोधी होनेसे उनको अयथार्थताके कारण युक्तिकरके ही तिनके निराकरणार्थ चतुर्थ प्रकरण है । पुनः [ॐकारके निर्णयरूप द्वारसे आत्मज्ञान प्राप्तिका उपायरूप प्रथम प्रकरण है, इस प्रकार जो कहा सो अयुक्त है, क्योंकि ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञान होनेकी हेतुताकी अयोग्यता है । अर्थात् आत्मज्ञान होनेकी हेतुताके योग्य ॐकारका विचार नहीं । अरु अन्य अर्थका ज्ञान अन्यअर्थके ज्ञानविषे व्याप्तिविना उपयोगतामें पावता नहीं, अर्थात् ॐकारके अर्थका ज्ञान आत्मज्ञानके अर्थज्ञानमें अव्याप्त होने में

ॐकारके अर्थकाज्ञान आत्मज्ञानहोनेमें उपयोगी होतानहीं । अरु यहां । ॐकारके विचार अरु आत्मज्ञानविषे । धूम अरु अग्निवत् व्याप्ति देखते नहीं, अरु ॐकारको आत्माका कार्यपना युक्तनहीं । क्योंकि आकाशादिकोंका अवशेषहै ताते । अरु तिस ॐकारको आत्मावत् सर्वात्मा होनेकरके तिसके कार्यपने का व्याघात है ताते । इसप्रकार मानताहुआ वादी पूर्व कहे प्रमाण प्रथम प्रकरणके अर्थविषे आक्षेप करेहै] ॐकारके निर्णयविषे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति का उपायपना कैसे प्रतिपादन करतेहौ, इस शंकापर कहतेहैं [हम । धूम अग्निवत् । अनुमान प्रमाणके आश्रयसे ॐकारके निर्णयको आत्मज्ञानका उपायनहीं जानते कि जिसकरके व्याप्तिका अभावरूप दोष प्राप्तहोवे, किन्तु श्रुतिवाक्यके शब्द प्रमाण से ॐकारका निर्णय आत्मज्ञानका हेतुहै, इसप्रकार समाधान करतेहैं] “ॐमित्येतत्” । “एतदालम्बनं श्रेष्ठम्” । “एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतने नैकतर मन्वेति” । “ ॐमित्यात्मानं युज्जीत” । “ॐमिति ब्रह्म” । “ ॐकार एवेदं सर्वम्” (ॐ इसप्रकारका यह, आलम्बन श्रेष्ठ है, हे सत्यकाम ! यह जो पर अरु अपररूप ब्रह्महै सो ॐकार है, ताते विद्वान् इसही साधनसे उभयके मध्य एकको प्राप्तहोता है, ॐ इसप्रकार आत्मा (बुद्धि) को योजनाकरे, ॐ यह ब्रह्महै, ॐकार ही यह सर्व है । इत्यादि अनेक श्रुतियोंके प्रमाणसे । सर्पादि [ननु आपकरके व्याप्तहुये भ्रातिवाले सन्मात्र चिदात्माविषे प्राणादि विकल्पको कल्पित होनेसे आत्माको सर्वका आश्रयपनाहै परन्तु ॐकारको वो सर्वका आश्रयपनाहै नहीं क्योंकि तिसके अनुस्यूतपनेका अभावहै ताते, यह आशंका होनेसे तहां कहतेहैं] विकल्प के आश्रय रज्ज्वादिकोंवत्, जैसे अद्वैतरूप आत्मा परमार्थकरके सत् रूपहुआ प्राणादि विकल्पोंका आश्रय है । तैसे प्राणादिरूप विकल्पों को विषय करनेवाला वाणीरूप प्रपंच ॐकारही है । अरु सो [ननु अर्थों के समूह को आत्मरूप आश्रयवाला होने

करके, अस्‌ॐकाररूप आश्रयवालाहोनेकरके, वाणीरूप पंचको दोनों आश्रय प्राप्तहुये, ऐसा कहना बनेनहीं, इसप्रकार कहते हैं] ॐकार आत्माका स्वरूपही है, क्योंकि ॐकार आत्माका वाचक है ताते । अरु ॐकार के विकार शब्दके उच्चारणका विषय प्राणादि सर्वआत्माका विकल्पनामसे भिन्ननहीं, क्योंकि “वाचारम्भणविकारोनामधेयं” (वाणी से उच्चारणकिया विकार नाममात्र है) अरु “ तदस्येदंवाचातन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम् ” । “ सर्वहीदंनामानीत्यादि” (सो इसका यह सर्ववाणी रूप तन्तुसे नामरूपा दामों (रज्जुओं) से बद्ध (धँधे) हैं । सर्व ही यह नामविषे हैं । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे ॐकारकोसर्व का आश्रयपना बनेहै । [प्रथम प्रकरणके अर्थको प्रतिपादन करके तिस अर्थविषे मूलश्रुतिको प्रकट करतेहैं] एतदर्थ यह श्रुति “ ॐमित्येतदक्षरमिदं सत्त्वं ” { ॐइसप्रकारका यह अक्षर यह सर्वहै } इसप्रकारकहे हैं । जो यहविषयरूप अर्थोंका समूहहै तिसकोनामसे अभिन्नहोने करके, अरु नामको ॐकारसे अभिन्नहोने करके ॐकारही यह सर्वहै । अरु जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने में आवता है सो ॐकारही है । [अत्र “तस्य” (तिसका) इत्यादिरूप मूलश्रुतिकेभागको प्रकटकरके व्याख्यान करते हैं] “ तस्योपव्याख्यानंभूतं भवन्नविष्यदिति सर्व्वमोकारएव ” { तिसका उपव्याख्यानहै, भूत, वर्तमान, भविष्यत् यह सर्व ॐकारही है } अर्थात् तिस इस पर अरु अपर रूप ‘ॐ’ इसप्रकार के अक्षरको ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे, अरु ब्रह्मके समीप (नाम) होनेकरके विप्रकृष्ट कथनरूप प्रसंगविषे प्राप्त जो उपाख्यानहै, सो सम्यक्प्रकार जाननेके योग्यहै । अरु उक्त न्यायसे ‘ भूत, वर्तमान, भविष्यत् ’ इन तीनोंकालोंकरकेपरिच्छेद (भेद) करने के योग्य जो वस्तुहै सोभी सर्व ॐकारही है । “ यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योद्धारएव ” { जो अन्य तीनोंकालों से अतीत (भिन्न) है सो भी ॐकारही है } अर्थात् जो अन्य

सर्व्वं ऽद्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्मसोयमात्मा चतुष्पात् २॥

तीनों कालों से पृथक् कार्यरूप लिंगसे जानने योग्य. अरु काल करके परिच्छेद करने को अयोग्य । कारणरूप । अव्याकृतादिक हैं । वा सर्वका कारण परमात्मा है । सो भी ओंकारही है । अर्थात् आकाशको सर्वत्र पूर्ण होनेसे उसको देशकृत परिच्छेद नहीं, परन्तु “एतस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः” इत्यादि प्रमाणसे आकाशको उत्पत्तिवाला होनेसे वो अपनी उत्पत्ति के पूर्वकाल में अभावरूप है ताते आकाश को कालकृत परिच्छेद है, ताते आकाशादि सर्वकार्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान, इन कालत्रय कृत परिच्छेदवा ला है, अरु आकाशादि सर्वकार्यों का कारण जे सत् चैतन्य परमात्मा ब्रह्म है सो “अजोनित्यः” इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे उत्पत्ति विनाश से रहित अजन्मा नित्य सत्य है, एतदर्थ उसविषय कालकृत भी व्यवधान नहीं । इस कहने का अभिप्राय यह है कि “भूतं भवद्भविष्यदितिसर्व्वमोंकार एव ” इस श्रुतिसे आकाशादि सर्व्वकार्य जो उत्पत्ति विनाशवाला है सो सर्व कालत्रय के परिच्छेदवाला ओंकार वाच्य है “तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको” इत्यादि प्रमाणसे । अरु “यच्चान्यस्त्रिवालातीति तदप्योंकार एव” इस श्रुतिवाक्यसे, जो कालत्रय के परिच्छेदवाले कार्यरूप पदार्थोंसे अन्य जो सर्वका कारण अधिष्ठान परमात्मा परब्रह्म है सो ओंकारकालक्ष्य है, ऐसा जानना । ॥ यहां [वाच्य अरु वाचक को एकही सत् वस्तुविषये कल्पित होने करके तिनकी एक रूपताको कथन किया जाता है, पुनः (सर्व्वयह ब्रह्म है) इस प्रकार क्यों कहते हैं, ऐसा जहां विमल्य है, नहां उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक अभिप्राय के फलसहित तात्पर्यको करते हैं] नाम (वाचक) अरु नामी (वाच्य) इनकी एकता के होने से भी नामकी प्रधान्यता से यह निर्देश किया है १ ॥

२. हेतोम्यः ! “ओं” [वाच्यको वाचकपनेके कथन करके ही तिन

'वाच्य वाचककी' । एकताकी सिद्धिसे, पुनः वाचक की वाच्य रूपताका कथनरूप व्यतिहार (उलटायके कथन) करना व्यर्थ है, यह आशंका करके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि वाच्य से वाचककी एकताको न कथन करके वाचकसेही वाचक की एकता के कथन करने से उपाय अरु उपेय की करीदुई जो एकता, सो मुख्यनहीं, किन्तु गौण है, इसप्रकारकी आशंका प्राप्त होवेगी, तिसके निवारणार्थ व्यतिहारका कथन सफल है] “ ॐ मित्येतदक्षरमिदं सर्वं ” इत्यादि नामकी प्रधानता से निर्देशकरी वस्तुका पुनः नामी की प्रधानता से जो निर्देश कहिये कथन है, सो नाम अरु नामी की एकताके निश्चयार्थ हैं । अरु अन्यथा नामके विधे नामीका निश्चय होवेगा, अरु नामीकी नामरूपता गौण है, इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होवेगी । अरु वाच्य अरु वाचकरूप नामी अरु नामकी एकता के निश्चयका इन दोनोंको एकही प्रयत्न से एक कालविषे लय करताहुआ तिससे विलक्षण ब्रह्मको । कि जिसविषे नाम अरु नामी इत्यादि कोई भी कल्पना नहीं प्राप्त होता है, यह प्रयोजन है । अरु तैसेही आगे कहेंगे कि “ पादमात्रामात्राद्वपादा ” (पाद जो हैं सो मात्रा हैं अरु जो मात्रा हैं सो पाद हैं) । सोई [कहेहुये वाचकके वाच्यसे अभेदविषे वाच्यको प्रकटकरके योजना करते हैं] कहते हैं “ सर्व्वं ध्येन ब्रह्मा यमात्मा ब्रह्म ” { सर्व्वही यह ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है } अर्थात् सो सर्व्वकार्य अरु कारणही ब्रह्म है । सर्व्व जो यह ॐकारमात्र है, इसप्रकार श्रुतिने कहा है, सो यह ब्रह्म है । इसप्रकार सो परोक्षपने करके कथनकिये ब्रह्मको प्रत्यक्ष (अपरोक्ष) विशेष करके निर्देश करते हैं । यह आत्मा ब्रह्म है । यह “ अयं ” (यह) इसकरके ' विष्णु, तेजस, प्राज्ञ, अरुतुरीय, इन चार पादवाला होने से विभाग को प्राप्तहुये आत्माको प्रत्यगात्मारूप होने करके कथन करने को जो इच्छित अर्थ तिसके निश्चयार्थकसाधारण शरीरके हस्ताग्र (अंगुली वा करतल) को अपने हृदय देशपर्यंत लेआवनेरूप

व्यापारमय अभिनय से “अयमात्मा” (यह आत्मा है) । अर्थात्
 “ अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा- सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः ”
 इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे अंगुष्ठप्रमाण हृदयनामक मांसपिंडी ‘जो
 वक्षस्थलके मध्यहै, तिसके संम्वन्धसे तिसके मध्य घटमें आका-
 शवत्, अंगुष्ठमात्र चैतन्य पुरुष है तिसको सर्वका द्रष्टा होने से
 प्रत्यक्षकरके ‘अहं आत्माहै, इसप्रकार अंगुलि निर्देशसे कहते हैं।
 इसप्रकार कहते हैं। “ सोऽयमात्मा चतुष्पात् ” (सो यह आत्मा
 चारपादवाला है) अर्थात् सो [अब “सोऽयं” (सो यहहै) इत्या-
 दिरूप अन्यवाक्य को प्रकटकरके व्याख्यानकरते हैं] यह अंका-
 रका वाच्य अरु पर (सर्वाधिष्ठान) अरु अपर (प्रत्यगात्मा)
 रूप होनेकरके स्थितहुआ आत्मा चारपादवाला है । तहां दृष्टान्त
 कहते हैं, कार्पाणके पादवत्, [आत्माको सर्वाधिष्ठान होने
 करके अपरीक्षतासे पर (श्रेष्ठ) पनाहै अरु उसको प्रत्यगात्मरूप-
 तासे अपर (अश्रेष्ठ) पनाहै, तिस हेतुकरके कार्यकारण रूपसे
 सर्वका स्वरूप (अपनाआप) होने करके स्थितहुआ जो आत्मा
 तिसके ज्ञानकी सुगमताके अर्थ उस विषे चारपाद की कल्पना
 कियाहै, तिसविषे दृष्टान्त कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि कोई एक
 देश विषे पौड़गण अन्नके माप करने के पात्र विशेषका नाम
 ‘कार्पाण, कहते हैं, अर्थात् किसी एकपात्र विशेषमें एकमनके
 प्रमाण अन्न विशेष पूर्णता से आवताहै अरु उस एकही पात्र में
 ‘एकमन, पौनमन, आधमन, पावमन, इसप्रकारमापने के चार
 चिह्न होनेसे उस पात्रकी चार पादवाला कल्पना करते हैं तैसे ।
 तहां उसपात्रविषे व्यवहारकी वाटुन्यता सिद्धयर्थ पादोंकी विशेष
 कल्पना करते हैं, तैसेही इस आत्मा विषे भी पादोंकी कल्पना
 जाननी । परन्तु जैसे गौको चार पादवाली कहते हैं तैसे आत्मा
 चार पादवाला कहनेको शक्य नहीं, क्योंकि आत्माको जो निष्कल
 निरवयवादि भावकी प्रतिपादक श्रुतियां हैं तिनसे विरोध होवेगा
 नाते] गौके पादवत् नहीं [विषये आदिलेके तुरंगपथेन चार

जागरितस्थानो वहिः प्रज्ञः सप्ताङ्गको नविंशतिमुखः
स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ३ ॥

पादरूप । पदार्थो विषे जो पाद शब्द है, सो जब करण व्युत्पत्ति वाला । अर्थात् साधनरूप अर्थवाला । होवे-तब विश्वादिकों वत् तुरीयके भी साधन कोटिविषे प्रवेशके होतेसे ज्ञेयवस्तुकी । अर्थात् सुमुक्षुपुरुष करके श्रवणादि साधनोंद्वारा तुरीयआत्माको आत्म-त्वसे जानना है तिसकी । असिद्धि होवेगी, अरु जब पाद शब्द विश्वादिक सर्वविषे कर्म व्युत्पत्ति (विषयरूपार्थ) वाला होवे है, तब सर्व को ज्ञेयरूप होनेसे उनको ज्ञानके साधनताकी असिद्धि होवेगी । यह आशंका करके पादशब्दकी प्रवृत्तिको विभाग कर के प्रकट करते हैं] विश्वादिक तीनोंके मध्य पूर्वपूर्व । पादोंके उत्तर उत्तर, पादों विषे । विलय करने से तुरीयाका निश्चय होता है । अरु इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयाके कारणभावका साधन होता है, अरु प्राप्त होता है । इसप्रकार होनेसे पादशब्द तुरीयके कर्म कहिये 'विषय, भावका साधन होता है । परन्तु निरवयवरूप आत्माको उभयप्रकारके पादोंकी कल्पना बने नहीं २ ॥

३ हे सौम्य ! [आत्माके चारपाद तो दूरसे ही निषेध किये हैं, इस प्रकार वादीशंका करे है] प्र० ॥ आत्माका चारपाद करके युक्तपना कैसे है, उ० ॥ तहां कहते हैं, 'जागरितस्थानो वहिः प्रज्ञः' । जागरितस्थान वहिः प्रज्ञ है, अर्थात् जाग्रन् अवस्था है । स्थान अर्थात् अभिमानका विषय । जिसका, ऐसा जागरितस्थान है । अरु वहिर जो आत्मा को अपने आप आत्मत्वसे-मिश्र विषय, तिन विषे है प्रज्ञा [प्रज्ञा जो बुद्धि, तिसको प्रथम अन्तर होनेकी प्रसिद्धि से, तिसका " वहिः प्रज्ञः " वाह्य के विषय बानी] यह विशेषण अयुक्त है, ऐसी आशंका करके तिसका व्याख्यान करते हैं । यहां यह भाव है कि, चेतन्यरूप जो स्वरूप भूत प्रज्ञा है सो बाह्य विषयों विषे भागती नहीं, क्योंकि वो प्रज्ञा विषय

की अपेक्षासे रहित है ताते, किन्तु बुद्धिरूप जो प्रज्ञा है सो बाह्य के विषयों विषे भासती है] जिसकी सो कहिये वहिःप्रज्ञा । अर्थात् अविद्याकृत [बाह्य विषयोंका वास्तवकरके अभावसे, वो प्रज्ञा जो अन्तर है] सो बाह्यविषयोंविषे कैसे भासती है, ऐसी आशङ्का करके कहते हैं । यहाँ यह तात्पर्य है कि, आत्मविषयिणी स्वरूप भूत जो प्रज्ञा है, सो वास्तवसे बाह्यविषयवाली नहीं अङ्गीकार किया है, परन्तु बुद्धिवृत्तिरूप जो विषयादिवस्तुविषयिणी निश्चयात्मक । अज्ञानकरके कल्पित प्रज्ञा है, सो बाह्यविषयोंवाली प्रज्ञा होती है । अरु सो बुद्धिवृत्तिरूप प्रज्ञा भी वास्तवसे बाह्य विषय भावको अनुभव नहीं करती क्योंकि अज्ञानकरके कल्पित होनेसे वास्तवमें उस प्रज्ञाका अभाव है । अरु उस प्रज्ञाका विषय बाह्य विषय सो भी अज्ञानकरके कल्पित है ताते । एतदर्थ बुद्धिवृत्तिका जो बाह्य विषयोंका प्रकाशकपना है सो प्रातिभासिक (कल्पित) है] जो बाह्य प्रज्ञा है सो बाह्य के विषयवाली (विषयाकार) ही भासे है तेसे [अब पूर्व के विशेषणसे इतर विशेषणको योजना करते हैं] “तस्य ह वै तस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्ध्वैव सुते जाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग् वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो वस्तिरेव रायिः पृथिव्येव पादौ-” “अग्निहोत्रकल्पनाशेषत्वेनाग्निमुखत्वेनाहवनीय उक्तः” तिस इस वैश्वानररूप आत्माका सुन्दर तेजवाला स्वर्गलोक मस्तक है, अरु श्वेतरक्तादि नानाप्रकारके गुणोंवाला सूर्य उसका चक्षु है, अरु नानाप्रकारकी गतिसे विचरनेके स्थभाववाला वायु उसका प्राण है, अरु विस्तृत तारूपगुणवाला आकाश उसका देह मध्यभाग है, अरु उनका हेतुरूप जल उसका मूत्रस्थान है, अरु पृथिवी उसके दो पाद हैं । अरु अग्निहोत्रकी कल्पना विषे उपयोगी होनेकरके आहवनीय नामवाला जो अग्नि है सो उसके मुखरूपसे कहा है । इस प्रकार श्रुतिकरके उक्त यह सात हैं अङ्ग जिसके ऐसा “सातंग” सात अङ्गवाला है । अरु “एकोनविंशतिमुखः” एक ऊन बीस मुखवाला है ; अर्थात् नैसेही [अब अन्य विशेष-

णोंकी योजना करतेहैं] पांच ज्ञानेन्द्रिय अरु पांचकर्मैन्द्रिय; अरु प्राणादिभेदसे पांच वायु, अरु 'मन, बुद्धि, चित्त, अरु अहङ्कार, यह चार अन्तःकरणकी वृत्तिपां, यह सर्व मिलके हुये जो उन्नीस १६ सोई मुखवत् उसके मुख (ज्ञानकेद्वार) [यहां ज्ञानपदकर्मका उपलक्षण है, एतदर्थ ज्ञानके साधन अरु कर्मके साधन इस विश्व नामवाले जीवके मुख (ज्ञान अरु कर्मके साधन) हैं। यहां इस प्रकार विवेचनकरने को योग्य है, तहां पांच ज्ञानेन्द्रियां अरु एक मन अरु एक बुद्धि, इनसातको पदार्थोंको ज्ञानविषे साधनपना प्रसिद्ध है, अरु वागादि कर्मेन्द्रियोंको वचनादि कर्मों विषे साधनपना प्रसिद्ध है। पुनः प्राणोंको ज्ञान अरु कर्म इन दोनों विषे परम्परासे साधनपना है। क्योंकि प्राणोंके होनेसेही ज्ञान अरु कर्मकी उपपत्तिहै, अरु तिनकेअभाजसे ज्ञान कर्मकीअनुपपत्तिहै ताते। अरु अहङ्कारको भी प्राणवत् ज्ञान कर्म दोनोंविषे साधनपना माननेके योग्यही है। अरु चित्तको भी चैतन्याभास के उदयविषे साधनपना कहाहै] जिसके, इसप्रकारका उन्नीस १६ मुखवाला है। अरु "स्थूलभुक्वैश्वानरः प्रथमः पादः" १ स्थूल भुक् वैश्वानर है सो प्रथम पादहै; अर्थात् [पूर्वोक्त विशेषणों करके युक्त वैश्वानरका "स्थूलभुक्" ऐसा अन्य विशेषण है, तिसका विभागकरते हैं, यहां शब्दादिक विषयोंका स्थूलपना है सो दिशादिक देवता के अनुग्रह सहित श्रोत्रादिक इन्द्रियों से ग्रहणहोनेरूप है] सो ऐसे विशेषणोंवाला वैश्वानर उक्त उन्नीस शारोंसे शब्दादिक स्थूल विषयोंको भोगता है ताते सो 'स्थूल भुक्' है, अरु [अब वैश्वानर शब्दका प्रसंग विषे प्राप्त विश्व जीवको विषय करनेपना स्पष्ट करते हैं] "विश्वेपांतरागामनेकधानयताद्विश्वानरः । यद्वाविश्वश्चासौ नरश्चेति वैश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः" - सर्व नरों को अनेक ।कारसे लेजाता है एतदर्थ विश्वानर है - अथवा विश्व ऐसा तो नर सो कहिये विश्वानर । विश्वानरही सर्व [विश्व ऐसा

पनाहै । अतएव ऐसे अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदको लेके उक्त प्रकारसे चार पादवान्पनेको कहने को इच्छित होने से पूर्व पूर्व पादको उत्तरोत्तर पादरूप से विलय करने से जिज्ञासुकी तुरीय स्वरूप विषे स्थिति सिद्ध होती है] यह दोष है नहीं, क्योंकि अधिदैव सहित सर्वप्रपंचके इस आत्माके स्वरूपसे चारपादपना कहने को इच्छित होनेकरके । अरु ऐसे [जत्र इसप्रकार जिज्ञासु मुमुक्षुकी तुरीय विषे स्थिति अंगीकार करते हैं, तब तत्त्वज्ञानके प्रतिबधक प्रातिभासिक कहिये कल्पित द्वैतकी निवृत्ति के हुये अद्वैत परिपूर्णब्रह्ममें हों] इसप्रकार महावाक्यार्थका साक्षात्कार सिद्ध होवे, इसप्रकार कलितको कहते हैं] सर्व प्रपंचकी निवृत्तिके हुये, अद्वैतकी सिद्धि होती है, सो सर्व भूतोंविषे स्थित एक आत्मा देखा (अनुभव किया) होता है, अरु सर्व भूत आत्माविषे देखे हुये होते हैं । इसप्रकार “ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ” ८ जो सर्वभूतोंको आत्माविषे ही देखता है, ७ इस ईशावास्यउपनिषद्के षष्ठ मन्त्ररूप श्रुतिका अर्थ समाप्त किया होता है [अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदके अंगीकार रूपद्वार से पूर्वोक्तरीत्या तत्त्वज्ञानके । होनेके । अंगीकारविषे दोष कहते हैं] अन्यथा अपने देहकरके परिच्छिन्नही प्रत्यगत्मा सांख्यादिमतवादियोंवत् अनुभव किया होवेगा । अरु तैसे [ननु, आत्माकी एकता विषे सुखादिकोंके भेदकी व्यवस्थाने असंभव से । अर्थात् जो कदापि सर्व शरीरों में एकही आत्मा मानिये तो एकके सुखसे सर्वही सुखी, अरु एकके दुःखसे सर्वही दुःखी, अरु एकके बन्धसे सर्वही बन्ध, अरु एकके मुक्तसे सर्वही मुक्त, ऐसा होना चाहिये, परन्तु सो न होके कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई बन्ध है, कोई मुक्त है, सो सर्वको प्रकट अरु युक्तही है, अरु शरीर २ प्रति भिन्न भिन्न आत्मा मानने से कोई सुखी अरु कोई दुःखी इत्यादि जो लोक विषे व्यवस्था है सो यथार्थ है अरु सोई सर्व शरीरोंविषे भिन्न भिन्न आत्माका बोधक लिंग है । शरीर शरीरके प्रति आत्माका भेद

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयः पादः ४ ॥

सका व्याख्यान करते हैं] “स्वप्नस्थानो” ६ स्वप्नरूप स्थान
वाला ? अर्थात् स्वप्न, हेममलक्षण अभिमानका विषयरूपस्थान
जिस तैजसरूप द्रष्टाका ऐसा जो स्वप्नस्थानवाला, [‘स्वप्न’ इस
पदके निरूपणार्थ तिसके कारणको निरूपण करते हैं] जाग्रत
की जो प्रज्ञा (बुद्धि) है सो अनेक साधनोंवाली अरुवाह्य (स्थूल)
को विषयकरनेवाली हुयेवत् भासमान, अरु मनरूप स्फुरण-
मात्रहुई तिसप्रकारके संस्कारको मनविषे धारणकरे है । तैसे
संस्कारवाला सोमन, चित्रित [जाग्रतकी वासनाकरके युक्त
हुआ जो मन सो स्वप्नविषे जाग्रतवत् भासताहै, इस अर्थ विषे
दृष्टान्त कहतेहैं । जैसे चित्रकरके युक्तहुआ जो पट सो चित्रवत्
भासताहै । अर्थात् अनेक रंगोंके सूत्रकरके निर्मित धूल घूटादि
वाला पट चित्रवत् भासताहै । तैसे जाग्रतके संस्कार करके (जो
मनही करके कल्पित हैं) युक्त हुआ जो मन सो जाग्रतवत्ही
भासताहै, यह युक्तहै, इत्यर्थः] पटवत्वाह्यके साधनकी अपेक्षा
से रहित, अरु अविद्या, काम, कर्म, से प्रेरणा को प्राप्तहुआ जाग्रत
वत् भासताहै । अरु ऐसेही बृहदारण्यकी श्रुतिविषे कहा भी है
“अस्य लोकस्य सर्वावतोमात्रामपादायेति” “तथा परे देवे
मनस्येकीभवतीति” “पुस्तुत्यात्रैव देवःस्वप्नेमहिमानमनुभवती
त्यथिर्वर्णे” ८ इस सर्व साधनकी सम्पत्तिवाले लोककी मात्रा
(लेशरूप वा सूक्ष्म वासना) को ग्रहणकरके सोचता है ७ अरु
ऐसेही अथर्वणवेदके ब्राह्मण पूज्जोपनिषदविषेभीकहाहै, तथाच ।
८ मनरूप परदेव विषे एकवत् होताहै ७ ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तकरके
८ इस स्वप्नविषे यह (मनाख्य) देव महिमाको अनुभव करताहै ७
अरु [ननु विश्वकी बाह्यइन्द्रियों से जन्य पूजाको, अरु तैजस की
मनसे जन्य पूजाको अन्तर स्थितहोनेकी तुल्यता से, तैजस का

“अन्तःप्रज्ञः” अन्तरकी प्रज्ञावाला, यह विशेषण व्यावर्तक (विश्वादिकोंसे पृथक् करनेवाला) नहीं है, जहाँ ऐसी शंका है, तहाँ कहते हैं] इन्द्रियोंकी अपेक्षासे मनको अन्तर स्थित होनेकरके स्वप्नविषे अन्तर है, तिसमनकी वासनारूप प्रज्ञा है जिसकी ऐसा जो “अन्तःप्रज्ञ” अन्तरकी प्रज्ञावाला है, अरु “सप्ताङ्ग एकोन विंशतिमुखः” सातअंग अरु उन्नीस मुखवाला है, अर्थात् यह तैजस जो अन्तर की प्रज्ञावाला है सो । पूर्वके विश्ववत् सात अंग अरु उन्नीस मुखवाला है । अरु “प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयः पादः” वासनामय सूक्ष्म भोगवाला है तैजस द्वितीयपाद है, अर्थात् प्रविविक्तभुक्, कहिये वासनामय सूक्ष्मभोग वा विरल भोगका भोक्ता है । [ननु, विश्व अरु तैजसका “प्रविविक्तभुक्” वासनामय सूक्ष्मभोगोंका भोक्ता, यह विशेषणतुल्य है, क्योंकि विश्व अरु तैजस इन उभयकी वाह्य अरु अन्तरप्रज्ञाको भोज्यपनेकी तुल्यता है ताते, ऐसा जो वादीका कथन सो बने नहीं, क्योंकि उक्त उभयकी प्रज्ञाको भोज्यपने की तुल्यता के हुये भी तिस प्रज्ञाविषे मध्यके भेदसे विश्वकी भोज्य (भोगने योग्य) जो प्रज्ञा है, सो विषय सहित होनेसे स्थूलकरके जानी जाती है । अरु जो तैजसकी प्रज्ञा है सो विषयके सम्बन्ध से रहित केवल वासनामात्र रूपवाली है, इसकरके तैजस विषे सूक्ष्मभोग सिद्ध होते हैं, इसप्रकार कहा है] जाग्रत् विषे विश्वको विषयसहित होनेसे स्थूल प्रज्ञाका भोग्यपना है । अरु यहाँ स्वप्नविषे जिसकरके केवल वासनामात्र स्वरूपवाली प्रज्ञा भोग्य है, एतदर्थ प्रविविक्त (सूक्ष्म) भोग है । अरु [स्वप्नके अभिमानी को तेजके कार्यहोनेके अभाव से तैजसपना काहेसे होवेगा, यह आशंका करके कहते हैं] विषय रहित केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञाविषे प्रकाशकपने करके होवे है । अर्थात् स्वप्नका अभिमानी तेजका कार्य नहीं परन्तु स्वप्न का प्रकाशक है एतदर्थ उसको तैजसपना होता है । इसकरके जो तैजस है सो द्वितीयपाद है ४ ॥

यत्र सुप्तोनकञ्चनकामं कामयतेनकञ्चनस्वप्नं पश्य
तितत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्द
मयो ह्यानन्दं भुक्चेतो मुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ५ ॥

५ हे होम्य ! [उक्तप्रकार [विश्व अरु तेजसां दोनों पादों की
व्याख्या करके अब तृतीयपादके व्याख्यान करत सन्ते व्याख्यान
करने के योग्य श्रुतिविषे “नकञ्चन ” (किसीको भी नहीं) इत्यादि
विशेषणों के तात्पर्य को कहते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि स्थूल वि-
षयवाले ज्ञानकी जहाँ प्रवृत्ति है ऐसा जो जाग्रदादिथा सो दर्शन
वृत्तिकहते हैं अरु स्थूलविषयके दर्शनसे (ज्ञान) से इतर जे दर्शन
(ज्ञान) सो केवल वासनामात्र होनेसे अदर्शन है, तिस वासना
मयकी । वृत्ति जहाँ है सो स्वप्न, तिस स्वप्नको अदर्शनवृत्ति कहते
हैं । अरु तिन । दर्शनवृत्ति, अरु अदर्शनवृत्ति । दोनों विषे सुषु-
प्तिवत् तत्त्वके अग्रहणरूप निद्राको तुल्य होने से । “ यत्र सुप्तो ”
“ जहाँ सोयाहुआ ” इत्यादि विशेषणोंकी तिन । उक्त उभय वृत्ति-
यों में । प्राप्तिके दृष्टे, तिनसे भिन्न करके सुषुप्तिके ग्रहणार्थ “ यत्र
सुप्तो ” “ जहाँ सोयाहुआ ” इत्यादिरूप मूलश्रुतिके वाक्यविषे
“नकञ्चन ” “ किसीको भी नहीं ” इत्यादिरूप विशेषण हैं, सो
जाग्रत् अरु स्वप्न उभयस्थानों से पृथक् करके सुषुप्तिको ही ग्र-
हण करावता है] “ यत्र सुप्तोनकञ्चनकामं कामयतेनकञ्चनस्वप्नं
पश्यतितत्सुषुप्तम् ” ; जहाँ सोयाहुआ किसी भी कामकी काम-
ना करता नहीं, किसी भी स्वप्न में देखता नहीं, सो सुषुप्तिवाला
है, अर्थात् दर्शन (ज्ञान) अरु अदर्शन (अज्ञान) दोनों वृत्तियांवाली
जाग्रत् अरु स्वप्न अवस्थाविषे सुषुप्तिवत् तत्त्वके अग्रोधरूप निद्रा
को तुल्य होनेकरके, सुषुप्तिके ग्रहणार्थ इस उपनिषद् के पंचमम-
न्त्र (श्रुतिवाक्य) विषे “ यत्र सुप्तो ” “ जहाँ सोयाहुआ ” इत्यादि
रूप विशेषण हैं । [“ नकञ्चनस्वप्नं पश्यति ” “ किसी भी स्वप्नको
देखना नहीं ” इसही विशेषण करके दोनों स्थानों (जाग्रत्स्वप्न)

से सुषुप्तिके भेद का सम्भव होने से। अन्य विशेषण जो हैं सो “अकिञ्चित्कर” निष्प्रयोजन हैं, यह आशंकावरके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि तत्त्व का अप्रबोधरूप जो निद्रा है तिसको जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों विषे तुल्य होने से। तीनों स्थानों को समता है, एतद्वत् । जाग्रत् अरु स्वप्नसे विभाग करके सुषुप्तिके लखावनेके अर्थ अन्य “यत्रमुक्तो” इत्यादि विशेषण हैं] अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों विषे भी तत्त्वकी अवोधतारूप जो निद्रा है सो समान है, एतदर्थ पूर्वके जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानों से सुषुप्तिरूप स्थानका विभाग करते हैं, जिस स्थानका वा कालविषे सोया हुआ पुरुष किसीभी भोगकी इच्छा करतानहीं, अरु किसी भी स्वप्नको देखता नहीं। [एकही विशेषणको व्यावर्त्तकपनेका संभव होनेसे, दो विशेषणोंका क्या प्रयोजन है, यह आशंका करके दोनों विशेषणों को विकल्पकरके व्यावर्त्तकपनेका संभव है, ताते व्यर्थ न होयके दोनोंही सप्रयोजन हैं, ऐसा मानके कहते हैं,] जिस करके सुषुप्तिविषे पूर्वके जाग्रत् अरु स्वप्नरूप स्थानोंवत् विपरीत ग्रहणरूप स्वप्नका दर्शन वा कोईभी कामना विद्यमान नहीं है, एतदर्थ सो सुषुप्त कहिये सुषुप्ति है। सो सुषुप्ति है स्थान जिस प्रज्ञाका ऐसा सुषुप्तिस्थानवाला है। अरु “सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः” “सुषुप्तिस्थानवाला है, एकीभूत है, प्रज्ञानघनही होता है, आनन्दमय है, आनन्दका भोक्ता है, चेतोमुख है, प्रज्ञा, तृतीयपाद है” अर्थात् उक्तप्रकार सुषुप्तिरूप स्थानवाला है, अरु एकीभूत है, [उक्तदोनों (किसी विषय वा भोगको इच्छता नहीं, अरु किसीभी स्वप्नको देखता नहीं, इन) विशेषणोंकरके विपरीत ग्रहणसे रहितपना अरु भोगके सम्बन्धसे रहितपना कहने को इच्छित है] अरु जाग्रत् [इस द्वैतसहित प्राज्ञ जीवका एकीभूतपनेरूप विशेषण कैसे संभवे, यह आशंका करके कहते हैं] अरु स्वप्न दोनों अवस्थारूप स्थानों विषे विभागकोपाया जो मनका स्फुरणरूप द्वैत

कासमूह, सो जैसे अपुनरूप आत्मासे भिन्न है, तैसेही तिसरूप के अपौरित्यागसे, रात्रिके अन्धकारकरके ग्रस्त दिशा वा दिवस-वत् अविवेककरके युक्तहुआ अपने विस्तारसहित कारण (अव्या-कृत) रूप होता है । तिस अवस्थाविषे तिस (अव्याकृत, कारण रूप) उपाधिवाला हुआ आत्माको एकीभूत कहते हैं । [यद्यपि सुषुप्ति अवस्थाविषे सर्व कार्योंका समूह कारणरूप होता है, तब तिसकारणरूप उपाधिवाला हुआ आत्मा 'एकीभूत, विशेषण वाला होता है, तथापि कारणरूप उपाधिवाले आत्माका "प्रज्ञानघन" (प्रज्ञानघन है) यह विशेषण अयुक्त है क्योंकि 'सर्व उपाधि सेरहिता' निरुपाधिरूप आत्माकोही "प्रज्ञानघन इत्यादि विशेषणका होना संभव है, यह आशंकाकरके कहते हैं] एतदर्थ, स्वप्न अरु जाग्रतविषे मनका स्फुरणरूप जो प्रज्ञान है सो सुषुप्तिविषे घनी भूतहुयेवत् होता है । सो इस (सुषुप्ति) अवस्थाको अविवेकरूप होनेसे घनप्रज्ञा "प्रज्ञानघन" इस विशेषणसे कहते हैं । जैसे रात्रि विषे रात्रिके घन अन्धकारसे अविभागको पाया सर्व पदार्थ घन-वत् होता है [अर्थात् जाग्रत, स्वप्न अवस्थामें मनका स्फुरणरूप जो घट पटादिकोंका नाना विभागयुक्त प्रज्ञान है सो सुषुप्ति अवस्थामें जबकि बुद्धि तमोगुण अविवेककरके आवृतघन अंधकार रूप होती है तब जाग्रत-स्वप्न अवस्थाका मनका स्फुरणरूप घट पटादि सर्व पदार्थ जिसे रात्रिके घन अंधकारकरके अविभागको पायासता घट पटादि सर्व पदार्थ घनवत् होता है । तैसे आत्मा प्रज्ञान घनही होता है । [यहां "एव" शब्दकेपर्याय "ही," शब्दकरके अज्ञानसे इतर जाति सूचित नहीं है, यह अर्थ होता है] अरु मनको विषय अरु विषयीके आकारसे स्फुरण होनेसे हुआ जो श्रम तज्जनित दुःखके अभावसे । उस अवस्थामें । आनन्दकी बाहुल्यतासे आनन्दमय है, आनन्दरूपही नहीं, क्योंकि । वो सुप्तानन्द । अविनाशी आनन्दसे रहित है ताते । अर्थात् सुषुप्ति का जो आनन्द है सो मनकी स्फुरणाजन्य श्रमजनित दुःख के

अभावसे हैं, ताते वो अविनाशी आनन्द न होके नाशवान् होनेकरके स्वरूपानन्द नहीं किन्तु आनन्दप्रायः है । जैसे लोकविषे । गमनादि । श्रमसे रहित होयके स्थितहुये पुरुषको सुखी आनन्द का भोक्ता कहते हैं । तैसेही सुषुप्तिविषे यह । प्रज्ञाविशिष्ट चैतन्य । पुरुष जिसकरके अत्यन्तश्रमरहित स्थितको । अपूर्णविषे । अनुभव करता है, तिसकरके इसको आनन्दभुक् (आनन्दका भोक्ता) कहते हैं “एषोऽस्य परमआनन्द इति श्रुतेः” यह इस पुरुषका परम आनन्द है । इस श्रुतिके प्रमाणसे, अरु [प्राज्ञकाही “चेतोमुखः ” यह जो अन्य विशेषण है अर्थात् तिसका व्याख्यान करते हैं] स्वप्न अरु जाग्रतमय प्रतिबोधरूप चित्तके प्रतिद्वारभूत होनेसे चेतोमुख है, वा बोधरूप चित्त है । स्वप्नादिकोंके आगमनप्रति मुख कहिये द्वार जिसको, ऐसा है एतदर्थ सो चेतोमुख है । अरु [इस सुषुप्ति के अभिमानीको भूत अरु भविष्यत् विषयों विषे ज्ञातापना है, तैसे सर्ववर्तमान विषयोंविषे भी ज्ञातापना है । एतदर्थ प्रकर्ष करके जो जानता है सो प्रज्ञा है, अरु जो प्रज्ञा है सोई प्राज्ञनामसे कहा जाता है] भूत अरु भविष्यत्का ज्ञातापना अरु सर्व विषयों का ज्ञातापना इसकोही है, एतदर्थ यह प्राज्ञ है । [सुषुप्तिविषे सर्व विशेषोंके ज्ञानके विलयहुये प्राज्ञको ज्ञातापना कैसे होवेगा, यह आशंकाकरके कहते हैं, यहाँ यह अर्थ है कि यद्यपि सुषुप्तिवाला पुरुष तिस अवस्थाविषे सर्व विशेषके ज्ञानसे रहित होवे है, तथापि जाग्रत् अरु स्वप्न विषे उत्पन्नहुई जे सर्व विषयोंके ज्ञातापने रूपगति, ताते प्रकर्षकरके (सम्यक्प्रकार) सर्वको सर्वओरसे जानता है, एतदर्थ सो प्राज्ञशब्दका वाच्य (प्राज्ञनामवाला नामी) होता है,] सुषुप्तिको प्राप्तहुआ पुरुषभी स्वप्न अरु जाग्रत्विषे व्यतीतहुई सर्वविषयोंके ज्ञातापनेरूप पूर्वकीगति इसकरके । सुषुप्तिस्थ पुरुषको प्राज्ञ कहते हैं । अथवा । तिस अवस्थाविषे जिसकरके प्रज्ञप्तिमात्र । अर्थात् ज्ञेयके अभावसे ज्ञाता विशेषणरूप विशेषतासे रहित निर्विशेषको प्रज्ञप्तिमात्र, कहते हैं । इसहीका रूप

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः । सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ६ ॥

है, तिसकरके यह प्राज्ञ है । ऐसा कहते हैं । अरु अन्य दोनों अवस्थाविषे विशिष्टज्ञान भी है, अरु सुषुप्तिविषे अन्यज्ञानरूप उपाधि से रहितज्ञान है, सो ज्ञान इस प्रज्ञाका स्वरूपभूत होने से 'प्रज्ञप्ति' नाम से कहते हैं, सो यह । प्रज्ञप्ति नामवाला । प्राज्ञ तृतीयपाद है ५ ॥ ६ हे सौम्य ! "एष सर्वेश्वर", यह सर्वेश्वर है, अर्थात् यह प्राज्ञ ही स्वरूप अवस्थावाला हुआ सर्वका ईश्वर है, अर्थात् अधिदैव सहित सर्व भेदोंके समूहका नियन्ता है, इस हेतु से अन्य नैयायिकादिकोंवत् अन्य जातिरूप नहीं "प्राणबन्धनश्च हि सौम्य मन" हे सौम्य ! प्राणरूप बन्धनवाला ही मन है । इस श्रुतिवाक्यसे । [अथ प्राज्ञके ही अन्य विशेषणोंको साधते हैं] यह ही सर्व अवस्थाके भेदवाला हुआ सर्वका ज्ञाता है । अर्थात् जागृदवस्थाविषे स्थूल जगत्को अरु स्वप्नावस्थाविषे सूक्ष्म जगत्को अरु सुषुप्ति अवस्थाविषे उभयके कारणमूला विद्याको, इस प्रकार सर्वको सम्यक् प्रकार जानता है । एतदर्थ यह सर्वज्ञ है । [अरु अन्तर्यामीपने रूप अन्य विशेषणको स्पष्ट करते हैं] तैसे ही सर्वके अन्तर प्रवेशकरके सर्व भूतोंका नियामक होने से, यह ही सर्वका अन्तर्यामी भी है । अरु जिसकरके यह उक्तप्रकारका भेदसहित सर्व जगत् इससे ही उपजता है तिसहीकरके यह सर्वकी योनि (कारण वा उत्पत्ति स्थान) है । [जिसकरके जगत्विषे निमित्त अरु उपादान कारणका भेद नहीं, । अर्थात् यह जगत् अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है ।

अथ गौडपादाचार्यकृततदुपनिषदार्थाविष्कर
णरूपश्लोकावतरणम् ॥

अत्रैतेश्लोकाः ॥

वहिःप्रज्ञोविभुर्विश्वोह्यन्तःप्रज्ञस्तुतैजसः । घनप्रज्ञ
स्तथाप्राज्ञएकएवत्रिधास्मृतः १ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायां प्रथम
आगमाख्यप्रकरणभाषाभाष्यप्रारम्भः ॥

१ ॥ हे सौम्य ! [श्रीगौडपादाचार्यने मांडूक्योपनिषद्को अध्ययन
करके “अत्रैते श्लोकाः” व्याख्याये श्लोकहैं? इसप्रकार तिस उपनि-
षद्के व्याख्यानरूप नव ६ श्लोकोंका अवतरण किया, तिसका
अनुवादकरके भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्य व्याख्यान करतेहैं] यहां
इस कथनकिये उपनिषद्के ‘षट् ६, मन्त्रोंके अर्थविषे यह गौडपा-
दाचार्यकृत ‘नव ६, श्लोकहैं “वहिःप्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञ-
स्तुतैजसः” [वहिः प्रज्ञाविभुविश्वहै, अन्तःप्रज्ञतो तैजसहै? अर्थात्
बाहिरकी । स्थूल । प्रज्ञावाला विभुरूप विश्वहै । अरु अन्तरकी
। सूक्ष्म । प्रज्ञावाला तौ तैजसही है “घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएव
त्रिधा स्मृतः” [तैसे घनप्रज्ञ प्राज्ञहै, एकही तीनप्रकार से कहा
हैं? अर्थात् । बाह्यकी प्रज्ञावाले अरु अन्तरकी प्रज्ञावाले वत् ।
घनीभूतहुई प्रज्ञावाला प्राज्ञहै, इसप्रकार एकही पुरुष को तीन
प्रकारसे कहाहै । इसका यह अभिप्राय है कि [जव आत्मा के
चेतनपनेवत् जाग्रदादि तीनोंस्थान स्वाभाविक होवें, तव चेतन
पनेवत् सो तीनोंस्थान आत्मासे व्यभिचार पावनेयोग्य न होवें
गे, अरु तीनों स्थान क्रमकरके अरु अक्रमकरके आत्मासे व्य-
भिचारको पावते हैं । क्योंकि आत्माहो तीनस्थानवालापना
है ताते, एतदर्थ उनतीनों स्थानों से आत्माका अभिज्ञपना

दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो मनस्यन्तश्च तैजसः । आकाशो
च हृदि प्राज्ञस्त्रिधा देहे व्यवस्थितः २ ॥

अरु चक्षुके उभय गोलकके अनुग्रहका कर्त्ता विराट् आत्मा भी
तिससे अन्य नहीं, अरु व्यष्टिदेहका अभिमानी दक्षिण नेत्र विषे
स्थित द्रष्टा, दोनों चक्षु अरु करणोंका नियामक, अरु कार्य, कारण
का स्वामी क्षेत्रज्ञ है, सो तो उन दोनों समष्टि देहके अभिमानी
हिरण्यगर्भ अरु विराट् से इतर अंगीकार करते हैं । इस प्रकार
होने से समष्टि अरु व्यष्टिपनेकरके स्थित जीवके भेदसे कथन
करि जो एकता सो अयुक्त है, इस प्रकारका जो वादीका कथन
सो बनेनहीं, क्योंकि वलितभेदके होतेभी वास्तवकरके अभेदके
अनंगीकार होने से । अरु “ एको देवः सर्वभूतेषु गूढ इति श्रुतेः ”
“ एकदेव सर्व भूतों विषे गूढ़ है ” इस श्रुति के प्रमाण से । अरु
“ क्षेत्रज्ञश्चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ” “ अविभक्तश्च
भूतेषु विभक्तमिव च स्थितमिति ” “ हे भारत ! सर्वक्षेत्रों
(शरीरों) विषे क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र का जाननेवाला) भी मुझही
को जान । अरु सर्व भूतोंविषे विभाग से रहित हुआ भी विभाग
को प्राप्तहुयेवत् स्थित है, इस गीतास्मृति के प्रमाण से । अरु
सर्व करणोंविषे समानहुये भी दक्षिणनेत्र विषे ज्ञानकी स्पष्टता
के देखने से तहां विश्वजीवका विशेषकरके कथन है । अरु दक्षिण
नेत्र विषे, [यद्यपि देहके देशके भेदविषे विश्वको अनुभव करते
हैं, तथापि जाग्रतविषे तैजसको कैसे अनुभव करते हैं, यह आशं-
काकरके द्वितीयपादका व्याख्यान करते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि
‘जैसे स्वप्नविषे जाग्रतभी वासनारूपसे प्रकटहुये पदार्थोंके समूह
को द्रष्टा अनुभव करता है, तैसेही जाग्रतविषे दक्षिण नेत्रमें द्रष्टा
होकर स्थितहुआ अश्रेष्ठ रूपको देखके पुनः नेत्रमंदके, पूर्वदेखा
जो रूप सो रूपके ज्ञानसे जन्य (उद्भूत) वासनारूपसे मनविषे
प्रकट होता है, तिनको स्मरण करता हुआ विश्वही तैजस होता है ।

अरु उक्तप्रकार होनेसे उन विश्व अरु तैजसके भेदकी शंका बने नहीं,] स्थित जो विश्वहै, सो कुरूपको देखके मूँदेहुये नेत्रवाला हुआ तिसही देखेहुये कुरूपको मनके भीतर स्मरणकरताहुआ स्वप्नवत् वासनारूपसे प्रकटहुये तिसही रूपको देखताहै । जैसे यहाँ जाग्रत्विषे देखताहै । तैसेही वहाँ स्वप्नविषेभी देखताहै । एतदर्थ “मनस्यन्तश्च तैजसः” ६ मनके अन्तर तो तैजसहै ? अर्थात् मन के अन्तर तैजसभी विश्वहीहै । अरु “आकाशेच हृदि प्राज्ञः” ७ हृदयाकाशविषे प्राज्ञहै ? अर्थात् [अब तृतीयपादका व्याख्यान करते हुये जाग्रत्विषेही सुषुप्तिको देखावतेहैं । यहाँ यह अर्थहै कि, जो विश्व तैजस भावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापारकी निवृत्तिके होनेसे हृदयाक्षर आकाशविषे स्थितहुआ प्राज्ञ होयके तिस प्राज्ञके लक्षणकरके युक्तहोता है । अरु रूप विषयके दर्शन अरु स्मरणको छोड़के श्रेष्ठ आकाश (अव्याकृत) विषे स्थितहुये तिस जीवको प्राज्ञसे अन्य अर्थपना नहीं, एतदर्थ सो ‘एकीभूत, (विषय अरु विषयीके आकारसे रहित)है । अरु जिसवरके एकीभूत है इसहीकरके घनप्रज्ञ ‘अर्थात् विशेषज्ञान अरु अन्यरूपसे रहित, हुआ स्थित होताहै । इत्यर्थः] जो विश्व तैजसभावको प्राप्तहुआहै सो पुनः स्मरणरूप व्यापार की निवृत्तिकेहुये हृदयगत आकाश विषे स्थित हुआ प्राज्ञ एकीभूत अरु घनप्रज्ञही होता है, क्योंकि मनके व्यापार का अभाव है ताते । अरु दर्शन अरु स्मरणरूपही मनके स्फुरण [व्यापार] है, तिनका अभावहोने से हृदयान्तरही अव्याकृतमय प्राणरूपसे अवस्थानही जाग्रत्विषे सुषुप्तिहै “प्राणां धेवेतान् सर्वान् संवृद्ध इति श्रुतेः ॥” ८ प्राणही इनसर्वको अपने विषे संहार करता है, इस श्रुतिके प्रमाणसे । चाने अव्याकृतमय प्राणरूपसे जाग्रत्गतसुषुप्तिविषे प्राज्ञका अवस्थान जो कहासो युक्त हीहै । अरु [पूर्वही विश्व अरु विराट्की एकताको अनन्तर प्राज्ञ अरु अव्याकृत की एकताको लम्बाई हुई होनेसे, अरु तैजस औ हिरण्यगर्भके न कथन किये, अरु कहने योग्य अभेदको अचकहतेहैं ।

तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भरूपहै, क्योंकि लिंगशरीररूप मनविषे स्थितहै ताते, अर्थ यहहै जो, हिरण्यगर्भको समष्टि मनविषे स्थित होनेसे, अरु तैजसको व्यष्टि मनविषे स्थितहोनेसे, अरु उससमाष्टि अरु व्यष्टिरूप मनको एकरूपहोने से, तिन व्यष्टि समष्टि विषे स्थित तैजस अरु हिरण्यगर्भकीभी एकता कचितहै] तैजस जोहै सो हिरण्यगर्भहै, क्योंकि “मनोमयोऽयं पुरुष, इत्यादि श्रुतिभ्यः” यहपुरुष मनोमयहै, इत्यादि श्रुतिके प्रमाणकरके । मनजोहै सो लिंगरूपहै, अरु इस मनविषे स्थितहोनेसे तैजस अरु हिरण्यगर्भ की एकतायुक्तहै । ननु, [अब प्राणके पूर्वोक्त अव्याकृतपनेके अर्थ वादी आक्षेपकरताहै । यहां यहअर्थ है कि सुषुप्तिविषे प्राण जोहै सो नाम अरु रूपकरके व्याकृत (स्पष्ट) युक्तहै, क्योंकि तिसप्राण के व्यापारको सोयेहुये पुरुषकेपास बैठेहुये मनुष्योंकरके अतिशय स्पष्ट देखतेहैं ताते] सोयेहुये पुरुषकेपास बैठे हुये जनोंकरके प्राण के व्यापारको स्पष्टदेखनेसे सुषुप्तिविषे जो प्राणहै सो नामअरुरूप करके व्याकृत कहिये स्पष्टहै । अरु श्रुतिविषे, करणजोहैं सो उसके प्राणरूपहोतेहैं, इसप्रकारकहाहै, एतदर्थभी तिसप्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै । ताते । प्राणकेअर्थ तुमने कहीजो । अव्याकृततासोकैसे संभवेगी, । इसप्रकार वादीकी शंकाहै । तहां कहतेहैं, यह । जो तूनेकहा सो । दोषनहीं, क्योंकि अव्याकृतको देश अरु कालकृत परिच्छेदका अभावहै ताते । अरु जैसे देशकालकृत परिच्छेदसे रहित अव्याकृत कहिये मायाहै, तैसेही सुषुप्तिवान् पुरुषकी दृष्टिसे प्राणभी देशकालकेकिये परिच्छेदसे रहितहै । एतदर्थ सुषुप्तिवान्के प्राणकी अरु अव्याकृतकी एकतायुक्तहै । अरु जो कदापि परिच्छिन्न अभिमानवाले पुरुषोंके मध्य यह मेरा प्राण है, इसप्रकार प्राणके अभिमानकेहुये प्राणकी व्याकृतताही सिद्ध होतीहै । तथापि सुषुप्ति अवस्थाविषे पिंड (देह) करके परिच्छिन्न जो विशेषहै तिसको विषयकरनेवाला जो यह मेरा प्राणहै, इस प्रकारका अभिमानहै तिसका निरोध प्राणविषे होताहै, एतदर्थ

णादि शब्दका वाच्य कहने को इच्छित होय तब “नेतिनेति”
 = कार्यरूप नहीं, अरु कारणरूप भी नहीं > अरु “यतोवाचो
 निवर्त्तन्ते” (जिससे वाणियां निवृत्त होती हैं) अरु “अन्यदेववि-
 दितादथोऽविदितादधि” < सो विदित (कार्य) से अन्यही है,
 अरु अविदित (कारण) से भी अन्यही है, इस श्रुतिके प्रमाण
 से > अरु तैसेही “नसत्तन्नासदुच्यत, इतिस्मृतेः” < सो सत्
 नहीं अरु असत्भी नहीं ऐसा कहतेहैं, इस स्मृतिकेभी प्रमाणसे,
 ब्रह्मको शब्दकी विषयताका निषेध कियाहै, एतदर्थ भी विरोध
 होवेगा । किन्वा जब निर्वाजरूप होनेसेही ब्रह्म इस प्रकरणाविषे
 कहने को इच्छितहोय तो सुषुप्ति अरु प्रलयमें सद्ब्रह्मविषे लीन
 अरु एकरूपहुये जीवोंके पुनः उत्थान का असंभव होवेगा । अ-
 थवा मोक्षदशा विषे सत्ब्रह्मको प्राप्तहुये मुक्त पुरुषों की पुनरा-
 वृत्तिका प्रसंग होवेगा । अरु सर्वको अज्ञानरूप बीजके अभावकी
 तुल्यता, अरु ज्ञानागिसे दाह करने के योग्य बीजके अभावहुये
ज्ञानकी व्यर्थताका प्रसंग होवेगा । एतदर्थ सर्व श्रुतियोंविषे बीज
 सहित ताके अंगीकार तैसी सत्ब्रह्मको प्राणभावका कथन अरु
 कारणभावका कथन है । अरु इसही करके “अक्षरात्परतः परः”
 “सवाह्याभ्यन्तरोहजः” “यतोवाचोनिवर्त्तन्ते” “नेतिनेतीत्या-
 दिनां” < पररूप अक्षरसे परहे, बाह्य अन्तर सहित है, जिससे
 वाणियां निवृत्तहोती हैं, अरु नेतिनेति, इत्यादि अनेक श्रुतियों
 करके बीज सहित ताके निषेधसे ब्रह्मका कथनहै । अरु तिसही
प्राज्ञशब्द के वाच्य (नामी) की तुरीयरूपतासे देहादिक संघात
के सम्यन्वसे रहित तिस परमार्थ रूपा अवीज अवस्थाको यह
श्रुति आगे भिन्न करेगी । अरु “नकिञ्चिदवेदिमिति” (मैं कुछ
 भी नहीं जानताहुआ) इसप्रकार सुषुप्तिसे उत्थानपाये पुरुष के
 स्मरणको देखतेहैं ताते, जीवकी अनस्था भी अनुभव करतेही
 हैं “त्रिधादेहेव्यवस्थितः”, तृतीनिप्रकारसे देहविषे स्थितहुआ है,
 अर्थात् उक्तरीतिसे यहजीव उक्त तीनिप्रकारकरके देह विषे स्थित

विश्वोहिस्थूलभुङ्क्षित्यंतैजसः प्रविविक्तभुक् । आनन्दभुक् या प्राज्ञस्त्रिधाभोगं निबोधत ३ ॥

स्थूलंतर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम् । आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत ४ ॥

हुआ । अर्थात् अभिमानको फसा वा अभिमानी हुआ । हे ऐसा कहते हैं २ ॥

३ ॥ हे सौम्य! [इस प्रकार विश्वादि तीनोंकी देहविषे तीन प्रकारसे स्थितिको प्रतिपादन करके, अब तिनकेही तीन प्रकारके भोगोंको सूचित करते हैं,] “विश्वोहिस्थूलभुङ्क्षित्यंतैजसः प्रविविक्तभुक्” विश्व नित्यही स्थूलभुक् है, तैजस प्रविविक्तभुक् है ; अर्थात् । जाग्रदवस्थाका अभिमानी । विश्व नित्यही स्थूल भोगोंका भोक्ता है । अरु स्वप्नावस्थाका अभिमानी । तैजस । नित्यही । वासनामय सूक्ष्म भोगों का भोक्ता है । अरु “आनन्दभुक् या प्राज्ञस्त्रिधाभोगं निबोधत” ; तैसे प्राज्ञ आनन्दभुक् है । तीन प्रकारके भोगों को जानो ; अर्थात् । जैसे जाग्रदवस्थाका अभिमानी विश्व स्थूल विषयोंका, अरु स्वप्नाभिमानी तैजस वासनामय सूक्ष्म भोगोंका, भोक्ता है । तैसेही सुषुप्ति अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ आनन्दका भोक्ता है, इसरीति से तीन प्रकारके भोगोंको जानो ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य! [अब भोगोंसे हुई जो तृप्ति तिसको तीन प्रकार से विभाग करके देखावेहें] “स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम् ; स्थूलभोग विश्वको तृप्त करेहै, सूक्ष्मतो तैजस को तृप्त करे है ; अर्थात् शब्दादि स्थूल विषयभोग विश्वको तृप्तकरता है । अरु जाग्रतकी वासनामय सूक्ष्म स्वप्नाभिमानी तैजसको तृप्तकरता है । तैसेही “आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत” ; तैमे आनन्द प्राज्ञको तृप्त करे है, तीन प्रकारकी तृप्तिको जानो ; अर्थात् । जैसे विश्वको स्थूलभोग

• त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः । तदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ५ ॥

प्रभवः सर्व्वभावानां सतामिति विनिश्चयः । सर्व्वजनयति प्राणश्चेतोऽंशून् पुरुषः पृथक् ६ ॥

अरु तैजसको सूक्ष्म भोग तृप्त करेहै । तैसेही । सुषुप्तिके अभिमानी प्राज्ञको आनन्दरूप भोग तृप्त करे है, ऐसे तीन प्रकारकी तृप्तिको जानो ४ ॥

५ हे सौम्य ! अब [प्रसंग विषे प्राप्त भोक्ता अरु भोग्य, इत उभय पदार्थोंके ज्ञानके मध्यके फलको कहते हैं] “ त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ” { तीन धामविषे जो भोज्यहैं, अरु जो भोक्ताकहे हैं } अर्थात् जाग्रदादि तीनों स्थानों विषे जो ‘स्थूल, सूक्ष्म, अरु आनन्द, नामवाला एकही तीन प्रकारका हुआ भोज्यहै, अरु विश्व तैजस अरु प्राज्ञ, इन नामवाला “ सोहमिति ” (सोमैंहों) इस एकताके अनुसंधानसे, अरु द्रष्टापन के अविशेषसे एकही भोक्ताकहा है । अरु “ तदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ” { जो इन दोनोंको जानता है सो भोक्ता हुआ भी लिप्त होता नहीं } अर्थात् जो भोज्य अरु भोक्तापनेकरके अनेक प्रकारके भेदवालेहुये इन [भोज्य अरु भोक्ता] दोनोंको जानता है सो भोक्ता हुआ भी लिप्त होता नहीं, क्योंकि सर्व्व भोग्य एकही भोक्ताका भोग्य (भोगने योग्य) है ताते । अरु जिसका जो विषय है सो तिस विषयकरके घटता नहीं, अरु बढ़ता भी नहीं जैसे अग्नि काष्ठादिरूप अपने विषयको दग्ध वा भस्म करके घटता नहीं, वा बढ़ता नहीं, तैसे ५ ॥

६ हे सौम्य ! [पूर्व्व “ एष योनिः ” < यह योनि (कारण) है, इस पष्टमन्त्रविषे प्राज्ञको प्रपंचका कारणपना प्रतिज्ञा किया है । तहांसत् कार्यके प्रतिप्राज्ञको कारणपना है, वा असत्कार्यके प्रति कारणपना है, । इस संशयकेहुये तिसका निर्द्धार करनेको अब आरम्भ

दरते हैं,] “ प्रभवः सर्वभावनांसतामिति विनिश्चयः । सर्वजन्यति प्राणश्चेतोऽशून्य पुरुषः पृथक् ” ६ विद्यमान सर्वपदार्थों की उत्पत्ति होती है, यह निश्चय है । प्राणरूप पुरुष सर्व चैतन्य के अंशोंको पृथक् २ उपजावता है ; अर्थात् विद्यमान पदार्थों की उत्पत्तिका निश्चय है, याते प्राणरूप पुरुष सर्व जगत् को अरु चिदाभासरूप चैतन्यके अंश (जीवों) को पृथक् २ उपजावता है ॥ [ननु सत् रूप पदार्थों को सत् रूप होनेसे ही तिनकी उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि सत् रूप ब्रह्मविषे अति प्रसङ्ग होता है ताते, । यह आशङ्काकरके श्लोकके पूर्वार्द्धका व्याख्यान करते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि अपने अधिष्ठानरूपसे ही विद्यमान (सत् रूप) पदार्थोंका ही अविद्याकृत मिथ्या आरोपित स्वरूप है, तिसकरके उत्पत्तिरूप संसार होवे है] अपने अधिष्ठान रूपसे विद्यमान ‘विश्व’-तैजस, अरु प्राज्ञरूप भेद वाले सर्व पदार्थोंकी अविद्या रचित नामरूपमय मिथ्यास्वरूप से उत्पत्ति रूप संसार होता है । अरु जिसको बंध्यापुत्र कहते हैं सो यथार्थ (सत्य) रूपसे वा मिथ्या रूपसे भी जन्मतानहीं, इसप्रकार आगे कथन करेंगे । अरु जो असत्पदार्थका ही जन्म होय, तो व्यवहार करने (जानने) जो ब्रह्म तिसके ग्रहणविषे द्वाररूप लिंगके अभावसे असत्पनेका प्रसंग होवेगा । अरु अविद्यारचित मिथ्या बीजसे उत्पन्न हुये रज्जुसर्पादिकोंका रज्जुआदिक [अधिष्ठान] रूप से सद्भाव देखा है । अरु किसीभी पुरुषने अधिष्ठान (आश्रय) रहित रज्जुसर्प अरु मरुस्थल जलआदिक कहींभी देखेनहीं । [अर्थात् रज्जु ’ मरुस्थल, शुक्लयादिरूप, आश्रयविना ‘सर्प’ जल, रजतादिरूप भ्रान्ति होवे नहीं । ‘अरु जेसे रज्जुविषे सर्पोत्पत्तिसे पूर्व रज्जुरूपसे सर्प सत्यही होता है । [अर्थात् जिस अधिष्ठानविषे जो अव्यस्त होता है सो अपने अधिष्ठानकी सत्यतासे सत्यरूप होता है, क्योंकि अधिष्ठान कल्पित होतानहीं । तैसेही सर्व पदार्थोंका अपनी उत्पत्तिसे पूर्व प्राणमय बीजरूपसे ही सद्भाव है । एनदर्थ ‘ब्रह्मोदे’ “ आत्मैवेदमग्र

• विभूतिप्रसवन्त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः । स्वप्न
मायास्वरूपेति मृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ७ ॥

आसीदित्यादि” < ब्रह्मही यह है, आत्माही यह आगे था > इस प्रकार
श्रुतियां भी कहती हैं । इस प्रकार प्राण बीजरूप व्यवहारकी योग्यतासे सर्व अचेतन (जड़) रूप जगत्को उपजावता है । अरु सूर्यके
किरणोंवत् चैतन्यरूप पुरुषके चैतन्यरूप, अरु जलगत सूर्यके
प्रतिबिम्बको समान ‘प्राज्ञ, तैजस, अरु, विश्व, भेदसे देव, मनुष्य,
तिर्य्यकादिक, देहके भेदोंबिषे भासमान जो चैतन्यके किरणोंवत्
चेतनके अंशरूपजीव हैं, तिन विषयभावसे विलक्षण, अरु अग्निके
विस्फुल्लिंगवत्, अरु जलगत सूर्यवत् चैतन्यके लक्षणसहित जीव
रूप अन्यसर्व पदार्थोंको प्राण बीजरूप पुरुष उपजावता है “यथो-
र्णनाभिः सृज्यते” “यथाग्नेर्विस्फुल्लिगाः सहस्रशः” जैसे ऊर्णनाभि
(मकड़ीआदिक जन्तुविशेष) से तन्तु (जाला), अरु अग्निसे
चिनगारे, होते हैं, तैसे । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे ६ ॥

हे, सौम्य! [अथ जड़ चेतनरूप जगत्की उत्पत्तिको प्रसंगविषे
प्राप्तहुये अपने मतके विवेचनार्थ अन्यमतके कहनेका प्रारंभ करते
हैं] “विभूतिप्रसवन्त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः” < अन्य सृष्टिके
चिन्तनकरनेवाले विभूतिकी उत्पत्तिको मानते हैं > अर्थात् विद-
मतावलम्बियोंसे । अन्य जे सृष्टिके चिन्तक (कहनेवाले) हैं, सो
ईश्वरकी अपने ऐश्वर्यमय विस्ताररूप विभूतिकी उत्पत्तिको “सृ-
ष्टिरिति” < सृष्टि है, ऐसा > मानते हैं ॥ परमार्थके चिन्तनकरने
वाले तत्त्ववेत्तोंका तो सृष्टिविषे आदर है नहीं, क्योंकि “इन्द्रो
मायाभिः पुरुरूप ईयत इत्यादि” < इन्द्र (परमार्मा) मायाकरके
बहुरूप प्रतीत होता है > इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे । अरु जैसे माया
का रचनेवाला मायावी पुरुष है सो सूत्रके आकाश विषे फेकके
पुनः वो मायावी पुरुष तिस सूत्रके आश्रय खड्गादि आयुधसहित
गुद्धार्य चढ़के अदृश्यहुआ गुच्छमें खंड खंड होय पतनहुआ पुनः

भोगार्थसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमिति चापरे । देवस्यैष
स्वभावोऽयमाप्तकामस्य कास्पृहा ६ ॥

क्योंकि ईश्वर सत्यसंकल्प है ताते, जैसे घटादिरूप जो सृष्टि है सो
। कुलालका । संकल्पमात्र ही है, संकल्पसे इतर घटादि कुछ
भी नहीं ॥ अरु “ कालात्प्रसूतिभूतानामन्यन्ते कालचिन्तकाः ”
। कालके चिन्तन करनेवाले कालकरके ही भूतोंकी उत्पत्ति मा-
नते हैं ; अर्थात् कोई एकेजे कालके चिन्तन करनेवाले ज्योतिष-
शास्त्रके वेत्ता हैं सो कालसे ही जगदुत्पत्तिको मानते हैं । अरु
कहते हैं कि जब सृष्टिकी उत्पत्तिका काल आवता है तब उत्पत्ति,
अरु प्रलयका काल आवता है तब प्रलय होता है । ८ ॥

६ हे सौम्य ! “ भोगार्थसृष्टिरित्यन्येक्रीडार्थमिति चापरे ” अन्व
भोगार्थ सृष्टि है ऐसे, अरु अन्य क्रीडार्थ है ऐसे, मानते हैं ; अर्थात्
उक्त वादियोंसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि भोगके अर्थ है ।
अरु उनसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि क्रीडाके अर्थ है । अं-
न्यार्थ नहीं । अब सिद्धान्त को कहते हैं । “ देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्त
कामस्य कास्पृहा ” । यह देवका स्वभाव है, पूर्णकामको कौन इच्छा
है ; अर्थात् यह सृष्टि स्वयंप्रकाश परमेश्वरका स्वभाव है, उस पूर्ण
कामदेवको कौन इच्छा है किन्तु कोई भी नहीं । अर्थात् यावत्
कार्यकारणात्मक स्थल सूक्ष्मनामरूप सृष्टि है सो सर्व उसपरिपूर्ण
देवके आश्रय उसहीविषे उससे अनन्य है तब इच्छा किसकी होय,
किन्तु किसीकी भी नहीं । अरु इच्छा जो होती है सो अपनेसे अन्य अं-
प्राप्तवस्तुविषे होती है, सो उस एक परमात्मदेवसे अन्य अरु अप्राप्त
वस्तु कुछ भी नहीं ।] यहां स्वभाव जो कहा, सो क्या है । इसे प्रकार
पूछे हुये स्वाभाविक अपरोक्ष जो मायाशब्दका अर्थ, तिसकानाम
स्वभाव है, इस प्रकार कहते हैं] ‘ यहां स्वभाव पक्षका आश्रयकरके
उक्त दोनों पक्षोंविषे अथवा सर्व पक्षोंविषे द्रवण कहा, जैसे [पूर्व
आठवें श्लोकविषे जो “ कालात्प्रसूतिभूतानामन्यन्ते ” काल से

भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं? इसप्रकार कहा है, तहां कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जैसे अधिष्ठानभूत रज्जुआदिकोंके स्वभावरूप अपने अज्ञानसेही सर्पादिकोंका आभासपना है, तैसेही परमात्माको अपनी मायाशक्तिके वशसे आकाशादिकोंका आभासपना है “एतस्मात् आत्मनेऽआकाशः संभूतः” आत्मासे आकाश होता हुआ? इसश्रुति के प्रमाणसे। परन्तु कालको भूतोंका कारणपना नहीं, क्योंकि तित विषे श्रुतिके प्रमाणका अभाव है] रज्जुआदिकोंको अविद्यारूप स्वभावविना सर्पादिक आकारके भासने विषे कारणपना कहनेको अशक्य है। तैसेही परमात्माको मायारूप स्वभावविना आकाशादिरूपाकारसे भासने विषे कारणपना कहनेको शक्य नहीं ६ ॥

उपनिषदर्थ ।

हे सौम्य! [अंकारके तीनपादोंकी व्याख्या करनेसे, व्याख्या करनेके योग्य होनेसे क्रमके वशसे प्राप्तहुये चतुर्थपादकी व्याख्या करनेको आश्रित ग्रन्थकी प्रवृत्ति है] अब क्रमसे प्राप्त हुआ जो चतुर्थपाद सो कहने (व्याख्या करने) को योग्य है। एतदर्थ यह उपनिषद् कहते हैं “नान्तःप्रज्ञं, न वहिःप्रज्ञं, नोभयतःप्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, न प्रज्ञं, नाप्रज्ञम्” अन्तःप्रज्ञ नहीं, वहिःप्रज्ञ नहीं, उभयतःप्रज्ञ नहीं, प्रज्ञानघन नहीं, प्रज्ञ नहीं, अप्रज्ञ नहीं? अर्थात् । जो निर्विशेष निरुपाधि सर्वकासाक्षी प्रत्यगात्मा है सो । अन्तःप्रज्ञ कहिये भीतरकी प्रज्ञावाला । तेजसां सोभी नहीं । अरु वहिःप्रज्ञ कहिये बाहरकी प्रज्ञावाला । विश्वां सोभी नहीं । अरु उभयतःप्रज्ञ कहिये उभयओरके प्रज्ञावाला, सोभी नहीं । अरु प्रज्ञानघन । कहिये, अन्तर बाह्यके भेद रहित घनप्रज्ञावाला प्राज्ञ । सोभी नहीं । अरु प्रज्ञाही नहीं ॥ अरु “अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थमन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः” अदृष्ट है, अव्यवहार है, अग्राह्य है, अलक्षण है, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्य है, एकताके ज्ञानकासार है, प्रपंचके उपशमवाला है, शान्त है, शिव है, अद्वैत है, चतुर्थ है

उपनिषद् ॥

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नो भयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न
प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमेचि-
न्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं
शिवमद्वैतचतुर्थमन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ७ ॥

ऐसा, मानते हैं, सो आत्मा है, सो जानने के योग्य है? अर्थात् नि-
रुपाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान सर्वका साक्षी शुद्ध आत्मा 'नेत्रको-
वा ज्ञानका विषय न होने से' अदृष्ट है । अरु ज्ञानेन्द्रियों का विषय
न होने से 'अव्यवहार्य' है, । अरु कर्मेन्द्रियों का अविषय होने से
वा उसको कर्मों का फलरूप न होने से वो 'अग्राह्य' है, । अरु प्रति-
योगिता वा सापेक्षता के अभाव से वो 'अलक्षण' है, । अरु अन्तः-
करण का अविषय होने से वो 'अचिन्त्य' है, । अरु वाणी वा शब्दादि
प्रमाणों का अविषय होने से वो उपदेश करने के योग्य नहीं, ताते सो
'अव्यपदेश्य' है, । तथाच " न विद्यो न विजानी मोय धैतदनुशिष्या
त्, " इत्यादि श्रुतिप्रमाण से ॥ इस प्रकार निषेधमुख कहके अध-
विधिमुख कहते हैं । वो आत्मा एकता के प्रत्यय ज्ञान का सार है
" प्रतिबोध विदितं " अरु उसके सम्यक् ज्ञान से समूल द्वैतरूप
प्रपञ्च (जगत्) का अत्यन्ताभाव होता है ताते वो प्रपञ्च के उप-
शम वाला है । अरु अन्तःकरण के मन आदिकों के संकल्पादिकों कृत
क्षोभ से रहित परमशान्त है । अरु परमानन्दमय होने से शिव
है । अरु सर्वत्रपूर्ण अखण्ड अनन्त निराश्रय होने से अद्वैत है ।
अर्थात् 'अदृष्ट, अव्यवहार, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, उपदेश
के अयोग्य, । एकता के ज्ञान का सार, प्रपञ्च के उपशम वाला, शान्त,
शिव, अद्वैत, । इस प्रकार का जो पदार्थ है तिसको चतुर्थपाद करके
मानते हैं । अर्थात् जिसको उक्त प्रकार निषेधमुख से कहा सो
हिंसी भी संख्या में बढनहीं, परन्तु उसको जो चतुर्थपाद करके

कहा है सो पूर्वोक्त तीनपादोंकी अपेक्षासे है, नतु वास्तव करके उस निर्विशेष तत्त्व विषे संख्या अरु पादपना कोई भी नहीं। अरु सोई एक निर्विशेष चिन्मात्रतत्त्व जाग्रदादि स्थानरूप उपाधि रहित निरुपाधि परमशुद्ध सर्वका प्रत्यगात्मा है, अरु सोई मुमुक्षु जिज्ञासुजनों करके जानने योग्य है ॥ हे प्रियदर्शन! यहां “नान्तः प्रज्ञं” (अन्तःप्रज्ञनहीं) इत्यादि पदोंसे यह श्रुति ‘सर्व शब्दोंकी प्रवृत्तिके निमित्तसे शून्य (रहित) होनेसे उस आत्माको शब्दकी विषयता होगी। अर्थात् तत्त्वमें शब्दकी प्रवृत्ति का निमित्त विशेषता है, निर्विशेष तत्त्वमें निमित्तके अभाव से शब्दकी प्रवृत्ति नही, अरु उस निर्विशेषको विधिमुख कहनेसे शब्दकी विषयता होती है ताते। इस अन्तः प्रज्ञतादि रूप विशेषके निषेधसे ही। निर्विशेष। तुरीयपादको कहनेकी इच्छा करती है ॥ ननु, तब सो तुरीय शून्यही होवेगा, इस प्रकारके जो वादीका। कथन सो घने नहीं, क्योंकि मिथ्या विकल्पको शब्दप्रवृत्तिके निमित्तसे रहितपनेका असंभव है ताते, अरु जिस करके जो ‘रजत, सर्प, पुरुष, अरु मृगतृष्णाकाजल, इत्यादि विकल्प हैं, सो ‘सीपि, रज्जु, स्थाणु अरु ऊपरभूमि, इत्यादिकोंसे इतर होनेसे अवस्तुपनेके आश्रयहुये कल्पना करने को शक्य नहीं। अर्थात् रज्जु शुक्तिकादिकों विषे जो सर्प रजतादि विकल्पकल्पना है सो रज्जुशुक्ति आदिकोंकेही आश्रय है क्योंकि निराश्रय कल्पना होती नहीं, अरु जो रज्जुशुक्ति आदिकों से भिन्न सर्प रजतादिकोंका विकल्प करना इच्छिये तो उन कल्पित होनहार सर्प रजतादिकों को अवस्तुपनेके आश्रयहोनेसे सो कल्पनाकरनेको शक्य होते नहीं। अरु निराश्रय विकल्पकल्पना होवे नहीं, यह अनिवार्य सिद्धान्त है। एतदर्थं तिन विद्यतेजसादिक, वा विधिमुख निषेधमुख, वा अस्ति नास्ति, वा शून्य अशून्य, आदिक विकल्पों। का अधिष्ठानरूप तुरीय शून्यसे विलक्षण सत् रूपकरके मानना चाहिये क्योंकि शून्य है, इस विकल्पकल्पना

का आश्रय अधिष्ठान शून्य से विलक्षण किसी भी तत्त्व को सत् है, ऐसा न मानने से अवस्तुपने के आश्रयतेरा शून्य है, यह विकल्प होनेको अशक्य है । ननु, जब इसप्रकार है, तब प्राणादिक सर्व विकल्पों का आश्रय होने से तुरीया को 'जलादिकों का आश्रय घटादिकोंवत्, शब्दकी वाच्यता । नामका नामीपना वा शब्दकी विषयता । होगी, निषेधों से प्रतीत करावने की योग्यता न होगी । अर्थात् निर्विशेष तुरीया को प्राणादि विकल्पों का आश्रय अधिष्ठान होने से शब्द की वाच्यता प्राप्त होगी, अरु तैसे हुये " नान्तःप्रज्ञं " इत्यादि निषेध मुख वांम्यों से जो उसकी निर्विशेषता से प्रतीति है तिस की योग्यता न होगी । इस प्रकारका जो चार्दीका कथन । सो कथन घने नहीं, क्योंकि 'शुक्ति आदिकों विषे रजतादिवत्, प्राणादि विकल्पको । कल्पित होनेसे । असत्यपना है ताते । अरु असत्यको शब्द की प्रवृत्ति के निमित्तवाला अवस्तुरूप होने से । वो केवल वाचारंभण (कहने) मात्रही है, एतदर्थ उन का किया निर्विशेष तुरीयाविषे वाचकपना भी वाचारंभण मात्रही है । सत् अरु असत्वस्तुका सम्बन्ध है नहीं । अरु आत्माको स्वरूपसे गौ आदिकोंवत् अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों की विषयताभी नहीं । अरु पाचकादिकोंवत् क्रियावान्पना भी नहीं । अरु नील पीत घटादिकोंवत् गुणवान्पना भी नहीं । क्योंकि निराकार है ताते । [। विकल्प । क्या कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, वा वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु किया है, तहाँ जो प्रथमपक्ष । कहो कि 'कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो कहना । घने नहीं । क्योंकि तिस कल्पित अधिष्ठानपने को वास्तविक वाच्यताका असाधकपना है ताते, अरु वास्तविक वाच्यतापने विषे क्रमका विरोध है नहीं । अरु जो, द्वितीयपक्ष । कहो कि 'वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो भी । घने नहीं । क्योंकि, शुक्ति आदिकोंविषे कल्पित रजतादिकों को अवस्तु होने पनेवत्, तुरी-

यात्रिये भी कल्पित प्राणादिकोंकी अवस्तुरूप होने से, तिसप्रति-
योगीवाले अधिष्ठानपने को वास्तविकता की अयोग्यता है ताते
। अर्थात् वास्तविक अधिष्ठान तुरीया विषे, अध्यस्तः (कल्पित)
प्राणादिकों को अवस्तुपना होने से उस तुरीयाका अधिष्ठानपना
अवस्तुपने का प्रतियोगी होनेसे वास्तविकपने के योग्य नहीं ।
इसप्रकार सिद्धांति दूषण कहता है,] एतदर्थ आत्मा । शाब्दिक
आदिक प्रमाणों का अविषय होने से । शब्द से कहने के योग्य
नहीं शंका । ननु, तब आत्मा को शशशृंगादिकों के तुल्य होनेसे
अवस्तुपना प्राप्त होवेगा, । समाधान । यह कहना बनेनहीं, क्योंकि
शुक्ति के ज्ञानहुये रजतकी तृष्णाकी निवृत्ति होनेवत् तुरीया के
सर्वात्मभाव से ज्ञानहुये, तिसज्ञान को अनात्मवस्तुकी तृष्णाकी
निवृत्ति का हेतु होने से, अरु तुरीयाके स्वात्मभावसे ज्ञानहुये । का-
रण । अविद्या अरु । तिसका कार्य । तृष्णादिकदोष तिनका संभव
होना हैनहीं । अरु तुरीया के आत्मभावके ज्ञानविषे हेतुका अ-
भाव भी नहीं, क्योंकि “ तत्त्वमसि ” “ सो तू है ” “ तत्सत्यम् ”
“ अयमात्मा ब्रह्म ” “ स आत्मा यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म ॥ ” “ सावाह्या-
भ्यन्तरोह्यजः ” “ आत्मैवेदं सर्वम् ” “ सो सत्य है । यह आत्मा ब्रह्म है ।
सो आत्मा है जो साक्षात् परोक्षब्रह्म है । बाहर अन्तर सहित
अजन्मा है । आत्माही यह सर्व है ” इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सर्व
उपनिषदों को तिसही प्रयोजनार्थ होनेकरके परिसमाप्त होनेसे ।
सो [इसप्रकार निषेध मुखसेही तुरीयाका प्रतिपादन है, विधि
मुखसे नहीं, इसप्रकार प्रतिपादन करके, अब कहे हुये, अर्थ के
अनुवाद पूर्वक अग्रिम कहने के अर्थ को प्रकट करते हैं] यह आ-
त्मा परमार्थ रूपसे चारपदों वाला है इसप्रकार पूर्व द्वितीयमंत्र
करके कहाया, तिसके अपरमार्थरूप अविद्यारचित रज्जुसर्पादि-
कों के तुल्य बीज अरु अंकुरस्थानी तीनपादोंका लक्षण पूर्वकहा ।
अब इस मन्त्र विषे अविजात्मक परमार्थ स्वरूप रज्जुस्थानीय
चतुर्थपादको “ नान्तःप्रज्ञं ” “ अन्तःप्रज्ञ नहीं ” इत्यादिरूप वाक्यसे

सर्पस्थानीय । जाग्रदादि । तीनोंस्थानोंके निराकरणसे कहते हैं । शंका ननु, आत्मा के चारपाद करके युक्तपनेकी प्रतिज्ञा करके, पादत्रयके कथनसेही चतुर्थपादकी अन्तःप्रज्ञ आदिक तीनपादोंसे पृथक् सिद्धिसे, “नान्तःप्रज्ञ” “अन्तःप्रज्ञनहीं” इत्यादि निषेध अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, इसप्रकार जो वादीका कथना सो कथन घनेनहीं, क्योंकि सर्पादिरूप विकल्पके निषेधसेही रज्जुके स्वरूप के निश्चयवत्, तीन अवस्थावाले आत्माकोही तुरीयरूप होनेसे “तत्त्वमसि” “सो तूहै” इसवाक्यवत् । अरु [ननु, जाग्रदादि तीन अवस्था करके विशिष्ट आत्माको तुरीयत्व नहीं, क्योंकि तुरीयको विशिष्ट से विलक्षण होने करके । उस विशिष्टसे अत्यन्त पृथक्ताहै एतदर्थ उस विशिष्ट आत्माका तुरीयपना अग्रिम कहनेके ग्रंथकरके कैसे प्रतिपादन करतेहों, इसप्रकारकी जहां वादीकी शंकाहै तहां कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि, तुरीयाकी प्रातिभासिकसे विलक्षणताके हुये भी विशिष्ट अरु उपलक्षित । अर्थात् विशेषण अरु उपलक्षणवाले । आत्माकी अत्यन्त विलक्षणता न होनेसे, तुरीया का विशिष्टसे वास्तवकरके भिन्नपनाहै नही, अरु अन्यथा अत्यन्त भिन्न अरु परस्परके सम्यन्ध रहित, होनेसे, इन । विशिष्ट अरु अविशिष्ट । दोनोंके उपाय (साधन) अरु उपेय (साध्य) भावकी अयोग्यतासे, तुरीयके ज्ञानविषये विशिष्ट आत्मा को द्वार (कारण) होनेके अभावहोने से, अरु तिस (तुरीया) के ज्ञानके द्वाररूप अन्यवस्तु के अदर्शनहोने से, तुरीयाका अनिश्चयही होवेगा,] जब तीन अवस्थावाले आत्मासे विलक्षण अन्य तुरीया होय, तब तिसके । अस्तित्वके । निश्चय होने के द्वारके अभावसे शास्त्रका उपदेश अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, अथवा शून्यता प्राप्तहोवेगी । जैसे [यहां यह अर्थहै कि, विशिष्टकेही निश्चय से तुरीयाका अनिश्चय होनेसे, निश्चित हुये जे निश्चादिक विशिष्ट आत्मा तिनका उलटा उदय होवेगा, अरु वास्तवसे अन्य (तुरीया) को अनिश्चित होनेसे निरात्मकताकीही बुद्धि प्राप्तहोवेगी,] अधिष्ठान

रज्जु । अध्यस्त । सर्पादिकों से भेदको पावती है, तैसेही जब तीनोंस्थानों विषेभी एकही आत्मा अन्तःप्रज्ञत्वादिकोंसे भेदको प्राप्तहोताहै, तब अन्तःप्रज्ञत्वादिपने के निषेधके ज्ञानरूप प्रमाण के सम कालही आत्माविषे अनर्थरूप प्रपंचकी निवृत्तिरूप फल परिसमाप्तहोवे है । जैसे [सम्बन्धीके परोक्षज्ञानके हेतु शब्दको असम्बन्धीके अपरोक्षज्ञानकी हेतुताका असंभव होनेसे, तुरीयाके ज्ञानविषे अन्य प्रमाण मानना चाहिये, इस पक्षके । कहने वाले के । प्रति कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि तुरीयाके साक्षात्कारविषे शब्दसे इतर प्रमाण खोजने के योग्य नहीं, क्योंकि शब्दको विषय के अनुसार हानेसे प्रमाणका हेतुपना है ताते, अरु तुरीय रूप विषय को सम्बन्धरहित अपरोक्ष रूपताहै ताते,] रज्जु अरु सर्प के विवेकहोनेके समकालमें (साथही) रज्जु विषे सर्पकी निवृत्ति रूप फलके हुये, रज्जुके ज्ञानका अन्य फल वा अन्य प्रमाण वा अन्य साधन, अन्वेषण करनेको योग्य नहीं । तैसेही तुरीया के ज्ञानहुये । तिसज्ञानसे । अन्य प्रमाण वा साधन अन्वेषणकरना योग्य नहीं । पुनः [विषयगत प्रकटपना प्रमाणका फलहै, अध्यस्त (कल्पित) की निवृत्ति प्रमाणका फलनहीं, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह भावहै कि अपने विषयके अज्ञान निवारणार्थ प्रवृत्ति हुई जो प्रमाणकी क्रिया सो अपने विषयविषे स्वभावरूप अतिशयताको जब धारण करेहै, तब निवारणरूप अर्थ की तुल्यतासे । छेदनरूप क्रिया भी छेदनकरने योग्य काष्ठ के संयोगके निवारणसे पृथक् अतिशयको धारण करेगी । अरु संयोग के विनाशसे इतर विभागविषे अनुभव है नहीं । अरु प्रकटता के प्रकाशपनेके हुये ज्ञानवत्,] जैसे शब्दके अर्थविषे ज्ञानस्थित होवे है तैसे । अर्थ विषे स्थितपना न होगा । अरु अप्रकाशपनेके हुये अर्थविषे स्थितपनाहोवेगा, तिस हेतुसे अर्थकेबिना अर्थ नहीं है,] जिनके मतविषे अन्धकारके अभावकरने बिना घटादिकों के ज्ञान विषे प्रमाण प्रवर्त होताहै, निनके मतमें छेदनकरने योग्य वृक्षके

अवयवके सम्बन्धके वियोग किया बिनाही दोनों अवयवों में से एक अवयव विषे भी छेदनरूपकिया प्रवर्त्त होती है, इस प्रकार कहना होवेगा । [अज्ञानका निवर्त्तक ही प्रमाण है, इस पक्ष में विषय के स्फुरणविषे कारणके अभावसे विषयका स्फुरण न होगा, यह आशङ्काकरके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि अन्धकारसे आवृत हुआ घट व्यवहारके योग्य स्थित होता है, तिसको अन्धकार से बाहर करके तिसकी व्यवहारकी योग्यताके सम्पादनविषे प्रत्यक्षादिक प्रमाण प्रवृत्त होते हैं, सो प्रमाण जबग्रहण करनेको अनिच्छित, अरु प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान) के अविषय अन्धकारकी निवृत्ति रूप फलविषे स्थित होवे, तब घटका स्फुरणरूप प्रयोजनवाला प्रमाणका फल होता है । जैसे छेदनरूप जो किया है, सो छेदन करनेयोग्य वृक्षके दोनों अवयवोंके परस्परके संयोगके निवारण विषे प्रवृत्त हुई उस छेदनकरने योग्य वृक्षके दोनों शाखारूपों अवयवोंके द्विधाभाव (होने) रूप फलविषे स्थित होती है, परन्तु वृक्षके दोनों अवयवोंमें से एक भी अवयवविषे भी छेदनरूप किया प्रवृत्ति होती नहीं । तैसे ही यहां भी अन्धकारकी निवृत्तिविषे प्रमाण निवृत्ति होवे है, परन्तु घटका स्फुरण तो तिसका फल है । अरु तिस प्रमाणको स्थिरपना नहीं, क्योंकि प्रकाशक प्रमाताके व्यापार को अस्थिरता है तति,] अरु जब पुनः छेदनकरने योग्य वृक्षके अवयवके दो भाग करने वा होने । रूप फलविषे अन्तविषे छेदनरूप क्रि. । कि जिससे दो भाग होता है । तिस अन्तवाली क्रियावृत्त अरु अन्धकारके विवेक के करने विषे प्रवृत्त हुआ जो प्रमाण सो तो ग्रहण करनेको अनिच्छित, अरु अविषयरूप अन्धकारकी निवृत्तिरूप फलविषे अन्तवाला होता है, तब अन्तरायवाले (तमच्छिन्न) घटका ज्ञान है नहीं, इससे सो प्रमाणका फल नहीं । तैसे [किंवा घटादिक जड़ोंको संवित् (चित्तन्य) की अपेक्षावाला होनेसे, तिसविषे संवित् को प्रमाणकी फलरूपता होनेसे भी एक संवित् रूप अजड़ आत्मा विषे मनमें आरोपित धर्मकी निवर्त्तकताके बिना संवित्की जनकता

रूपव्यापार, संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं, यहाँ यह अर्थ है कि तुरीय रूप आत्माविषे प्रमाणको संवेदनका जननरूप व्यापार कल्पते नहीं, क्योंकि, यह तुरीय संवित् (चैतन्य) रूप है ताते, अरु आरोपितकी निवृत्तिके बिना प्रमाणजन्य फलरूप, संवित्की अपेक्षा का अभाव है ताते,] आत्माविषे आरोपित अन्तःप्रज्ञपने आदिकों के विवेकके करनेविषे प्रवृत्तेहुये निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणका ग्रहण करनेको अनिच्छित जे अन्तःप्रज्ञपनादिक तिसकी निवृत्तिके बिना तुरीयविषे व्यापारका सम्भव नहीं, क्योंकि अन्तःप्रज्ञपने आदिकोंकी निवृत्तिके समकालही प्रमातापने आदिक भेदकी निवृत्ति है ताते, इस प्रकार अग्रिम कहेंगे । तथा च “ ज्ञाते द्वैतं न विद्यत इति ” ८ जानेहुये द्वैतविद्यमान है नहीं ८ इस वाक्यप्रमाण से ॥ [किंवा ज्ञानके आधीन द्वैतकी निवृत्ति करके युक्त क्षणविना अन्यक्षणविषे ज्ञान स्थितहोनेको समर्थ नहीं । अरु अस्थिरहुआ ज्ञान व्यापारार्थ, परिपूर्ण नहीं, अरु तेसे हुये ज्ञानका द्वैतकी निवृत्तिसे भिन्न आत्माविषे व्यापार नहीं, इस प्रकार कहते हैं,] ॥ ज्ञानको भेदकी निवृत्तिरूप फलविना अन्यक्षणविषे अस्थिरताके हुये, अरु [ननु, ज्ञान जो है सो द्वैतका निवर्त्तकहुआ हुआ भी अपने स्वरूपको निवर्त्तकरता नहीं, क्योंकि निवर्त्त होनेकी योग्यताका अरु निवर्त्तकरतारूप धर्मका एकही धर्मविषे होनेका विरोध है ताते । याते यावत् पर्यन्त ज्ञानका निवर्त्तक अन्यत आवेगा तावत् ज्ञान स्थिर होवेगा, यह आशङ्का के हुये समाधान कहते हैं । यहाँ यह भाव है कि, द्वैतके निवर्त्तक ज्ञानको द्वैतकी निवृत्तिके अनन्तर भी अपने अन्य निवर्त्तक की अपेक्षा करके स्थितहुये उन उन ज्ञानको अन्य अन्य निवर्त्तक की अपेक्षावाला होनेसे प्रथम ज्ञानको भी निवर्त्तकपनेकी असिद्धी होवेगी] ज्ञानके स्थिर हुये अनवस्था प्रसंग होनेसे द्वैतकी अनिवृत्ति होवेगी । [यहाँ यह अर्थ है कि ज्ञानको अपने निवर्त्तकपनेका असम्भव नहीं, क्योंकि ज्ञानको अपने अरु दूसरेके विरोधी बहुत पदार्थों की प्रतीति

है ताते] एतदर्थ निषेधके ज्ञानरूप प्रमाणके व्यापारिके समकाल में ही आत्माविषे आरोपित जे अन्तःप्रज्ञतापनादिक अनर्थ तिनकी निवृत्ति होती है, ईसप्रकार सिद्धहुआ ॥ अब तात्पर्य सहित मूल श्रुतिका अर्थ कहते हैं ॥ यहां “ नान्तःप्रज्ञमिति ” अन्तःप्रज्ञ नहीं ॥ इसपद से तैजसका निषेध किया, “ नेवहिःप्रज्ञमिति ” एवहिः प्रज्ञनहीं ॥ इसपदसे विश्वका निषेध किया, अरु “ नोभयतः प्रज्ञमिति ” उभयतः ॥ प्रज्ञनहीं ॥ इसपद करके जाग्रत् अरु स्वप्नकी सन्धीरूप मध्य अवस्था का निषेध किया, अरु “ नप्रज्ञानघनमिति ” ॥ प्रज्ञानघन नहीं ॥ इस पदसे सुषुप्ति अवस्था का निषेध किया, क्योंकि सुषुप्तिको बीजभावकी अविवेक रूपता है ताते, अरु “ नप्रज्ञमिति ” ॥ प्रज्ञनहीं ॥ इस पद करके एककाल विषे सर्व विषयों के ज्ञातापने का निषेध किया, अरु “ नोप्रज्ञमिति ” ॥ अप्रज्ञनहीं ॥ इसपद से अचेतनपने का निषेध किया ॥ शङ्का ॥ ननु पुनः आत्माविषे प्रतीयमान जे अन्तःप्रज्ञ आदिक तिनकारज्जुआदिकों विषे सर्पादिकोंवत् निषेध होनेसे असत्पना कैसे जानिये, समाधान ॥ तहां कहते हैं । अन्तःप्रज्ञ आदिकों के ज्ञानस्वरूप होने विषे अविशेषताके हुये २ भीरज्जुआदिकों विषे सर्प जलधारादिकों के कल्पित भेदत्रत् परस्पर असत्पना है । अर्थात् जैसे एकही रज्जुरूप अधिष्ठान विषे अद्वयस्त जे ‘सर्प’ दण्ड, जलधारा, सो कल्पित अरु परस्पर में व्यभिचारी अर्थात् जिसकालमें रज्जुविषे सर्पकी प्रतीति है तिसही कालमें दण्ड अरु जलधारा की नहीं, अरु जिसकाल विषे दण्डकी प्रतीति है तिसकाल विषे सर्प अरु जलधाराकी प्रतीति नहीं, अरु जिसकालमें जलधारा की प्रतीति है तिसकालमें सर्प अरु दण्डकी प्रतीति नहीं, ताते अधिष्ठान रज्जु से वास्तव करके अपृथक् भी जे कल्पित ‘सर्प’, दण्ड, जलधारा, सो उक्तप्रकार परस्पर में व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् है । तैसेही विश्वादिक भी अपने अधिष्ठान से पृथक् सत्तावाले नहीं परन्तु परस्पर व्यभिचारी अरु कल्पित होनेसे असत् हैं ।

अरु रज्जुआदिकोंवत् अव्यभिचारतासे तिनके ज्ञानस्वरूप का सत्यपना है ॥ अरु जो ऐसा कहे कि तिनका ज्ञानस्वरूप भी सुषुप्ति विषे व्यभिचारको पावता है, सो बने नहीं क्योंकि सुषुप्तान् पुरुष अनुभव का विषय है ताते । अरु “नहि विज्ञातु विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यंत इति श्रुतेः” “विज्ञाता की विज्ञातिका लोप विद्यमान नहीं, इस श्रुतिके प्रमाण से”, अरु जब ऐसा है एतदर्थ ही “अदृष्टम्” “अदृष्ट है” अरु जिसकरके अदृष्ट है, तिसही करके “अव्यवहार्यम्” अव्यवहार (व्यवहार करने के अयोग्य) है, अरु अव्यवहार होनेसे “अग्राह्य” अग्राह्य (कर्मेन्द्रियोंसे ग्रहण करने के अयोग्य) है, ताहीते “अलक्षणम्” अलक्षण कहिये लिंग रहित । अर्थात् अनुमान प्रमाणका अविषय । है । अरु जब ऐसा है तबहीं “अचिन्त्यम्” अचिन्त्य (अन्तःकरण की वृत्तियों का अविषय) है । अरु जिसकरके ऐसा है तिसही करके “अव्यपदेश्यम्” अव्यपदेश्य (शब्दप्रमाणका अविषय होने से उपदेश करने वा कहनेके अयोग्य) है । अरु जब ऐसा है तब “एकात्म्य प्रत्ययसारम्”, एकात्म्य प्रत्ययसार है, अर्थात् जाग्रदादि अवस्था रूप । स्थानोंविषे यह आत्मा एक है, इसप्रकार अव्यभिचारी जो प्रत्यय (ज्ञान) तिसकरके अनुसरने (विचार वा अनुभव करने) योग्य है । अथवा जिस तुरीया की प्राप्ति विषे एक आत्मज्ञानरूप ही सार (मुख्यप्रमाण) है, इसप्रकार का सो तुरीया है “आत्मे त्येवोपासीत इति श्रुतेः” “आत्मा है इसप्रकार ही उपासना करना” । अर्थात् आत्माको अस्तिभावसे ही निश्चय करना, “अस्तीत्येवोपलब्धव्य” इत्यादि अन्यश्रुतिके प्रमाणसे । इस प्रकार अन्तःप्रज्ञत्वादि । भावप्रापक जाग्रदादि । स्थानोंके अभिमानी के धर्म का निषेध किया । अरु “प्रपञ्चोपशममिति” “प्रपञ्च से रहित हैं” इसप्रकार । आत्माविषे । जाग्रदादि स्थानों के धर्मका अभाव कहा । अरु उक्तप्रकारका होने से ही “शान्तम्” शान्त । अर्थात् अव्यभिचार अरु विक्रिया रहित) है । इसही से

“शिवम्” शिवः (शुद्धबुद्धि मुक्तस्वभाव परमानन्द बोधस्वरूप) है। अरु “अद्वैतम्” अद्वैतः । अर्थात् जिसकरके सर्वभेद विकल्पसे रहित है। तिसही से “चतुर्थम्” चतुर्थ है । अर्थात् तीन पादों की अपेक्षासे, चतुर्थः तुरीयपादः, “मन्यन्ते” मानते हैं । क्योंकि प्रतीयमान जे विश्वादिक तीन पाद तिनसे विलक्षण है ताते “सआत्मा सविज्ञेय” सो आत्मा है सो जानने योग्य है । अरु जेसे प्रतीयमान जे ‘सर्प, भूमिकी दरार, दंड, जलधारादिक, तिस सर्वसे पृथक् । अरु तिनसबका आश्रय अधिष्ठान रज्जु है । तैसे “तत्त्वमासि” सो तू है । इत्यादि महावाक्योंका लक्ष्यरूप जो आत्मा । अर्थात् जाग्रदादि अवस्थारूप स्थानोंका, अरु तदभिमानी विश्वादिकोंका आश्रय अधिष्ठान अरु सर्वके धर्म कर्मादिकों से पृथक् सर्वका प्रकाशक साक्षी निरुपाधि शुद्ध विज्ञान, घन निर्विशेष निरुपाधि जो आत्मा सो । अदृष्ट (चक्षुरादिकों का अविषय) हुआ, चक्षुरादि सर्वका द्रष्टा है, अरु “नहि द्रष्टुर्दृष्टे विपरिलोपो विद्यत, इत्यादि” द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप-विद्यमान नहीं । इत्यादि श्रुतियों ने कहा है । ताते सोई सर्वका अनुभवी अपना आप सत्य प्रत्यगात्मा है । सो जानने योग्य है ॥ यहाँ “सविज्ञेय” सो जानने योग्य है । इसप्रकार कहा है सो पूर्व । अपने आप आत्माकी अज्ञात अवस्थाविषे । अर्थात् अपने आप वास्तविक स्वरूपको यथार्थ न जानने रूप अवस्थाविषे । आत्मा विषयक ज्ञेयपनेकेहुये, आत्मा को जाननेयोग्य है, इसप्रकार कहा । अरु महावाक्योंके लक्ष्यार्थको सम्यक्प्रकार अपने आप । आत्माकरके जानेहुये ‘ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इस त्रिपुटि के विभाग रूप द्वैतका अभाव होता है-७ ॥

८ ॥ हे सौम्य! “अत्रैतेश्लोका भवन्ति” यहाँ यह श्लोक होते हैं । अर्थात् यहाँ [अब “नान्तःप्रज्ञत्वादि” अन्तःप्रज्ञत्वनहीं । इससप्त संख्यावाले श्रुति मन्त्रकरके उक्तार्थ विषे तिसके वर्णनरूप गौडपादाचार्य कृत् नव ६ श्लोकोंको प्रकटकरते हैं] निवृत्ते सर्व

(गौडपादीयोपनिषदर्थविष्करणम् ॥

निवृत्तेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः ॥ अद्वैतः
सर्वभावानां देवस्तुय्यो विभुः स्मृतः १० ॥

अथ गौडपादाचार्यकृत कारिका ॥

दुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः" सर्वदुःखोंकी निवृत्तिक ईशान प्रभु
है, अव्यय है, अर्थात् 'प्राज्ञ, तैजस, विश्वरूप लक्षणवाले जीवोंके
सर्वदुःखोंकी निवृत्तिका ईशान कहिये नियामक तुरीयरूप आत्मा
है। सो प्रभु है। अर्थात् यहां 'ईशान, पदका व्याख्यान रूप 'प्रभु,
पद है, एतदर्थ ईशान कहिये सर्व दुःखोंकी निवृत्ति के अर्थ प्रभु
। समर्थ होता है। अर्थात् जो सर्वदुःखोंकी निवृत्तिकरने में समर्थ
होवे तिसको 'प्रभु, इसनामसे कहते हैं, सो एक आत्मा ही अपने
सस्यक् ज्ञानद्वारा अध्यात्मिकादि त्रिविधताओंको समूल अशेष
निवृत्त करता है ताते तुरीय आत्माके 'ईशान, इस विशेषणका अर्थ
प्रभु है। क्योंकि सर्व दुःखोंकी जो निवृत्ति है सो तिस (आत्मा)
के ज्ञानरूप निमित्तसे होती है ताते। अरु यह प्रत्यगात्मा जिससे
। वास्तवकरके। स्वरूपसे व्यभिचारको पावता नहीं तिस हीसे
अव्यय है। अरु " अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुय्यो विभुः स्मृतः "
। सर्वभावोंके। मिथ्या होनेसे। अद्वैत है, देव तुरीय विभु (व्यापक)
कहा है ? अर्थात् 'जाग्रदादि अवस्थारूप तीनों स्थान अरु तिनके
विश्वादिक तीनों अभिमानों सो सर्व। रज्जुमें सर्पवत् असत्
होनेसे। उन सर्वका आश्रय अधिष्ठानरूप तुरीय आत्मा। अद्वैत
है। अरु एतदर्थ ही। अर्थात् सर्वभावोंको मिथ्या होनेसे ही। व्यय
(व्यभिचार) के हेतु जे द्वैतवस्तु तिमके अभावसे आत्मा अव्यय
है। अरु सो यह सर्वका प्रकाशक होनेसे देव। अर्थात् जाग्रदादि
स्थानों सहित विश्वादिकोंके 'रज्जुमें सर्पवत् अव्यस्तरूप भाव
को, अरु स्वरूपसे उनके अभावको, उनका अधिष्ठान साक्षी होके

कार्यकारणवद्धौताविष्येतेविश्वतैजसो ॥ प्राज्ञः का
रणवद्धस्तु द्वौतौ तुय्येन सिध्यतः ११ ॥

प्रकाशता है ताते आत्मा सर्व प्रकाशकों का प्रकाशक देव । है ।
अरु विश्वादिकों की अपेक्षा चतुर्थ होने से तुरीय, अरु सर्व में
व्यापक होने से विभु है, ऐसा कहते हैं १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! अत्र तुय्यार्थे यथार्थ आत्मपने के निश्चयार्थ [इस
श्लोक के तात्पर्य को कहते हैं] “ कार्य कारणवद्धौताविष्येतेविश्व
तैजसौ ” ६ सो विश्व तैजसदोनों कार्यकारण से वद्ध अंगीकार
करते हैं ; अर्थात् विश्वादिकों का सामान्य अरु विशेषभाव निरू-
पण करते हैं [विश्वादिकों विषे मध्यकी विशेषता वा ‘विलक्षण-
ता’ के निरूपण करनेद्वारा तुरीयाकोही निरधार करते हैं] यहाँ
‘करते हैं’, ऐसा जो फलभाव, सो कार्य है । अरु ‘करता है’, ऐसा
जो बीजभाव, सो कारण है । तिन तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथा
ग्रहणरूप बीजभाव अरु फलभाव । अर्थात् तत्त्वका अग्रहण
(अज्ञान) सोई बीजभाव अरु तिसीबीज हेतुसे हुआ जो तत्त्व
विषयक कर्तृत्वभोक्तृत्वादि अन्यथाग्रहणभाव सोई उक्त बीजका
फलभाव है । तिनसे वे पूर्वोक्त विश्व अरु तैजस ये वद्ध अंगीकार
करते हैं अरु “ प्राज्ञः कारणवद्धस्तु द्वौतौ तुय्येन सिध्यतः ” ६ प्राज्ञ
तो कारण भावसेही वद्ध है, विश्व अरु तैजस येदोनों तुरीयाविषे
सिद्ध होते नहीं ; अर्थात् प्राज्ञतो बीजभावरूप कारण सेही वद्ध है
अर्थात् तत्त्वका अवोधमात्रही जो बीजभाव सोई प्राज्ञपने विषे
निमित्त है । एतदर्थे बीजभाव अरु फल भावमय तत्त्व के अग्र-
हण अरु अन्यथाग्रहणरूप विश्व अरु तैजस यह दोनों तुरीया
विषे सिद्ध होते नहीं ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! प्रश्न । पुनः प्राज्ञको कारणसे वद्धपना कैसे है ।
वा तुरीयाविषे तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथाग्रहणरूप वद्ध जो
विश्व ओ तैजस सो तिसप्रकारके सिद्ध होते नहीं, उत्तर । तहाँ

नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम् ॥ प्राज्ञः
किञ्चन संवेत्तितुर्य्यतत्सर्वदृक् सदा १२ ॥

कहते हैं, “नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम्, प्राज्ञः
किञ्चन संवेत्ति” ६ प्राज्ञ है सो न आपको न परको न सत्यको न
अनृत (झूठ) को, कुछ भी जानता नहीं ? अर्थात् जिसकरके
प्राज्ञ जो है सो विश्व अरु तैजसवत् कुछ भी आप को जानता
नहीं, अरु अविद्यारूप बीजसे उत्पन्न बाह्यके द्वैतरूप, अन्यो को
भी जानता नहीं, अरु सत्यको । दृष्ट्यादिकोंके विषय कार्यको ।
जानता नहीं । अरु तैसेही अविद्यात्मक बीजरूप अनृत (अवि-
षयकारण) को भी जानता नहीं । एतदर्थ यह प्राज्ञ अन्यथाग्रहण
‘कहिये ‘ विपरीत ज्ञान, के बीजमय अग्रहणरूप अज्ञान से बड़
होता है । अरु “ तुर्य्यतत्सर्वदृक् सदा ” ६ तुरीया सर्वदा सर्वदृक्
है ? अर्थात् जिसकरके तुरीया अपनेसे इतर (अविद्या) के अभाव
से सर्वदा सर्वदृक् (सर्वरूप अरु सर्वका द्रष्टा) है । एतदर्थ तिसविपे
‘तत्त्वका अग्रहणरूप (अविद्यात्मक) बीजनहीं, ‘ क्योंकि वो तिस
का भी प्रकाशक द्रष्टा है ताते, अरु जघ उसविपे उक्त बीजनहीं
‘तिसहीकरके तिसबीजसे उत्पन्न हुआ जो अन्यथाग्रहरूप (अर्थात्
‘विपरीतज्ञान, जीवभावरूप । फलकाभी तिसविपे अभाव है । जैसे
‘सर्वदा प्रकाशरूप सूर्य्यविपे अप्रकाशता वा अन्यथाप्रकाशना सं-
भवे नहीं । अथवा जैसे सर्वदा स्वयंप्रकाशरूप सूर्य्य विपे अंधकार
नहीं अरु तिसके अभावहुये तिसका कार्य जो पदार्थका अन्यथा
भासना सो भी नहीं । तैसे सर्वदा स्वयंज्योतिःद्रष्टारूप तुरीयाविपे
बीजरूप मूलाज्ञान अरु तिसका कार्य अन्यथाग्रहण (विपरीतज्ञान,
जीवभाव) रूपफल दोनों नहीं । क्योंकि “ नहिद्रष्टेर्दृष्टेर्विपरि-
लोपो विद्यत इति श्रुतेः ” द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप (अभाव)
विद्यमान नहीं । इस श्रुतिके प्रमाणसे । अरु वो सर्वका द्रष्टा
‘तुरीया पदार्थका अग्रहणरूप बीजसुषुप्तिका अरु तिसके कार्यविपे

द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुल्ययोः । बीजनिद्रा
युतः प्राज्ञः सा च तुल्येन विद्यते १३ ॥

रीतिज्ञानरूप फलका प्रकाशक द्रष्टा है, अरु घटद्रष्टाघटाद्भिन्नः ।
इस न्यायप्रमाण दृश्यसे द्रष्टापृथक् होनेसे उसविषे उक्त बीज
अरु फलका अभावसिद्ध है । अथवा जाग्रत् अरु स्वप्नादि । सर्व
अवस्थामें । सर्व भूतों विषे स्थितिवाला सर्ववस्तुओं का द्रष्टा
आभास (प्रतिबिम्बरूप प्रकाश) है सो तुरीयाही है । क्योंकि
बिम्बसे प्रतिबिम्बकी पृथक्सत्ताका अभाव है ताते । एतदर्थ सो
तुरीया सर्वदा सर्वदृक् (सर्वकाद्रष्टा) है । क्योंकि अविद्यासे रहित
सर्वदा जाग्रत् स्वभाव है । तथाच “ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टा ” इत्यादि
श्रुतेः ” ८ इससे अन्य द्रष्टा है नहीं १२ ॥

१३ ॥ हे सौम्य !, अब निमित्तान्तरसे प्राप्तहुई शङ्का भी निवृत्ति
के अर्थ यह श्लोक है । अर्थात् तुरीयाविषे अन्यनिमित्ततासे प्राप्तहुई
कारणता । तिससेहुई जो वद्धपनेकी शङ्का तिस । वद्धपनेकी शङ्का
की निवृत्तिके अर्थ यह श्लोक है । कैसे कि [विवादका विषय
जो तुरीय सो कारणसे वद्ध कहिये सम्बन्धवाला है, द्वैतका अग्र-
हण है ताते, प्राज्ञवत् । यहां अनुमानकोही देखावते हुये, प्राज्ञ
को कारणकरके वद्धपने विषे अन्यनिमित्तकोही प्रकटकरते हैं]
दोनोंविषे द्वैतके अग्रहणरूप निमित्तकी तुल्यता है ताते । इसे
प्रकारकी जो शङ्का प्राप्तहुई ‘सो शङ्का, प्राज्ञकोही कारणसे वद्ध
पना है तुरीयाकोनहीं, इसप्रकारनिवारण करते हैं “ द्वैतस्याग्रहणं
तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुल्ययोः ” ८ प्राज्ञ अरु तुरीया दोनोंको द्वैतका
अग्रहणतुल्य है ; अर्थात् यद्यपि प्राज्ञ अरु तुरीया इन दोनों को
द्वैतका अग्रहण तुल्यही है । तथापि “ बीज निद्रायुतः प्राज्ञ सा
च तुल्येन विद्यते ” ८ प्राज्ञ बीज निद्रायुक्त है, सो तुरीया विषे
विद्यमान नहीं ; अर्थात् प्राज्ञ जो है सो विशेषके । मिथ्य, तैजसा-
दिरूप द्वैतके । बोधके उत्पत्तिका कारण जो तत्त्वका अवोधरूप

१. स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ॥ न निद्रानैव च स्वप्नं तुय्ये पश्यन्ति निश्चिताः १४ ॥

धीजनिद्रा (मूलाविद्या) तिसकरकेयुक्त है। अरु तुरीयाको सर्वदा सर्वका द्रष्टा स्वभाववाला होनेसे सो 'तत्त्वका अवोधरूप' निद्रा (मूलाविद्या), तुरीयाविषे है नहीं एतदर्थतिस तुरीया विषे कारण का सम्बन्ध नहीं, यह अभिप्राय सिद्ध है १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य!, [अब, "कार्यकारणवच्चौ ताविष्येतेविश्वतै जसौ" विविश्व अरु तैजसकार्य अरु कारणकरके बद्ध हैं। इसअष्टादश १८ में इलोकविषे उक्त अर्थको, अनुभवके आश्रयसे वर्णन करते हैं] "स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया," १. आद्य दोनों स्वप्न अरु निद्राकरके युक्त है, अरु प्राज्ञ तो स्वप्नसे रहित निद्राकरकेही युक्त है; अर्थात् आद्य (प्रथमरुहे) जे विश्व अरु तैजस सो दोनों 'रज्जुविषे सर्पवत्, अध्यस्त। जे अन्यथाग्रहणरूप स्वप्न, अरु तत्त्वके अवोधमय अज्ञानरूप निद्रा, तिन स्वप्न अरु निद्रा दोनोंकरकेयुक्त है। एतदर्थ वे। विश्व अरु तैजस। कार्य अरु कारण। दोनोंसे। बद्ध हैं, इसप्रकारपूर्वकहा। अरु प्राज्ञते स्वप्न से रहित केवल निद्रा (अज्ञान) सेहीयुक्त है। एतदर्थ कारणसे बद्ध है, इसप्रकार पूर्व कहा अरु "ननिद्रानैव च स्वप्नं तुय्ये पश्यन्ति निश्चिताः" २. निश्चयको प्राप्तहुये, तुरीयाविषे स्वप्नको नहीं देखते अरु निद्राको भी नहीं देखते; अर्थात् जो 'महावाक्यार्थ' के सम्यक् ज्ञानारके। निश्चयको प्राप्तहुये ब्रह्मवेत्ता, सो 'सूर्यविषे अन्धकारवत् विरुद्ध धर्मा होनेसे, तुरीयाविषे स्वप्नको देखते नहीं, अरु निद्राको भी देखते नहीं। एतदर्थही जो। सर्वका प्रकाशक द्रष्टा। तुरीया है, सो कार्य अरु कारण दोनों से बद्ध नहीं, इसप्रकार पूर्व कहा है १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य!, शंका। ननु। पुरुष स्वप्नविषे स्थित कब होता है, अरु निद्राविषे कब होता है; अरु तुरीयाविषे निश्चयको प्राप्त

अन्यथाग्रहृतः स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः ॥ विपर्यया
सेतयोक्षीणेतुरीयं पदमश्नुते १५ ॥

हुआ कब होता है, समाधान । तहां कहते हैं “अन्यथा ग्रहृतः
स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः” ६ तत्त्वके अन्यथा ग्रहणवाले को
स्वप्न होता है, अरु न जाननेवाले को निद्रा है, अर्थात् स्वप्न अरु
जाग्रतविषे ‘रज्जुमें सर्पवत्, तत्त्वको अन्यथा (और प्रकारसे)
ग्रहण करनेवाले पुरुषको स्वप्न होता है, अरु तत्त्वके न जाननेवाले
को तीनों अवस्थाविषे तुल्य निद्रा है । यहां स्वप्न अरु निद्राविषे
तुल्यताके होनेसे ‘विश्व अरु तैजस, इन दोनों को एकराशी
(कोटि) पना है । अरु तिनविषे अन्यथाग्रहणसे अरु प्रधान (मुख्य)
होनेसे गुणरूप निद्रा है अरु विपरियास स्वप्न है । अरु तृतीयस्थान
। द्वितीयकोटि प्राज्ञविषे तो तत्त्वको अज्ञानलक्षणरूप निद्रा ही केव-
ल विपरियास है । एतदर्थ “विपरियासे तयोक्षीणेतुरीयं पदमश्नु-
ते” ६ विपरियासके क्षीणहुये तुरीय पदको पावता है, अर्थात्
उन कार्य अरु कारण रूप उभय स्थानों के अन्यथा ग्रहण अरु
अग्रहेण लक्षणमय कार्य-कारण से बद्धरूप विपरियासके ‘पर-
मार्थ तत्त्वके प्रतिबोधकरके, क्षीण (विनाश) हुये तुरीयपदको पाव-
ता है । अर्थात् जेव उक्तप्रकार का विपरियास नाश होता है तब
तिस तुरीयाविषे उभय प्रकार के बन्धके रूपको न देखता (अनु-
भवकरता) हुआ पुरुष तुरीयाविषे निश्चयको प्राप्त हुआ हो-
ता है १५ ॥

१६ ॥ हे सोम्य ! [विपर्ययके नाशकाहेतु तत्त्वज्ञान कब होता
है । इसप्रकार प्रश्न करनेकी इच्छाके होनेसे कहते हैं] “अनादि
मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते” ६ यह जीव अनादि माया
करके सोया है, सो जेव प्रबोधवान् होता है, अर्थात् जो यह संसारी
जीव है सो तत्त्वके अवोधमय बीजरूप अरु अन्यथा ग्रहण फल
रूप, जो अनादि काल से प्रवृत्त हुये उभय लक्षणवाले मायारूप

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते । अजम
निद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ १६ ॥

स्वप्न, तिनकरके “यह मेरा पिता है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा
पौत्र है, यह मेरा क्षेत्र है, यह मेरा पशु है, मैं इनका पोषक, स्वामी
हूँ, दुःखी हूँ, इनसे क्षय को पाया हूँ, अरु इनसे वृद्धि को भी
पाया हूँ, । इत्यादि प्रकारके स्वप्नोंको जाग्रत अरु स्वप्न, उभय
स्थानोंविषे देखता हुआ । अनादि कालसे । सोचता है । अरु “
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ” ॥ १६ ॥ जब बोधको प्राप्त होता
है तब ‘अज है, अनिद्र है, अस्वप्न है, अद्वैत है, ऐसे जानता है,
अर्थात् सो । अनादि कालका सोया हुआ जीव । जब वेदान्त के
अर्थरूप तत्त्वके जाननेवाले परमदयालु आचार्य से “तू इन
पुत्रादिकों का हेतु अरु फलरूप नहीं” किन्तु “तत्त्वमसीति” ।
सो (ब्रह्म) तू है । इस प्रकार श्रवण करके प्रबोधको प्राप्त होता है,
। अर्थात् सहस्रावधि माता पिताओं से अधिक जीवोंपर परम
कृपाकरके, इस उक्त स्वप्नके जन्म मरणादि महान् दुःखों से
ग्रसित देख आप आचार्य द्वाराहोके “उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य व
रान्निबोधत ” । इत्यादि अपने परम उदारवाक्योंसे अज्ञान निद्रा
से जगाय पुनः कहती है कि हे सौम्य ! ‘जैसे सर्व जातिके वृक्षों-
कारस मक्षिकाके उदरमें भेदसे रहित, समान मधुभावको प्राप्त हो-
ता है, तैसेही यह सर्व चिदाभास जीव सुषुप्ति अवस्था में समान
एक विम्बरूप चैतन्य भावको प्राप्त होते हैं अरु जहां पुत्र पितादि
वा ब्राह्मण क्षत्रियादि वा मनुष्य पशुवादि वा जड़ चैतन्यादि कोई
भी भेदभाव विशेष रहता नहीं, अरु जहां को प्राप्त हुये विद्वान्
पुनः जीव, भावविषे आवते नहीं । रा आत्मा तत्त्वमसि ” सांई
सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है, सोई आत्मा तू है । इस प्रकार
जब परमहितकारणी श्रुति महावाक्योंके लक्ष्यार्थको जाननेवाले
ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा अपने वाक्योंसे इन जीवोंको । जो अनादि

कालसे मायाकरके सोयेहुये नानाप्रकार के जगत् रूप स्वप्नों को देखते जन्म मरणादिकों के महान् क्लेशोंको पावते हैं, जगायके सावधान करती है तब ऐसे जानता है । पूछन । कैसे जानता है, उत्तर । इस आत्माविषे बाह्य (कार्य) अरु अन्तर (कारण) वा जन्मादि षट् भावविकार हैं नहीं । अतएव अजन्मा है, अर्थात् आत्मा । बाह्य अन्तर सहित अरु बाह्य अन्तरके धर्मादि । सर्व भावविकार करके वर्जित (रहित) है । अरु जिस करके इस आत्माविषे जन्मादिकों की कारणरूपा अविद्या अरु अज्ञान स्वरूप बीजमय निद्रा नहीं, एतदर्थ यह अनिद्र है । अर्थात् सर्वदा बोधस्वरूप है । अरु जिसकरके सो तुरीया अनिद्र । अवोध रहित । है, तिसही करके अस्वप्न है, क्योंकि अन्यथा ग्रहणरूप जो स्वप्न है सो अवोधरूप निद्राके निमित्तवाला है । अरु सो निद्रा तुरीय आत्मा विषे है नहीं, अतएव तन्निमित्तक उक्त स्वप्न भी तिस विषे नहीं । अरु जिसकरके अनिद्र अरु अस्वप्न है, तिसही करके अजन्मा अरु अद्वैत है, इसप्रकार तुरीयरूप आत्माको तब जानता है । जब स्वस्वरूप विषे जागता है १६-॥

॥१७॥ हे सौम्य ॥ शंका । जयप्रपंचकी निवृत्तिसे अद्वैतको, जानता है, नव प्रपंचके अनिवृत्तहुये अद्वैत कैसे सिद्ध होता है, जहां ऐसी शंका है तहां कहते हैं, जो कि परमार्थ सेही प्रपंच विद्यमान होय तब उक्तप्रकार अद्वैतकी असिद्धि होती है, यह तेराकथन सत्य है, परन्तु 'रज्जुविषे सर्पवत्, कल्पित होनेसे सो । प्रपंच । विद्यमान नहीं, एतदर्थ अद्वैतही सिद्ध होता है अरु " प्रपंचोयदिविद्येत निवृत्ततनसंशयः " । जो कदापि प्रपंच विद्यमान होय तो निवृत्त होय इसमें संशय नहीं ; अर्थात् जो यह प्रपंच । स्वरूपसेही । विद्यमान होवे तो निवृत्तहोवे अर्थात् जो कदापि यह प्रपंच स्वरूपसेही विद्यमान होय तो इसकी निवृत्ति हुये अद्वैत सिद्धहोवे परन्तु जैसे रज्जुविषे भ्रान्तिबुद्धि करके कल्पित जो सर्प सो विद्यमान हुआ हुआ भी विवेकसे निवृत्त होता है, एतदर्थ वस्तुसे

प्रपञ्चोयदिविद्येतनिवर्त्ततनसंशयः । मायामात्र
मिदं द्वैतमद्वैतपरमार्थतः १७ ॥

है नहीं । अर्थात् जैसे रज्जुविषे सर्प, तैसे आत्माविषे प्रपञ्च कल्पित होनेसे रज्जुके यथार्थ विवेकहुये उस प्रपञ्चके हुये हुये भी सत्यरूप रज्जुवत् एक आत्मतत्त्वही सत्य अद्वैत होवेहै, क्योंकि प्रपञ्च भ्रान्ति करके कल्पित है तोते, वा जिनको रज्जुका यथार्थ विवेक नहीं तिनको द्वैतरूप सर्प सत्यवत् है, परन्तु उस भ्रान्ति कालविषे भी सर्प कल्पित होनेसे रज्जु अद्वैतही है, इसप्रकार अविवेक करके प्रपञ्चकी सत्य प्रतीतिकाल में भी प्रपञ्चको भ्रान्तिमात्र होनेसे, आत्मा अद्वैतही है । इसप्रकार द्वैतरूप प्रपञ्च के होतेसंते भी अद्वैतही सिद्धहै । अरु जैसे मायावी पुरुष ने देखाई जो माया सो विद्यमान हुई हुई भी तिसके देखनेवाले पुरुष के नेत्रगन्धके दूरहुये निवृत्त होताहै, क्योंकि वास्तवसे है नहीं । तैसेही " मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतपरमार्थतः " १७ यहद्वैत मायामात्र है अरु परमार्थ से अद्वैत है, अर्थात् जैसे रज्जुविषे सर्प अरु मायावी विषे माया । तैसे यह प्रपञ्च नामवाला द्वैत मायामात्र । भ्रान्ति करके कल्पित है । अरु रज्जु अरु मायावीवत् परमार्थ करके अद्वैतही है । एतदर्थ कोईभी । अविवेकीको । प्रवृत्त हुआ वा, विवेकीको । निवृत्त हुआ । उभयप्रकार । प्रपञ्च हैही नहीं । इति सिद्धम् १७ ॥

१८ ॥ हे सोम्य ! शंका । शास्त्रा (उपदेष्टा) आत्मा, अरु शिष्य, इसप्रकारका विकल्प । अद्वैतविषे कैसे प्रवृत्त होताहै, जहां ऐसी शंकाहै, तहां कहते हैं । समाधान । " विकल्पोविनिवर्त्ततकल्पितो यदि केनचित् " १८ यदि विकल्प किसी करके कल्पित होय तो निवर्त्त होताहै, अर्थात् विकल्प निवर्त्त होताहै जो किसी करके कल्पित होय तो । जैसे यह प्रपञ्च मायावी की माया अरु रज्जुविषे सर्पवत् प्रपञ्च । यथार्थ ज्ञान । रो पूर्वहै । तैसे यह शिष्यादि भेद

विकल्पो विनिवर्त्तत कल्पितो यदि केनचित् । उपदेशादयं वा
दो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥ १८ ॥ उपनिषद् ॥ १२२ ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम् । पादोऽधिमात्रो
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ८ ॥ १ ॥

रूप-विकल्पभी-तत्त्वके-पूरोध-ययार्थज्ञान-के-पूर्वही-उपदेश-
के-निमित्तहै । याते । उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते । यह
वाद-उपदेशके-जानेहुये द्वैत है नहीं ; अर्थात् यह शिष्य शास्त्रा
अरु शास्त्ररूप जो व्यावहारिक । कथनहै सो तत्त्वोपदेशमे
पूर्वहै, अरु उपदेशके कार्यरूप ज्ञानके पूर्णहुये परमार्थ तत्त्वके
जाननेसे । पुनः उपदेष्टादिरूप । द्वैतहै नहीं १८ ॥

अथ उपनिषदर्थ ॥ १ ॥

॥ १८ ॥ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार तत्त्वज्ञानविषे संमर्थ उत्तमे अरु मध्यम
अधिकारियोंको अध्यारोप अरु अपवादसे पारमार्थिक तत्त्व उप-
देश किया । अथ तत्त्वके ग्रहणमें असमर्थ कनिष्ठ अधिकारि को
आत्माके ध्यानविषे विधानार्थ आरोपदृष्टिकोही आश्रयकरके मूल
श्रुतिके चारिमन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं] जो वाच्यकी प्रधान-
तावाला अंकार चारपादवाला आत्मा है इस प्रकार व्याख्यान
किया “ सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम् ” सो यह आ-
त्मा अध्यक्षर है, अंकार है, अधिमात्र है ; अर्थात् जो पूर्व अंकार
चारपादवाला आत्माकहा, सो यह आत्मा अध्यक्षर है, अर्थात्
वाचककी प्रधानता से अक्षरको आश्रय करके वर्णन किया है ए-
तदर्थ अध्यक्षर कहते हैं । प्र० । पुनः सो अक्षर क्या है । उ० ।
तहां कहते हैं । सो अक्षर अंकार है । अरु सो यह अंकार पादों
से विभाग पायाहुआ अधिमात्र है । अरु मात्राको आश्रय करके
वर्त्तता है ततो अधिमात्र है । शंका । ननु, आत्माही पादोंसे वि-
भागकों पावना है, अरु मात्राको आश्रय करके अंकार स्थित हो-
ता है, ताते पादोंसे विभागको प्राप्तहुये अंकारका अधिमात्रपन ।

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमामात्राऽऽप्तेरा
दिमत्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य
एवं वेद ६ ॥

केसे है, जहां ऐसा शंका है, तहां कहते हैं, “पादा मात्रा मात्राश्च
पादा अकार उकार मकार इति, ६ पाद हैं सो मात्रा हैं, मात्रा हैं
सो पाद हैं, अकार उकार मकार यह । तीन ओंकारकी मात्रा हैं,
अर्थात् आत्माके जे पाद हैं सो ओंकारकी मात्रा हैं, अरु जे ओं-
कारकी मात्रा हैं सो आत्माके पाद हैं । अतएव पाद अरु मात्राकी
एकतासे यह कथन विरुद्ध है, ताते कौनसी वो ओंकारकी मात्रा
है, जहां ऐसा प्रश्न है, तहां कहते हैं, अकार उकार अरु मकार,
यह तीन ओंकार की मात्रा हैं ८ ॥

६॥ हे सौम्य! तहां [पादों के मध्य अरु मात्राओं के मध्य विश्व
नामक भेदकी अकार रूपताको सूचन करते हैं] विशेषको नियम
करते हैं । “जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमामात्राऽऽप्तेरादिम
त्वाद्वाऽऽप्नोति” ६ जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो अकाररूप
प्रथमा मात्रा है, व्याप्तिसे वा आदिवाले होनेसे, आप्नोति, अर्थात्
जो जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो ओंकारकी अकाररूप
प्रथम मात्रा है । प्र०, १-किस तुल्यता करके दोनोंकी एकता है, । उ-
त्तर । व्याप्तिसे वा आदिवाले होने से । जैसे अकारसे सर्व वाणी
व्याप्त है “अकारो वै सर्वा वागिति श्रुतेः” ८ अकारही सर्व वाणी है ।
इस श्रुतिके प्रमाणसे । अरु तैसेही वैश्वानरसे जाग्रत् व्याप्त है ।
तथाच “तस्य ह वै तस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्ध्वैव सुतेज, इत्यादि श्रु-
तिः” ८ तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्मा का मस्तकही स्वर्ग
है, इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, वाच्य (नामी) वाचक (नाम)
की एकताको हम कहते हैं “आदिश्च भवति” ६ आदिवाला हो-
ता है, अर्थात् जिसकी आदि है, तिसकी आदिवाला कहते हैं । अरु
जैसे आदि । प्रथमता । वाला अकार नामवाला अक्षर है, ते-

सेही आदिवाला वैश्वानर है । एतदर्थ तुल्य होनेसे वैश्वानरको अकारपना है ॥ अब तिन । अकार अरु वैश्वानर । की एकताके ज्ञाताके अर्थ फल कहते हैं ॥ ह वै सर्वान् कामान् आप्नोति य एवं वेद ॥ ६ जो ऐसे जानता है सो निश्चय करके सर्व कामोंको पावता है ॥ अर्थात् जो वैश्वानर अरु अकारकी उक्तप्रकार एकताको जानता है सो निश्चय करके सर्व भोगोंको पावता है, अरु सो "आदिश्च भवति" ॥ ६ प्रथम होता है ॥ अर्थात् ज्येष्ठ श्रेष्ठों के मध्य प्रथम (मुख्य) होता है ६ ॥

॥ १० ॥ हे सौम्य ! [अथ द्वितीयपादं अरु द्वितीयमात्राकी एकता को कहते हैं] "स्वप्नस्थानस्तेजस उंकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षा दुभयत्वात्" ॥ ६ स्वप्नस्थानवाला तेजस उंकाररूप द्वितीया मात्रा है, उत्कर्षसे वा उभयरूप होनेसे ॥ अर्थात् जो । द्वितीय । स्वप्न स्थानवाला तेजस है सो उंकारकी उकार रूप द्वितीया मात्रा है । प्रश्न । किस तुल्यतासे दोनोंकी एकता है । उत्तर, उत्कर्षता से वा द्वितीयरूप है ताते । जैसे पाठके क्रमसे अकार, से उकार उत्कृष्ट है । अर्थात् प्रणवके उच्चार करने में अकार ह्रस्व है, उंकार दीर्घ है, ताते, अकारसे उंकार उत्कृष्ट है । तैसेही स्थूल उपाधि वाले विश्वसे सूक्ष्म उपाधिवाला तेजस उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) है । । अर्थात् स्थूल भूतरूप उपाधिवाले स्थूल देहकी अपेक्षा सूक्ष्म अपंचिकृत भूतारूप उपाधिवाला सूक्ष्मदेह अविनाशि है, एतदर्थ विश्वसे तेजस उत्कृष्ट है । तिस उत्कर्षसे उन । उंकार अरु तेजस की एकता है । अथवा जैसे अकार अरु मकारके मध्यविषे स्थित उकार है, तैसेही विश्व अरु प्राज्ञके मध्यविषे स्थित तेजस है, एतदर्थ उनकी उभयरूपताकी तुल्यतासे एकता है । अथ उनकी एकताके जाननेवाले विद्वान्को जो फल प्राप्त होता है सो कहते हैं । "उत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्या ब्रह्मा ब्रह्मकुले भवति य एवं वेद" ॥ ६ जो ऐसे जानता है सो ज्ञान सन्ततिको ब्रह्मप्राप्त है अरु समान होता है अरु इसके कुलविषे अब्रह्मवित

स्वप्नस्थानस्तैजसं उकारो । द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्द्वोत्कर्षति । ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्या ब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

होता नहीं ? अर्थात् जो उक्त प्रकार उकार अरु तैजस की एकता को जानता है । सो विद्वान् अपने पुत्र वा शिष्य वर्गों में ज्ञानसन्ततिको बद्धमान करता है, अतएव उसके कुल (पुत्रों वा शिष्यों) में अब्रह्मवेत्ता (ब्रह्मका न जाननेवाला) कोई होता नहीं । अरु पुनः वो समान होता है; अर्थात् मित्रके पक्षवत् शत्रुके पक्ष में भी द्वेष करता नहीं । उभयमें समभाव ही रखता है ॥ १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! [अब तृतीय पाद अरु तृतीय मात्रा की एकता को कहते हैं] । सुषुप्तिस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा, मितेरपीतेर्वा । सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ मकाररूप तृतीयामात्रा है, परिमाणसे वा एकतासे ? अर्थात् जो सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ है सो अकारकी मकाररूपा तृतीयामात्रा है । प्रश्न । किस तुल्यताकरके दोनों की एकता है । उत्तर । परिमाणसे वा एकता से । यहां इस प्रकार इन प्राज्ञ अरु मकारमात्रा दोनों की एकता है, प्रस्थ (धान्यके परिमाण, मापने के पात्र) से यव धान्यादिके अन्न के परिमाण (माप) वत्, जैसे लय अरु उत्पत्तिविषे प्रवेश अरु निकलनेसे । अर्थात् लयविषे प्रवेश अरु उत्पत्तिविषे निकलनेसे । प्राज्ञकरके विश्व अरु तैजस परिमाणकिये (मापे) वत् होते हैं । तैसेही अकार अरु उकार, यह दोनों अक्षर, अकारके उच्चारकी समासिविषे अरु पुनः उच्चारके प्रारंभविषे मकार में प्रवेश करके निकलनेहुये वत् होते हैं । अर्थात् अकारके उच्चारण करते प्रथम अकार निकलता है सो उकारके उच्चारणहुये उकारमें लयहुये वत् होता है अरु अन्त के मकारके उच्चारणहुये वो उकार मकारमें लयहुये वत् होता है । इस प्रकार अकार उकार दोनों अक्षर अकारके उच्चारकी समासिविषे मकारमें प्रवेशहुये वत् हो-

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकाररत्ने तीर्यमात्रा । मितेर
पीतेर्वा । मिनोतिहवाइदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं
वेद ११ ॥

तेहैं । अरु पुनः ॐकारके उच्चारके प्रारंभमें वे दोनों अक्षरें अ,
उ, मकारसे निकसेहुयेवत् होते हैं । ताते सो । अकार अरु
उकार । मकारकरके परिमाणकिये (मापे) वत् होतेहैं । एत-
दर्थ तिन । प्राज्ञ अरु मकार दोनोंकी तुल्यतासे एकताहै । अथवा
जैसे ॐकारके उच्चारकिये मकार रूपे अन्तिम अक्षरविषे अकार
अरु उकार यहदोनों एकरूप हुयेवत् होतेहैं, तैसे सुषुप्तिकालविषे
विश्व अरु तैजस प्राज्ञविषे एकहुयेवत् होतेहैं । एतदर्थ तुल्यहोनेसे
प्राज्ञ अरु मकारकी एकताहै । अब तिन । प्राज्ञ अरु मकार की
एकताके जाननेवाले विद्वान्को जो फल प्राप्त होताहै सो कहतेहैं ।
“मिनोतिहवाइदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद” । जो ऐसे
जानताहै सो सर्वको जानता जगत्का कारण होताहै । अर्थात् जो
उक्तप्रकार प्राज्ञ अरु मकारमात्राको एककरके जानताहै सो निरण
का ज्ञाताहोनेसे, सर्वको जानताहै । अर्थात् प्राज्ञ अरु मकारकी
एकताका जाननेवाला निश्चयकरके इसाकार्यकारणात्मक सम्-
स्तां जगत्को यथार्थ जानताहै, अरु आप प्राज्ञरूप मकारमात्राका
ज्ञाता (अभेदोपासक) होनेसे । जगत्के कारण भावको प्राप्त
होताहै ॥ यहाँ [एकताके ज्ञानविषे फलके भेदके कथनसे उपा-
सनाका भेद होगा, यह आशंकाकरके साधनोंविषे फल के
भेदकी श्रुतिके अर्थ वादपनेको अंगीकारकरके कहे हैं] अवा-
न्तर फलका जो कथनहै सो मुख्य साधनकी स्तुत्यर्थ है ११ ॥
हे सौम्य । यहाँ जो विश्व, तैजस, प्राज्ञ, इनपादोंकी क्रमशः
अकार, उकार, मकार, इनमात्राओं के साथ एकता कही है
तहाँ तिनके साथों जाग्रदादि स्थानोंकी भी एकता चिन्तनीय
है, इसका विचार इसत्रयके अन्तमें प्रकाशित करेंगे ॥

गौडपादीय श्लोकाः ॥

विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम् । मात्रा
सम्प्रतिपत्तौ स्यादादिसामान्यमेव च १९ ॥

तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम् । मात्रा
सम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथा विधम् २० ॥

गौडपादीय कारिका ॥

१६ ॥ हे सौम्य ! [पादोंका अरु मात्राओंका जो सन्निमित्तके एकत्व
चार मन्त्रों करके श्रुतिने कहा, तिसविषयक पूर्ववत्-श्रुत्यर्थके
वर्णनरूप गौडपादाचार्यकृतपट् श्लोकनको प्रकट करते हैं]
“ गौडपादीय श्लोकाः ” अत्रैते श्लोका भवन्ति ॥ “ यहां यह
‘ गौडपादाचार्यकृत श्लोक, (मन्त्र) होते हैं ? ” विश्वस्यात्वविव-
क्षायामादिसामान्यमुत्कटम् ” विश्वके कहनेकी इच्छाकेहुयेआदि
पनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखते हैं ? अर्थात् विश्वके अकारमात्रा रूप
पनेके कहनेकी इच्छाकेहुये, अर्थात् विश्वका अकारमात्रारूप
पना जब कथनकरनेको इच्छितहोय, तब उक्त न्यायसे आदि
पनेकी तुल्यता श्रेष्ठ देखते हैं । अरु “ मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादा-
दिसामान्यमेव च ” मात्राके निश्चयविषे व्याप्तिकी तुल्यताही
श्रेष्ठ है ? अर्थात् मात्राकी एकताविषे कहिये विश्वका अकारमात्रा-
पना, वा मात्राकी विश्वरूपता, जब निश्चयकरतेहैं तब । उस
एकताके निश्चयविषे । व्याप्तिकी तुल्यताही श्रेष्ठ है १.६ ॥

२० ॥ हे सौम्य ! “ तैजसस्योत्वविज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम् ”
“ तैजसके ज्ञानविषे उत्कर्षरूपता स्पष्ट दीखतीहै ? अर्थात् तैजस
के उकारमात्रापनेके ज्ञानविषे, अर्थात् तैजसके उकाररूपमात्रा
पनेके कहनेकी इच्छाके होनेसे । तिसकथनार्थ । उत्कर्षरूप
तुल्यता स्पष्ट देखतेहैं । अरु “ मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथा
विधम् ” मात्राके निश्चयविषे तिसही प्रकारका उभयपना

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् । मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेव च २१ ॥

त्रिषु धामसु यत्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चितः । सम्पूज्यः सर्वभूतानां वन्द्यश्चैष महामुनिः २२ ॥

कहिये 'द्वितीयपना, स्पष्टही है । और सर्व पूर्व श्रुतिके दशवेमंत्र के भाष्य में कहे प्रमाण जानलेना २० ॥

॥ २१ ॥ हे सौम्य ! "मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम्" । प्राज्ञके मकार भावविषे मानकी समता श्रेष्ठ है; अर्थात् प्राज्ञके मकार मात्रारूप भाव (होने) विषे मान (परिमाण वा माप) की तुल्यताही श्रेष्ठ है । अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौ तुल्यसामान्यमेव च" । मात्राके निश्चयविषे तो लयकी तुल्यताही श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ इसका विशेषार्थ मूल श्रुतिके एकादशवें मन्त्रके भाष्यमें कहे प्रमाण जानना ॥

॥ २२ ॥ हे सौम्य ! "त्रिषु धामसु यत्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चितः" । तीनधामोंविषे जो तुल्यसमताको निश्चयको पायासता जो जानता है; अर्थात् उक्तप्रकारके जाग्रत, स्वप्न, अरु सुषुप्तिरूप तीनों स्थानोंविषे जो तुल्य समता कही है, तिसको 'यह समता इस प्रकारही है, इसमें संशय नहीं' । इसप्रकार निश्चयको प्राप्तहुआ जो जानता है सो "सम्पूज्यः सर्वभूतानां वन्द्यश्चैष महामुनिः" । 'सर्व भूतोंकरके सम्यक्प्रकार पूजनेयोग्य, वन्दनाकरनेयोग्य महामुनि होता है; अर्थात् जो उक्तप्रकार अकारादि तीनमात्रा अरु विश्वादि तीनपाद; इनकी अमेदताको निश्चय पूर्वक चयार्थ जानता है, सो विद्वान् इस लोकमें सर्व प्राणियों करके पूजने (मान्यदेने) अरु वन्दना (तमस्कारादि) करनेयोग्य महामुनि (आत्मवेत्ता) होवे है ॥ २२ ॥

॥ २३ ॥ हे सौम्य ! अब [पूर्वोक्तपाद अरु मात्राओंकी समताके ज्ञानबाले ध्याननिष्ठके फलको कहते हैं] "अकारो नयते विश्वमुका-

अकारो नयते विश्वमुकारश्चापितैजसम् । मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः २३ ॥

रश्चापितैजसम् । १ अकार विश्वको प्राप्त करता है, अरु उकार तैजसको प्राप्त करता है, अर्थात्, उक्तप्रकारकी तुल्यतासे आत्मा के । विश्वादि । पादोंकी, । अकारादि । पादोंके साथ एकताको करके । अर्थात् अकार के वाचकपने अरु लक्ष्य वाच्यकी एकता को निश्चय करके । पुनः उक्तप्रकारके अकार को सम्यक्प्रकार जानके जो ध्यावता । ध्यानकरता । है तिसको, अकार जो है सो विश्वके अर्थ प्राप्त करता है । अर्थात् अकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले अकार को जाननेवाला पुरुष वैश्वानरके भावको प्राप्त होता है । अरु तैसेही उकार भी तैजसके अर्थ प्राप्त करता है । अर्थात् उकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले अकारका जाननेवाला विद्वान् हिरण्यगर्भके पदको प्राप्त होता है । अरु " मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः " २ पुनः मकार प्राज्ञके अर्थ प्राप्त करता है, अमात्रविषे गति विद्यमान नहीं, अर्थात् उकार की गतिके पश्चात् मकाररूप मात्राके आलम्बन (प्रधानता) वाले अकार का जाननेवाला विद्वान् अव्याकृत भावको प्राप्त होता है । अरु [अब यहाँ तो पादोंका अरु मात्राओं का विभाग है नहीं । अरु तिस अकाररूप तुरीय आत्मा विषे स्थितहुये पुरुषको, प्राप्त होनेवाला, अरु प्राप्त होने योग्य, अरु प्राप्ति इस तीनोंरूप त्रिपुटीका विभाग है नहीं । इसप्रकार कहते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि 'स्थूलपंचजाग्रदवस्था, अरु विश्व अभिमानी यह तीन अकारमात्रा रूप हैं । अरु सूक्ष्मपंच, स्वप्नावस्था, तैजस अभिमानी, यह तीन उकार मात्रारूप हैं । अरु स्थूल सूक्ष्म उभय प्रपंचों का कारण, सुषुप्ति अवस्था, प्राज्ञ अभिमानी, यह तीन मकार मात्रारूप हैं । अरु तिनमात्राओं में पूर्व पूर्व मात्रा उत्तर उत्तर मात्राके भावको प्राप्त होती है । अर्थात् स्थूल अकार

उपनिषद् ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवोऽद्वै-
त एवमोकार आत्मेव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं
वेदय एवंवेद १२ ॥

इति माण्डूक्योपनिषन्मूलमन्त्राः समाप्तिङ्गताः ॥

ॐ तत्सत् ॥

मात्रा सूक्ष्म मकार मात्राके भावको, क्योंकि स्थूलका कारण
सूक्ष्म है। अरु सूक्ष्म उकारमात्रा सर्वके कारण मकार मात्राके
भावको, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म सर्वकार्योंको अपने कारण भावकी
प्राप्ति होती है, इसप्रकार पूर्व पूर्वमात्रा उत्तरोत्तर मात्राके भाव-
को प्राप्त होती हैं। सो इसप्रकार सर्व ॐकार मात्रा है, इस रीति
से ॐकारका ध्यान करके स्थितहुये, अरु जो एतावन्त काल
पर्यन्त ॐकार रूपसे ज्ञातकरी वस्तु, शुद्ध ब्रह्मही है। इसप्रकार
आचार्यके उपदेश से उत्पन्न हुये ज्ञान करके मकारपनेसे ग्रह-
ण क्रिये, जो पूर्वोक्त सर्व विभागोंका निमित्त अज्ञान तिसके क्षय
होनेसे शुद्धब्रह्म विषे स्थितहुये पुरुषकी कहीं भी गति कहिये ग-
मन सम्भवे नहीं, क्योंकि देशकालादिकों के परिच्छेद के अभाव
से व्यापकता प्राप्त होनेसे] मकारके क्षयहुये बीजभावके अभाव
से अमात्ररूप ॐकार विषे । प्राप्तहुये को । कहीं भी गति । लो-
कान्तर को गमन । नहीं ॥ क्योंकि “ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति” ब्रह्मका
जाननेवाला ‘व्यापक’ ब्रह्मही होता है २३ ॥

अथ उपनिषदर्थ ॥

-१२ ॥ हेसौम्य ! [ॐ कारका स्फुरणरूप जो प्रत्यक् चैतन्य
है । अर्थात् ॐकारके स्फुरणसेलक्षित लक्ष्यरूप प्रत्यक् चैतन्य है।
सो तिनमात्रावाले अध्यस्त (कल्पित) ॐकारके साथ तादात्म्य-
तासे ॐकार । नामसे कहाजाता है । तिसकी “ अमात्रः ” अ-
मात्रह- इत्यादिरूप यह धारहवीं संख्यावाली श्रुतिके मन्त्र

करके पञ्चदशके साथ एकता, कहनेको इच्छित है, तिसको प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] “अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचो पशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव ।” (अमात्र है, चतुर्थ है, अव्यवहार है, प्रपंचके उपशमवाला है, शिव है, अद्वैत है, ऐसे, अंकार आत्मा ही है, अर्थात् नहीं है मात्रा जिसकी ऐसा जो । लक्ष्य रूप । अंकार सो अमात्र है, अरु चतुर्थ कहिये तुरीय रूपहुआ केवल आत्मा ही है, अरु वाचक अरु वाच्यरूप जो वाणी अरु मन तिनको ‘मूलाज्ञानके क्षयहुये, क्षीण होनेसे व्यवहार करने को अयोग्यहुआ । आत्मा अव्यवहार्य है । अरु प्रपंचके उपशमवाला होनेसे । अर्थात् सकारण प्रपंचके उपशमहुये आत्मा प्रकट भान होता है ताते प्रपंचके उपशमवाला है, वा अद्वैत आत्माके सम्यक् ज्ञान होनेसे प्रपंच उपशम भावको प्राप्त होता है ताते प्रपंचके उपशमवाला है । उसको प्रपंचोपशम, इस विशेषणसे कहते हैं । अरु शिव (कल्याणस्वरूप है) अरु अद्वैत है । अर्थात् जिस एक संख्याकी प्रतियोगी दो संख्या हैं अरु जो दो संख्याकी प्रतियोगी एक संख्या है तिनसे रहित, अर्थात् एक अरु दो, यह जो संख्या है सो सापेक्षिक अरु सम विषम भाववाली है, अरु आत्मा है सो सापेक्षता अरु समविषम भावसे रहित होनेसे सर्व संख्यातीत अद्वैत है, वा संख्याबद्ध परिच्छिन्नतासे रहित होने करके सर्व संख्यातीत अद्वैत है । ऐसे उक्त प्रकारके । अंकारके लक्ष्य आत्माके । ज्ञाता पुरुष करके उच्चारण किया हुआ अंकार वाचक वाच्यकी अभेदता से । तीममात्रावाला अरु नीनपादवाला । एक । आत्मा ही है । हे सोम्य ! यहां एक यह भी विचार है कि जैसे रज्जु विषे अध्यस्त जे सर्पवत् सर्परूप अरु तिसका नाम सर्प, यह दोनों नाम नामीकी रज्जुके अज्ञानमें एकता है, अर्थात् उस अध्यस्त सर्पका नामरूप दोनों रज्जुके अज्ञानमें कल्पित होने करके उस अज्ञानमें दोनों की एकता है । अरु रज्जुके ज्ञानहुये उन दोनों को कल्पित होनेसे उनकी असत्यतामें एकता है । अरु रज्जुके

ज्ञानहुये उस कल्पित सर्प के नामरूप का परिणाम सत्य रज्जुरूप है, क्योंकि उसकी रज्जु से पृथक् सत्ता का अभाव है ताते। अरु जो जिसकी अन्तः स्थिति है सोई उसकी आद्यस्थिति है, अरु जो आद्यन्तः स्थिति है सोई उसकी वर्तमान स्थिति है। तथाच “आद्या-
वन्ते च अन्नास्ति वर्तमानेऽपि तन् तथा”। “अव्यक्तादीनि भूतानि”
इत्यादि प्रमाणसे । अर्थात् रज्जु विषे भासमान जो सर्प सो
भ्रान्तिकालसे पूर्व द्वैतके अभावसे रज्जुरूप है अरु भ्रान्ति
के निवृत्तकाल में भी वो अपनी पृथक् सत्ताके अभावसे रज्जु
रूप है अरु भ्रान्तिकाल में जो अपने नामरूपसहित जो इतरवत्
भासता है सोई भ्रान्ति है नतु सर्प, दंड, जलधारा, भूदरार, इत्यादि
नामरूप से एक रज्जु ही सुशोभित है, अरु तिस विषे जो सर्पादि
कों का कथन व्यापार है, सो “वाचारम्भणं विकारो नामधेयं”
इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे वाचारंभणमात्र ही है। हे सौम्य! इस दृष्टांत
के विचारप्रमाण ही दृष्टान्त भूत अमात्रिक निर्विशेष तुरीय रूप
आत्माविषे भी विद्वादि तीनों पाद अरु अकारादि तीनों मात्राका
विचार जानना। अरु “संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद”
६ जो ऐसे जानता है सो अपने आत्मरूपसे अपने परमार्थरूप आत्मा
विषे सम्यक् प्रकार प्रवेश करता है, यहाँ जो “य एवं वेद, दोधार कहा है
सो उपनिषद् की परिसमाप्तिके अर्थ है, अर्थात् जो उक्त प्रकार अमा-
त्रिक चतुर्थ, तुरीय आत्मा को जानता है सो अपने ही आत्मा
चिदाभासरूप से अपने परमार्थरूप प्रत्यक् चैतन्यसाक्षी आ-
त्माविषे सम्यक् प्रकार प्रवेश को पावता है। अर्थात् सुषुप्ति नामवाले
तृतीय स्थानरूप बीजभाव को। जो कमशः वा बिना ही कमशः जाग्रत
स्वप्न स्थानद्वयरूप अंकुरोत्पत्तिका कारण स्थानरूप बीज को, चतुर्थ
अमात्रिक तुरीय आत्मा के सम्यक् ज्ञानरूप अग्नि से दग्ध कर-
के परमार्थदर्शी आत्मवेत्ताओं के आत्माविषे प्रवेश को पाय पुनः
जन्म को पावता नहीं। अर्थात् जैसे अंकुरद्वय के उत्पत्तिके स्थान
रूप कारण बीज के दग्ध हुये बीजान्तर जो एक महासूक्ष्म सत्ता है

सो अंकुर भावपूर्वक वृक्षभावको प्राप्त होती नहीं, तैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वयरूप अंकुर के उत्पत्तिका कारण स्थान अविद्यात्मक सुषुप्तिरूप बीजके, सम्यक् ज्ञानाग्नि करके दग्धहुये 'बीजान्तर सूक्ष्म सत्तावत्, सुषुप्तिरूप बीजान्तरतद्विशिष्ट जो चिदाभास जीवसत्ता है सो उक्त अग्निद्वारा उक्तबीजके सम्यक्प्रकार दग्धहुये पुनः स्थूल सूक्ष्म शरीरद्वयात्मक अंकुरभाव पूर्वक संसाररूप वृक्षभावको प्राप्त होता नहीं। क्योंकि तुरीयाको । मूलाज्ञानके दग्धहुये । अवीजरूपता होती है ताते । जैसे रज्जु अरु सर्पके विवेकके हुये रज्जुविषे प्रवेशको पाया जो सर्प, सो पुनः तिन । रज्जुसर्प । के विवेकी पुरुषको भ्रान्ति ज्ञानके संस्कार से पूर्ववत् । उदया होता नहीं । क्योंकि उसविवेकी पुरुषको 'भ्रान्तिज्ञानका कारण अज्ञानरूपबीज । जोकि सर्परूप अंकुर' अरु तज्जनित भयादिरूप वृक्षोत्पत्तिका निमित्त है, सम्यक् विवेक रूप अग्निसे दग्धहोता है ताते । तैसे यहां भी जानना । अरु साधक भावको प्राप्तहुये, सत्मार्ग में वर्तनेवाले, अरु मात्रा अरु पादोंकी सम्यक्प्रकार निश्चित एकताके जाननेवाले, ऐसे जे मन्दमध्यम बुद्धिवाले संन्यासी हैं, तिनको तो । उक्तप्रकार मात्रा अरु पादों की अभेदतासे । यथार्थ उपासना किया उंकार " एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् , एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोको महीयते " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे । ब्रह्मकी प्राप्ति (क्रममुक्ति) के अर्थ । अर्थात् केवल प्रणवोपासना का मध्यमाधिकारी संन्यासीको उक्तप्रकार यथार्थ त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना से ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप आवान्तर फलहोय वहां ब्रह्माद्वारा अमात्रिक तुरीय आत्माका सम्यग्ज्ञान होनेसे केवल्य मोक्षकी प्राप्ति है । परम आलम्बन है । तैसे अग्रिम कहेंगे " आश्रमास्त्रिविधा हीना इत्यादि " १२ ॥

इति श्रीमांडूक्योपनिषन्मूलमन्त्रभाषाभाष्यसमाप्तम् ॥

अंतस्तद्धरिः ॐ ॥

गौडपादीयश्लोकाः ॥

ॐकारं पादशो विद्यात्पादामात्रानसंशयः । ॐकारं
पादशो ज्ञात्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् २४ ॥

युञ्जीत प्रणवे चेत् प्रणवो ब्रह्मनिर्भयम् । प्रणवे नि-
त्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् २५ ॥

२४ ॥ हे सौम्य! “पूर्ववदत्रैते श्लोका भवन्ति” पूर्ववत्पर्याये [गौ-
डपादाचार्यकृत] श्लोक होते हैं [जैसे पूर्व गौडपादाचार्यने श्रु-
त्यर्थके प्रकाशक श्लोक रचे हैं, तैसे पश्चात् भी उक्त आचार्यकृत
श्लोक श्रुत्यर्थ विषे संभवे हैं, यह कहते हैं] “ॐकारं पादशो वि-
द्यात्पादामात्रानसंशयः” ६ पादही मात्रा हैं, अरु मात्राही पाद
हैं, यामें संशय नहीं, ॐकारको पादोंसे जानना, अर्थात् उक्त
प्रकारकी तुल्यतासे । विश्वादि । पादही मात्रा हैं, अरु । अकारा-
दि मात्राही पाद हैं, इस विषय में कुछ भी संशय नहीं, अरु ॐ-
कार (आत्मा) पादोंकरकेही जानना । अरु “ॐकारं पादशो
ज्ञात्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्” ६ ॐकारको जानके कुछ भी चि-
न्तन करना नहीं, अर्थात् ॐकार (तुरीय) को पादोंसे (वि-
श्वादि पादोंकी विशेषतासे) जानके (निर्विशेष आत्माको अनुभव
करके) दृष्ट अर्थरूप (इसलोकके विषय) अरु अदृष्ट अर्थरूप
(परलोकके विषय) प्रयोजन को चिन्तन करना नहीं क्योंकि
। सर्वरूपसे एक ॐकार आत्माही है इस प्रकार का जाननेवाला ।
कृतार्थ, (ज्ञातज्ञेय) होता है ताते २४ ॥

गौडपादीय कारिका ॥

२५ ॥ हे सौम्य! [ॐकारके ध्यानविषे कुशलपुरुषको सर्वद्वैतके
अपवाद करनेवाले ॐकारके सम्यक् ज्ञानसेही कृतार्थता होती
है, इस प्रकार कहा । अब तिस ॐकारके ज्ञानसे रहित अरु परके
उपदेशमात्रको आश्रय करनेवाले पुरुषके अर्थ ध्यानकी वर्तव्य-
ता कहते हैं] “युञ्जीत प्रणवे चेत् प्रणवो ब्रह्मनिर्भयम्” ६ ॐ-

न्तर है । अरु इससे बाह्य अन्य वस्तु नहीं अति एव अवाह्य है । अरु इसको कार्यता नहीं ताते अन पर है । अरु इसका नाश नहीं ताते अव्यय है “सबाह्याभ्यन्तरोद्यजः” “सैन्धववनवदितिश्रुतेः” इत्यर्थः २६ ॥

२७ ॥ हे सौम्य ! “सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैव च” । सर्वका आदि मध्य पुनः तैसेही अन्त अंकार है ; अर्थात् जैसे माया का । किसी शिल्पी आदि मायावी रचित । हस्ति, रज्जु का सर्प, मृग, तृष्णा का जल, अरु स्वप्न के पदार्थों आदि का । जो केवल भ्रांति मात्र अध्यस्त है । आदि मध्य अरु अन्त, मायावी रज्जु ऊपर आदिक अधिष्ठान है । अर्थात् जो वस्तु अध्यस्त (कल्पित) भ्रांति मात्र होती है, तिसका आदि, अन्त, मध्य, अधिष्ठान रूप ही होता है । तैसेही मिथ्या (भ्रांति मात्र) उत्पन्न हुये आकाश आदिक सर्व प्रपञ्चका आदि, मध्य, अरु तैसेही अन्त, एक अंकार । तुरीय आत्मा ही है, अर्थात् जैसे आकाश में जो नीलिमा की भ्रांति । कि आकाश से इतर नीलिमा कुछ वस्तु है, तिस भ्रांति काल के पूर्व जो नीलिमा आकाश रूप है, ताते उस कल्पित, नीलिमा की आदि आकाश है, अरु आकाश अरु तिस विषे अध्यस्त नीलिमा तिनका जब यथार्थ विवेक होता है तब उस अध्यस्त नीलिमा का परिणाम आकाश रूप होने से उस नीलिमा का अन्त भी आकाश रूप है, अरु जब जो नीलिमा अपने आदि अन्त में आकाश रूप है तब अपनी पृथक् सत्ता के अभाव से अपने भ्रांति रूप से वर्तमान काल में भी आकाश रूप है ताते उसका मध्य भी आकाश रूप है, इस प्रकार आकाश में अध्यस्त नीलिमा तीनों काल अध्यस्तरूप है, तैसेही आकाश आदि सर्व प्रपञ्च एक चैतन्य आत्मा विषे अध्यस्त होने से तीनों काल सोई रूप है । अरु “एवा हि प्रणवज्ञात्वा व्यश्रुते तदनन्तरम्” । ऐसेही अंकार को जानके तिसके अनन्तर प्राप्त होता है ; अर्थात् ऐसेही मायावी रज्जु आदिक स्थानी अंकार (तुरीय आत्मा) को जानके तिसके अनन्तर (तिसही

प्रणवोहीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम् । सर्वं
व्यापितमोकारंमत्वाधीरोनशोचति २८ ॥
क्षणसे) तिस परमार्थ वस्तु के आत्मभावको प्राप्त होताहै “ब्रह्म
विद्वद्भैवभवति” २७ ॥

२८ हे सौम्य ! “प्रणवंहीश्वरंविद्यात्सर्वस्यहृदिसंस्थितम्,
सर्वव्यापिनं” । सर्वकेहृदयविषे स्थितईश्वररूप ओंकारको सर्व-
व्यापी जानना; अर्थात् सर्व प्राणियों के समूह के स्मरणरूप वृत्ति
के आश्रय हृदय विषे स्थित ईश्वररूप ओंकारको ‘आकाशवत्
सर्वव्यापी जानना । अरु “ओंकारंमत्वाधीरोनशोचति” । धीर
पुरुष ओंकारको मानके शोचता नहीं; अर्थात् । सर्व प्राणियों के
हृदय विषे आकाशवत् महासूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी जो आत्मा
तिसको । बुद्धिमान् पुरुष असंसारी । जाग्रदादि स्थान अरु
तिनके धर्मादिकोंसे असंग अलिप्त, सदाशुद्ध बुद्धि मुक्त स्वभाव
मानके शोच करता नहीं । क्योंकि उक्तप्रकारके आत्मा विषयक
जो अज्ञान सोई अपने विषे जन्ममरणादि क्लेशसे जन्यशोक का
निमित्त तिसका आत्माके सम्यक् ज्ञान से अभाव होताहै ताते ।
“तरतिशोकमात्मविदिति” । आत्मवेत्ता शोककोतरता है २८ ॥

२९ हे सौम्य ! [अवतुरीयभाव को प्राप्तहुये ओंकार को जो
सम्यक्प्रकार जानताहै तिसकी प्रशंसाकरतेहैं] “अमात्रोऽनन्त
मात्रश्चद्वैतस्योपशमःशिवः” । अमात्रहै, अनन्तमात्रहै, उपशमरूप
है, शिवरूपहै, अर्थात् । ओंकारकालक्ष्य । अमात्र(तुरीयपद, है, अरु
जिसकरके ओंकारका परिमाण कियाजाय ऐसा जो परिच्छेद,
सो कहिये मात्रा । सो उक्त लक्षणवाली मात्रा हैं अनन्त जिस
की ऐसा जो ओंकार सो अनन्तमात्र है । अर्थात् इस आत्माका
एतनापना । यह आत्मा एतना है, इसप्रकारका एतनापना । प-
रिच्छेद करनेको शक्य नहीं, अरु द्वैतका उपशमरूप है । अर्थात्
सर्व द्वैतका उपशमात्मरूप है । अरु ऐसा होनेसेही शिवरूपहै ।

अमात्रोऽनन्तमात्रश्चद्वैतस्योपशमःशिवः । ॐ का
रोविदितोयेनसमुनिर्नेतरोजनः २६ ॥

इति मांडूक्योपनिषदर्थविष्करणपरायांगौडपादीयकारिकायां
प्रथमभागप्रकरणपूर्णम् ॐ तत्सद्गुरुः ॐ ॥

इसप्रकार व्याख्यान किया " ॐकारोविदितोयेनसमुनिर्नेतरोज
नः " ॥ ६ ॐकार जिसकरके विदित हुआहै सो मुनिहै इतर नहीं है
अर्थात् ॐकार जिसको सम्यक्प्रकार ज्ञातहुआ है सोई परमार्थ
तत्त्वका मनन करता मुनि है, इससे इतरजन मुनि नहीं २६ ॥

इति श्रीमांडूक्योपनिषद्मूलसहितगौडपादीयकारिकाप्रथमा
ऽऽगमप्रकरणभाषाभाष्यपूर्णम् ॐ तत्सद्गुरुः ॐ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायांवैतथ्याख्यद्वितीय
प्रकरणभाषाभाष्यं प्रारम्भ्यते ॥ २ ॥

१ हे सौम्य ! [प्रथम प्रकरणविषे आगमकहिये श्रुति तिसकी
मुख्यता करके अद्वैतको प्रतिपादन करनेवाले आचार्य ने तिस
(अद्वैत) के विरोधी द्वैतका मिथ्यापना । श्रुतिके । अर्थ से कहा
अब तिस । अद्वैतके विरोधी । द्वैतका मिथ्यापना 'यद्यपि सर्व में
प्रधानजे श्रुति तिसके प्रमाणसे कहाहै, तथापि युक्तिकी मुख्यता
से भी । द्वैतका मिथ्यापना । जानने को शक्य है । इसप्रकार
देखावने के अर्थ । अर्थात् विचारवानों के मध्य प्रकट करणार्थ ।
द्वितीय प्रकरणको प्रकट करतेहुये, आदि विषे प्रपंचके मिथ्यापने
में स्वप्नके दृष्टान्तकी सिद्ध्यर्थ तिस स्वप्नके मिथ्यापनेविषे । अर्थात्
जिसवस्तुको दृष्टान्तप्रमाणसे, सत्यता असत्य, सिद्ध करनी है,
तहां प्रथम उस वस्तुके दृष्टान्तकी, सत्यता वा असत्यताका सिद्ध
करना अवश्य है एतदर्थ सर्व प्रपंचके मिथ्यापने के सिद्ध
करने में दृष्टान्तप्रमाण जो स्वप्न तिसकी असत्यता की सिद्ध-

ॐ अथ वैतथ्याख्यं द्वितीयं प्रकरणम् ॥

ॐ वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहुर्मनीषिणः । अ-
न्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना १ ॥

र्थ । युक्ति सहित वृद्धपुरुषोंकी संमतिको कहते हैं] “ ज्ञाते द्वैतं न विद्यत ” इस वाक्यवाले । पच्चीसवें श्लोक विषे “ एकमेवाद्वितीयम् ” । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे, जो पूर्वद्वैतका मिथ्यापना कहा, सो आगममात्र । अर्थात् श्रुतिकी प्रधान प्रामाण्यता से व्याप्त । है, युक्तिसे सिद्ध नहीं, परन्तु तिस शास्त्रकरके ज्ञात हुये अर्थ । द्वैतके मिथ्यापने । विषे युक्तिकी प्राधान्यतासे भी द्वैतका मिथ्यापना जानने को योग्य है । क्योंकि प्रमाणों की आधिक्यतासे निश्चय हुई वस्तुविषे संशय रहे नहीं ताते । द्वितीयप्रकरणका आरंभ करते हैं “ वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहुर्मनीषिणः ” । बुद्धिमान् स्वप्नवत् सर्व भावपदार्थों के असत्यपने को कहते हैं, अर्थात् । प्रत्यक्षादि । प्रमाणोंके ज्ञातकरके कुशल जे । श्रोत्रित् अरु ग्रहनिष्ठत्व उग उभयलक्षणों करके युक्त । बुद्धिमान् पुरुष हैं सो । स्वप्न विषे उपलभ्यमान (अनुभव किये जे बाह्य के घटादि सर्व पदार्थ, अरु अन्तर । अन्तःकरण के सुखादिक । सर्व पदार्थोंके असत्यपने को कहते हैं । अरु तिनके असत्यपने विषे हेतुको कहते हैं “ अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना ” । सर्व पदार्थोंको ‘ शरीरके, मध्यरूपस्थान वाले होने से, अर्थात् जिसकरके स्वप्न विषे हस्ति पर्वतादि सर्व पदार्थ । कि जिनका शरीरके भीतर समाना किसीप्रकार भी संभवे, नहीं सो । शरीरके भीतरही प्रतीत होते हैं, । ‘ उस अवस्थामें, शरीरसे बाहर नहीं, एतदर्थ सो सर्व (स्वप्नके पदार्थ) मिथ्या होनेको ही योग्य हैं । शंका । ननु, अन्तर्यामिणिकों के भीतर प्रतीयमान घटादिकों के हुये, यह उक्त हेतु व्यभिचारी होवेगा, । यह आशंकाकरके । समाधान । कहते हैं । शरीरान्तर संकुचित स्थानवाले होनेरूप

अदीर्घत्वाच्चकालस्यगत्वादेशान्नपश्यति । प्रति
बुद्धश्चैसर्वस्तस्मिन्देसेनविद्यते २ ॥

हेतुसे । अरु जो देहान्तर आवृत नाड़ियाँ हैं तिनविषे पर्वत हस्ति
आदिकों का सद्भाव नहीं अरु जब देह विषेही पर्वतादिक नहीं
तब देहान्तर्गत जो “ ता वाअस्यैताहितानाम नाड्यो यथाक्लेशः
सहस्रधा भिन्नस्तावतां ऽणिम्नातिष्ठन्ति, इत्यादि ” इत्यादि श्रु-
तियोंके प्रमाणसे ‘ खड़ेकेशके सहस्रवें भागप्रमाण अतिसूक्ष्म
नाड़ियाँ । जोकि स्वप्नरूप भ्रान्ति दर्शनका स्थानहै । हैं तिनविषे
पर्वत हस्ति आदि कहांसे होवेंगे ‘ किन्तुकहींसेभी कदापिनहीं ।
अतएव स्वप्नके पदार्थ । अपने होनेयोग्य । देश (स्थान) से
रहित होनेसे । अर्थात् जिनमहा सूक्ष्मनाड़ियों में स्वप्न होताहै
तिनमें बाह्यके परमाणुका भी प्रवेशवनेनहीं तब बाह्यके पर्वत
सागर वहां कैसे समायेंगे किन्तु कदापि नहीं, ताते वहां स्वप्नके
पदार्थोंके होनेयोग्य स्थानके अभावसे । रज्जु सर्पादिकोंवत् असं-
त्यही होनेको योग्यहैं १ ॥

२ हे सौम्य ! । शंका । ननु, स्वप्नविषे देखनेयोग्यपदार्थोंका शरीर
के भीतर आवृत कहिये संकुचित ‘ तंग, स्थानहै यह कथन अ-
सिद्धहै, क्योंकि पूर्वके देशोंमें सोयाहुआ पुरुष उत्तरके देशोंविषे
स्वप्नोंको देखेहुयेवत् देखता है । यह आशंका करके ‘ समाधान;
कहतेहैं, । पूर्वादिकके देशमें सोयाहुआपुरुष । शरीरसेबाह्य । उ-
त्तरादिकोंके । अन्यदेशोंमेंजायके स्वप्नोंको देखता नहीं, किन्तु
शरीरके भीतरही । अर्थात् पूर्वादिशाके किसी एक देशविषे सोया
पुरुष जो उत्तरदिशाके किसी एकदेश विशेष सहित वहांके पदार्थों
को स्वप्नविषे देखताहै सो शरीरसे बाह्यके उपदेशमेंजायके स्वप्न
को नहीं देखता, किन्तु ‘ जैसे स्वप्नमें शरीरान्तर जिनवस्तुओं के
स्थानके अभावसे भी ‘ समुद्र, पर्वत, हस्ति, आदिक पदार्थों को
भ्रान्तिकरके वा जाग्रतके अध्यास संस्कार करके देखताहै तैसेही
उसदेशको अरु पदार्थोंको देहान्तरही देखताहै । अरु जिसकरके

सोयाहुआ पुरुष, तत्कालही देहके (जहां सोयाहै) देशसे सौ योजनके अन्तरायवाले अरु मासमात्रके कालकरके प्राप्तहोने योग्य देशोंविषे स्वप्नोंको देखेहुयेवत् देखताहै । अरु उस देशकी प्राप्ति अरु वहांसे पुनः आगमनके योग्य दीर्घकालहै नहीं । अर्थात् जिसकरके सोयाहुआ पुरुष जाग्रत्की निवृत्तिकेतत्कालही स्वप्न को देखता है तहां जिसदेशमें सोयाहै तहांसे शतावधि योजनोंके अन्तराय (दूर) वाले, अरु एकमासदिवसकी अवधिसेभी अधिक दिवसोंके कालसे प्राप्तहोनेवाले, देशोंको अरु वहां के पदार्थोंको जाग्रत्मेंदेखेहुयेवत् देखता है । परन्तु उस स्वप्नमें जिस दूरस्थ देशको देखताहै सो जहां सोयाहै तहांसे अतिदूरहै, अरु तिसदेशकी प्राप्ति अरु वहांसे आगमन । अर्थात् स्वप्नमें जिसदूरदेशको देखता है तहां जाने के अरु वहांसे स्वदेशमें आवने । योग्य जो आपेक्षव दीर्घकाल सोहै नहीं, क्योंकि जाग्रत्की निवृत्तिके क्षणही स्वप्नको देखताहै अरु स्वप्नकी निवृत्तिके क्षणही जिसदेशमें सोयाहै तिसही स्थानमें जाग्रत् होताहै, । एतदर्थ, “अदीर्घत्वाच्चकालस्य गत्वा देशान्न पश्यति” । ६ कालकी अदीर्घतासे देशोंविषे जायके देखता नहीं ; अर्थात् । वास्तवमें दूर देशको जाय अरु वहांसे पुनः स्वदेश में आवे एतना । दीर्घकाल न होनेसे स्वप्नको देखनेवाला पुरुष अपने सोवने से अन्य देशमें जायके स्वप्नको देखता नहीं । किम्वा “ प्रतिबुद्धश्चवेत्सर्वस्तास्मिन्देशेनविद्यते ” । ६ जाग्रत् को प्राप्तहुये को निश्चय करके तिस देश में कुछ भी विद्यमान नहीं ; अर्थात् स्वप्नका द्रष्टापुरुष । जिस देशको स्वप्नमें देखता है । तिस स्वप्न दर्शनके देश विषे निश्चय करके प्रबोध (जाग्रत्) को पायाहुआ है नहीं । अर्थात् जो कदापि स्वप्नका द्रष्टापुरुष अन्यदेश विषे जायके स्वप्नको देखता होय तो जिस देशविषे जायके स्वप्न देखे तिसही देश विषे प्रबोध (जाग्रत्) को प्राप्त हुआ चाहिये, परन्तु सो होता नहीं, । किन्तु जिस देश विषे सोवता है तहां ही जागता है । किम्वा रात्रि विषे [गरी

के अन्तरही स्वप्नका देखना होता है, इस प्रकार सिद्धहुये । दूरदेश के गमनागमन । योग्य काल के अभाव से स्वप्न का मिथ्यापना है, इस प्रकार कथन किये अर्थका वर्णन करते हैं, यहां यह अर्थ है कि, यद्यपि । वो स्वप्नका द्रष्टा पुरुष । रात्रिविषे सोवता है, तथापि दिवस में । सूर्यादि पदार्थ कि जिनका रात्रि में सर्वथा असंभव है । देखे हुयेवत् देखता है । अरु सोयाहुआ चक्षुरादि इन्द्रियों के संकोच हुये भी रूपादि विषयों को देखता है, अरु सोयाहुआ भी विचरता है । अर्थात् जाग्रत्की ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेन्द्रियों के उपराम हुये भी स्वप्न में उभय इन्द्रियों के व्यापारको करता है । अरु यद्यपि वो पुरुष सहकारियोंसे रहित 'अकेला', सोवता है, तथापि बहुत से । सहचारियों के साथ मिलाहुआ स्वप्न में स्वप्नके पदार्थों को देखता है । एतदर्थ । देशान्तरके गमनागमन । योग्य । दीर्घ । कालके, अरु । उभय । इन्द्रियोंके, अरु सहकारियोंके । जो दर्शनादिकोंकी मुख्य सामग्री है । अभाव हुये भी । जो दूर देशादिरूप पदार्थों को देखता सुनता लेता देता आवताजाता आदिक व्यापार होता भासता है, ताते इस अनुमान लक्षणसे भी । स्वप्नका मिथ्यापना सिद्ध है] सोयाहुआ पुरुष दिवसवत् । सूर्यादि । पदार्थों को देखता है, अरु बहुतों के साथ मिलता है । अरु । जो कदापि शरीरसे बाह्य निकलके स्वप्न में किसी से मिलताहोय तो । जिनसे मिलता है तिन्होंकरके जाग्रत् कालविषे पहिचाना चाहिये, परन्तु उसकरके पहिचाना जातानहीं । क्योंकि जो सोयाहुआ पुरुष शरीरके बाह्यदेशमें स्वप्नविषे मिलाहोय तो । 'आज मैंने तुझको अमुक स्थानविषे देखाथा, इस प्रकार तिसपुरुष ने । कि जिसके साथ स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नमें मिला है । कहना चाहिये, परन्तु इस प्रकार कोई किसीसे कहता नहीं । अतएव स्वप्नविषे अन्यदेशको जातानहीं ॥ हे सौम्य ! यहपुरुष स्वप्नविषे जिनपदार्थोंको देखता है सो चिरकाल तैसाही न रहके अति शीघ्र अन्यभावको प्राप्त

अभावश्चरथादीनां श्रूयन्ते न्यायपूर्वकम् । वैतथ्यं ते-
न वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम् ३ ॥

हुओं देखता है । अर्थात् प्रथम मनुष्यको देखता है, देखते ही देखते तिसही क्षणमें उसही को वृक्षादिरूपसे देखने लगता है, अरु मथुरादि देशोंको देखता २ उसही क्षणमें उसको काशी आदिक देशोंको देखता है वा मिश्रित वा विपरीत देशकाल ग्रामादिकों को देखता है, तैसा बाह्यका देशादिक अति अल्पकालमें अन्यथा भावको पावते नहीं, मनुष्य वृक्षाकार होते नहीं । इत्यादिक स्वप्नके अरु बाह्यके देशकाल वस्तु आदिकों में व्यभिचार तारतम्यताके देखने से भी, अरु चिरकालके सृतकहुओं को भी स्वप्नमें देखनेसे 'कि जिनका उस स्वप्नकालमें बाह्यहोना सर्वथा असंभव है, यह स्पष्ट सिद्ध है कि स्वप्नका द्रष्टा शरीर के बाह्यके देशोंमें जायके स्वप्न देखता नहीं २ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! इस अग्रिम कहनेके हेतुसे भी स्वप्नविषे देखने योग्य पदार्थ सर्व मिथ्या है । क्योंकि "अभावश्चरथादीनां श्रूयन्ते न्यायपूर्वकम्" रथादिकों का अभाव न्यायपूर्वक सुनते हैं, अर्थात् जिसकरके स्वप्नविषे देखने योग्य (देखेहुये) जे रथादिक तिनका अभाव "नतत्र रथानरथयोगानपंथानो भवति, इत्यादि श्रुतिः" "तहाँ रथनेहीं, रथमें योजना करने योग्य अश्वचक्रादि नहीं, अरु रथके मार्गभी नहीं होते" इत्यादिक श्रुति करके न्याय (युक्ति) पूर्वक श्रवण करते हैं । अतएव "वैतथ्यं तेन वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम्" तिससे स्वप्न विषे प्राप्तहुआही मिथ्यापना प्रकाशित किया कहते हैं ? अर्थात् तिस । स्वप्नद्रष्टा के । शरीर के मध्य । महामूक्ष्म । नाड़ीरूप स्थान विषे संकोचको प्राप्तहोने (स्थानके अभाव) आदिक हेतु से स्वप्नविषे प्राप्त हुआही जो मिथ्यापना, तिसको अनुवाद करने वाली अ स्वप्नविषे आत्माके स्वयंज्योतिषनेके प्रतिपादनविषे नत्पर जो

अन्तस्थानान्तुभेदानांतस्माज्जागरितेस्मृतम् । यथा
तत्रतथास्वप्नेसंवृतत्वेनभिद्यते ४ ॥

यह बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी श्रुतिहै, तिसने प्रकाशित
कियाहै, इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ३ ॥

४ हे सौम्य! [उक्त रीतिसे स्वप्नरूप दृष्टान्तके । असत्पनेके ।
सिद्धहुये, फलित अर्थरूप अनुवादको कहतेहैं] “ अन्तस्थानान्तु
भेदानां तस्माज्जागरितेस्मृतम् । यथातत्रतथास्वप्ने संवृतत्वेन
भिद्यते ” । जैसे तहां स्वप्नमें है, तैसे । जाग्रत् विषे भीहै । ताते
जाग्रत्विषे जान्या है, भेदको प्राप्तहुये को संकोच को प्राप्तहोने
करके भेदको पावताहै ; अर्थात् जैसे तिस स्वप्नविषेहै, तैसेही
तिस जाग्रत्विषे भीहै, तस्मात् जाग्रत्विषे भी तैसेही जान्याहै ।
परन्तु स्वप्न विषे जाग्रत्के पदार्थोंसे भेदको प्राप्तहुये पदार्थोंको
शरीरके मध्य । सूक्ष्मनाड़ी । रूप स्थानवाले होनेसे जाग्रत्से
स्वप्न भेदको पावताहै ॥ इसका यह अभिप्राय है कि जाग्रत्विषे
दृश्य पदार्थोंको । यावत् इन्द्रियादिकोंका विषयहै तिनसर्वको ।
मिथ्यापनाहै, यह तो प्रतिज्ञाहै, क्योंकि दृश्य । इन्द्रियादिकों
का विषय । हैं ताते । यहहेतुहै । अरु, स्वप्नविषे सर्व दृश्य पदा-
र्थोंवत्, यह दृष्टान्तहै अरु जैसे तिस । स्वयंग्य स्थानके अभाव
वाले । स्वप्नविषे । देखेहुये वा देखने योग्य । दृश्य पदार्थोंका
मिथ्यापनाहै, तैसे जाग्रत्विषे दृश्यपना । दृश्यपदार्थोंको मिथ्या-
पना । तमानहीहै, यह हेतुका उपनयहै । एतदर्थ जाग्रत्विषे
भी मिथ्यापना जान्याहै यह निगमन है । अरु शरीरके मध्य
। सूक्ष्मनाड़ी । रूप स्थानवाले होनेसेअरु संकोचको प्राप्तहोनेकरके
स्वप्नविषे दृश्य पदार्थोंका जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंसे भेद भासता
है । अरु । वास्तवकरके । दृश्यपना अरु मिथ्यापना जाग्रत् अरु
स्वप्नविषे तुल्यही ॥ । अर्थात् जैसे-स्वप्नका दृश्य अपने योग्य
स्थान के अभावसे सत्य न होयके केवल भ्रान्तिमात्रही है, तैसेही

स्वप्नजागरितेस्थानेह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदानां हि
समत्वेन प्रसिद्धे नैव हेतुना ५ ॥

जाग्रत्का सर्व दृश्य अपने योग्य स्थानके अत्यन्त अभावसे के-
वल भ्रान्तिमात्र ही है । क्योंकि एक अद्वैत निराकार परिपूर्ण वि-
ज्ञानघन चैतन्यके शिलवत् सर्वत्र सघन अस्तित्वमें तिससे पृथक्
रीति स्थानका अभाव है, अतएव जाग्रत् अरु स्वप्न, इन उभय
स्थानका स्थूल सूक्ष्म यावत् इन्द्रियादिकोंका विषय दृश्य प्रपञ्च है
सो स्वयोग्य स्थानके अत्यन्त अभावरूप हेतुसे केवल भ्रान्ति-
मात्र ही है । ऐसा ब्रह्मवेत्तोंका निश्चितार्थ है इति सिद्धम् ४ ॥

५ हे सौम्य ! “स्वप्नजागरितेस्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदा-
नां हि समत्वेन प्रसिद्धे नैव हेतुना ” ५ भेदोंको प्राप्तहुये को प्रसिद्ध
हेतुसे समानता करके ही मननशील स्वप्न अरु जाग्रत् इन उभय
स्थानोंको एकसे ही कहते हैं ३ अर्थात् । परस्पर उक्तप्रकार । भेद
को प्राप्तहुये जे जाग्रत् अरु स्वप्नके पदार्थ तिनको ग्राह्य अरु
ग्राहक होनेसे दृश्यतारूप प्रसिद्ध हेतुकरके समानता होनेसे,
मनीषी । मननशील विवेकी । जनहैं सो, स्वप्न अरु जाग्रत् इन
दोनों स्थानों के एक (तुल्य) ही कहते हैं । यहां [जाग्रत् अरु
स्वप्नाविषे वर्तमान परस्पर भेदवाले पदार्थोंका ग्राह्यपना और
ग्राहकपना समान है । अरु तिस । दृश्यरूप । हेतुसे तिनका मि-
थ्यात्वकरके समभाव प्रसिद्ध ही है । अरु तिस । प्रसिद्ध समभावरूप
हेतुकरके विवेकी पुरुषोंको जाग्रत् अरु स्वप्नरूप दोनों स्थानोंकी
एकता वांछित है । इसप्रकार जो पूर्व अनुमान नाम प्रमाण सिद्ध
किया, तिस ही का “उभयस्थानोंकी एकतारूप, फल इसश्लोक
करके कहा है । इसप्रकार श्लोककी योजनासे देखावते हैं] यह
पूर्व सिद्ध प्रमाणका ही फल कहा ५ ॥

६ हे सौम्य ! भेदको प्राप्त । परस्परमें विलक्षणाहुये जाग्रत्विषे जे
दृश्यपदार्थ तिनका आदि अरु अन्तविषे अभाव होनेसे अर्थात् या-

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा । वितथैः
सदृशाः सन्तोऽवितथा इवलक्षिताः ६ ॥

वत् उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं सो सर्व अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अभावरूप हैं,
अरु उत्पत्तिमान् पदार्थ को अन्तवाला होने के निश्चयसे, सो उत्पत्ति-
मान् वस्तु अपन अन्त के पश्चात् भी अभावरूप हैं। इस कहने के हेतु
से भी तिनका मिथ्यापना है " आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेपित-
त्तथा " ६ जो आदिविषे अरु अन्तविषे नहीं है सो वर्त्तमानमें भी
तैसा ही है; अर्थात् जो मृगतृष्णादि वस्तु आदि विषे अरु अन्त विषे
नहीं हैं, सो अपने वर्त्तमान कालविषे भी हैं नहीं, यह लोकविषे
निश्चित है । अरु " वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इवलक्षिताः " ६
मिथ्यासे सदृशहुये सन्ते भी अमिथ्या (सत्य) वत् जानते हैं;
अर्थात् तैसे ही यह भेद को प्राप्त हुये जायत् के दृश्यपदार्थों अपनी
आदि अन्तविषे अभाव रूप होनेसे मृगतृष्णा आदिक मिथ्या
पदार्थोंसे तुल्य हुये (तुल्य होनेसे) सन्ते मिथ्या ही हैं । तथापि
वो अनात्मज्ञानी मूढ़ पुरुषों करके सत्यवत् जाने जाते हैं ६ ॥

७ हे सौम्य ! उक्तार्थपर वादी शंका करता है । ननु, स्वप्न के
दृश्य पदार्थों वत् जाग्रत के दृश्य पदार्थों में भी असत्पना कहा सो
अयुक्त है । अरु जाग्रत के दृश्य जे अन्न पान अरु वाहनादिक हैं,
सो क्षुधा तृप्ता आदिकों की निवृत्तिको अरु गमनागमन आदिरूप
कार्य (व्यवहार) को करते हुये प्रयोजन सहित उनको देखते
हैं, अरु स्वप्न के दृश्य पदार्थों को वो प्रयोजन सहित पना है नहीं ।
ताते स्वप्न के दृश्यपदार्थों वत् जाग्रत के दृश्यपदार्थों का असत्पना
मनोरथ (कल्पना) मात्र है । इस प्रकारका जो वादी का कथन
सो बने नहीं, क्योंकि " सप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते " ६
तिनकी सप्रयोजनता स्वप्नविषे विरोध को प्राप्त होती है; अर्थात्
जिस करके जाग्रतविषे उन अन्नपानादिकों की जो प्रयोजन सहित-
ता को देखते हैं सो स्वप्नविषे विरोध को प्राप्त होती है । जेमे स्वप्नविषे

सप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते । तस्मादाद्यन्तं
तत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः ७ ॥

अन्नादिक भोजन अरु जलादिक पान करके आतृप्त हुआ पुरुष भी जब उत्थान (जाग्रत्) को पावता है तब अपने को क्षुधा तृप्ता करके युक्त अतृप्त ही मानता है । तैसे ही जाग्रत् विषे भी भोजन पानादि करके तृप्त, क्षुधा तृप्ता रहित होयके सोया हुआ पुरुष, तत्काल ही स्वप्न में क्षुधा तृप्तादिकरके अति पीड़ित दिनरात्रि विषे जल पान अरु भोजनसे रहित अपने को मानता है । अतएव जाग्रत् के दृश्यों का स्वप्न विषे भी विरोध देखा है । अर्थात् जैसे स्वप्न में भोजन पानादिकरके तृप्त हुआ पुरुष जब जागता है तब अपने को क्षुधा तृप्ता करके युक्त ही देखता है ताते यह निश्चय होता है कि स्वप्न विषे किया खानपानादि सर्व दृश्य जाग्रत् हुये असत् ही होता है, तैसे ही जाग्रत् में सम्यक् प्रकार खान पानादिकरके आतृप्त हुआ पुरुष सोवता है तब तत्काल ही स्वप्न में अपने को क्षुधा तृप्ता करके पीड़ित देखता है, तिसकरके यह निश्चय हुआ कि जाग्रत् के खानपान तृप्ति स्वप्नवान् को असत्य ही है । अरु जाग्रत् में जाग्रत् सत्य अरु स्वप्न असत्य है अरु स्वप्न में स्वप्न सत्य अरु जाग्रत् असत्य है, ताते इन दोनों की सत्यता असत्यता सापेक्षिक अरु व्यभिचारी है ताते दोनों ही असत्य भ्रान्ति मात्र हैं ताते तिन जाग्रत् के दृश्यों का भी असत्यपन । स्वप्न के दृश्यों वत् शंका करने के योग्य नहीं । अर्थात् जैसे स्वप्न के दृश्यों के असत्पने में शंका नहीं, तैसे ही जाग्रत् के दृश्यों के भी असत्पने में शंका नहीं, अरु जिनको हे तिनको भ्रान्ति है । ऐसा हम मानते हैं, " तस्मादाद्यन्ततत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः " । ताते आदि अन्तवाले होने से वे निश्चय करके मिथ्या ही जानने ; अर्थात् तिसकरके आदि अरु अन्त करके युक्तपना जाग्रत् अरु स्वप्न इन दोनों विषे समान ही है, । ताते तिस आदि अन्तवाले होने करके वे मननशील जाग्रत् के दृश्यों को

अपूर्वस्थानिधर्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम् । तानयं
प्रेक्षते गत्वायदैवेह सुशिक्षितः ८ ॥

निश्चय करके मिथ्याही जानते, मानते, कहते हैं ७ ॥

८ हे सौम्य! पुनः वादी शंकाकरेहै । ननु स्वप्न अरु जाग्रत्के पदार्थोंको तुल्यहोनेसे जाग्रत्के पदार्थोंका जो असत्पना कहा, सो असंगतहै, क्योंकि दृष्टान्तको असिद्धताहै ताते । कैसे कि जाग्रत्विषे देखेहुये ये पदार्थही स्वप्नविषे देखतेहोयें ऐसा नहीं किन्तु स्वप्नविषे अपूर्व पदार्थोंको देखताहै । क्योंकि जिसकरके स्वप्नविषे चारदाँतवाले हस्तिपर आरूढ़ अष्ट भुजावाला आपको देखता । मानताहै, अरु अन्य तीननेत्रवानूपनादिक भी अपने विषे देखता मानताहै । इत्यादि प्रकार अपूर्व (पूर्वनदेखे) को स्वप्नविषे देखताहै, एतदर्थ स्वप्न अन्य असत्यके तुल्य नहीं, किन्तु उक्तरीत्या सत्यही है । याते जाग्रत् के मिथ्यापने के साधनेविषे जो स्वप्नका दृष्टान्तहै सो असिद्धहै, एतदर्थ स्वप्नवत् जो जाग्रत् को असत्पना कहा सो अयुक्तहै, इसप्रकारका जो वादीका कथन सो घने नहीं । क्योंकि, हे वादिन् ! स्वप्नविषे देखेहुये पदार्थोंको जो तू अपूर्व मानताहै, सोतो जड़होनेकरके स्वतः सिद्ध नहीं है, किन्तु " अपूर्वस्थानिधर्मोहियथास्वर्गनिवासिनाम् " अपूर्व स्थानीकाही धर्म है, जैसे स्वर्गके निवासियोंकाहै, अर्थात् सो अपूर्व स्वप्नके द्रष्टारूप स्वप्नस्थानवाले । तैजसरूप । स्थानीकाहीधर्महै । जैसे स्वर्गके निवासी इन्द्रादिकोंका सहस्राक्षपना आदिक धर्महै, तैसे यह अपूर्व स्वप्नस्थानी स्वप्नके द्रष्टाका धर्म है, द्रष्टाके स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध नहीं । अर्थात् स्वर्गरूप स्थानको प्राप्तहुयेको वहाँका स्थानीपना अरु स्थानके सम्बन्धसे सहस्राक्षपनादि धर्म उसके होतेहैं, अरु जब वो इसलोकरूप स्थानको प्राप्त होताहै तब यहाँका स्थानीपना अरु द्विभुजादिक धर्म उसके होते हैं, ताते स्थानके सम्बन्धसे प्राप्तहुये धर्म उस स्थानीके स्वरूपवत्

स्वप्नवृत्तावपित्वन्तरचेतसाकल्पितन्वसत् । वहि
श्चेतोऽगृहीतंसदृतं वै तथ्यमेतयोः ६ ॥

स्वतः सिद्ध न होने से अरात् हैं, क्योंकि जब वो स्वर्गका स्थानीय होता है तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतुर्भुजादि धर्म होते हैं, अरु जब वो इसलोकका स्थानी होता है तब यहां उसके सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्म होता है, ताते स्थानमें अरु स्थान सम्बन्धी धर्मोंमें व्यभिचारके होनेसे वे असत् हैं अरु उस स्थानीके वास्तविक स्वरूपमें व्यभिचार न होने से वो सत्य है । तैसे ही आत्माको स्वप्नका स्थानी होनेसे वहांका अपूर्वदृश्य उसका धर्म होता है सपूर्व नहीं, अरु जब वो जाग्रत्का स्थानी होता है तब यहांका सपूर्व उसका धर्म होता है अपूर्व नहीं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानोंका परस्परमें व्यभिचार है तैसे तिनसम्बन्धी सपूर्व अपूर्व दृश्यरूपधर्मोंमें भी व्यभिचार है परन्तु उभय स्थानके स्थानीरूप आत्माके अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्यही असत् हैं । अरु “तानयं प्रेक्षते गत्वा यदैवेह सुशिक्षितः” १८ तिनको यह जायके देखता है जैसे ही यहां सम्यक् शिक्षा पाया देखता है, अर्थात् तिन इस प्रकारके अपने चित्तके विकल्परूप अपूर्व पदार्थों को यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नरूप स्थानविषे जायके देखता है, जैसे यहां लोकविषे शिक्षाको पाया । पुरुष । जो देशान्तरका मार्ग है तिसमार्गसे देशान्तरको जायके तिन । देशान्तरके । पदार्थोंको देखता है, तद्वत् । एतदर्थं रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक स्थानीके धर्मका असत्पना है, तैसे स्वप्नविषे देखेहुये अपूर्वदृश्य पदार्थोंको स्थानीका धर्मपनाही है एतदर्थ असत्पना भी है । ताते स्वप्नके दृष्टान्तका । अर्थात् जाग्रत्के दृश्य पदार्थोंके असत् होने में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पनेका । असिद्धपना नहीं किन्तु उसका असत्पना सिद्धही है । ८ ॥

स्वप्नवृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् । वहि
श्चेतो गृहीतंसदृतं वै तथ्यमेतयोः ६ ॥

स्वतः सिद्ध न होने से असत् हैं, क्योंकि जब वो स्वर्गका स्थानीय होता है तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतुर्भुजादि धर्म होते हैं, अरु जब वो इसलोकका स्थानी होता है तब यहां उसके सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्म होता है, ताते स्थानमें अरु स्थान सम्बन्धी धर्मोंमें व्यभिचारके होनेसे वे असत् हैं अरु उस स्थानीके वास्तविक स्वरूपमें व्यभिचार न होने से वो सत्य है । तैसे ही आत्माको स्वप्नका स्थानी होनेसे वहांका अपूर्वदृश्य उसका धर्म होता है संपूर्व नहीं, अरु जब वो जाग्रतका स्थानी होता है तब यहांका संपूर्व उसका धर्म होता है अपूर्व नहीं, अरु जैसे जाग्रत स्वप्नरूप स्थानोंका परस्परमें व्यभिचार है तैसे तिन सम्बन्धी संपूर्व अपूर्व दृश्यरूप धर्मोंमें भी व्यभिचार है परन्तु उभय स्थानके स्थानीरूप आत्माके अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्य ही असत् हैं । अरु "तानयं प्रेक्षते गत्वा यदैवेह सुशिक्षितः" १६ तिनको यह जायके देखता है जैसे ही यहां सम्पूर्ण शिक्षा पाया देखता है, अर्थात् तिन इस प्रकारके अपने चित्तके त्रिकल्परूप अपूर्व पदार्थों को यह स्थानी स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नरूप स्थानधिपे जायके देखता है, जैसे यहां लोकधिपे शिक्षाको पाया । पुरुष । जो देशान्तरका मार्ग है तिस मार्गसे देशान्तरको जायके तिन । देशान्तरके । पदार्थोंको देखता है, तद्वत् । एतदर्थ रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक स्थानीके धर्मका असत्पना है, तैसे स्वप्नधिपे देखे दृश्ये अपूर्वदृश्य पदार्थोंको स्थानीका धर्मपना ही है एतदर्थ असत्पना भी है । ताते स्वप्नके दृष्टान्तका । अर्थात् जाग्रतके दृश्य पदार्थोंके असत् होने में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पनेका । असिद्धपना नहीं किन्तु उसका असत्पना सिद्ध ही है ॥ ८ ॥

जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् ।

वहिरचेतोऽगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः १० ॥

६ हे सौम्य! [जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्] जो मिथ्यापना है सो तिसविषे सत् अरु असत्के विभागकी प्रतीति से विरुद्ध है यह शंकाकरके तिसका दृष्टान्त से समाधान करते हैं] स्वप्नरूप दृष्टान्तके अपूर्वपने की शंकाका निषेध करके, पुनः जाग्रत् के पदार्थोंकीस्वप्नके पदार्थोंसे तुल्यताकोवर्णन करतेहुयेकहतेहैं "स्वप्नवृत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्" । ६ स्वप्नवृत्ति विषे भी अन्तर तो चित्त से कल्पित असत् है; अर्थात् स्वप्नवृत्ति (स्वप्नावस्था) रूपस्थानविषेभी । शरीरको । अन्तर तो चित्तसे मनोरथ करके कल्पना किया वस्तु तो असत् है, क्योंकि अन्य कल्पना व सङ्कल्पके । उत्थानके । समकालही तिसका अदर्शन है ताते । अरु "वहिरचेतोऽगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः" । ६ बाह्य चित्तसे ग्रहण किया असत् है इनका मिथ्यापना देखा है; अर्थात् तिसही स्वप्न विषे बाह्यचित्तकरके चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा गृहण किया जो घटादि वस्तु सो सत्य है । असत्य है, इसप्रकार निश्चय किये हुये भी सत् अरु असत्य का विभाग देखा है । अरु इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पना किये दोनों वस्तुओंका । कल्पित होनेसे । मिथ्यापनाही देखा है ६ ॥

१० हे सौम्य! "जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत्" । ६ जाग्रत्की वृत्तिविषे भी अन्तर तो चित्तसे कल्पना तो असत् है; अर्थात् जाग्रत् की वृत्तिरूपस्थानविषे भी अन्तर चित्तकरके कल्पना किया वस्तु तो असत् है । अरु "वहिरचेतोऽगृहीतंसद्युक्तंवैतथ्यमेतयोः" । ६ बाहिर चित्तसे गृहण किया सत् है इनको मिथ्यापना ही युक्त है; अर्थात् तिसही जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसाकल्पितन्त्वसत् । अरु इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पना किये दोनों वस्तुओंका । कल्पित होनेसे । मिथ्यापनाही देखा है १० ॥

उभयोरपिवैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि । एकतान्बुद्धयते भेदान्कोवैतेषां विकल्पकः ११ ॥

का मिथ्यापना युक्त ही है, क्योंकि अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पित पने की तुल्यता है ताते १० ॥

११ हे सौम्य ! [अव सर्वको मिथ्यापना होनेसे प्रमाता प्रमाणादिक व्यवहारका असम्भव होनेसे, पूर्ववादी विशेष शंका को करता हुआ कहे है " उभयोरपिवैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि "] ६ यदि उभयस्थानो विषे भेदोंको मिथ्यापना ही है ? अर्थात् जब जागृत अरु स्वप्न इन उभय स्थानों विषे पदार्थोंके भेदोंका मिथ्यापना ही है, तब " एकतान्बुद्धयते भेदान्कोवैतेषां विकल्पकः " (भेदोंको कौन जानेगा अरु तिनका निश्चय करके विकल्पक कौन होवेगा ; अर्थात्, इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पना किये जे पदार्थोंके भेद तिनको कौन प्रमाता जानेगा अरु तिनका निश्चय करके विकल्प (कल्पना) करनेवाला कौन होवेगा । यहां अभिप्राय यह है कि तिनकी स्मृति [यहां यह अर्थ है कि कार्यका कर्त्ता जो है सो पूर्व अनुभव किये कार्यको स्मरण करके तिनके सदृश जातिवाले अन्य कार्योंको, इस प्रकार स्मृति अरु अनुभवके आश्रयके आक्षेपसे कर्त्ता का आक्षेप कहनेको इच्छित है । तैसा होनेसे सर्वके मिथ्यापनेके सिद्ध हुये कर्त्ता आदिकोंके व्यवहारका असंभव निवारण करनेको अशक्य होवेगा] अरु अनुभवविषे आश्रय कौन होवेगा, [जो अध्यात्मरूप प्रमाता (बुद्धि विशिष्ट चैतन्य जीव) है अरु जे अधिदैवरूप जगत्का कर्त्ता ईश्वर है, यह दोनो भी मिथ्या हैं, इस प्रकार अंगीकार करनेसे प्रमाता आदिकोंको असत्पना होवेगा, । यह शंका करके पूर्ववादी कहता है । यहां यह अर्थ है कि 'जब प्रमाता वा कर्त्ता तुम्होंकरके अंगीकार नहीं किया है, तब, तुमको निरात्मभाव (शून्यपना) अभीष्ट ही होवेगा, परन्तु सो देखनेको शक्य नहीं । उसका देखना अशक्य है । क्योंकि आत्माविषे चक्षुरादि ।

कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया । सएव
बुद्ध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः १२ ॥

करणों । इन्द्रियों । की प्रवृत्तिका असंभवहै, अरु निषेधकरनेवाला
ही आत्माहै ताते,] जब उनका कोई भी प्रमाता (प्रमाणकर्त्ता)
वा कर्त्ता न मानेगे तब तुमको निरात्म (शून्य) वाद अभीष्ट
होवेगा ११ ॥

१२ हे सौम्य ! “कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेहःस्वमायया”
६ आत्मारूपी देव अपनेविषे अपनी मायासे आपकरके अपनेको
कल्पताहै ; अर्थात् [अवसिद्धान्ती कर्त्ता अरु कार्यादिकोंकी व्य-
वस्थाके असंभवको दूर करताहै] जो आत्मारूपी देव अपनेविषे
स्वमायासे आपकरके आपको रज्जु आदिकोंविषे सर्पादिकोंवत्
अग्रिम कहनेके भेदके आकारवाला । देह । कल्पताहै । अरु “स-
एवबुद्ध्यतेभेदानितिवेदान्तनिश्चयः” ६ सोई ही भेदों को
जानताहै ऐसा वेदान्तका निश्चयहै ; अर्थात् तैसे सोई । आत्म-
देव । तिन भेदोंको जानताहै, इसप्रकारका वेदान्त (उपनिषद्
वा ब्रह्मसूत्र) शास्त्रका निश्चयहै । एतदर्थ अनुभवज्ञान अरु स्मृति
ज्ञानका आश्रय । आत्मदेवसे । अन्य नहीं । अरु क्षणिकवादियों-
वत् अनुभवज्ञान अरु स्मृतिज्ञान निराश्रयनहीं । इत्यभिप्रायः १२ ॥

१३ हे सौम्य ! प्रश्न । कौनसंकल्पकरताहुआकिसप्रकारसेकल्प-
ताहै, । तर्हा । उत्तर । कहते हैं, “ विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते
व्यवस्थितान्, नियताश्चवहिश्चित्त एवंकल्पयतेप्रभुः” ६ प्रभु
पदार्थोंको चित्तके अन्तर स्थित नियमित पुनः अनियमितपदा-
र्थोंको नाना करताहै ; अर्थात् प्रभु (समर्थ) जो ईश्वर आत्मा
है सो बाह्य चित्तवालाहुआ बाह्य अपर ‘लोकप्रसिद्ध, शब्दादि
रूपपदार्थोंको, अरु अन्य । शास्त्रप्रसिद्ध । वासनारूपसे अन्तर
चित्तविषे । मायारूप चित्तके अन्तर । स्थित अस्पष्ट पृथिव्यादि
नियमित (स्थिर) अरु विद्युतादिक अनियमित (अस्थिर) पदार्थों

विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्तेव्यवस्थितान् । नि-
यतांश्चवहिशिक्तएवंकल्पयतेप्रभुः १३ ॥

को नानाप्रकारसे करताहै । तैसे अन्तर चित्तवालाहुआ मनोर-
थादिरूप आपविषे स्थित पदार्थोंको [यहां यह अर्थ है, कि बाह्य
चित्तवालाहुआ आत्मा बहिर्मुख (बाह्यके व्यवहारयोग्य) पदा-
र्थोंको कल्पताहै । अरु अन्तरचित्तवाला हुआ तिन [बाह्यव्यव-
हारयोग्य पदार्थों] से इतर आपविषे स्थित मनोरथादि लक्षण
रूप व्यवहारके योग्य पदार्थोंको कल्पके पुनः व्यवहारकी यो-
ग्यताके अर्थ कल्पताहै । यहां यह कथनकियाहै कि जैसे लोक
विषे कुलाल वा तन्तुवाय (वस्त्ररचनेवाला) घट वा पटरूप
कार्यके करनेकी इच्छावालाहुआ आदिविषे व्यवहारके योग्य
व्यक्तिको । कार्यके आकारको । जानके वा प्रकटकरके, पश्चात्
तिसही व्यक्तिको बाहिरके नामरूपकरके सम्पादनकरताहै । तैसे-
ही यह । आत्मारूप । आदिकर्ता भी मायालक्षणरूप अपनेचित्त
विषे नामरूपकरके अप्रकटरूपसे स्थितहुये सृजनेयोग्य पदार्थों
कोप्रथमसृजनेकी इच्छा आकारसे प्रकट करके पश्चात् बाहिर
सर्व ज्ञानके साधारण रूपसे सम्पादन करताहै । इसप्रकार प्रपञ्च
की कल्पना विषे क्रमका ज्ञान है] बाह्यके योग्य कल्पना करके
पुनः व्यवहार की योग्यताके अर्थ कल्पता है १३ ॥

१४ हे सोम्य ! शंका । ननु, स्वप्नवत् चित्तकरके कल्पित सर्व
जाग्रत् का जगत् । है यहअद्यावधि निर्धारहुआ नहीं । अरु चित्तसे
कल्पित चित्त करके जाननेयोग्य मनोरथादि रूप पदार्थों से,
बाह्यके पदार्थोंकी परस्पर जाननेकी योग्यता रूप चित्तलक्षणताहै,
एतदर्थ जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है, [जैसे स्वप्न
विषे देखने योग्य सर्व कल्पित दृश्य वस्तु मिथ्याही अंगीकार
करतेहैं, तैसेही जाग्रत् विषे भी देखनेयोग्य सर्व वस्तु चित्तकरके
भासमान हैं, इसहेतुसे कल्पित मिथ्या है, ऐसा अद्यावधिनि-

चित्तकालाहियेऽन्तरस्तुद्वयकालाश्चयेवहिः । कल्पिताएवतेसर्वेविशेषोनान्यहेतुकः १४ ॥

धर्माकिया नहीं, इस विषय में पूर्ववादी हेतु कहता है, । यहां यह अर्थ है कि, आत्माकी अविद्याकरके कल्पित जो चित्त, तिस चित्तकरके प्रथम चित्तकेही अन्तररचित्त, अरु तत्रही वर्तमान मनोरथ (संकल्प) रूप पदार्थ, अरु बाह्यके रज्जुसर्पादिक पदार्थ सो चित्तकरकेही परिच्छेद । भेद । को पावनेयोग्य है । अरु जिस करके वो कल्पनाकालविषेही होनेवाले पदार्थ प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान) के विषयहोते नहीं, जिसकरके तिनके साथ मन से बाह्य जाग्रत् विषे देखनेयोग्य भावों (पदार्थों) का विलक्षणपना, अरु परस्पर में परिच्छेद्यताके पावने की योग्यता, अरु दोनों कालोंकरके परिच्छिन्न होने करके प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञानकी विषयता देखते हैं, तिसकरके जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है,] उत्तर । यह शंका युक्तनहीं, इसप्रकार मूल के श्लोक के अक्षरों से उत्तर कहते हैं, चित्तके । कल्पना । काल से इतर अन्य परिच्छेद करनेवाला काल नहीं है । जिनका । ऐसे जे चित्त से परिच्छेद करनेयोग्य । अर्थात् चित्तकी कल्पना काल विषेही जानने के योग्य । पदार्थ सो [जो मनके अन्तर मनोरथरूप पदार्थ हैं, सो चित्तकाल वाले होते हैं, तिनके चित्त कालको स्पष्टकरते हैं] चित्तकालवाले कहते हैं, अरु जो परस्पर परिच्छेद करने (पृथक् २ जानने) योग्य पदार्थ हैं तिनको दोनों कालवाले कहते हैं [यहां यह अर्थ है कि, जो पदार्थ मन से बाह्य दीखते हैं सो भेदकालवाले हैं । क्योंकि काल का जो भेद सो कहिये भेदकाल, सो भेदकाल जिनका है ऐसे जे पदार्थ तिनको भेदकालवाले कहते हैं । इस व्युत्पत्ति से । ताते सो पूर्वके अन्यकाल करके अरु पीछेके अन्यकाल करके परिच्छेद को प्राप्त होने योग्य हैं । अरु भिन्नकाल से परिच्छिन्न होने करके

“सो यह है” इस आकारवाले प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री सहित संस्कारसे जन्य प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होते हैं] जैसे [जाग्रत्के पदार्थोंकी प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयताको उदाहरण करके स्पष्ट करते हैं] देवदत्त गौके दोहन पर्यन्त स्थित होता है, सो यावत् स्थित होता है तावत् गौको दोहन करता है, अरु यावत् गौको दोहन करता है तावत् स्थित होता है, अरु तितने कालपर्यन्त यह है, अरु एतने कालपर्यन्त सो है । इसप्रकार बाह्य के पदार्थोंको परस्पर में परिच्छेदकपना है, एतदर्थ उनको उभयकालवाले कहते हैं । एतदर्थ “चित्तकालाहियेऽन्तस्तु द्वयकालाश्च येवहिः, कल्पिताएव ते सर्वे विशेषो नान्यहेतुकः” १ ६ जो अन्तर विषे तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं अरु बाह्य उभयकालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व कल्पित ही हैं, विशेष अन्यहेतुवाला नहीं ; अर्थात् जो अन्तर (स्वप्न) विषे तो चित्तकालवाले पदार्थ हैं, अरु बाह्य (जाग्रत्विषे) दोनों कालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व । जाग्रत्स्वप्न के । कल्पित ही हैं । बाह्यका दोनों काल करके युक्तारूप जो विशेष है सो कल्पितपने से अन्य हेतुवाला नहीं, क्योंकि कल्पित विषे भी तिसप्रकारके विशेषका सम्भव है ताते, अतएव यहां जाग्रत् विषे भी स्वप्नका दृष्टान्त स्पष्ट होता ही है [इसका यह रहस्य है कि जो कल्पनाकालविषे होनहार पदार्थ मनके अनन्तर वर्तते हैं, अरु जो प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होने करके पूर्वोत्तर कालविषे होनेवाले अरु बाहरही व्यवहारके योग्य देखिये हैं, सो सर्व कल्पित हुये मिथ्या ही होनेके योग्य हैं । अरु प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की विषयतारूप जो विशेष है सो वस्तुके कल्पितपने का क्रिया है, क्योंकि स्वप्नादिकोंकी कल्पित वस्तुविषे भी “सो यह है” इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयता देखते हैं ताते १४ ॥

१५ हे सोम्य ! “अव्यक्ताएव येऽन्तस्तु स्फुटाएव च येवहिः । कल्पिताएव ते सर्वे” १ ६ जो अन्तर अस्पष्ट ही है, अरु जो बाह्य ही है, सो सर्व कल्पित ही हैं ; अर्थात् जो मनके अन्तरभावनारूप हो-

अव्यक्ताएवयेऽन्तस्तुस्फुटाएवचयेबहिः । कल्पिता
एवतेसर्वविशेषस्त्विन्द्रियान्तरे १५ ॥

ने से अस्पष्ट पदार्थही है, अरु जो मनके बाह्य जो प्रतीयमान पदार्थ स्पष्टहोतेहैं सो सर्व मनके स्फुरणमात्र रूपहोनेसे कल्पितहीहैं । अरु "विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे" विशेष इन्द्रियोंके भेद के कियेहैं अर्थात् स्पष्टतारूप विशेष तो अन्तर अरु बाह्य इन्द्रिय भेदकेहुये । इन्द्रियोंके भेदरूप निमित्तवाला है, तिसविषे मिथ्यापना वा अमिथ्यापना उपयोगको प्राप्तहोता नहीं ॥ इसका यह भावार्थहै कि, यद्यपि मनके अन्तर मनकी वासना-मात्रसे प्रकटहुये पदार्थोंका अस्पष्ट (अप्रकट) पनाहै, वा मनसे बाह्य अरु चक्षुरादि इन्द्रियोंके अन्तर पदार्थोंका स्पष्टपना यह विशेषहै । तथापि यह विशेष पदार्थोंकी सत्यता कियानहीं क्योंकि स्वप्नविषेभी तैसेही देखते हैं । किन्तु यह विशेष इन्द्रियों के भेदोंका कियाहै, एतदर्थ जाग्रतके पदार्थ भी स्वप्नके पदार्थोंवत् कल्पितहीहैं । इति सिद्धम्, यह सिद्धहुआ १५ ॥

१६ हे सौम्य ! प्रश्न । ननु, बाह्य अरु अन्तरके पदार्थों की 'परस्परके निमित्त अरु नैमित्तिक होनेकरके' कल्पनाविषे कारण क्याहै । उत्तर । तहां कहतेहैं, आत्मा जो है सो अपनीमायाकेवश से सर्वको कल्पताहुआ आदिविषे 'मेकस्ताहों' मेरेकोस्तुल्यतुल्यहै, इसलक्षणवाले "जीवकल्पयतेपूर्वं ततोभावान्पृथग्विधान्" जीवको पूर्व कल्पता है तिसके अनन्तर पृथक् २ भावों को 'कल्पताहै' अर्थात्, उक्तलक्षणवाले, जीवोंको 'रज्जुविषेसर्पवत् । "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" इत्यादि । श्रुतिउक्त लक्षणवालेही शुद्ध आत्माविषे विशिष्टरूपसे पूर्व कल्पता है, अतएव तिसके अर्थहोने करके 'किया, कारक, फलके भेदसे प्राणादिक नानाविध बाह्यके अरुअन्तरकेपदार्थोंको कल्पताहै ॥ प्रश्नातिस कल्पनाविषे क्याहेतु है ॥ उत्तर ॥ तहां कहतेहैं, "बाह्यानाभ्यात्मिकांश्चैत्रयथाविद्यस्त-

जीवकल्पयन्ते पूर्वततोभावान् पृथग्विधान् । बाह्यानां
ध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यस्तथा स्मृतिः १६ ॥

थास्मृतिः १ ॥ जैसी विद्या वाला है तैसी स्मृतिवाला होता है, तिसकरके, बाह्य अन्तरके पदार्थोंको । सृजता है । २ अर्थात् जो यह आप कल्पितहुआ जीव सर्व कल्पनाके करनेविषे अधिकारी है सो जैसी विद्या (विज्ञान) वाला है तैसीही स्मृति वाला होता है । [यहाँ यह अर्थ है कि, अन्नपानादि उपभोगके होते, तृप्ति आदिक होती है, अरु तिन उपभोग के न होनेसे होते नहीं । इस अन्वय व्यतिरेक रूप युक्तिसे भोजनादिक हेतु है । ऐसी कल्पना का विज्ञान उपजता है, ताते पुष्ट्यादिक फल है, ऐसी कल्पना का विज्ञान उपजता है, तिस करके अन्य किसी दिवस में कथन किये दोनों भी हेतु अरु फलकी स्मृति होती है, तिस करके फलके साधनसे असमान (भिन्न) जातिवाले अन्य साधनविषे कर्तव्यता का विज्ञान होता है, तिससे वांछित तृप्ति आदिक फलकी प्रयोजनता विषे पाकादिक क्रिया अरु तिसके कारक (सामग्री) तंडुलादिक अरु तिनके फल अन्नकी सिद्धि आदिक के सम्यन्धी विशेष विज्ञानादिक होते हैं, तिसकरके हेतु आदिकों की स्मृति होती है, ताते तिस साधनका अनुष्ठान होता है, ताते पुनः फल होता है । इस क्रम करके परस्पर हेतुमद्भावसे कल्पना होती है,] इस करके हेतुकी कल्पना के ज्ञानसे फलका ज्ञान होता है, ताते हेतुके फलकी स्मृति होती है, तिसकरके तिसका ज्ञान अरु तिसके अर्थ क्रिया कारक, अरु तिसके फलके भेदके ज्ञान होते हैं, तिनकरके तिनकी स्मृति होती है, अरु तिस स्मृति से पुनः तिसके ज्ञान होते हैं तिन ज्ञानसे तिनकी स्मृति होती है अरु तिस स्मृति से पुनः तिनके ज्ञान होते हैं । इस प्रकार बाह्य अरु अन्तरके पदार्थोंको परस्पर निमित्त अरु नेमित्तिकभावसे अनेक प्रकार कल्पता है १६ ॥

१७ हे सौम्य ! तिसपूर्वोक्त श्लोकविषे जीवकी कल्पना सर्वक

अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पिता । सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्माविकल्पितः ॥ १७ ॥

ल्पनाका मूल है, इसप्रकार कहा । सोई जीवकी कल्पना किसनिमित्तवाली है इसको अथ दृष्टान्तकरके प्रतिपादन करते हैं । अनिश्चितायथारज्जुरन्धकारेविकल्पिता, सर्पधारादिभिर्भावैः । जैसे अन्धकार विषे अनिश्चित हुई रज्जु सर्प अरु जलधारा आदिक भावकरके विकल्प को प्राप्त होता है ; अर्थात् जैसे लोक विषे मन्द अन्धकार विषे रही वस्तु अहं असुक वस्तुही है, इस प्रकार अपने स्वरूपसे अनिश्चय को प्राप्त हुई सो, क्या सर्प है वा जलधारा है, वा वक्र दंड है, वा भूमिकी दरार है, इत्यादि प्रकारसे सर्पधारा आदिक भावकरके अनेक प्रकारसे विकल्पको प्राप्त होवे हैं । अर्थात् रज्जु विषे सर्प अरु, थाणू (ठूठ) विषे जो पुरुषकी भ्रान्ति होती है सो मन्द अन्धकारके समय होती है, घन अन्धकारमें अरु स्पष्ट प्रकाश में नहीं क्योंकि जिसकालमें रज्जुके सामान्यअंश, सर्पवत् वक्राकार, की प्रतीति, अरु विशेष अंश त्रिवली (ऐठन) की अप्रतीति होती है तिसकालमें सर्पादि भ्रान्ति होती है, अरु वादीने भ्रान्ति होनेकी सादृश्यतादि अनेक सामग्री कही हैं परन्तु, मुख्यसामग्री उक्तप्रकारका अन्धकारही है, क्योंकि अन्धकारके अभावकी सामग्री दीपकादिकों के प्रकाश करकेही भ्रान्ति में उपयोगी अन्धकार सहित सर्व सामग्री अभाव होती है अन्धकारमें स्थित रज्जुको सम्यक् प्रकारसे रज्जु ही है ऐसे जानने के अर्थ एक प्रकाशही सामग्री का उपयोग है, भ्रान्ति कालवत् अनेक सामग्री का नहीं । अरु रज्जुविषे भ्रान्ति कालमें जो प्रायः सर्पकी स्मृति अरु भ्रान्ति अधिक, अरु दंडधारादिकों की क्वचित् होती है, तहां सर्पकी भ्रान्ति अधिक होने में विशेष करके मरणका भय हेतु है, क्योंकि सर्पके डंशसे मरण का भय है दंड धारादिकों से नहीं ताते ॥ अरु ऊपर भूमि में

निश्चितायां यथारज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते । रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः १८ ॥

जलकी अरु शुक्तिका में रजतकी भ्रान्ति है सो अन्धकार में न होयके प्रकाश में होती है, परन्तु द्रष्टाके देशसे दूरदेशमें अरु दृष्टि-गोचरतासे होती है । अरु शुक्तिकी सादृश रजतलोह कागज आदि होते हैं, परन्तु विशेषकरके तहां रजतकी भ्रान्ति होती है तहां प्रायः लोभहेतु है, क्योंकि अन अशनादि निमित्तक क्लेशादिकों की निवृत्ति रजतरूप द्रव्यसे होती है ताते । जैसे स्वरूप से यथार्थ निश्चय कियेहुये अपने हस्तकी अंगुली आदिकों विषे सर्प वा जलइत्यादि विकल्प देखते नहीं, तैसेही रज्जुको स्वरूप से सम्यक्प्रकार निश्चय कियेहुये सम्मुखवर्ती रज्जुरूप वस्तुविषे सर्पादि विकल्प होतानहीं । अरु जिसकरके । सर्पादिविकल्प । होता है ' एतदर्थ । तिस विकल्पसे । पूर्व रज्जु के स्वरूपका अनिश्चयही । निश्चयका न होनाही । तिसका निमित्त है ॥ जैसे यह दृष्टांत है " तद्वदात्मा विकल्पितः " तैसे आत्मा विकल्पको प्राप्त हुआ है ; अर्थात् जैसे उक्त दृष्टांत है तैसे हेतु अरु फलादिक संसारके धर्मरूप अनर्थों से विलक्षण होनेकरके अपने शुद्ध ज्ञानमात्र सत्तासमान अद्वैतरूप करके अनिश्चय होनेसे । अर्थात् अपनेआप आत्माके शुद्धबुद्ध मुक्त ज्ञानमात्र सत्तासमान एक अद्वैत स्वरूपका सम्यक्प्रकार यथार्थ निश्चय न होनेसे । जीव अरु प्राणादिक अनेक भावोंके भेदों से आत्मा विकल्पको प्राप्त हुआ है । इसप्रकार यह सर्व उपनिषदोंका सिद्धान्त है १७ ॥

१८ हे सौम्य ! [अविद्यासे रचित जीवकी कल्पना है, इसप्रकार अन्वयरूप द्वारसे कहा, अब तिसहीको व्यतिरेक रूपद्वारसे देखावे हैं] " निश्चितायां यथारज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते " " रज्जुरेवेति, " " जैसे यह रज्जुही है, ऐसे रज्जुके निश्चयहुये विकल्प सर्वथा निवृत्त होता है ; अर्थात् जैसे ' यह रज्जुही है ' इसप्रकार

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः ।

मायैषा तस्य देवस्य यथासम्प्रोहितः स्वयम् १९ ॥

रज्जुके निश्चय होने से तिसके अज्ञानकी निवृत्ति से तिससे उत्पन्न हुआ जो सर्पादिरूप विकल्प सो सर्वथा निवृत्त होता है, अरु रज्जुमात्र अवशेष रहने है । तद्वदात्मविनिश्चयः । १६ तैसे आत्माविषे निश्चय प्राप्त होता है ; अर्थात् जैसेही जब आत्माविषे श्रुतिवाक्यानुसार निश्चय प्राप्त होता है, तब आत्माकी अविद्या करके कल्पित जे जीवादिक विकल्प तिनकी अशेष निवृत्तिसे एक अद्वैत आत्मतत्त्वही परिअवशेष रहता है । यह तो इलोक का अन्तराथ है ॥ अब इसका भावार्थ कहते हैं । जैसे “रज्जुरेवेति” “रज्जुही है” इसप्रकार निश्चयके होनेसे सर्व विकल्पोंकी निवृत्ति के होनेसे रज्जुही अद्वैत है, इसप्रकार “नेति नेति” “नइति नइति” । सूक्ष्मभी नहीं, स्थूलभी नहीं, कार्यभी नहीं, कारणभी नहीं, मूर्त्तभी नहीं अमूर्त्तभी नहीं । इत्यादि इस सर्व संसार के धर्म से रहित वस्तुके प्रतिपादक शास्त्र से जनित ज्ञानरूप प्रकाश का किया जो यह आत्माका निश्चय है सोई “आत्मैवेदं सर्वम्” “अपूर्वमनन्तरसबाह्य” “सबाह्याभ्यन्तरोद्भजः” “अजरोऽमरोऽमृतोऽभय एवाद्यइति” “आत्माही यह सर्व है ; अपूर्व है, अनपर है, अनन्तर है, अबाह्य है, बाह्यान्तरके सहित है, अरु जन्मरहित अज है, अजर है, अमर है, अमृत (रोगरहित) है । अर्थात् जन्मादि षड्भावविकार रहित है । अभयही है । इसप्रकारका जो अपने आप । आत्माका दृढ़ निश्चय है, सोई अद्वितीय परिशेष रहता है, पुनः द्वैत सर्वही निवृत्त होता है ॥ १८ ॥ हे सौम्य ! “यद्यात्मैक एवेति” “जब आत्मा एकही है” अर्थात् जब उक्तप्रकार से आत्मा एकही है, इसप्रकारका निश्चय है तब “प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः, मायैषा तस्य देवस्य” । प्राणादि अनन्तभावों करके विकल्पकों प्राप्त हुआ है,

यह उस देवकी मायाही है? अर्थात् जब निश्चय करके सर्व संसार धर्मरहित आत्माएकही है, तब इन संसाररूप प्राणादि अनन्तभावसे कैसे विकल्प को प्राप्त होता है, जिहां इसप्रकार का संशय है। तहां कहते हैं, श्रवणकरो, यह उस आत्मरूप देवकी माया है। जैसे मायात्री पुरुष करके प्रेरणा को प्राप्त हुई जो उसकी माया, सो अतिशय निर्मल जो आकाश, तिसको पुष्पपत्र सहित वृक्षोंकरके पूर्णहुयेवत् पूर्णकरहे, तैसे यह आत्म देव की माया भी है। अरु जैसे इन्द्रजाली की माया से लो-किक द्रष्टा जन उस मायाकृत मोहसे उस मायाकेही वशहुये देखते हैं। तैसे अपनी मायासेही यह आत्मा अपने चिदाभासरूपसे। आप भी मोह को प्राप्तहोता है। एतदर्थ मोहरूपकार्य द्वारा आत्माविषेही मायाका ज्ञानहोता है। अर्थात् मूलाज्ञानकी शक्ति जो शुद्ध माया तद्विशिष्ट आत्माको माया के कार्य मोह करके अपने विषे माया का ज्ञान होता है, अरु सर्व शब्दके अर्थ की साम्यता जो माया तिसका ज्ञाता होनेसे उसको सर्वज्ञकहते हैं। अरु वो मायासे रहित अरु माया का आश्रय शुद्ध अविशिष्ट अपना सत्य स्वरूप तिसको स्वरूपसेही जानता है ताते ईश्वर है। अरु अज्ञानकी द्वितीय शक्ति मलिन अविद्या तद्विशिष्टजीव अविद्याके कार्य मोहरूप निमित्तसे उसको अविद्याका ज्ञान होता है कि मुक्ताविषे अविद्या वा मायाहै, अरु तिससे वृथक् अपनेआप शुद्ध स्वरूप को बिना आचार्य के उपदेशके, जानता नहीं ताते जीवहै, अरु एतदर्थही श्रुति कहती है कि “आचार्यवान् पुरुषोवेद” अरुमाया अरु अविद्यारूप उपाधिके अभावसे उभयविशिष्ट चैतन्य आत्माकी अविशिष्ट ज्ञप्तिमात्र तत्त्वविषे एकताहै। परन्तु आचार्य के उपदेशद्वारा सम्यक् प्रकारके आत्मज्ञान बिना माया अरु अविद्याकी निवृत्ति होवे नहीं। तथाच “मममायादुरत्यया” मेरी माया दुःखसे तरने योग्यहै? इस गीतोक्ति से भगवान् ने भी माया को मोहकी हेतुता कही है १६॥

॥ प्राणइतिप्राणविदोभूतानीति च तद्विदः । गुणाइति
गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः २० ॥

२० ॥ हे सौम्य ! [कौनसेवे प्राणादिक अनन्तभाव हैं कि जिन
करके माया से आत्मा भेदको पावता है, इसप्रकार के प्रश्नकी
इच्छा के दृष्टे प्राणादिकों की कल्पना को उदाहरण करके कहते
हैं] " प्राणइतिप्राणविदोभूतानीति च तद्विदः " प्राण ऐसे प्राणके
वेत्ता, अरु भूत ऐसे भूतकेवेत्ता । कहते हैं । १ अर्थात् प्राण । कहिये
सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जगत्का ईश्वर वा जगत्का हेतु है । इस
प्रकार प्राणकेवेत्ता हिरण्यगर्भ के उपासक अरु वैशेषिकमताद-
लम्बी कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि उस
हिरण्यगर्भको जगत्का हेतुहोने के विषय में प्रमाणका अभाव है
[अरु हिरण्यगर्भ उत्पत्तिवाला है ताते । अरु पृथिवी जल अग्नि
वायु, यह चार भूतही जगत्का कारण हैं । इनसे इतर ईश्वरादि
कोई नहीं, इसप्रकार चार्वाक कल्पना करते हैं, सो भी कल्पना-
मात्रही है, क्योंकि इनभूतों को जड़ होनेसे स्वतः सिद्धता । जगत्
की रचना में स्वतन्त्रता । नहीं ताते । अरु " गुणा इतिगुणविदः " गुण ऐसे गुणके वेत्ता, अरु तत्त्व ऐसे
तत्त्वके वेत्ता । कहते हैं । २ अर्थात् सत्त्वरज तम इन तीनोंगुणोंकी
साम्यावस्था जगत्का कारण है, इसप्रकार सांख्यमतवादी मानते
हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि साम्यावस्थाको प्राप्तहुये
गुणोंको जड़त्व होने से उनविषे ईक्षण घननहीं अरु श्रुतिप्रमाण
से ईक्षणपूर्वक सृष्टि है, ताते श्रुतिवाह्य होनेसे गुणोंको जगत्का
कारणत्व कल्पनामात्रही है । अरु " आत्मा, विद्या, अरु शिव, यह
तीनतत्त्व जगत्के प्रवर्तक हैं, इसप्रकार शैवमतवादी मानते हैं,
परन्तु श्रुतिवाह्यहोने से सोभी केवल कल्पनामात्रही है २० ॥

२१ ॥ हे सौम्य ! " पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः " ।
पाद है ऐसेपादवेत्ता अरु विषय ऐसे विषयके वेत्ता, कहते हैं, ३

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति
लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दादिविषय बारंबार भोगेहुये परमार्थ तत्त्व हे, इसप्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्रहै, क्योंकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है, विषभक्षण करने से अर्थात् भक्षणकिया विष एकबार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निदितहै ताते निन्दितों का पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है । “लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः” । “लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं ।” अर्थात् भूर्, भुवर्, स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्मोंका फल अरु “कर्मजितोलोकः क्षीयत ” इत्यादि प्रमाण से विनाशीहोनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्मों के । फलकेदाता हैं, इनसे इतर ईश्वर कोई नहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान् अरु आत्माके जानने में संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनको

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः ।

भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्य है ताते २१ ॥

२२ ॥ हे सौम्य ! “वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः”
 वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता । कल्पना करतेहैं ?
 अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं । क्योंकि ब्रह्माद्वारा
 वेदही सर्वजगत् के प्रवर्तक हैं ताते । इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक
 कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहैं सो
 लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर
 दीखते नहीं, अरु । वेदवाणीका विवर्त्तहोनेसे वाणी के अभावहुये
 अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं,
 अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर
 लौकिकहोनेसे । वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं । अरु ज्यो-
 तिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता घौ-
 धायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै,
 क्योंकि “यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति” यज्ञको
 कहताहों तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु य-
 ज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तुको । अरु यज्ञकी सर्व
 कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयता
 को जड़त्वहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके
 आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान्
 (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ
 तत्त्व मानतेहैं ताते । अरु “ भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च
 तद्विदः ” । भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके
 वेत्ता । कल्पना करतेहैं । ? अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं,
 इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र
 के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही, है क्योंकि जो क-

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति
लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार
के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना
मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का
भेद अनुपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद
वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दा-
दिविषय बारंबार भोगेहुये परमार्थतत्त्व है, इसप्रकार उन विषयों
के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना
विभ्रममात्रही है, क्योंकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है,
विषभक्षण करने से अर्थात् भक्षणकियां विष एकघार हनन क-
रता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मार-
ताही रहता है । अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निन्दितहै ताते
निन्दितों को पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है
"लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः" । [लोक ऐसे लोक
के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं ।] ३ अर्थात्
,भूर्,भुवर्,स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक)
अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही
परमार्थ वस्त्रूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक
कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन
संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्मोंका फल
अरु "कर्मजितोलोकःक्षीयत" इत्यादि प्रमाण से विनाशीहोनेसे
अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से ।
तिन निन । यज्ञादि कर्मों के । फलकेदाना हैं, इनसे इतर ईश्वर
कोई नहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी
कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशयान अरु
आत्माके जानने में संशययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनका

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः ।

भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्य है ताते २१ ॥

२२ ॥ हे सौम्य ! “वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः” वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता । कल्पना करते हैं ? अर्थात्, ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूप हैं । क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेदही सर्वजगत् के प्रवर्तक हैं ताते । इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीखते नहीं, अरु । वेदवाणीका विवर्तहोनेसे वाणी के अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे । वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं । अरु ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूप हैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता धौ-धायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि “यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति” यज्ञको कहताहों तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानि देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तुको । अरु यज्ञकी सर्व कारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयता को जड़त्वहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहैं ताते । अरु “ भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः ” भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता । कल्पना करते हैं । ? अर्थान् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि जो क-

पादाइतिपादविदोविषयाइति च तद्विदः । लोकाइति
लोकविदोदेवाइति च तद्विदः २१ ॥

अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं, इसप्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सोभी कल्पना मात्रही है, क्योंकि एक निरंशआत्मा के विषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपन्न है । अर्थात् एक निरंश आत्मा विषे पादरूप अंशभेद वास्तव से नहोयके केवल अविद्याकरके कल्पित है । ॥ अरु शब्दादिविषय बारंबार भोगेहुये परमार्थ तत्त्व है, इसप्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्यके कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्रहै, क्योंकि विषयोंका विष से भी अति निकृष्टपना है, विषभक्षण करने से अर्थात् भक्षणकिया विष एकघार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसेही जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयोंका अनुसंधान सर्वथा निदितहै ताते निन्दितों का पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है । “लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः” । लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं । ३ अर्थात् भूर्, भुवर्, स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोकही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेद वाले व्यभिचारी अरु कर्मोंका फल अरु “कर्मजितोलोकक्षीयत” इत्यादि प्रमाण से विनाशहीनेसे अरु अग्नि वायु अरु इन्द्र, इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्मों के । फलदेदाता है, इनसे इतर ईश्वर कोई नहीं, इसप्रकार देवताओंकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान अरु आत्माके जानने में संगययुक्त विषयासक्त अहंकारीहोनेसे उनकी

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः ।

भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः २२ ॥

परमार्थरूपता अयोग्यहै ताते २१ ॥

२२ ॥ हे सौम्य ! “वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः” वेद ऐसे वेदकेवेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञकेवेत्ता । कल्पना करतेहैं ; अर्थात् ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूपहैं । क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेदही सर्वजगत् के प्रवर्तक हैं ताते । इसप्रकार वेदकेवेत्ता पाठक कल्पना करतेहैं, सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जोहै सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यंजन, इनवर्णोंसे इतर दीग्वते नहीं, अरु । वेदवाणीका त्रिवर्त्तहोनेसे वाणी के अभावहुये अभावरूपहै, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिसद्वारा स्फुरणहुये हैं, अरु निर्विशेष आत्माविषे अवेदरूप है, ताते वेदको लोकान्तर लौकिकहोनेसे । वेदको परमार्थरूपता सम्भवे नहीं । अरु ज्योतिष्ठोमादिक यज्ञ परमार्थ वस्तुरूपहैं इसप्रकार यज्ञोंकेवेत्ता चौ-धायनादिक यज्ञकेकर्त्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रहीहै, क्योंकि “यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति” यज्ञको कहताहैं तहां तिसकी समिध हवि कुण्डादिक सामग्री, अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमे त्याज्य वस्तुको । अरु यज्ञकी सर्वकारक सामग्री प्रत्येकजड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञकी समुच्चयता को जड़त्वहोनेसे उसको यज्ञका विज्ञाननहीं, अरु यज्ञकर्त्ताके आधीन जड़हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता फर्मकेफलमें अति रागवान् (आसक्त) होनेसे परमार्थतत्त्वको न जानके यज्ञकोही परमार्थ तत्त्व मानतेहैं ताते । अरु “ भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः ” भोक्ता ऐसे भोक्ताकेवेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्यके वेत्ता । कल्पना करतेहैं ; अर्थात् भोक्ताही आत्माहै, कर्त्ता नहीं, इसप्रकार आत्माको केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करतेहैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि जो क-

सूक्ष्मइतिसूक्ष्मविदःस्थूलइति च तद्विदः । मूर्त्तइति मूर्त्तविदो अमूर्त्तइतितद्विदः २३ ॥

दापि सांख्यमतवादी तिस आत्माविषे जो भोक्तृत्वरूप विक्रिया स्वरूपसेही स्वीकारकरते हैं तब अनित्यत्वादि क्यों नहीं अंगीकार करते, किन्तु करना चाहिये, अरु आत्माविषे जो भोक्तापने की प्रतीति है सो विषयकी सांनिध्यतासे स्फटिक में रक्तादिवत् है तिसको वास्तवसे मानना भ्रान्ति है । अरु जे भोज्यवस्तु के वेत्ता रूपकार (रसोई करनेवाले) स्वादके वशहुये भोज्यकोही परमार्थपनेकी प्रतिज्ञा करते हैं २२ ॥

२३ ॥ हे सौम्य ! "सूक्ष्मइति सूक्ष्मविदः स्थूल इति च तद्विदः" सूक्ष्म ऐसे सूक्ष्मकेवेत्ता, अरु स्थूल ऐसे तिसकेवेत्ता । कल्पते हैं । १ अर्थात् आत्मा परमाणुके परिमाण सूक्ष्म है । अरु सोई परमार्थ वस्तु है । इसप्रकार कोई एक सूक्ष्मतत्त्वकेवेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी यथार्थ नहीं, क्योंकि जो आत्मा अणुपरिमाण होवे तो शरीरान्तर अणुपरिमाण देशमेंही होवेगा अरु जो अणुपरिमाणदेश व्यापि आत्माहुआ तो तिसको चैतन्यहोनेसे तिसही देशके सुख दुःखका अनुभवहोना चाहिये अन्यदेशका नहीं, परन्तु आत्मा पादाग्रसे लेकरके मस्तकापर्यन्त आकाशवत् नखशिखमें व्याप्त है क्योंकि पादाग्रसे मेरे को व्यथा है अरु मस्तक में सुख है इसप्रकार शरीरमें हुये सुख दुःखका समकाल मेंही अनुभव होता है ताते, अरु श्रुतिने भी आत्माको सर्वव्यापी विभु कहा है, ताते आत्माको जो अणुपरिमाण कहते हैं सो भ्रान्ति से श्रुतिवाह्य कहते हैं । अरु स्थूलदेह आत्मा है । अरु सोई परमार्थनस्त्व है । इसप्रकार तिस स्थूलकेवेत्ता कोई एक चार्मक कहते हैं । सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि । मृत्तक अरु सुपुष्टि विषे भी भूतोंके संघातरूप शरीरसे चैतन्य पृथक्ही है शरीर आत्मानहीं । क्योंकि जिनभूतों का संघात शरीर है सो प्रत्येकभूत

कालइतिकालविदोदिशइति च तद्विदः । वादाइति
वादविदोभुवनानीतितद्विदः २४ ॥

को चेतन्यत्वके अभाव से जड़त्व है ताते जड़भूतोंका संघातरूप
शरीर काष्ठभारवत् जड़होने से इसको आत्मत्व सम्भवेनहीं ।
अरु "मूर्त्तइतिमूर्त्तविदो-अमूर्त्तइतितद्विदः" । मूर्त्तऐसे मूर्त्त के
वेत्ता अरु अमूर्त्त ऐरो तिनकेवेत्ता । कल्पना करते हैं ; अर्थात् त्रि-
शूलादिकोंके धारणकरता महेश्वर अरु चक्रादिकोंके धारणकरता
विष्णु । यह मूर्त्तपदार्थ परमार्थरूप है, ऐसे मूर्त्तकेवेत्ता आगमा-
भिमानी कल्पना करते हैं, परन्तु सोभी भ्रान्तिमात्रही है क्योंकि
मूर्त्तपदार्थ एकदेशी परिच्छिन्न कल्पहोने से नाशवान् होवेहै ताते ।
अरु सर्वआकार से रहित नि.स्वभाव जो अमूर्त्त सो परमार्थरूप
है, इसप्रकार तिस अमूर्त्त के वेत्ता शून्यवादी कल्पना करतेहैं, सो
भी केवल भ्रान्तिमात्रही है २३ ॥

२४ ॥ हे सौम्य ! "कालइतिकालविदोदिशइति चेतद्विदः" ।
काल ऐसे कालकेवेत्ता, अरु दिशा ऐसे दिशाके वेत्ता । कल्पना
करते हैं ; अर्थात् कालकेवेत्ता जे ज्योतिपी सो कालकोही परमार्थ-
रूपसे कल्पना करतेहैं, परन्तु सो कालभी परमार्थतत्त्वनहीं, क्योंकि
कालका एकरूपहोवै तो मुहूर्त्तादि व्यवहार, कि यह मुहूर्त्त श्रेष्ठ
है, अरु यह मुहूर्त्त नेष्ट है, तिसकी अयोग्यता है ताते, अरु तिन
मुहूर्त्तादि व्यापारकरके कालको श्रेष्ठता, अश्रेष्ठता आदिकनानात्व
है ताते ; अरु कालअन्य विषयोंकरके प्रतीयमान होताहै । अर्थात्
वृक्षके पत्र पातहोने से वसंतऋतु ज्ञातहोताहै ताते कालको स्व-
तन्त्रता अरु स्वप्रकाशता नहीं । अरु जो परमार्थतत्त्व हैं सो नाना-
त्वसे रहित एक एकरस सदा स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध चेतन्यहै ताते
कालके वेत्ता ओंका कथन जो 'कालही परमार्थतत्त्वहै, सो भ्रान्ति
मात्रही है । अरु स्वरोदयशास्त्र के वेत्ता पूर्वादि दिशाही परमार्थ
वस्तुहै इसप्रकार कहतेहैं सोभी भ्रान्तिमात्रही है ; अरु "वादा

मनइतिमनोविदोबुद्धिरिति च तद्विदः । चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विदः २५ ॥

इतिवादिदो भुवनानीतितद्विदः । वाद ऐसे वादकेवेत्ता, अरु भुवन ऐसे तिनकेवेत्ता । कल्पना करते हैं । अर्थात् धातुवादा रसायनशास्त्रा अरु मन्त्रवाद । मन्त्रशास्त्र । इत्यादिवाद परमार्थवस्तुरूप होते हैं, इसप्रकार वादके वेत्ता कल्पनाकरते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि ताम्रादिधातु सुवर्णादि अरु सुवर्णादि धातु ताम्रादि भावको प्राप्त होते एकरसताको त्यागके व्यभिचारी हैं अरु ओषधीके योगसे अपने स्वरूप स्वभावको त्यागते हैं, अरु आकारवान् परिच्छिन्न जड़ अनेकरूप परतन्त्र है, ताते इत्यादि दूषणयुक्त लोभका विषय धातु परमार्थतत्त्व होने के योग्य नहीं । अरु मन्त्रवादभी साधककाल आदिक अपनी कारक सामग्री के आधीनहोने से परतन्त्रतादि दोषयुक्तहुये परमार्थतत्त्वरूप होनेके योग्य नहीं । “वेदवादरतापार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः” “अन्या वाचोविमुच्यथ, वाचोविग्लायनं हि तत्” अरु चतुर्दश भुवन वस्तुरूप है, इसप्रकार उन भुवनकोशके वेत्ता कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है क्योंकि सो अदृष्ट अरु विवादका विषय है ताते २४ ॥

२५॥ हे सौम्य ! “मनइतिमनोविदोबुद्धिरिति च तद्विदः” मनइस प्रकार मनकेवेत्ता, अरु बुद्धि ऐसे तिस बुद्धिकेवेत्ता । कल्पना करते हैं, अर्थात् कोई एकमनकेवेत्ता चार्वाकमतकेभेद विशेषकेमतवादीपुरुष, मनही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इसप्रकार कल्पना करते हैं, सो उनका कहना भी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि मनस्वतन्त्र नहीं, चंचल है अरु विषयासक्तहुआ विवेकशून्य है, अरु अनात्मा होनेसे घटवत् करणविशेष है अरु जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है परन्तु दीपकका प्रकाशक तिससे अन्य चक्षु है, तैसे मन विषयोंको प्रकाशता है परन्तु उसको जड़होने से उसका सिद्धकर्ता

पञ्चविंशकइत्येके षड्विंशइतिचापरे । एकत्रिंशकइ
त्यादुरनन्तइतिचापरे २६ ॥

प्रकाशक साक्षीआत्मा उससे भिन्नही है । ताते उक्त दोषे स्वभाव
वाला मन आत्मा । परमार्थतत्त्व होनेके योग्यनहीं । अरु कोई
एकजे बुद्धि के वेत्ता बौद्धमत वादी है सो, बुद्धिही आत्मा । पर-
मार्थ तत्त्व । है, इसप्रकार कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्ति सेही
करते हैं क्योंकि सुषुप्तिविषे ज्ञातसे रहित हुई बुद्धि अपने कारण
अविद्या में लय होती है तब बुद्धिकी अभावरूप जड़ अवस्था का
प्रकाशक आत्मा पृथक्ही सिद्ध है ताते बुद्धिस्वरूपसेही ज्ञान
शून्य जड़ परतन्त्र होने से आत्मा परमार्थतत्त्वा होने के योग्य
नहीं । अरु "चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विद ।" चित्त
ऐसे चित्तके वेत्ता अरु धर्माधर्म ऐसे तिनके वेत्ता कल्पना करते हैं,
अर्थात् चित्तही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इसप्रकार चित्तके वेत्ता
कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि चित्तकी अन्त-
करणकी वृत्ति विशेष होने से सोभी उक्तदोष करके अरु कचित्
स्वस्थ अरु कचित् भ्रमी होनेसे परमार्थरूप होनेके योग्य नहीं ।
अरु जो धर्माधर्मके वेत्तामीमांसक धर्माधर्मकोही परमार्थरूप क-
हते हैं, सोभी श्रुतिबाह्य होनेसे भ्रान्तिमात्रही है । तथाच "अ-
न्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे परमार्थरूप
आत्मा धर्माधर्म से पृथक्ही है २५ ॥

२६ ॥ हे सौम्या । पञ्चविंशक इत्येके षड्विंशइतिचापरे । पञ्च
विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक अरु षड्विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक
कल्पना करते हैं, अर्थात् [प्रधान जो है सो मूलप्रकृति (मूलका-
रण है) है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत) यह
सात प्रकृति विकृति हैं । अर्थात् उक्त जो महदादि सप्त हैं सो
अग्रिम कहने के षोडश पदार्थ जो केवल विकृति (कार्य) ही हैं
तिनकी अपेक्षा से प्रकृति (कारण) है, अरु पूर्वकहा जो प्रधान मूल

लोकाँल्लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः । स्त्रीपुन्नपुंस
कैलैङ्गाः परापरमथापरे २७ ॥

प्रकृति तिसकी अपेक्षा से विकृति (कार्य) ही है । अरु पाँच
ज्ञानेन्द्रियां, पाँचकर्मेन्द्रियां, पाँच विषय, अरु एकमन, यह षोडश
पदार्थ केवल विकृति (कार्य) मात्रही हैं । इन षोडश विकृति प-
दार्थ कहे हैं तिन में जो पंच विषय हैं तिनके स्थान में कोई पंच
महाभूतों को भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि विषयकोही तन्मात्रा
कहते हैं सो पूर्व प्रकृति विकृति में कहा है ताते । अरु पुरुष तो
सर्व का द्रष्टा रूपही है, वो किसीका भी कार्य कारण नहीं ।
इसप्रकार पंचविंशति संख्यावाला प्रपंच वास्तव है, इसप्रकार
सांख्यवादी कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है । अरु उक्त पंचवीस
तत्त्वसे एक ईश्वर अधिकहोनेसे छव्वीस संख्यावाला प्रपंच पर-
मतत्त्व है इसप्रकार छव्वीसतत्त्वकेवेत्ता पातंजलि कल्पना करते
हैं, सो कल्पनाभी अयुक्तही है, क्योंकि ईश्वरका पुरुषविषे अंतर-
भाव है ताते, अरु जो ईश्वरका पुरुषविषे अन्तरभाव नहीं पृथक्
है तो ईश्वरको घटवत् अनीश्वरभावकी प्राप्तिका प्रसंगहोता है
ताते । अरु "एकत्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे" । ६ एकतीस
ऐसे कहते हैं, अनन्त ऐसे अन्यकहते हैं, अर्थात् उक्त पंचवीसतत्त्व
से 'राग, अविद्या, नियति, काल, कला, माया, यह छः अधिकहोने
से' हुये जो इकतीस संख्यावाला प्रपंच सो वस्तुरूप है, इसप्रकार
पाशुपत मतवादी कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है । अरु पदार्थों
के भेद अनन्त हैं नियमित । कि यह इतनाही है ऐसा । नहीं,
ताते अनन्तपदार्थ वस्तुरूप हैं, इसप्रकार अन्य मतावलम्बीवादी
कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है २६ ॥

२७॥ हे सौम्य ! "लोकान् लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः" ।
८ लोकोंको लोकके वेत्ता कहते हैं, अरु आश्रम ऐसे तिनकेवेत्ता । कल्प-
नाकरते हैं, अर्थात् लोकोंको रंजन (प्रसन्न) करनाही परमतत्त्व है,

सृष्टिरितिसृष्टिविदो लय इति च तद्विदः । स्थितिरिति स्थिति विदः सर्वे चेह तु सर्वदा २८ ॥

ऐसे लोकके वेत्ता कहते हैं, अर्थात् लोकोंको प्रसन्न करना ही परमार्थ तत्त्व है इस प्रकार लोकके वेत्ता लौकिकजन कल्पना करते हैं, सो भी विभ्रममात्र ही है, क्योंकि लोकोंकी भिन्न भिन्न रुची होने से उनके चित्तको अनुरंजन करना ईश्वर करके भी अशक्य है ताते। अरु दक्षादि आश्रमही परमार्थरूप हैं, इस प्रकार तिन आश्रमोंके वेत्ता कल्पना करते हैं, सो भी असत् ही हैं, क्योंकि आश्रम शब्दका अर्थ वेश है तिस वेशकी शूद्रादिपर्यन्त भी व्यासिका प्रसंगादिदोषोंकी प्रवृत्ति है ताते । अरु 'स्त्रीपुंनपुंसकल्लंगाः परापरमथापरे' स्त्री, पुरुष, नपुंसक, लिंगवाले, अरु इतरपर अपरको कल्पना करते हैं, अर्थात् 'स्त्री, पुरुष, अरु नपुंसक, इनतीन लिंगात्मक शब्दोंका समूह ही परमार्थरूप है, इस प्रकार वैयाकरणी कल्पना करते हैं, सो भी अयुक्त ही है । अरु कोई एक जे अपर अरु पर उभय ब्रह्मके माननेवाले हैं सो कहते हैं कि पर अरु अपर दोनों ब्रह्म परमवस्तु रूप हैं । सो उनका कथन भी यथार्थ नहीं, क्योंकि दो ब्रह्म होनेसे परस्पर में परिच्छिन्नतादि दोषकी प्राप्ति होती है ताते २७ ॥

२८॥ हे सौम्य ! 'सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इति च तद्विदः' 'सृष्टि' ऐसे सृष्टिके वेत्ता, अरु लय ऐसे तिसके वेत्ता कहते हैं, अर्थात् सृष्टि (जगदुत्पत्ति) ही तत्त्व है इस प्रकार सृष्टिके वेत्ता कहते हैं, वा कोई एकलयके माननेवाले कहते हैं कि लय ही तत्त्व है, अरु 'स्थितिरिति स्थिति विदः सर्वे चेह तु सर्वदा' 'स्थिति' ऐसे स्थितिके वेत्ता अरु यह सर्वतो सर्वदा है। ऐसे कहते हैं, अर्थात् स्थिति ही परमार्थतत्त्व है ऐसी कल्पना करते हैं, अरु उत्पत्ति स्थिति लय यह ही तत्त्व है, इस प्रकार पौराणिक कल्पना करते हैं, सो भी अयुक्त ही है, क्योंकि सत्से असत् की उत्पत्त्यादिकोंका अभाव वक्ष्यमाण है ताते, ॥ हे सौम्य ! अब [उक्त कल्पनाके अधिष्ठानको सूचित करते हैं]

“यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति । तच्चावतिस भूत्वा सौ तद्ग्रहः समुपैति तम् २६ ॥

उक्तानुक्त । अर्थात् जो कहे सो, अरु नहीं कहे सो । यावत् कल्पना के भेद हैं, सो सर्व यहां इस आत्माविषे तो सर्वदा कल्पनावस्थाविषे कल्पना करते हैं, परन्तु । जिस कल्पक से यह कल्पित हैं तिस । आत्मा को कल्पितपना नहीं, क्योंकि जो आत्मा भी कल्पित होय तो सर्व कोही कल्पित होनेसे सर्व कोही अधिष्ठानपनेकी अयोग्या प्राप्तहोती है ताते अरु । जो सर्वदा कल्पक आत्मा है सो कल्पित नहीं क्योंकि जिसको आत्मा का कल्पक मानेंगे सो आत्मा करके कल्पितही होगा, अरु जो कल्पित होगा तिसको असत् होनेसे उसविषे कल्पकपने का असंभव है । अरु अनवस्था दोष भी आवता है ताते । प्राणरूप प्राज्ञ सर्वका धीज रूप है, तिसके कार्य के भेदही अन्यस्थिति पर्यन्त । अपने कारण के लक्षण से भिन्न कार्यपने के लक्षण की स्थिति पर्यन्त । पदार्थ हैं, अरु अन्य सर्व लौकिक प्राणियों की सर्व कल्पना के कल्पित भेद हैं, सो जैसे रज्जुविषे सर्प, तैसे तिनसे रहित आत्मा विषे, आत्मस्वरूप के अनिदचय की हेतु जो अविद्या तिम्र अविद्या करके कल्पित है । यह २१, वें श्लोक से २८, वें श्लोक पर्यन्त नव श्लोकोंका समुदायरूप अर्थ है । प्राणादि श्लोकनके एक एक पदार्थोंके व्याख्यान का अल्पप्रयोजनके हुये प्रयत्न किया नहीं । यह भास्कराचार्य स्वामी की उक्ति है २८ ॥

२६ ॥ हे सौम्य ! “यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं सतु पश्यति” जिस पदार्थ के ताई जिसको देखावे है सो तो तिसको देखता है, अर्थात् बहुत कहने से क्या है, किन्तु प्राणादिकों के सव्य देखा अनुक्त जिस एक पदार्थ के ताई जिसको आचार्य वा अन्य असुत । जाग्रतहुआ । पुरुष “इदमेव तत्त्वमिति” यहही तत्त्व है इसप्रकार देखावता (लखावता) है सो पुरुष तो निसपदार्थ

एतैरेषोऽपृथग्भावेः पृथगेवेति लक्षितः ।

एवंयोवेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः ३० ॥

को “अयमहमिति वा ममेति” “यह मैं हूँ वा मेरा है” इस प्रकार आत्मरूप देखता है । अरु तिस देखनेवाले को यह पदार्थ जैसा गुरु आदिकों ने देखाया है सो तैसा होके उसकी रक्षा करता है, अर्थात् अपने स्वरूपकरके उराको सर्व ओर से रोकता है । अर्थात् मनुष्योंको आचार्य जिसपदार्थविषे निश्चय करावता है सो पदार्थ पुनः अपने से अन्य पदार्थोंमें उस पुरुषका निश्चय होने देता नहीं किन्तु अपनी ओरही खींचता है । “तज्चावति स भूत्वाऽसौ तद् ग्रहः समुपैतितम्” “तिसविषे आग्रह है सो तिसको प्राप्त होता है” अर्थात् तिस पदार्थविषे यहही तत्त्व है ऐसा जो आग्रहरूप अभिनिवेश है सो तिस ग्रहण करनेवाले को प्राप्त होता है, अर्थात् सो तिसके आत्मभाव को प्राप्त होता है २६ ॥

३० ॥ हे सौम्य! उक्तज्ञानकी स्तुत्यर्थ यह श्लोक कहते हैं? “एतैरेषोऽपृथग्भावेः पृथगेवेति लक्षितः” “इन अपृथक्भावों से यह पृथक्ही है ऐसे लक्ष्यकराया है” अर्थात् इन प्राणादि आत्मा से अपृथक् भूतकरके अपृथक्भावों से यह आत्मा सर्पादिक कल्पनारूप भावोंसे रज्जुवत् पृथक्ही है, इसप्रकार लक्ष्यकराया है अर्थात् रज्जुके आश्रय कल्पितसर्प रज्जुसे अपृथक्हुआ भावरूप है, परन्तु उस कल्पित सर्पादिकों से अकल्पित सत्यरूप रज्जु पृथक्ही है अर्थात् कल्पितसर्पका आश्रय होने से उस अधिष्ठानरूप रज्जुका उस सर्पविषे अन्वय है, अरु उस अकल्पित अधिष्ठानरूप रज्जुविषे अध्यस्त सर्प का व्यतिरेक है, तैसे आत्मरूप अधिष्ठानके आश्रय कल्पित अरु अधिष्ठान से अभिन्न भावरूप प्राणादिक तिसविषे आत्मा का आश्रयरूप से अन्वय है, अरु उन कल्पित प्राणादिकों का अकल्पित आत्मरूप अधिष्ठानविषे व्यतिरेक है, ताते वो सत्यरूप आत्मा कल्पितभानरूप प्राणादिकों से

पृथक्ही है, इसप्रकार आचार्य ने लक्ष्यकरायाहै । तथापि मूढ़ पुरुषों करके अलक्षितही है " विमूढानानुपश्यन्ति " । अर्थात् कल्पित प्राणादिकों की स्वाधिष्ठान आत्मा से पृथक् सत्ताके अभावसे सो आत्मरूपही है, परन्तु सो अविवेकी को तैसा भासता नहीं । अरु विवेकी पुरुषों को, रज्जुविषे कल्पित सर्पादिकों-वत् प्राणादिक आत्मा से पृथक् नहीं । अर्थात् जो जिसके आश्रयभासताहै तिसकी स्वसत्ताके अभावसे वो अपने आश्रयसे अ-पृथक्हुआ सोई रूपहै, इसप्रकार "पश्यन्तिज्ञानचक्षुषः" विवेकी पुरुष देखते हैं । यह अभिप्राय है ॥ "इदं सर्वं पदमात्मेति" यह सर्वपदआत्मा है । इस श्रुतिप्रमाण से । "एवं यो वेदतत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशंकितः " इसप्रकार तत्त्वसे जानताहै सो शंकारहित हुआ कल्पताहै, अर्थात् जो उक्तप्रकार [उक्त प्रकारके ज्ञान वाला जो पुरुषहै सो वेदका किंकर होतानहीं, किन्तु सो वेदके जिस अर्थको कहताहै सोई वेदार्थहोता है यह अर्थहै] रज्जुसर्पवत् आत्माविषे कल्पित अनात्म प्रदायोंके स्वाधिष्ठानसे पृथक् हुये असत्भावको, अरु कल्पना कल्पितसेरहितानिर्विकल्पासर्वाधिष्ठाना आत्माके । सद्भाव । को जोपुरुष । आत्मज्ञान (महावाक्यार्थज्ञान) रूप तत्त्वकरके श्रुतिके वाक्य प्रमाणसे अरु अनुभव युक्तिप्रमाणसे जानताहै, सो शंकारहित हुआ यह वाक्य इसके अर्थ के परहै, अरु यह अन्य अर्थ के परहै, इसप्रकार विभागसे वेदार्थ को कल्पताहै । अरु यहाँ । इसअर्थविषे मनुमहाराजका वचन प्रमाणहै " न ह्यनध्यात्मविद्वेदान् ज्ञातुं शक्नोति तत्त्वतः । न ह्यनात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुत, इति मनुचनम्,, ' अध्यात्मतत्त्व का न जाननेवाला वेदों को तत्त्वकरके जानने को समर्थहोता नहीं, अरु कोई भी अनात्मवेत्ता क्रिया (प्रमाण) के फल (तत्त्वज्ञानको पावतानहीं) यह मनुमहाराज का वचनहै ३० ॥

३१ ॥ हे सौम्य ! [जिनयुक्तियोंकरके इस वेत्तथ्याख्यप्रकरणविषे

स्वप्नमायेयथादृष्टे गन्धर्वनगरंयथा । तथाविश्वमि
दंदृष्टं वेदान्तेषुविचक्षणैः ३१ ॥

द्वैतका मिथ्यापना कहाहे तिनयुक्तियोंको प्रमाणके अनुग्रहकरके
युक्त होनेसे तिनकी यथार्थता निश्चय करने के योग्य है, ऐसे कहते हैं।
जो यह द्वैतका असद्भाव युक्तिसे कहा सो वेदान्त (उपनिषद्) के
प्रमाणसे निश्चित है, इस प्रकार कहते हैं। "स्वप्नमायेयथादृष्टे गन्धर्व
नगरंयथा" । जैसे स्वप्न माया देखे हैं, जैसे गन्धर्वनगर । देखे हैं।
अर्थात् स्वप्न अरु माया (इन्द्रजालीकृतकौतुक) असत् वस्तु
रूप असत्य हैं, तथापि सो अविवेकी जनोकरके सत् वस्तुरूप हुये-
वत् लखने में आवता है, अरु सो (स्वप्न, माया) विवेकी जनोकरके
असत् रूप लखने में आवता है अर्थात् जो पुरुष स्वप्न अरु माया के
वर्तमान काल में ही यह स्वप्न अरु माया ही है, इस प्रकार यथार्थ
अनुभवसे सम्यक् प्रकार जानता है सो उनको असत्य ही मान-
ता है । अरु जैसे जहां तहां स्वपाणि प्रसारित वत् प्रकटताको
प्राप्त हुये क्रयविक्रय करने योग्यादि रूप पदार्थों करके सम्पन्न
हों (धजारां) करके युक्त गृहगोपुर अट्टालियां प्रासादादि अरु
स्त्री पुरुष पशु आदिरूप व्यवहारों करके पूर्ण हुये वत् सत् रूप
करके देखा हुआ ही गन्धर्वनगर अकस्मात् ही अभावको प्राप्त होता
देखा है । " तथा विश्वमिदंदृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः " तैत्तिरीय यह विश्व
देखा है वेदान्त विषे विचक्षण । पुरुषों । करके । अर्थात् जैसे
स्वप्न जगत्, मायावी की माया, अरु गन्धर्व नगर, यह प्रत्यक्ष
भासते संते भी असत्य ही हैं, तैसे ही यह विश्व भी देखा है
'प्रश्न' कहा किन्होंने देखा है 'उत्तर' कहते हैं, " नेह नानास्ति
'किञ्चन' " " इन्द्रो मायाभिः " " आत्मे वेदमग्र आसीत् " " ब्रह्मे
वेदमग्र आसीत् " " तत्त्वेन सौम्येदमग्र आसीत् " " द्विती-
याद्विभयं भवति " " ननु तद् द्वितीयमस्ति " " यत्र त्वस्य सर्वं
मात्मेवाभूदित्यादिषु " < यहां नाना कुछ भी नहीं । परमात्मा

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न
वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ३२ ॥

माया करके नानारूप को प्राप्त होता है। यह आगे आत्मा ही
था। यह आगे ब्रह्म ही था। हे सौम्य! यह आगे एक सत् ही था। दूसरे से
निश्चय करके भय होता है। सो द्वितीय तो है नहीं। जहां तो इसको
सर्व आत्मा ही होता हुआ। इत्यादि उपनिषद् रूप वैदान्त विषे लक्षित
जे एक परमार्थ वस्तु के देखनेवाले अत्यन्त निष्पुणतर साक्षात्
आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पंडितरूप विलक्षण पुरुष करके देखा है॥
तथाच “तमः श्वभ्रश्लिभंदृष्टं वर्षपुद्गुदसश्लिभं, नाशप्रायं सुखा-
च्छीनं नाशोत्तरमभावगमिति हि” सन्द अन्धकार विषे स्थित रज्जु
विषे भूच्छिदादिकों के तुल्य अरु वर्षा पुद्गुद के तुल्य नाश करके
प्रस्त सुख से हीन नाशोत्तर अभावरूपता को प्राप्त होनेवाला
विश्व विवेकियों करके दृश्य है, इस व्यास स्मृति के प्रमाण से भी
द्वैत वस्तु का असद्भाव ही निश्चित है ३१ ॥

३२ ॥ हे सौम्य! प्रमाण अरु युक्ति से द्वैत के मिथ्यापने के साधने
करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इस प्रकार सिद्ध हुये, तिस निर्धार
किये अर्थ को इस श्लोक निषे संक्षेप से कहते हैं; अथ । इस द्वि-
तीय प्रकरण की समाप्तिके अर्थ यह श्लोक कहते हैं। जब द्वैत मिथ्या
है अरु एक अद्वैत आत्मा ही परमार्थ से सत् रूप है तब यह सिद्ध
हुआ कि “न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः, न मुमुक्षु
न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता” । निरोध नहीं पुनः उत्पत्ति भी नहीं,
वद्ध नहीं, साधक नहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं, यह परमार्थता
नहीं अर्थात् यह, सर्वलौकिक अरु वैदिक व्यवहार अविद्या का
विषय । अज्ञान पर्यन्त । हे तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उ-
त्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति
नहीं तब वद्ध कहिये संसारी जीव सो भी नहीं; अरु जब वद्ध नहीं
तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न
वैमुक्त इत्येषा परमार्थता ३२ ॥

माया करके नानारूप को प्राप्त होता है। यह आगे आत्मा ही था। यह आगे ब्रह्म ही था। हे सौम्य! यह आगे एक सत् ही था। दूसरे से निश्चय करके भय होता है। तो द्वितीय तो है नहीं। जहाँ तो इसको सर्व आत्मा ही होता हुआ। इत्यादि उपनिषद् रूप वेदान्त विषे लक्षित जे एक परमार्थ वस्तु के देखनेवाले अत्यन्त निष्ठुणतर साक्षात् आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पंडित रूप मिलक्षण पुरुष करके देखा है॥ तथाच “तमः श्वभ्रान्निभंदृष्टं वर्षघुद्घुदसन्निभं, नाशप्रायं सुखा-
च्छीनं नाशोत्तरमभावगमिति हि” मन्द अन्धकार विषे स्थित रज्जु विषे भूच्छिदादिकों के तुल्य अरु वर्षा घुद्घुदके तुल्य नाश करके प्रस्त सुख से हीन नाशोत्तर अभावरूपता को प्राप्त होनेवाला मित्र विवेकियों करके दृश्य है, इस व्यास स्मृति के प्रमाण से भी द्वैत वस्तु का असद्भाव ही निश्चित है ३१ ॥

३२ ॥ हे सौम्य! प्रमाण अरु युक्ति से द्वैत के मिथ्यापने के साधने करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इस प्रकार सिद्ध हुये, तिसन्निर्धार किये अर्थको इस श्लोक विषे संक्षेप से कहते हैं ३; अब इस द्वितीय प्रकरण की समाप्तिके अर्थ यह श्लोक कहते हैं। जब द्वैत मिथ्या है अरु एक अद्वैत आत्मा ही परमार्थ से सत् रूप है तब यह सिद्ध हुआ कि “न निरोधो, न चोत्पत्तिर्न वद्धो न च साधकः, न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता” निरोध नहीं पुनः उत्पत्ति भी नहीं, वद्ध नहीं, साधक नहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं, यह परमार्थता नहीं अर्थात् यह सर्वलौकिक अरु वैदिक व्याख्यान अविद्या का विषय अज्ञान पर्यन्त। हे तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उत्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति नहीं तब वद्ध कहिये संसारी जीवों सो भी नहीं, अरु जब वद्ध नहीं तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु

मुमुक्षु कहिये साधन सम्पन्न सोल्लकी इच्छावाला सो भी नहीं, अरु जब बद्धसे मुमुक्षु पर्यन्त नहीं तब मुक्त कहिये सर्व बन्धनों से छूटा पुरुष सो भी नहीं । इस प्रकार उत्पत्ति प्रलयके अभाव से बद्धादिक कुछभी हैं नहीं, यह परमार्थता है ॥ [उक्तार्थकोही प्रश्नोत्तर से विस्तार करते हैं] प्रश्न । उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव कैसे है, उत्तर । इस द्वैतके असंज्ञावसे उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव है, क्योंकि “यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति,” “य इहनानेव पश्यति” “आत्मैवेदं सर्वम्” “ब्रह्मैवेदं सर्वम्” “एकमेवाद्वितीयमिदं सर्वम्” “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” “यदयमात्मा” “नेहनानास्ति किञ्चन” (जहाँही द्वैतवत् होता है तहाँ और को और देखता है, जो यहाँ एक अद्वैत आत्म तत्त्वविषे । नानात्ववत् देखता है, आत्माही यह सर्व है, ब्रह्मही, यह सर्व है, एकही अद्वितीय। यह सर्व है, निश्चय करके सर्व ब्रह्मही है, जो यह आत्मा है, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके द्वैत का असंज्ञाव ही सिद्ध है । अरु सत्त्वस्तुकीही उत्पत्ति वा प्रलय होती है, शशशृंग । खरहाके सींग । आदिक असत्पदार्थों की उत्पत्ति प्रलयहोवे नहीं अरु अद्वैतवस्तु भी, उत्पत्ति वा लय होती नहीं । अर्थात् जो वस्तु उत्पत्ति अरु लय होती है सो दूसरेकी हेतुवाली है, क्योंकि जो उपजती है सो अपने से इतर कारण से उपजती है, अरु दूसरे में ही लीन होती है ताते । अरु अद्वैत है सो उत्पत्तिवालाभी है यह कहना विरुद्ध है । एतदर्थ ही जो पुनः प्राणादिरूप अद्वैतका व्यवहार है सो रज्जु विषे सर्पवत् आत्मा विषे कल्पित है, इस प्रकार कहा है अरु रज्जु सर्पादिरूप जो मनकी कल्पना है तिसके रज्जु विषे उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है, अरु तैसेही मनविषे रज्जु सर्पकी उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है । अरु रज्जु अरु मन दोनों से भी नहीं है तैसेही द्वैत को मनकी कार्यताके अविशेषसे । अर्थात् द्वैत प्रपञ्चको मनकी कार्यतारूप विशेषके अभाव से । तिसद्वैतकी उत्पत्ति वा प्रलयबने

नहीं । अरु जिस करके निरोध किये । अफुरहुये । मनविषे वां
 सुपुप्तिविषे द्वैत देखतेनहीं । एतदर्थ मनकी कल्पनामात्रही द्वैत है
 यह सिद्धहुआ । तातेही कहाहै कि द्वैतके सुसद्भावसे निरोधादि-
 कों का अभाव परमार्थता है, ॥ हे सौम्य ! जब उक्तप्रकार द्वैतके
 अभाव विषे शास्त्रका व्यापार है, द्वैतविषे नहीं, क्योंकि अभावके
 बोधन विषे व्याप्तजो शास्त्र तिसका भाव के बोधनविषे व्यापार
 होनेका विरोधहै ताते । अरु तैसेहुये । अर्थात् अभाव बोधकशास्त्र
 को भावबोधनसे विरोधहुये । अद्वैतकी वस्तुरूपताविषे प्रमाण के
 अभावहुये अरु द्वैतके अभावहुये शून्यवादका प्रसंगप्राप्त होवेगा
 । जहां वादी की ऐसी शंका है । तहां सिद्धांती समाधान कहेहै,
 यह वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि जैसे रज्जु सर्पादिकों की
 कल्पना को निराश्रयता का असंभव है । अर्थात् रज्जु सर्पादिक
 यावत्कल्पनाहै सो निराश्रयहोतीनहीं । तैसेही द्वैतकी कल्पनाको
 अधिष्ठान (आश्रय) से रहितपने का असंभव है ताते, एत-
 दर्थ तिस द्वैत का अधिष्ठान हानेकरके अद्वैत आस्था करने के
 योग्यहै । इस प्रकार अकारके प्रकरणविषे इसशंकाका समाधान
 हमने कियाहै तिसको तू पुनः कैसे उठावताहै ॥ । यह सिद्धान्तीके
 कहनेपर शून्यवादी । कहता है कि सर्पादि सर्प विकल्पों की आश्र-
 य रूप जो रज्जु सोभी तुम्हारे मतविषे कल्पितहीहै, इस प्रकार
 द्वैत का सम्भव है, । सो वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि
 कल्पनाके दायहुये अशेष रही अवधिरूप सत्ताको रज्जु आदि-
 कों विषे देखतेहैं ताते । अरु द्वैतभ्रमके बोधका साक्षी होने करके
 जो स्फूर्तिमात्र चैतन्य है तिसको अकल्पित होने करकेही सद्भाव
 का सम्भव है ताते शून्यभाङ्गी प्राप्तिहै नहीं ॥ अरु जो कदापि
 ऐसा कहे कि रज्जु सर्पवत् अद्वैत का अनन्ताव है, सो भी बने
 नहीं, क्योंकि आत्मा । भ्रमरूप न होके । भ्रमका साक्षी है ताते ।
 सर्प के अभावके (भ्रान्ति) ज्ञानसे पूर्ण अकल्पित रज्जुके अंश-
 वत् नियमसे अकल्पितहै ताते । अरु कल्पनाके कर्त्ता को कल्पना

की उत्पत्ति से पूर्व सिद्ध होनेके अंगीकारसे ही तिसके असद्भाव का असम्भव है । अर्थात् कल्पना के कर्त्ता की कल्पनासे पूर्व अरु पश्चात् सिद्ध होने से अरु कल्पना के भावाभाव का साक्षीहोने से तिसका असद्भाव कदापि सिद्ध होवे नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि अद्वैत स्वरूप विषे व्यापारके अभावहुये पुनः शास्त्रको द्वैतके ज्ञानकी निवर्त्तकता कैसे होवेगी, सो दोषभी नहीं, क्योंकि रज्जु विषे सर्पादिकों वत् आत्माविषे द्वैतको अविद्या करके अध्यस्तपना है ताते अरु अध्यस्त द्वैतके निवर्त्तक शास्त्रको भी अध्यस्तपना है ताते । प्रश्न । आत्माविषे द्वैतका अध्यस्तपना कैसे है । उत्तर । जन्माहों, सुखीहों, दुःखीहों जीर्णहूआहों, मरताहों, मूढ़हों देहवान् हों, देखताहों, स्थूलहों, सूक्ष्महों, कर्त्ताहों, भोक्ताहों, संयोग वियोगवान् हों, बृद्धहों, जर्जरहों, यह मेराहैं मैं इसकाहों, इत्यादि सर्व-विकल्प आत्माविषे अध्यस्तहोवे है । जैसे सर्प जल-धारादिक भेदों विषे अव्यभिचारसे रज्जु अनुगत है । तसे सर्वत्र अव्यभिचारसे इनविषे आत्मा अनुगत है । जब इसप्रकार विशेष्य के स्वरूपकी प्रतीतिको सिद्ध होनेसे, शास्त्रसे कर्त्तव्यताहै नहीं, अरु अकृतवस्तुका कर्त्ता जो शास्त्र है सो कृतवस्तुके अनुसारीपने के हुये अप्रमाणहोवेगा । अरु जिसकरके आत्माका अविद्या से आरोपित सुखीपनादिक जे विशेष प्रतिबन्ध तिसके स्वरूपसे अनवस्थान, अरु स्वरूपसे अवस्थान श्रेय है, ताते सुखीदुःखीपने आदिकोंका निवर्त्तक जो शास्त्र है सो “नेति नेति” “अस्थूल-मनएवं” इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से आत्माविषे असुखीपने आदिकोंकी प्रतीतिके करने से आत्मस्वरूपवत् असुखीपनादिक भी सुखीपने आदिक भेदोंविषे अनुगतधर्म नहीं है, अरु जब अनुगतहोय तब सो सुखीपनेआदिकरूप विशेष आरोपित न होगा । जैसे उष्णत्वारूप गुणविशेषवाले अग्निविषे शीतता है तैसे । एतदर्थतिस निर्विशेषही आत्माविषे सुखीपने आदिक विशेष कल्पित है । अरु जो आत्माके असुखीपने आदिकों का जो प्रतिपादक

भावेरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः । भावांश्चप्यद्वये
नैव तस्मादद्वयताशिवा ३३ ॥

शास्त्रहै, सो तिसके सुखीपने आदिक विशेषकी निवृत्तिके
अर्थही है, यह सिद्धहुआ, । यहां “सिद्धन्तु निवर्तकत्वात्” वसिद्ध
है निवर्तक होनेसे, इसप्रकार वेदकेवेत्ता द्रविडाचार्य का सूत्र
प्रमाणहै ॥ [यहां इस सूत्रका यह अर्थ है कि ब्रह्म विषे पदों की
प्रवृत्ति के अभाव हुयेभी शास्त्रका प्रमाणिकपना सिद्धही है,
क्योंकि अभावके धोधनविषे प्रवृत्त “नञ् (नकार)” पदकरके
युक्त स्थूलादिक अर्थवालेपदों से स्वाभाविक द्वैत के अभाव के
धोधन करके अप्यस्त का निवर्तकहै ताते,] ३२ ॥

३३ ॥ हेसौम्य ! [निरोधादिकं सर्व विशेषके अभावकरके उप-
लक्षित जो वस्तुहै सो वास्तव रूप है, ऐसा उक्त श्लोक का अर्थ
है । तिसको सामान्य विशेष वस्तुविषे विशेषता से आश्रय करके
निरोधादिकों का सम्यक् साधनरूप होनेसे, तिसके असत्पनेकी
शंकाकरतेहैं, तिसहेतुकरके तिसके साधनेकी अपेक्षा होनेसे तिसके
लखावनेके परायण यहश्लोकहै] अवपूर्वकहै श्लोकका हेतुकहतेहैं
“भावेरसद्भिरेवायमद्वयेनचकल्पितः” असत् रूपही भावोंसे अरु
अद्वैत से यह कल्पितहै, अर्थात् जैसे रज्जुविषे असत् रूप सर्प अरु
जलधारादिकों से, अरु सद्रूप अद्वैत रज्जु द्रव्यसे, यह सर्प है वा
यह जलधारा है वा यह भूदरार है वा यह दण्ड है, इत्यादि प्रकार
से रज्जु द्रव्यही कल्पना करते हैं । इसप्रकार ही अविद्यमान
प्राणादिक अनन्त असत् वस्तुओंसेही यह आत्मा कल्पना करते
हैं, परमार्थ से तिनकी सत्ता नहीं । अर्थात् आत्मासे इतर प्राणा-
दिकों की पृथक् सत्ताके अभावसे यह प्राणहै यह मन है यह इं-
द्रियहै, इसप्रकार आत्माकोही कल्पते हैं । अरु जिसकरके अचल
संकल्पादि सर्ववृत्तिसे रहित अफुर । हुये मनविषे कोईभी पदार्थ
किसीकरके भी जाननेको शक्य होतानहीं अरु आत्माका चलन

नात्मभावेन नानेदं नस्वेनार्पि कथञ्चन ॥ न पृथङ्ना
पृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदो विदुः ३४ ॥

कल्पना करने को अशक्य है, अरु चंचलतासे रहित आत्माके ही प्रतीयमान जो भाव है सो परमार्थसे सत् रूप कल्पना करने को शक्य है नहीं, एतदर्थ असद्रूपही प्राणादि भावोंसे, अरु रज्जुवत् सर्व विकल्पके आश्रयभूत परमार्थ सत् रूप आप अद्वैतसे एकसत् स्वभाव वाला हुआ भी यह आत्मा आप ही कल्पित है। अरु “भावोऽप्यद्वयेनैव तस्मादद्वयता शिवा” भाव भी अद्वयसे ही कल्पित हैं तस्मात् अद्वयता शिव है ? अर्थात् पुनः वे प्राणादि भाव भी सद्रूप अद्वैत आत्मासे ही कल्पित हैं। अरु जिस करके अधिष्ठान आश्रय रहित कोई भी कल्पना देखते नहीं, एतदर्थ सर्व कल्पना का अधिष्ठान होनेसे अपने स्वरूपसे अद्वैतताके अव्यभिचारसे कल्पनावस्थामें भी अद्वैतता शिव कहिये कल्याण रूप ही है। अरु सो कल्पना ही तो रज्जु सर्प आदिको वत्। जन्म मरणादि लक्षण रूप। भय की कारण है एतदर्थ ही अशिव रूप है, अरु भय का कारण जे कल्पना तिससे पृथक् कल्पना रहित अरु तिनका आश्रय। जो अद्वयता सो जिस करके अभयरूप है क्योंकि “अभयं वै जनकप्राप्तोऽसीति” इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे एक अद्वयरूप आत्मा को जाननेवाला अभयरूप अपने आपको प्राप्त होता है। ताते सोई सर्वका परमकल्याण शिव रूप है। “विद्वान्न विभेति कदाचन” ३३ ॥

३४ ॥ हे सोम्य ! [किंवा यह नाना रूप द्वैत क्या आत्माके तादात्म्यसे सिद्ध होता है, वा स्वतन्त्र सिद्ध होता है। यह विवेचन करने के योग्य है। तिनमें प्रथमपक्ष आत्मा की तादात्म्यता। बने नहीं। यहाँ यह अर्थ है कि यह नाना रूप द्वैत आत्माके तादात्म्यसे सिद्ध होने के योग्य नहीं, क्योंकि परस्परमें विरुद्ध स्वभाववाले जे जड़ अरु अजड़ तिनके तादात्म्यका असम्भव है ताते। अरु सर्व

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः । निर्विकल्पो
ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽह्यः ३५ ॥

भेदसे रहित जो आत्मा तिससे तादात्म्य के हुये द्वैत के नानापने की असिद्धि होवेगी ताते] अद्वैतता शिवरूपकहाँसे होवेगी, क्योंकि जहाँ अन्य से अन्यका नानारूप भिन्नपना देखा है तहाँ अशिव होता है, । ऐसा जो कदापि वादी कहे सो नहीं । क्योंकि "नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन" यह आत्मभाव से नाना नहीं, अपने से भी कदाचिन्नहीं ; अर्थात् जिसकरके इस परमार्थ से सत् रूप आत्मा विषे प्राणादिक संसार का समूहरूप यह जगत् आत्मभाव (परमार्थरूप) से नाना कहिये आत्मा से अन्य वस्तुरूप होतानहीं । जैसे रज्जु स्वरूपसे प्रकाशकर निरूपण किया जो कल्पित सर्प सो नानारूप नहीं, तद्वत् । अरु अपने प्राणादिक स्वरूपसे भी यह जगत् कदाचित् भी विद्यमान है नहीं, क्योंकि रज्जु में सर्पवत् कल्पित है ताते, अरु जैसे अश्व से महिष पृथक् ही विद्यमान है, तैसे प्राणादि वस्तु परस्परमें भिन्न नहीं । एतदर्थ "न पृथङ्ना पृथक्किञ्चिदितित्त्वविदो विदुः" पृथक् अथक् कुछ भी नहीं ऐसे तत्त्वके वेत्ता कहते हैं ; अर्थात् । नानात्वको असत् होने से परस्पर में वा अन्य से कुछ भी पृथक् नहीं, इस प्रकार परमार्थ तत्त्वके वेत्ता ब्राह्मण जानते हैं । एतदर्थ अशिव की हेतुता के अभाव से अद्वैतता ही शिवरूप है । यह अभि-
प्राय है ३४ ॥

३५ ॥ हे सौम्य ! यह जो सम्यक् दर्शन कहा अथ तिसकी स्तुति करते हैं । "वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः" रागभयक्रोध से रहित मुनि अरु वेदके पारको प्राप्त हुये पुरुषों करके ; अर्थात् विगत कहिये अभाव हुये हैं राग भय क्रोधादिक सर्व दोष जिनके, । अर्थात् राग भय क्रोधादिक दोष जे सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्ति में प्रतिबंधक हैं तिनका हेतु अविद्या जन्य द्वैतभाव है सो जिसका

तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् ।

अद्वैतंसमनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ३६ ॥

एक अद्वैत आत्मज्ञान करके निर्मूल होता है तब रागादि सर्व दोषों का अभाव होता है, इसप्रकार जे रागादि दोष रहित अरु सर्वदो मनन करने के स्वभाववाले मननशील परम विवेकी मुनि, अरु वेदके पारको प्राप्तहुये जे वेदार्थ तत्त्वके ज्ञाता अरु वेदान्तके अर्थविषे परम बोधवान्, ऐसे पुरुषोंकरकेही "निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः" ६ निर्विकल्प प्रपञ्चके उपशमवाला अद्वैतरूप यहदेखा (जान्या) है ॥ अर्थात् उक्तप्रकारके मुनि ज्ञानी पुरुषोंकरके सर्व विकल्प से रहित अरु द्वैतभेद के विस्ताररूप प्रपञ्च के अभाववाला, इसहीसे अद्वैतरूप यह आत्मा देखा जान्या, यथार्थ अनुभवकिया है । इस कहनेका अभिप्राय यहहै कि द्वेषादि दोषरहित वेदांतके अर्थविषे तत्पूर पंडित संन्यासी करकेही परमात्मा देखने । अनुभव करने । की शक्य है । अरु तिनसे इतर रागादि दोषकरके मलिनहुये चित्तवाले, अरु अपने पक्षपातके देखनेवाले तार्किकादिकों करके नहीं " न कर्मिणो प्रवेदयन्ते रागात् " " नैया तर्केण मतिरापनेया " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से । ३५ ॥

३६ ॥ हेसौम्य ! "तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम्" ६ ताते ऐसे ज्ञानके अद्वैतविषे स्मृतिको जोड़ना ॥ अर्थात् । जिस करके परमार्थरूप अद्वय आत्मा उक्त प्रकारका शिवरूपहै । ताते इसप्रकार उपनिषदादि वेदान्त । शास्त्रसे सम्यक् प्रकार ज्ञानके अद्वैतविषे स्मृति को जोड़ना लगावना । अर्थात् अद्वैतके ज्ञानार्थ स्मृतिकरना वा रखना । अर्थात् जबशास्त्र अरु आचार्यकरके सम्यक् अद्वैततत्त्वका यथार्थ साक्षात् अनुभवपूर्वक उसका दृढ़निश्चयात्मक भाव होताहै तब असत् नामरूप क्रियात्मक जगत् तिसकी संकारणविस्मृतिरूप निर्विकल्प अवस्थाने समाधिसे जब उत्थान

निस्स्तुतिर्निर्ममस्कारो निःस्वधाकार एव च ॥ चला
चलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत् ३७ ॥

होवे तब प्रत्यक्ष भासमान जे मृगतृष्णाके जलवत्पञ्चविषयात्मक
समस्त जगत् तिसविषे तिसके अधिष्ठानकी स्मृतिकरना कि यह
सर्व नानात्मक द्वैत अपने अद्वैताधिष्ठान से इतर नहीं यह वोही
रूपहे सो अद्वय अधिष्ठानही सर्वात्मा है, ताते “मत्तः परतरन्नो-
न्यत् किञ्चिदस्ति” मुझ सर्वाधिष्ठानसे इतर कुछभी नहीं, इस
प्रकार अपनी दृढ़ भावनारूप स्मृतिको अद्वैत तत्त्व में जोड़ना ।
अरु “अद्वैतसमनुप्राप्य जडबल्लोकमाचरेत्” अद्वैत को सम्यक्
प्रकार प्राप्त होके जड़वत् लोकविषे विचरे ? अर्थात् उक्तप्रकार
अद्वैतमें स्मृतिको योजताकरके । इस अद्वैतको “अहं ब्रह्मास्मि”
में ब्रह्महो, ऐसे सम्यक् प्रकार जानके सर्वलौकिक व्यवहार
को त्यागके । केवल शरीर यात्रामात्रके लिये । जड़ (मूर्ख) वत्
हुआ लोकविषे विचरे । अभिप्राय यह है कि मैं इसप्रकार का
यहहो, ऐसे आपको विद्या अरु कुलादिक से अप्रख्यात अरु अपने
लक्ष्यको अप्रकट करता हुआ विद्वान् ज्ञानी लोक विषे विचरे ।
“भिक्षचर्य्यचरन्ति” ३६ ॥

३७ ॥ हे सौम्य प्रश्न । पूर्वकहा जो विद्वान् जड़वत् हुआ लोक
विषे विचरे सो । किस आचरण से विचरे । उत्तर “निस्स्तुति
निर्ममस्कारो निःस्वधाकार एव च” स्तुति से रहित, नमस्कार से
रहित, स्वधाकार से रहितही होवे ? अर्थात् । अपने आत्मा से ।
अन्य देवताओं की स्तुति (आराधनादिक) से रहित होवे, अरु
मनुष्यों (ब्राह्मणादिकों) के अर्थ नमस्कारादिकों से रहित होवे,
अरु पितरों के अर्थ स्वधाकार से रहित होवे । अर्थात् उक्तप्रकार
का एकात्मदर्शी विद्वान्, स्तुति यज्ञादि देवकार्य से, अरु नम-
स्कार आतिथ्यादि मनुष्यकार्य से, अरु स्वधाश्राद्धादिक पितृकार्य
से, रहित यती (संन्यासी) ही होवे । अभिप्राय यह है कि स्तुति

नमस्कारादि सर्व कर्मों से रहित, अरु तिनकर्मों में प्रवृत्ति के हेतु जे, वित्तैपणा, पुत्रैपणा, लोकैपणा, अर्थात् वित्त पुत्र अरु स्वर्ग लोक, इनकी कामना तिसका अशेषत्यागी हुआ परम हंस परि-
 घाट् आश्रमको प्राप्तहोवे “ एतंवैतमात्मानंविदित्वेत्यादिश्रुतेः ”
 “तद्वुद्ध्यस्तदात्मानस्तश्चिप्तास्तत्परायण इत्यादिस्मृतेश्च” इस
 प्रसिद्ध तिसआत्माको जानके । अरु तिसविषे युद्धिवालेतिसरूप
 तिस विषे निष्ठावाले तिसपरायणहुये इत्यादि श्रुति स्मृतियों के
 प्रमाणसे । अरु “ चलाचलनिकेतश्चदतिर्यादृच्छिकोभवेत् ” “ च-
 लाचल निकेतवाला यति यादृच्छिकहोवे, अर्थात् चल कहिये क्षण
 क्षणविषे अन्यथाभावहोनैरूप स्वभाववाला चलशरीर है, अरु नि-
 राकार सर्वत्र पूर्णहोने से अचलआत्माहै । ताते जव कदाचित् भो-
 जनादिक व्यापारके निमित्त आकाशवत् अचलरूप आत्मतत्त्व
 रूप । अपने निकेत, आश्रय, (आत्मस्थिति) को विस्मरण करके ।
 [अर्थात् लोकदृष्टिमात्र विस्मरण करके क्योंकि स्मरण अरु वि-
 स्मरण अन्यविषे होताहै ज्ञानोत्तर अपने आप आत्माविषे नहीं ।
 मैंहीं ऐसे मानता है,] वा माधारणलोक उसको यह भोजनआदि
 करताहै ऐसा मानतहै । तिससमय विद्वान् शरीररूप चल निकेत
 (आश्रय) वाला होताहै, अरु तिस भोजनादि व्यापारसे अन्य
 कालविषे आत्मतत्त्वरूप अचल निकेतवाला होवेहै । इसप्रकार
 यह विद्वान् चलाचल निकेतवाला है । परन्तु बाह्य विषयों के
 आश्रयवाला नहीं । अरु सो विद्वान् यादृच्छिक होवे है, अर्थात्
 यदृच्छा जो देवगति तिससे प्राप्तहुये । अर्थात् विनायकके अनाश्रित
 प्राप्तहुये । कोपीन आच्छादन अरु प्राप्तमात्र से देहकी स्थिति-
 वाला होवे ३७ ॥

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः । तत्त्वीं
भूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ३८ ॥

इति गौडपादीयकारिकायां वैतथ्याख्यं द्वितीयं
प्रकरणं समाप्तम् ॥

३८ ॥ हे सौम्य! [“अहमेव परं ब्रह्म नमत्तोऽन्यदस्ति किञ्चिदि-
ति ” । मैं ही परब्रह्म हों मुझसे अन्य रंचक मात्र भी कुछ नहीं । इस
प्रकार की स्मृतिका सन्तान कहिये प्रवाह करना । अर्थात् अपने
वास्तविक आत्मरूपका अनुसंधानरूप स्मरण प्रवाहरूपसे करना ।
सोकोई एककाल विषे करना ऐसा नियमित नहीं, किन्तु निरन्तर
करनेको योग्य है । “ निमेषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्ति ब्रह्ममयीं
विना ” । ऐसे कहो है । इसलोकका यह अर्थ है कि शरीरादिक
कल्पित आध्यात्मिक वस्तुको अधिष्ठानमात्र देखके, अरु शरीर
से बाह्यवत् स्थितहुये पृथिव्यादिकों को कल्पितपने करके अव-
स्तुरूप होनेसे सो अधिष्ठान ही है इतर नहीं, इसप्रकार अनु-
भव करके आप द्रष्टा पुरुष भी परमार्थ वस्तुके स्वभावको प्राप्त
हुआ, तहां ही आसक्त चित्तवाला, अरु बाह्य विषयोंसे निवृत्तिवृद्धि
वाला हुआ तिसही परमार्थ तत्त्वविषे स्थितहुआ तिसके ज्ञान
विषे स्थितहोवे है] “ वाचारंभणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतेः ”
ध्याणीसे उच्चारण किया विकार नाममात्र ही है इत्यादि श्रुति
प्रमाणसे, “ तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः ”
“ आध्यात्मिकको तत्त्वदेखके, अरु बाह्यको तो तत्त्वदेखके ” अर्थात्
रज्जुसर्पवत् अरु स्वप्न मायादिवत् असत् शरीर प्राण इन्द्रियादि
रूप अध्यात्म, अन्तरवस्तु, को तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देख-
के । अरु शरीरादिकोंकी अपेक्षासे बाह्य पृथिव्यादिरूप वस्तुओं
को भी तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देखके, “ सवाग्याभ्यन्तरोत्पजः ”
“ अपूर्वोऽनपरोऽनन्तरोऽबाह्यः ” “ कृत्स्नघन ” “ आकाशवत्

सर्वगतः” “सूक्ष्मोऽचलो, निर्गुणो, निष्कलो, निष्क्रियः” “तत्
 सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीति श्रुतेः” ८ वाह्यान्तर सहित अज-
 न्माहे, अपूर्व है अनपर है अनन्तर है अबाह्य है, सम्पूर्ण है, आकाश-
 वत् सर्वगत है, सूक्ष्म है, अचल है, निर्गुण है, निष्कल है, निष्क्रिय है,
 सो सत् है सो आत्मा है सो तू है ७ इत्यादि श्रुतियों की एक वा-
 क्यता से, “तत्त्वीभूतस्तदारात्मस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत्” १ ८ तत्त्व
 रूप अरु तिसविषे रमणवाला तत्त्वसे अप्रच्युत होवे ३ अर्थात्
 उक्तप्रकार तत्त्वकी दृष्टिसे तत्त्वस्वरूप अरु तिसविषे रमणवाला,
 अरु बाह्यविषयों विषे अरमणवाला हुआ तत्त्वसे अचलित होवे ।
 ‘जैसे कोई एक शतत्वदर्शी चित्तको आत्मतत्त्वकरके जानता
 हुआ चित्तके चलने पीछे आत्माको चलित हुआ मानता सता
 ‘अभी मैं आत्मतत्त्वसे चलित हुआ हों, इसप्रकार देहादिरूप आ-
 त्माको चलित हुआ मानता है । अरु चित्तके एकाग्रहुये कदाचित्
 ‘अभी मैं तत्त्वरूप हुआ हों, इसप्रकार प्रसन्नहुये चित्तरूप आ-
 त्माको तत्त्वरूप मानता है । तैसे आत्मवेत्ता होवे नहीं, क्योंकि
 आत्मा एकरूप एकरस है ताते उसका स्वरूपसे चलना असंभव
 है । किन्तु “अहंब्रह्मास्मीति” मैं ब्रह्म हों इसप्रकार । ब्रह्मानु-
 संधान करता हुआ । सदैव तत्त्वसे अप्रच्युत (अचलित) होवे ।
 अभिप्राय यह है कि सदा अचलित आत्माके दर्शन (अनुभव)
 वाला होय । “समो नागो समो मशके” “शुनि चैव श्वपाके च ।
 समं सर्वेषु भूतेषु” ८ हाथी अरु मच्छर विषे समान है । श्वान
 विषे अरु चांडालविषे पंडित समदर्शी है । अरु सर्व भूतों विषे
 समस्थित होनेवाले आत्मरूप परमेश्वरको । विद्वान् आत्मनिष्ठ
 अनुभव करता है । इत्यादि श्रुति अरु गीतास्मृति के प्रमाणसे ३८
 ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतमांडूक्योपनिषद्कारिकायां वैतथ्याख्य

द्वितीयप्रकरण भाषाभाष्य समाप्तम् २ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ हरिः ॐ ॥

अद्वैत तत्त्वके जानने के अर्थ । अद्वैत संज्ञक तृतीय प्रकरण का आरंभ करते हैं । पूर्वके द्वितीय प्रकरणविषे उपास्य अरु उपासना आदिक भेदोंका समूह सर्वमिथ्या है अरु केवल अद्वैत आत्मा परमार्थ सत्यरूप है, इसप्रकार सिद्ध हुआ है, एतदर्थ यहां आरंभ विषे उपासककी निन्दा करते हैं “उपासनाश्रितोधर्मो जाते ब्रह्मणिवर्तते, प्रागुत्पत्तेरजं सर्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः” १ धर्म उत्पन्नहुये ब्रह्मविषे वर्तता है उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा उपासनाको आश्रित हुआ तिससे यह कृपण चिन्तन किया है, अर्थात् देहके धारणसे धर्म जो जीव सो । आकाशादि । भूतोंके समुदाय के आकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्मविषे तिसका अभिमानी होके वर्तता है । सो उत्पत्तिसे पूर्वसर्व अजन्माथा, इसप्रकार कालकरके परिच्छिन्न वस्तुको मानता है । सो जीव पुनः उपासना को पुरुषार्थका साधन जानके तदाश्रित हुआ देहपात हुये पश्चात् तिसही ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा, इसप्रकार जिसकारण से मिथ्या ज्ञानवान् होयके स्थित होवे, तिसकारणसे यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषों ने कृपण (अल्प) चिन्तन किया है । हे सौम्य ! इसका यह अभिप्राय है कि उपासनाके आश्रित हुआ । अर्थात् उपासनाको अपने मोक्षकारण मानके प्राप्त हुआ “उपासकोऽहं ममोपास्य ब्रह्म, तदुपासनं कृत्वा जाते ब्रह्मणि इदानीं वर्तमानोऽजं ब्रह्मशरीर पातादूर्ध्वप्रतिपत्स्ये प्रागुत्पत्तेश्चाजामदं सर्वमहंच ” २ में उपासकहूं मेरा उपास्य ब्रह्म है तिसकी उपासनाकरके अवभूतों के संघातके आकार से उत्पन्नहुये ब्रह्म विषे वर्तमान हों, अरु शरीर के पतनहुये पश्चात् अजन्मा ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा, अरु उत्पत्ति से पूर्व अवस्था विषे यह सर्व अजन्माथा अरु मैं भी तैसाही अजन्माथा । इसप्रकार जिसकरके उपासक मानता है एतदर्थ पूर्वावस्थावाले ब्रह्मको विषय करनेवाली अजन्मापनेकी श्रुति बने है । अब “इदानीं जातो जाते ब्रह्मणि च वर्तमान उपासनापुनस्तदेव प्रतिपत्स्य इत्येव उपासनाश्रितोधर्मः” ३ उत्पत्ति अवस्था विषे

अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसनताङ्गतम् । यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समंततः २।८३ ॥

मैं जन्म हो पाया हों, अरु इस स्थित अवस्थाविधे उत्पन्न हुये ब्रह्मविधे । अर्थात् भूतोंके संघातरूप शरीराकारसे उत्पन्न हुये ब्रह्मविधे । वर्तमान हों, अरु उत्पत्ति से पूर्व जिसरूपवाला हुआ स्थित था तिसही को पुनः प्रलय अवस्थाविधे उपासनासे प्राप्त होवोंगा । इसरीति से उपासना के आश्रित हुआ साधक जीव सो जिस हेतुसे इराप्रकार करके अल्प ब्रह्मका वेत्ता है तिसही हेतुसे यह नित्य अजन्मा ब्रह्म के दर्शी (अनुभवी) महारत्ना पुरुषों ने । उक्तप्रकार के उपासक को । कृपण, दीन, अल्पक, करके चिन्तन किया है “ यद्राचानाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म, त्वं, विद्धि, नेदं यदिदमुभासत, इत्यादि ” जो वाणीसे अप्रकाशित है । अर्थात् जिसको वाणी कहन नहीं सकती । अरु जिसकरके वाणी प्रकाशित होती । अर्थात् जिसकी सत्तासे वाणी अन्योको कहने में समर्थ होती है । तिसही को तू ब्रह्म करके जान, जिसको यह । भेदवादी । लोक उपासते हैं सो ब्रह्म नहीं, वा जिसको लोक उपासते हैं सो साकार परिच्छिन्न हुये ब्रह्म होनेको योग्य नहीं । इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाराकी श्रुतिके प्रमाणसे १।८० ॥

हे सौम्य ! [अद्वैत के विरोधी द्वैतवादी भेदी उपासकों की निन्दा करके अब सम्पत्ति अद्वैत प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते हैं] “ सवात्माभ्यन्तरोह्यजः ” । इत्यादि श्रुति प्रमाण से जो वाद्य अन्तर सहित अजन्मा आत्मा है । कि जिसके जानने से और का जानना अपशेष रहना नहीं । तिसके जानने में असमर्थ हुआ, अरु अविद्या करके अपने आपको दीन जानना हुआ “ जातोऽहं जाते ब्रह्मणि यत्तेन दुपासनाग्निः स न ब्रह्म प्रणिपन्नस्ये ” मैं जन्मा हों अरु उत्पन्न हुये ब्रह्मविधे वर्तना हों, अरु निमग्न उपासना के आश्रित हुआ ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा २ एव

प्रकार जाननेवाला पुरुष कृपण होता है । अर्थात् “न जायते म्रियते वा कदाचित्” इत्यादि श्रुति आदिकों के प्रमाण अनुभव से जो जन्म मरण रहित सदा एक रस आत्मा तिसको, अरु “स वाङ्माभ्यन्तरोहजः” इत्यादि प्रमाणसे सहित वाङ्मा अन्तर सर्वधिष्ठान सर्वरूपसे सुशोभित ब्रह्म तिसको । जो कि वास्तवमें दोनों एक अरु जन्मादि विकार रहित हैं । जन्मे मानके, तिनमें परस्पर स्वामी सेवकादि वा उपास्य उपासकादि भेद मानके अरु अपने आपको अति दीन अपराधी ईश्वरके आश्रित हुआ तिसकी उपासना से ब्रह्मभावकी प्राप्ति मानके जो उपासना करने वाले पुरुष हैं सो आपभी मुझे अरु ब्रह्मको भी मारा क्यों कि “जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृत्यश्च” इत्यादि प्रमाणसे जो जन्मता है सो मरता है, अरु उस भेदीने जीवरूपसे आत्मा को अरु भूतों के संघात रूपसे ब्रह्मको जन्मा माना है, ताते उक्त प्रकारके भेदी उपासकों को श्रुति अरु ब्रह्मवेत्तादि महात्मा कृपण कहते हैं । एतदर्थं अथ अजन्मा ब्रह्मरूप अकृपण भाव की कहता हों “यत्रान्योऽन्यत् पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं मर्त्यसद्वाचारं भणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतिभ्यः ” जिसविषये अन्य अन्यको देखता है, अन्यको सुनता है अन्यको जानता है सो अल्प मरनेके योग्य है, वाणीसे कहा विकार नाम मात्र है । इत्यादिक श्रुतियों के प्रमाणसे । अरु सो उक्त प्रकारका । अर्थात् भेदी उपासक करके माना । ब्रह्म कृपणभावका आश्रय है । अरु तिससे विपरीत । अर्थात् श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अभेदवादी ब्रह्मवेत्ताओं करके जाना । वाङ्मा अन्तर सहित अज भूमाख्य ब्रह्म अकृपण भावरूप है । अरु जिसको जानके अविद्याकृत सर्वकृपणभावकी अशेष निवृत्ति होवे है तिसको अकृपण भाव कहते हैं, तिस अकृपण भावको अथ कहता हों, इत्यर्थः “अतो वक्ष्याम्यर्कार्पण्यमजातिसमतांगतम्” । अजाति है समताको प्राप्त है अकृपण भाव है तिसको कहता हों । अर्थात् सो ब्रह्म कैसा है कि

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः । घटा-
दिवच्च संघातैर्जातावेतन्निदर्शनम् ३ । ८२ ॥

अजाति है 'अर्थात् जाति जो जन्म तिससे रहित अजहै । वा जो जन्मवान् होताहै सो मनुष्यादि वा द्वाह्यणादि जातिवाला होता है अरु ब्रह्म अजन्मा होनेसे द्वाह्यणादि वा मनुष्यादि जातिवान् नहीं ताते सो अजाति अजन्मा है । अरु सर्व समताको प्राप्तहुआ है, क्योंकि उसविषे अवयवोंकी विषमताका अभाव है । अरु जो सावया वस्तु है सो अवयवों की विषमतावाली होती है, इस प्रकार कहते हैं । अरु यह । आत्माख्यब्रह्म । तो निरवयवहै इस हेतु से समता को प्राप्तहुआ है । अरु सो ब्रह्म किसी भी अवयवों से जन्मको प्राप्तता नहीं एतदर्थ सो सर्व ओरसे पूर्ण जन्मरहित अकृपणभाव है तिसको कहताहों । अरु " यथानजायते किञ्चिज्जायमानं समंततः " [जैसे कुछ भी जन्मतानहीं जायमान सर्व ओर से वर्त्तता है] अर्थात् जेरो रज्जु विषे सर्प भ्रान्तिसे जन्मता (उत्पन्नहोता) है, तेमेही सर्व अविद्या दृष्ट भ्रान्ति दृष्टिसे जन्मको प्राप्तहोनेकरके भासमान है, तथापि, जिमप्रकार से वस्तुकरके कुछ भी जन्मको प्राप्तता नहीं, किन्तु सर्व देशकाल अरु वस्तुसे पूर्ण दूटस्थ ही वस्तु होता है । । अर्थात् सर्व देश काल अरु वस्तु रूपसे एक अद्वैत ब्रह्मही सुशोभित है । तैसे तिस प्रकार को श्रवणकर । यह इमका अर्थ है ३ । ८१ ॥

३ । ८२ हे सौम्य ! जन्मरहित ब्रह्मरूप अकृपणभावको कहना हों, इसप्रकार प्रतिज्ञा किया जो वस्तुनिसकी सिद्धिके अर्थ हेतु अरु दृष्टान्त को कहने हैं, इसप्रकार कहना हों " आत्मा हाकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः " [आत्मा आकाशवत् है, अरु घटाकाशों से तुल्य जीवों से कहा है] अर्थात् [प्रतिज्ञा किये वाक्य विषे ब्रह्मशब्द करके प्रसंग में प्राप्तकिया जो परमात्मा सो कैसा है, इसप्रकार प्रश्न करने की इच्छा के दृष्टे कहने हैं ।

घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा । आकाशे संप्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि ४ । ८३ ॥

४।८३॥ हे सौम्य, "घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा । आकाशे संप्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि" जैसे घटादिकों के लीन हुये घटाकाशादिक आकाशविषे लीन होते हैं, तैसे इस आत्माविषे जीव होते हैं; अर्थात् जैसे घटमठादिकों के अपने कारण पृथिवी विषे लय होने से तद्वत् जे घटाकाशादि संज्ञक आकाश सो अपने से अभिन्न महाकाश विषे लीन होते हैं, तैसेही इस आकाशवत् पूर्ण आकाश का भी आश्रय महासूक्ष्म अधिष्ठान चैतन्य आत्माविषे, यह शरीरादि संघातविशिष्ट चिदाभास जीव लीन होता है । [जीवों के उत्पत्ति अरु प्रलय उपाधि के किये हैं, स्वाभाविक नहीं । अरु तिसप्रकार होने से उत्पत्तिकी प्रतिपादक श्रुतिसे होता जो अद्वैत का विरोध तिसके अभाववत् प्रलयकी श्रुतिसे भी अद्वैतका विरोध है नहीं, इसप्रकार ब्रलोकके अक्षरों के व्याख्यानसे प्रकट करते हैं] अर्थ यह है जो, जैसे घटादिकों की उत्पत्ति से, घटाकाशादिकों की उत्पत्ति होये है, अरु जैसे घट मठादिकों के लय हुये घटाकाशादिकों का भी लय होये है । तैसेही देहादिक संघातकी उत्पत्तिसे । घटाकाशवत् । जीवोंकी उत्पत्ति होती है, अरु तिन देहादि संघात का स्वरूप से लय होने से इन जीवोंका (संघातविशिष्ट चैतन्यका) इस (संघातोपहित एक अद्वैत) आत्मा विषे लय होता है, परन्तु स्वरूप करके इस चैतन्य जीव का उत्पत्ति लय नहीं " न जायते म्रियते वा कदाचित् " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ४ । ८३ ॥

५।८४॥ हे सौम्य, सर्व देहोंविषे आत्माकी एकता के होते, जन्म मरण अरु सुखादिक धर्मवाले एक आत्मा के हुये, सर्व आत्माओं उन जन्मादिक धर्मोंसे सम्बन्ध होवेगा, और किया अरु फलका मिश्रभार होवेगा, इसप्रकार जो द्वैतवादी कहना है, निम्नके प्रति

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते । न सर्वे
सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः ५ । ८४ ॥

अब यह उत्तर कहते हैं । यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभि
र्युते । न सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः । जैसे रज
अरु धूमादिक करके युक्त एक घटाकाशके हुये, सर्व घटाकाशादि-
क तिन रज धूमादि करके संयोगको पावते नहीं तैसे जीव सु-
खादिकों से संयोग को पावते नहीं ; अर्थात् । अनेक घटों में
आकाश एकही है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से अनेक आ-
काश कहे जाते हैं, अरु उन अनेक घटाकाशों में से एक घटाकाश
को धूलि धूमादि करके युक्त होने से सर्व घटाकाश तिन धूलि
धूमादिकों से संयोग को पावते नहीं, तैसे एक आत्मवाद विषे
एक जीव को सुखादि करके युक्त हुये सर्वजीव सुखादिकन से
संयोग को पावते नहीं ॥ ननु, तब क्या सर्वत्र एकही आत्मा है,
जहां ऐसी शंका है । तहां कहते हैं, यह तेरा कथन सत्य है । जो
सर्वत्र एकही आत्मा है । शंका । ननु, तिस आत्मा की एकता
युक्तिरहित है तिसको कैसे अंगीकार करते हो । उत्तर । तहां
कहते हैं । सर्व संघातों विषे एकही आत्मा है, इसप्रकार जो हम
ने पूर्व युक्ति सहित आत्मा की एकता कही सो क्या तेने श्रवण
किया नहीं ॥ शंका ॥ ननु, जब एकही आत्मा है तब सो सर्वत्र
सुखी अरु दुःखी होवेगा । समाधान, तहां कहते हैं, यह प्रश्न
सांख्यवादी का है, किंवा वैशेषिकादिकों का है । तिनमें जब यह
सांख्यवादी का प्रश्न होवे, तब असंभव है, क्योंकि जिस करके
सांख्यवादी जो है सो सुख दुःखादिकों के बुद्धि के समवाय स-
म्बन्धके अंगीकार से आत्मा को सुख दुःखादिक धर्मवान्पना
इच्छता नहीं, अरु ज्ञानस्वरूप आत्मा के भेद की कल्पना विषे
प्रमाण नहीं, एतदर्थ यह सांख्यका प्रश्न संभवे नहीं ॥ अरु जो
ऐसा कहे कि आत्मा के भेदके अभाव हुये प्रधानको पर के अर्थ

होतेका संभवं होवेगा ऐसाकहे तो, सो वनेनहीं, क्योंकि प्रधानके भोग मोक्षरूप अर्थके आत्माविषे-असमवाय है ताते । अरु जब प्रधानका किया बंध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषोंविषे भेदकरके समवायको, प्राप्तहोवे, तब आत्माकी एकता करके प्रधानको परार्थ (जीवोंका शेष) होनेका असंभव होवे । एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पना युक्तहै, परन्तु सांख्यवादियोने बन्ध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुष से समवाय संबंधवाला अंगीकार कियानहीं, किन्तु निर्विशेष, चेतनमात्र आत्मा अंगीकार कियाहै, एतदर्थ पुरुषकी सत्तामात्रका कियाही प्रधानका परार्थपना सिद्धहै, नतु पुरुषके भेदका किया । किंवा प्रधानका जो परार्थपनाहै सो अन्य शेषी की अपेक्षा करता है, तिसविषे भेदकी अपेक्षानहीं एतदर्थ पुरुषके भेदकी कल्पना विषे प्रधानका परार्थपना हेतु नहीं । अरु सांख्यवादियोंको पुरुषके भेदकी कल्पनाविषे अन्य प्रमाणहै नहीं । अरु प्रधान जो है सो इस पर (पुरुष) की सत्तामात्रकोही निमित्तकरके आप धृष्टहोवे है अरु मुक्त होवेहै । अरु सेइवर सांख्यवादियों के मतविषे पर जो ईश्वरहै सो ज्ञानमात्र सत्ता स्वरूप से प्रधानकी प्रवृत्तिविषे हेतु नहीं, किन्तु किसीभी विशेषसे हेतुहोगा । एतदर्थ सांख्यवादीकरके केवल मूढ़तासेही पुरुषके भेदकी कल्पना अरु वेदार्थका परित्याग कियाहै, युक्ति अरु प्रमाणसे नहीं ॥ अरु जो वैशेषिकादि मतवादी कहतेहैं कि इच्छा आदिक आत्मासे समवाय सम्यन्ध घाटेहैं, सो उनका कहनाभी असत्है । क्योंकि स्मृतिकेहेतु संस्कारोंके अवयवरूप प्रदेशरहित । अर्थात् स्मृतिकेहेतु जे संस्कार तिन संस्कारोंके अवयवरूप प्रदेश तिनसे रहित । आत्माविषे समवाय का अभाव है ताते तिनके सिद्धान्तकी असिद्धि होगी । अरु आत्मा अरु मनके संयोगसे स्मृतिकी उत्पत्तिका अंगीकार करनेसे स्मृतिके नियमका असंभव होवेगा (आत्मा, मनके संयोगरूप स्मृति के कारणके होते अनुभव कालविषे भी स्मृतिहोवेगी) वा एककाल विषे सर्व स्मृतियोंकी उत्पत्तिका प्रसंग होवेगा । भिन्न [किंवा

समान जातिवाले, अरु स्पर्शादिक गुणवाले पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध देखा है। जैसे मल्लोंका मेपों का अरु रज्जुघटादिकनका सम्बन्ध है। तिस समानजाति अरु स्पर्शादि गुणके अभावसे आत्माकी मनआदिकोंसे सम्बन्धकी असिद्धि, अरु उक्त असमवायि कारणसे ज्ञानादि गुणोंकी उत्पत्ति सिद्ध होवे नहीं, इसप्रकार कहते हैं,] जातिवाले, स्पर्शादि गुणरहित जीवों का मन आदिकों से सम्बन्ध युक्त है, नहीं। अरु नैयायिकनके [गुणादिकों की समान जातिके अरु स्पर्शादिक गुणके अभावद्वये भी द्रव्यसे सम्बन्धवाले आत्माका मन आदिकों से सम्बन्ध सिद्ध होता है, इसप्रकार जो कदापि वादी कहै, सो घने नहीं ऐसा कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि स्वतन्त्र जो सन्मात्रवस्तु सो यहां द्रव्य शब्दकरके कहते हैं। अरु वेदान्तियोंके मतविषे तिस द्रव्यसे भेदकरके गुणादिक विद्यमान हैं नहीं। क्योंकि “शुक्लः पटः पण्डो गौरित्यादि” < शुक्लपट है, नपुंसक वैल है > इत्यादि स्थानमें गुण गुणी आदिकोंके समानाधिकरणके देखनेसे। अरु द्रव्यही कल्पनासे तिसतिस आकार करके भासता है, इसप्रकार अंगीकार करनेसे। एतदर्थ दृष्टान्तका असंभव है नहीं। मतविषे द्रव्यसे रूपादिक गुणकर्म जातिविशेष अरु समवाय भिन्न हैं नहीं। अरु जब गुणादिक द्रव्यसे अत्यन्त भिन्न ही होवें, अरु जब इच्छा आदिक आत्मासे अत्यन्त भिन्न होवें, तब भी तैसही द्रव्यसे गुणादिकों के सम्बन्धका अरु आत्मासे इच्छा आदिकों के सम्बन्धका असंभव होवेगा। अरु जो कहे कि अयुत (अभिन्न) सिद्ध वस्तुओंका समवायरूप सम्बन्ध विरोधको पावतानहीं, सो कथन घने नहीं। हे वादी! तैने जो यह गुणादिकों का अयुतसिद्धपना कहा, सो क्या अभिन्न कालवान्पने रूप है, किंवा अभिन्न देशवान्पने रूप है, किंवा अभिन्न स्वभाववान्पने रूप है, किंवा संयोग अरु विभाग की अयोग्यतारूप है, इस प्रकार यह चार पक्ष हैं। तिनमें प्रथमपक्ष घने नहीं क्योंकि विकल्पको असहन करता है ताते। इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि

ऐसे होने से अनित्य इच्छा आदिकों से पूर्व नित्य आत्मा सिद्ध है ताते । अरु आत्माके अयुत सिद्धपने का असंभव है [यहाँ क्या इच्छा आदिकों की अपेक्षासे आत्माका अभिन्न कालवान्पना है, किवा आत्माकी अपेक्षासे इच्छादिकों को अभिन्न कालवान्पना है । इसप्रकार विक्लप करके प्रथम पक्षके अर्थ दूषण दिया है] आत्मा से इच्छा आदिकन के अयुत सिद्धपने के होने से इच्छादिकों को आत्मगत महत्पनेवत् नित्यता का प्रसंग होवेगा, सो अनिष्ट है, क्योंकि इच्छादिकोंकी नित्यताके हुये आत्मा के मोक्षके प्रसंगका अभाव होवेगा ताते । अरु [जब आत्मा के साथ इच्छा आदिकों को अभिन्न कालवान्पना है, तब आत्मा को अनादि होने से तिस विषे स्थित जो महत्पना तद्वत् तिन इच्छा आदिकों को भी नित्यताकी प्राप्ति होवेगी, इस प्रकार कहते हैं] समवाय सम्बन्धको द्रव्यसे इतरपने के हुये, जैसे द्रव्य अरु गुणका समवाय सम्बन्ध है, तैसे तिस समवायका द्रव्य से अन्यसम्बन्ध कहना योग्य है । अरु जो ऐसा कहे कि समवाय नित्य सम्बन्धही है, एतदर्थ तिनका अन्य सम्बन्धकहना योग्य नहीं । तो तैसे [समवायको नित्य सम्बन्ध रूप होने से समवाय सम्बन्ध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी इस नित्य सम्बन्धवाले होने से कदाचित्भी भेदकी अप्रतीतिने तिनके भिन्नपने की प्रसिद्धिका असम्भव होवेगा, इस प्रकार दूषण कहते हैं] हुये समवाय सम्बन्ध वाले द्रव्य गुण आदिकों को भी नित्य सम्बन्ध के प्रसंगसे भिन्नता का असंभव होवेगा । अरु द्रव्यादिकों की अत्यन्त भिन्नताके हुये, स्पर्शान् अरु स्पर्शान् द्रव्यके असम्बन्धवत् तिनके सम्बन्धका असंभव होवेगा । अरु आत्माको गुणवान्पने के हुये इच्छा आदिकोंकी उत्पत्ति अरु नाशवत् आत्मा को अनित्यताका प्रसंग होवेगा । अरु देह अरु फलादिकोंवत् सावयवपना, अरु देहादिकोंवत्ही विकारवान्पना यह उभय दोष निवारण करने को अयोग्य होवेगे । जैसे [जब आत्माको इच्छादिक गुणवान्पना

रूपकार्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै । आकाशस्य न भेदोस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ६ । ८५ ॥

नहीं, तब तिसको बन्धके अभाव से मोक्ष न होवेगा, एतदर्थ बन्ध मोक्षकी व्यवस्थाके असंभवसे देह देहके प्रति सुख दुःखादि करके विशिष्ट आत्माके भेदकी सिद्धि है, इस प्रकारकी शंका करके कहते हैं] आकाश को अविद्यासे आरोपित 'रज, धूम, अरु, मलपने' आदिक दोषवान्पना है, तेसेही आत्माको अविद्याकरके आरोपित बुद्धि आदिक उपाधि के किये सुख दुःखादि दोषवान्पना है ऐसे अंगीकार किये व्यावहारिक बन्ध अरु मोक्षादिक विरोध को पावते नहीं, क्योंकि सर्ववादियों करके अविद्याकृत व्यवहार का अंगीकार है ताते । अरु परमार्थ (मोक्ष) विषे व्यवहार का अंगीकार है ताते । एतदर्थ तार्किकों करके आत्मा के भेदकी कल्पना धृथाही किया है ५ । ८४ ॥

६ । ८५ ॥ हे सौम्य, शंका ननु, एकही आत्माविषे अविद्याकृत आत्माके भेद निमित्तक व्यवहार यद्यपि श्रुति आदिकों से बने हैं, तथापि अनुमानसे कैसे बने हैं । समाधान । तहां कहते हैं, 'रूप कार्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै' । ६ रूप कार्य अरु नाम तिन तिन विषे भिन्न देखते हैं ; अर्थात् जैसे इस एकही आकाश विषे घट मठ कमंडलु अन्तर्गह आदिकों के सम्बन्धी आकाशके अल्पपने अरु महत्पने आदिक रूप । अर्थात् घटाकाशकी अपेक्षा मठाकाशको महत्पना अरु कमंडलुगत आकाशको अल्पपना' इत्यादि प्रकार एकही अरूप आकाशको घटादिकोंके सम्बन्धसे अल्पपना अरु महत्पना आदिरूप । अरु जलका लाना धारण करना अरु शयन करना, इत्यादि कार्य, अरु घटाकाश मठाकाश कमण्डलुकाकाश अरु अन्तर्गहकाश, इत्यादिक तिन घटादि रूप उपाधियोंके किये नाम । अर्थात् एक आकाशविषे जो घटाकाश मठाकाशादि नाम भेद हैं सो उन घटादि उपाधिके सम्बन्धसे हैं

नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा । नैवा
त्मनःसदा जीवो विकारावयवौ तथा ७ । ८६ ॥

स्वरूपसे ही नहीं । यह सर्व तिस तिस व्यवहारविषे तहांतहां
भिन्नभिन्न देखते हैं । अरु यह सर्व आकाशके रूपादिकोंके भेदोंका
किया व्यवहार अपरमार्थसेही है, अरु परमार्थसेतो “आकाशस्य
न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः” आकाशका भेद है नहीं, तैसे
जीवोंविषे निर्णय किया है ; अर्थात् जैसे आकाशविषे जो नाम
रूप क्रियादि सहित भेद है सो घटादि उपाधि अरु तिनके भेद
का किया है । अरु वास्तव करके तो आकाश का भेद है नहीं ।
अरु जैसे आकाश के भेदरूप निमित्त का किया व्यवहार सो घ-
टादिक उपाधियों के किये द्वारविना है नहीं । तैसेही देहादिरूप
उपाधि के किये घटाकाशादि स्थानीय जीवोंविषे भेदके निरूप-
णसे बुद्धियों करके किया भेद है, वास्तव करके आत्मा के स्वरूप
से भेद है नहीं, यह सम्यक् आत्मवेत्ताओं ने सम्यक्प्रकार नि-
र्णय किया है ६ । ८५ ॥

७ । ८६ ॥ हे सौम्य, शंका । ननु तहां घटाकाशादिकोंविषे रूप अरु
कार्य आदिकोंके भेदका व्यवहार परमार्थरूप आकाशका कियाही
है । इसप्रकार का जो वादीका कथन सो बने नहीं । उ० । क्योंकि
जैसे सुवर्ण का कुण्डल कंकणादि विकार है, वा जैसे जलका फेन
बुद्बुद वरफादि विकार है, तैसे परमार्थरूप आकाश का घटा-
काश विकार है नहीं । अरु जैसे वृक्षकी शाखा आदिक अवयव
हैं, तैसे भी आकाशका घटाकाशादि अवयव भी नहीं । ताते
घटाकाशादिकों विषे जो भेद व्यवहार है सो परमार्थरूप आ-
काशका किया नहीं । ताते “नाकाशस्य घटाकाशो विकाराव-
यवौ यथा” जैसे आकाश का घटाकाश विकार अरु अवयव
नहीं ; अर्थात् जैसे कुण्डलादिक सुवर्ण के अरु बुद्बुदादि जलके
विकार अरु शाखादि वृक्षके अवयव हैं, तैसे घटाकाशादि महदा-

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः ।

तथा भवत्यबुद्धीनामात्माऽपि मलिनो मलैः ८ । ८७ ॥

काशके विकार अवयव नहीं । अरु “नैवात्मनः सदा जीवो विकारवयवौ तथा” ६ तैसे आत्मा का जीव सर्वदा विकार अरु अवयव है नहीं ; अर्थात् जैसे आकाश के घटाकाशादि विकार अरु अवयव नहीं, तैसेही परमार्थ से सत्यरूप महाकाशस्थानीय एक अखण्ड अद्वैत निराकार परब्रह्म से अभिन्न आत्मा का यह घटाकाशस्थानीय जीव सर्वदा (सर्वथा) उक्त दृष्टान्तवत् विकार नहीं, अरु अवयव भी नहीं, एतदर्थ आत्माके भेदका किया व्यवहार मिथ्याही है । यह अर्थ है ७ । ८६ ॥

८ । ८७ ॥ हे सौम्य ! [जीव जो है सो ब्रह्मका अंश नहीं अरु विकारभी नहीं किन्तु उपाधि विषे प्रवेशको पाया ब्रह्मही जीव शब्दका वाच्य है । इसप्रकार जो तुमने कहा सो अयुक्त है । क्योंकि ब्रह्म तो । उपाधि से रहित । शुद्ध है ताते । अरु जीव जो है सो रागादिक मलवाला है ताते । अरु जीव अनेक हैं ताते, इत्यादि प्रकार से तिन [ब्रह्मजीव । की एकताका असंभव है यह आशंका करके परमार्थ से जीव को भी मलवान्पना आविष्कृत है नहीं, ऐसा कहते हैं] जैसे घटाकाशादिक जो नाम रूप कार्यादिक भेदका व्यवहार है सो भेदबुद्धिका किया है, तैसेही उपाधि वाले जीवोंका भेद अरु जन्म मरणादि व्यवहार हैं सो । अविद्या के किये हैं । ताते तिस अविद्या रचित भेदका कियाही क्लेश कर्म फल अरु रागादिक मल करके युक्तपना है, परमार्थ से नहीं । इस अर्थको दृष्टान्त से प्रतिपादन करने को इच्छते हुये कहते हैं “यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः” ८ । ८७ ॥ जैसे बालकों को आकाश मल करके मलिन होता है ; अर्थात् जैसे, लोक विषे । विचारशून्य । अविवेकी बालकों को, परम शुद्ध जो आकाश है सो मेघ रज धूमादि मल करके मलिन (मेलवाला) भासता है,

परन्तु जो आकाश के स्वरूप स्वभाव के जाननेवाले जे विवेकी पुरुष हैं तिनको आकाश मलवाला प्रतीत होतानहीं । अर्थात् जिन पुरुषोंको आकाश के यथार्थ स्वरूप स्वभाव का ज्ञान है, तिनको आकाश में धूमधूलि आदिकमलके होतेसंते भी, आकाश मलिन प्रतीत होके जैसा है तैसाही प्रतीत होता है । “तथा भवत्य बुद्धीनामात्माऽपि मलिनोमलैः” । “तैसे आत्मा भी अबुद्धियों को मलकरके मलिन होता है” । अर्थात् जैसे अविवेकी बालकों को आकाश धूम धूलि करके युक्त मलिन भासता है । तैसे जो विज्ञाता प्रत्यक् चैतन्य परब्रह्म रूप आत्मा है, सो भी तिस प्रत्यगात्मा के यथार्थ विवेक से रहित अबुद्धिमान् (अज्ञानी) पुरुषों को क्लेश कर्म अरु कर्मफल इत्यादि मलों करके मलिन (विकारी) प्रतीत होता है । अर्थात् सर्व शरीरों में शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप एकही आत्मा है, परन्तु सो तैसा होता सत्ता भी अविवेकी पुरुषों को देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरण क्लेश क्रिया फलादि धर्मवान्पने करके युक्त भासता है । परन्तु जैसे ऊपरदेश को देखके तिस बिपे, जलकी कामना वाला तृपित पुरुष जल फेन तरंगादिकों का आरोप करता है, तथापि तिस असत् आरोप से वो ऊपरदेश जलफेन तरंगादि वाला होतानहीं, तैसेही सदा शुद्ध निर्विकार प्रत्यगात्मा सो अपुछ अविवेकी अज्ञानी पुरुषों करके आरोप बिचे क्लेशादिक मल तिन करके मलिन होता नहीं । अर्थात् जिन पुरुषों को अपने आप सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव प्रत्यगात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं सो पुरुष अपने आप आत्माबिपे देहेन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरणादि धर्मोंका आरोप करते हैं, परन्तु निनके आरोप से वो सदा शुद्ध आत्मा कदापि किसी प्रकार से विकारवान् मलिन सदोप होता नहीं । इत्यर्थः = ॥ ८७ ॥

६॥८८॥ हे सोम्य ! शंका निनु, जीव जोहँ सो मरणके अनन्तर अपने धर्म (शुभाचरण) के अनुसार स्वर्गको जाना है, अरु अधर्म

मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि ।

स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः ६।८८ ॥

(दुरोचरण) के वशहुआ नरक को पावता है । अरु धर्म अधर्म दोनों के सुख दुःखादि फल भोग के अनन्तर उनके क्षीणहुये पुनः यहाँ आयके कोई एक योनि में जन्मता है, अरु तेहाँ भी यावत् प्रारब्ध भोग है तावत् स्थिरहोय प्रारब्ध भोग आगे को धर्माधर्म कर्मकर पुनः भी परलोक के अर्थ गमनकरता है । इसका आवागमन मिटा नहीं । इसप्रकार इसलोक अरु परलोक में अपने कर्मानुसार विचरने रूपे व्यापारवाला जीव सो । आवागमन से रहित सदाशुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव एकरस कैसे होवेगा । जहाँ इस प्रकारकी शङ्का है तहाँ कहते हैं] पुनः भी उक्त अर्थकोही वर्णन करते हैं, “मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि । स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः” । सर्व शरीरों विषे, जन्म, मरण, गमन, आगमन और स्थिति के हुये भी आकाश से अविलक्षण है ; अर्थात् घटाकाशके जन्म मरण गमन आगमन अरु स्थिति वत् सर्व शरीरों विषे आत्माको जन्म मरण गमन आगमन औ स्थिति के हुये भी आत्मा आकाशसे अविलक्षण (आकाश के तुल्य) प्रतीति करनेको योग्य है । अर्थात् घटाकाश जो है सो घटकी उत्पत्ति होने से उत्पन्नहुये वत् अरु घटके ध्वंसहुये ध्वंसहुयेवत् अरु घटके गये गयेवत् अरु घटके आये आयेवत् अरु घटके स्थितहुये स्थितहुये वत्, इत्यादि प्रकार घटाकाश विषे जो उत्पत्ति आदि प्रतीत होवै है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से होवै है, परन्तु घटसे पृथक् दृष्टिकर केवल आकाशकोही अनुभव दृष्टि से देखिये तो घटके वर्तमान कालमें भी आकाश उत्पत्ति विनाशादिकों से रहित अपने स्वरूप करके ज्योंका त्यों एकरसही है, तेसेही आकाश से भी महा सूक्ष्म परिपूर्ण एकरस आत्माविषे जो जन्म मरण सुख दुःख अरु परलोक में गमन पुनः आगमन इत्यादि प्रतीत होता है सो शरीरादि संघातरूप

• संघाताःस्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः ।

आधिक्येसर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते १०।८९ ॥

उपाधिके सम्बन्धसे होता है, नतु वास्तव अपने स्वरूप करके निरुपाधि आत्मा आकाशवत् गमनागमनादि संघात के धर्मों से रहित सदा एकरस परिपूर्ण विज्ञानघनही है । इसप्रकार अपने आप आत्म विषयक प्रतीत करनेको योग्य है, यह इसका भावार्थ है ६।८८॥

१०।८६ ॥ हे सौम्य ! " संघाताःस्वप्नवत्सर्वे आत्ममाया विसर्जिताः " १ सर्व संघात स्वप्नवत् आत्माकी मायासे रचित है, अर्थात् देह इन्द्रिय मन प्राणादिमें का सर्व संघात तो स्वप्नविषे दृश्य (देखे) देहादिकोंवत्, अरु मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषकरके किये देहादिकोंवत् आत्माकी अविद्यारूपा मायासे रचित है, परमार्थ से नहीं । अरु जिस करके तिर्यक् (तिरछे चलनेवाले पक्षी आदिक) के देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारण रूप संघातोंकी " आधिक्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते " २ आधिक्यता के हुये वा सर्व की साम्यता के हुये उपपत्ति विद्यमान है नहीं, अर्थात् । तिर्यक् देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारणात्मक संघातोंकी आधिक्यताके हुये [देवतादिकों के शरीरों को अति पूजनीय होनेकरके सर्व से अधिकताके अंगीकार से तिनके असत्यपने की सिद्धि न होवेगी, यह शङ्काकरके, देहके भेदों विषे मूढ़पुरुषों की दृष्टि से चैतन्यकी अधिकता को कल्पितहुये भी विवेकी पुरुषों की दृष्टि से सर्व देह समान पञ्चभूतात्मकहोने से सर्वकी समताके अंगीकार किये संघातोंकी सत्यता विषे कोई भी संभव नहीं इसप्रकार कहते हैं] वा सर्वकी समताके हुये इन शरीरादि संघातों के सद्भावका प्रतिपादक हेतु नहीं । इत्यर्थः १०।८६ ॥

११।६०॥ हे सौम्य ! अव उत्पत्ति आदिकोंसे रहित इस अद्वैतरूप आत्माको श्रुतिरूप प्रमाणकरके सिद्धताके लक्षावनेके अर्थ श्रुति

रसादयोहिये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके ।

तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रकाशितः ११ । ६० ॥

वाक्यों के कहनेका आरंभ करते हैं "रसादयोहिये कोशा व्याख्याता-
स्तैत्तिरीयके ।" रसादिक कोश तैत्तिरीयविषे व्याख्यान किये हैं,
अर्थात् अन्नरसमय, प्राणमय मनोमयादिक, खड्गादिकों के कोश
(म्यान) वत् जो पंचकोश हैं सो यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद्
विषे उत्तरोत्तरकी अपेक्षा से [जैसे खड्गादिकों के कोश जो हैं सो
खड्गादिकों की अपेक्षा बाह्य होते हैं, तैसेही इन पञ्चकोशोंको भी
कहते हैं । तिस विषे हेतु कहते हैं, यहाँ यह अर्थ है कि पूर्व के अ-
न्नमयादिक कोशों को पिछले पिछले प्राणमयादिकोंकी अपेक्षासे
बाह्यपना होने करके, अरु सर्वान्तर आधाररूप ब्रह्मकी अपेक्षा
से आनन्दमय को भी तिनके तुल्य बाह्य होने से, इन अन्नमयसे
आनन्दमय पर्यन्त पाँचोंका कोशपना तुल्यही है] पूर्वके बाह्य
भावसे व्याख्यान किये हैं । तेषामात्मापरोजीवः खंयथासंप्रका-
शितः । तिनका पररूप आत्मा जीव है, जैसे आकाश सम्यक्
प्रकाश किया है, अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशोंका परब्रह्मरूप
आत्मा जीव है ॥ शंका ॥ सो आत्मा तिन कोशोंका जीव कैसे है ।
समाधान । जिस अत्यन्त आन्तर आत्मा से यह पाँच कोश भी
आत्मावाले होते हैं, सो आत्मा सर्व कोशोंको जीवन का निमि-
त्त है, एतदर्थ तिन अन्नमयादि कोशोंका जीव है ॥ सो कौन है ।
उ० । जो परब्रह्मरूप आत्मा पूर्व "सत्यंज्ञानमनन्तब्रह्म" सत्य
ज्ञान अनन्त ब्रह्म है । इसप्रकार प्रसंगविषे प्राप्त किया है । ओ
जिस आत्मा से स्वप्न अरु माया आदिकोंवत् आकाशादिकों के
क्रम से अन्नमयादि कोशरूप संघात आत्माकी मायासे रचित है,
इसप्रकार कहा है । अरु सो आत्मा हमों करके जैसे आकाश है, नैसे
"आत्माद्याकाशवत्" इत्यादि "आत्मा आकाशवत् है" यह
इस प्रकरणके तीसरे श्लोक से सम्यक् प्रकार प्रकाश किया ।

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम् ।

पृथिव्यामुदरेचैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः १२ । ६१ ॥

परन्तु नैयायिकों करके कल्पित आत्मावत् पुरुषकी बुद्धि करके कल्पित प्रमाणों का विषयरूप आत्मा प्रकाश किया नहीं । यह अभिप्राय है ११ । ६० ॥

१२।६१ ॥ हे सौम्य ! [मैं मनुष्य हों, प्राणी हों, प्रमाता हों, कर्ता हों भोक्ता हों, इन उपाधि विशिष्ट पांचों का जो एकस्वरूप अनुस्यूत प्रत्यक् चैतन्य है सो ब्रह्म ही है, इस प्रकार जीव ब्रह्मकी एकताविषे तैत्तिरीय श्रुतिके तात्पर्य को कहके, अब तिसही अर्थविषे बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिके भी तात्पर्य को कहते हैं । बृहदारण्यक उपनिषद्गत मधु ब्राह्मण विषे बहुत से पर्यायन में अधिदैव अरु अध्यात्मरूप भिन्नस्थानों विषे “अयमेव स इति” ‘यह ही सो है’ इस प्रकार परब्रह्मरूप प्रत्यगात्मा प्रकाश किया (लखाया) है एतदर्थ बृहदारण्यकश्रुतिका भी इस ब्रह्म और आत्माकी अभेद एकताविषे तात्पर्य है । यह इस लोक के पूर्वाह्न का अर्थ है] किंवा “अधिदैवमध्यात्मञ्च तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः पृथिव्याद्यन्तर्गतो यो विज्ञाता पर एवात्मा ब्रह्म सर्वमिति” ‘अधिदैव अरु अध्यात्मतेजोमय अमृतमय पृथिव्यादिकों के अन्तर्गत जो विज्ञाता पुरुष है’ सो परमात्मा ही है, सर्वब्रह्म है ‘इस प्रकार “द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम्” द्वय द्वयविषे परब्रह्म प्रकाश किया है मधुज्ञानविषे, अर्थात् उक्तप्रकार दोनों दोनों स्थानोंविषे द्वैतके क्षय होने पर्यन्त परब्रह्म प्रकाशित किया है ॥ प्र० ॥ कहां प्रकाशित किया है ॥ ३० । जिसविषे ब्रह्म विद्या नामक मधु (अमृत) अमृतत्वका मोद न होने से । अर्थात् ब्रह्मविद्याका अमृतत्व (मोक्ष) परमानन्दकी प्राप्ति का हेतु होने से मधु वा अमृत कहते हैं, अरु यही मुख्य अमृत है क्योंकि इसही करके जन्म मरणादि लक्षण वान् जीव सकारण मरण से रहित अमर अभय भावको प्राप्त

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशंस्यते । नानात्वं निन्द्य
ते यच्च तदेवं हि स मज्जसम् १३ । १२ ॥

होता है । जानते हैं, ऐसा जो मधुज्ञान । अर्थात् बृहदारण्य उप-
निषद् के द्वितीय अध्याय के अन्तक मधु ब्राह्मण । तिस विषे
प्रकाशित किया है । प्र० । किसवत् प्रकाशित किया है उत्तर ।
“पृथिव्यामुदरे चैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः” । जैसे पृथिवी
अरु उदर विषे आकाश प्रकाशित किया है जैसे लोक विषे
पृथिवी विषे अरु उदर विषे एकही आकाश अनुमाने प्रमाण से
प्रकाशित किया है, तैसे मधु ब्राह्मण में पृथिवी आदिकों विषे
अधिदैवरूप अरु शरीरादिकों विषे अध्यात्म रूप से परब्रह्मही
प्रकाशित किया है । इत्यर्थः १२ । ६१ ॥

१३ । ६२ हेसौम्य ! “जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशंस्यते”
“जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अभेदकरके प्रशंसा का विषय
करते हैं” अर्थात् जो कि युक्तियों से अरु श्रुतियों के प्रमाण से
निर्धार किया जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना । अर्थात्
“तत्त्वमस्यादि” महावाक्यों करके त्वंपद के लक्ष्य अरु तत्पद के
लक्ष्य का अनन्य अभेदपना । व्यासादिक महर्षियों करके शास्त्र
(ब्रह्मसूत्रादि वेदान्त) से अभेद करके प्रशंसा का विषय किये
हैं । अर्थात् श्रुतियों के महावाक्यों करके निर्धार निश्चित किया
जो जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अरु तिस अनन्यपने का
यथार्थ ज्ञान, अरु तिस ज्ञानसम्पन्न ज्ञानी, इनको व्यासादि
महर्षियों ने अपने ब्रह्मसूत्रादि शास्त्र करके प्रशंसा के विषय किये
हैं “सत्यं वै अभेदो” “ज्ञानादेव तु कैवल्यं” “ज्ञानं विमोक्षाय”
“ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति” “तस्यादित्यत्र
ज्ज्ञानं” “ज्ञानित्वात्मैव मेमतम्” इत्यादि प्रमाण से । अरु
“नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवं हि स मज्जसम्” । नानात्व निन्दा का
विषय किया है, जो सो ऐसेही समीचीन है । अर्थात्, जो

जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागुत्पत्तेः प्रकीर्तितम् ॥ भ-
विष्यद्भूत्यागौणं तन्मुख्यत्वं हि न युज्यते १४ । १३ ॥

सर्व प्राणियों को साधारण स्वाभाविक (अविव्यारचित) शास्त्र से बाह्यकिये कुतर्कों के कर्त्ता वादियों करके रचित नानात्व दर्शन तिनको । वेदशास्त्राचार्यमहर्षियोंने निन्दाका विषय किया है । तथाच “ननु तद्वितीयमस्ति” “द्वितीयाद्वैभयं भवति उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति” “इदं सर्वम् यदयमात्मा” “मृत्योः स मृत्युमाप्नोति, इत्यादि” सो द्वितीयनहीं है, द्वितीय से निश्चय करके भय होता है, जो यह सर्व है, सो यह आत्मा है, अल्पभी अन्तर को करता है पश्चात् तिसको भय होता है, सो मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो यहाँ (आत्मा अरु ब्रह्म विषे) नानावत् देखता है, इत्यादि श्रुति वाक्यों करके अरु अन्य ब्रह्मवेत्ता पुरुषों करके निन्दाका विषय किया है । अरु जो यह है सो ऐसेही समीचीन है । अरु जो तर्क करनेवाले पुरुषों करके कल्पना करीहुई कुंदृष्टियाँ हैं, सो तो समीचीन नहीं । अरु निरूपण करीहुई घटना को प्रकाशे भी नहीं ॥ यह अभिप्राय है १३ । ६२ ॥

१४ । ६३ ॥ हे सौम्य ! शंका । ननु, सम्यक् ज्ञान से पूर्व । अर्थात् तिस सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाली उपनिषदों के वाक्यों से पूर्व कर्म काण्ड विषे । “इदं कामोऽदः काम इति” “यह काम है यह काम है, इस प्रकार अनेक काम करके कामना के भेद से जीवों का भेद कहा है अरु “परश्च सदाधार पृथिवी व्यामित्यादि मन्त्रवर्णैः” सो परमात्मा इस पृथिवी अरु स्वर्गको धारण करता हुआ, इत्यादि मन्त्रों के कथन से तिन । पृथिव्यादिकों से पृथक् परमात्मा कहा है, इस प्रकार जो जीव अरु परमात्मा का पृथक्पना कहा है । तहाँ कर्मकाण्ड अरु ज्ञानकाण्ड के वाक्यों से विरोध हुये ज्ञानकाण्ड के वाक्यों के एकता रूप अर्थ काही समीचीनपना कैसे निश्चय करते हों, जहाँ ऐसी शंका है, तहाँ कहते हैं । समाधान “जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागु-

त्यज्जेः प्रकीर्तितम् ॥ सम्यक् ज्ञानरूपं । उत्तरिकांडके पूर्व जो जीव
 अरु परमात्मा का पृथक्पना कहा है ? अर्थात् “यतो वा इमानि
 भूतानि जायन्ते” “यथाऽग्नेः क्षुद्राविस्फुलिङ्गाः” “तस्मद्वा एत-
 स्मादित्मन आकाशः संभूतः” “तदैक्षत” “तत्तेजोऽसृजत, इत्या-
 दि” जिससे प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, जैसे अग्निसे क्षुद्राविस्फु-
 लिंग होते हैं । तिसे वा इस आत्मासे आकाश उपजता हुआ, सो
 ईक्षणकरता हुआ, सो तेजको सृजता हुआ, इत्यादिक सम्यक् ज्ञान
 रूप अर्थवाले उपनिषदों के वाक्योंसे पूर्वकर्मकाण्डविषे जो जीव
 अरु परमात्मा का भेद पना कहा है । भविष्यद्वृत्त्या गौणतन्मुख्य
 त्वहिनियुज्यते ॥ सो भविष्यद्वृत्तिसे गौण है निश्चयकरके मुख्य
 पना घटतानहीं, अर्थात् कर्मकांडविषे जो जीव अरु परमात्मा का
 पृथक्पना कहा है, सो परमार्थरूप नहीं, किन्तु महदाकाश अरु
 घटाकाशके भेदवत् “यथौदनं पचतीति” “तच्चावलकी । रसो ह्य-
 प्रकावता है” इस वाक्यविषे जैसे भविष्यत् प्रवृत्तिसे चावलोंविषे
 भोजनपना है, तद्वत् गौण है, परन्तु भेदवाक्योंका कदाचित्भी
 मुख्य भेदरूप अर्थवान्पना घटतानहीं, क्योंकि आत्मा के भेदके
 वाक्योंको स्वाभाविक (अनादि) । अवियावाले प्राणियोंकी भेद
 दृष्टिअनुवादी (अनुव्रादकरनेवाली) है ताते । अरु यहां उपनिषद-
 विषे उत्पत्ति अरु प्रलयादिकोंके वाक्यों से, अरु “तत्त्वमसि”
 “अन्योऽसावन्त्योऽहमस्मीति न स वेद” ॥ सो तू है, यह अन्य है मैं
 अन्त्यहो, ऐसे जो जानता है सो नहीं जानता । इत्यादि श्रुतिवाक्यों
 से जीवात्मा । अरु परमात्मा का पृथक्पनाही प्रतिपादनकरनेको
 इच्छित है । एतदर्थ उपनिषदोंविषे एकपना श्रुतिकरके प्रतिपादन
 करमेको इच्छित होवेगा, इस प्रकार भविष्यद्वृत्तिवाले उत्पत्त्यादि-
 कोंके वाक्योंकी मुख्यावृत्तिकों आश्रय करके, जो लोकविषे भेद
 दृष्टिका अनुव्राद है, सो गौणही है । यह अभिप्राय है ॥ अथवा “तदै-
 क्षत, तत्तेजोऽसृजत” ॥ सो ईक्षणकरता (इच्छा वा देखता) हुआ,
 सो तेजको सृजता हुआ । इत्यादिक वाक्यों से “उत्पत्तेः प्रागेकमे

मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्याचोदिताऽन्यथा । । उ-

पायः सोऽवताराय न्नास्ति भेदः कथञ्चन १६ ॥ १४ ॥

वा द्वितीयम् । उत्पत्तिसे पूर्व एकही अद्वितीयथा । इस प्रकार एक पना कहा है । अरु, “तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि,” सो तू है, सो आत्मा है, सो तू है, इस प्रकार सोई एकपना होवेगा । इस प्रकार की जिस भविष्यद्वृत्ति की अपेक्षा करके जो जीव अरु आत्मा का भिन्नपना जहां किसी भी वाक्यविषे जाननेमें आवता है, सो “य-
थोदनं पञ्चतीति,” चावल की रसोई पकावता है, इस वाक्य विषे जैसे भविष्यद्वृत्तिसे तंडुलोंविषे भोजनपना है, तद्वत् गौण है ॥ हे सोम्य ! यहां जो जीव अरु परमात्मा में भेदके बोधक कर्मकांडके वेद मन्त्रकी गौणपना कहा है तिसका यह भी अभिप्राय जानना कि कर्मकांड वेद है सो यज्ञादि कर्मोंद्वारा संसारका ही प्रवर्तक अरु प्रापक है, एतदर्थ उसको उपनिषद् ज्ञानकाण्ड जो समूल जगत् का निवर्तक अरु परमानन्द मोक्षका प्रापक है, विषे “तत्रापरां ऋग्वेदो” इत्यादि वाक्यों करके अविद्यात्मक कहा है, एतदर्थ कर्मकांडके वा अन्यके जो जीवात्मा अरु परमात्माके भेदके बोधक वाक्य हैं तिनकी गौणीवृत्ति जाननी १४ ॥ १६ ॥
“१५ ॥ १६ ॥ हे सोम्य ! शकाननु, यद्यपि उत्पत्तिसे पूर्व जन्मरहित सर्व एकही अद्वितीयथा, तथापि उत्पत्तिके अनन्तर यह सत्र वस्प-
न्नहुआ है अरु जीव भिन्न है, इस प्रकार सति कहो क्योंकि उत्पत्ति की श्रुतिका अन्यअर्थ है ताते । अरु “स्वप्नवदात्ममाया विसर्जिताः संघाताः घटाकाशोत्पत्तिभेदादिवज्जीवानामुत्पत्तिर्भेदादिरिति,” संघात स्वप्नवत् आत्मा की माया से रचित है, अरु घटाकाशकी उत्पत्ति अरु भेदादिको वत् जीवों की उत्पत्ति अरु भेदादिक हैं । इस प्रकार पूर्व भी हमने यह दोष निवारण किया है, एतदर्थ भी यह प्रश्न अवकाश रहित है । अरु इसही से उत्पत्ति अरु भेदादिक की श्रुतियों से रींचके यहां पुनः उत्पत्तिकी श्रुतियों के ब्रह्म

आत्मा की एकताविषे तात्पर्यके प्रतिपादन करने की इच्छा से यह कहने का आरंभ है । तथाच "मृत्तोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टियां चोदितान्यथा" । "मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादि से अरु अन्य प्रकार से जो सृष्टि कही है ? अर्थात्, "यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" "यथा सौम्यैकेन नखानि कृन्तनेन सर्वं काष्ण्यायसंविज्ञातं स्यात्" "यथा मुदीतात् पार्श्वका द्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः" इत्यादि श्रुतियों करके कहे । मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादिकन के दृष्टान्त के कथन से जो सृष्टि कही है, अरु अन्यप्रकारसे जो सृष्टि कही है, सो सर्व सृष्टिके प्रकार हमारे (ब्रह्मवेत्ताओं के) मतविषे जीवात्मा अरु परमात्माके एकताकी बुद्धि की उत्पत्तिके अर्थ उपाय है । अरु जैसे प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद विषे वाक् आदिकों की आख्यायिका श्रवणकरते हैं । अरु देवता अरु असुरों के संग्राम विषे देवताओं ने उद्घातापने करके स्वीकारकिये वाक् आदिकनके पापसे असुरों करके वधादि होनेकी आख्यायिका श्रवण करते हैं, सो सर्व प्राण की श्रेष्ठता के बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है । तैसेही श्रुति उक्त सृष्टिआदिक की प्रक्रिया भी अद्वैत बोधकी उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है । अरु जो ऐसा कहे कि, संवाद श्रुति के मुख्यार्थ होनेसे सो श्रुति उक्त उदाहरणभी असिद्ध होवेगा । सो कथनबने नहीं, क्योंकि अन्य शाखाविषे अन्य प्रकारसे प्राणादिकों के संवादके श्रवणसे जब संवाद परमार्थरूपही होता, तब सो संवाद एक रूपही सर्व शाखाओं विषे श्रवणकरनेमें आवता । अरु अनेक विरुद्ध प्रकारसे जो श्रवणकरने में आवता है सो तैसे सुनाजाता नहीं । [श्रुतियां कहीं कहीं प्राणादिक परस्परमें विवाद करतेहुये आपही अपने निर्णय करने में असमर्थ होय प्रजापति (ब्रह्मा) के पासगये अरु अपने परस्परके विवादकेहेतुको श्रवणकराय अपने विवाद का निर्णय इच्छते हुये । तब प्रजापतिने कहा कि तुम्हारे सर्व के मध्यसे । जिसके निकस जानेसे यह शरीर अमंगलरूप

स्परमें विरोध देखने से यहाँ कहते हैं । तैसीही उत्पत्ति के वाक्य भी शाखाओं के भेदसे विरुद्ध अनेक प्रकार के होने के कारण । वो अपने । मुख्यार्थ विषे तात्पर्य वाले नहीं, किन्तु अन्य अर्थ विषे तात्पर्य वाले हैं । अर्थात् सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुतियों का परस्पर में भिन्न भिन्न विरुद्ध कथनसे प्रतीत होता है कि वास्तव करके सृष्टिकुछ हुई नहीं, क्योंकि जो वास्तवकरके सृष्टि हुई होती तो सर्व श्रुतियोंकी एक वाक्यता अरु एकही कम होता, अरु तैसीही करके उन श्रुतियों के सृष्टि प्रतिपादक वाक्य अपने । मुख्यार्थविषे तात्पर्यवाले नहीं, किन्तु अन्य मुख्यार्थ विषे तात्पर्य वाले हैं । अर्थात् सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियों विषे परस्पर में विरुद्ध कम होने से प्रतीत होता है कि उन श्रुतियों का तात्पर्यार्थ सृष्टि के प्रतिपादन विषे न होयके एक अद्वैत आत्मतत्त्वके लखावने विषे तात्पर्य है, क्योंकि उन श्रुतियों विषे कमका विरुद्ध भेद है परन्तु सर्व श्रुतियों ने सृष्टि का कारण अधिष्ठान एक सत् चैतन्य आत्मा ब्रह्मही कहा है, ताते उन सर्व श्रुतियोंका मुख्य तात्पर्य एक अद्वैत आत्मतत्त्वके प्रकाशने विषे है अन्यविषे नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि कल्पकल्पकी सृष्टिके भेदसे संवादकी श्रुतियोंका भी सृष्टि सृष्टि के प्रति अन्यथापना हे विरोध, सो कथनधने नहीं, क्योंकि उक्त बुद्धिकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनके विना संवादकी श्रुतियोंकी निष्फलता होती है ताते । अरु संवाद अरु उत्पत्तिकी श्रुतियोंका, उक्त बुद्धिकी उत्पत्ति के विना अन्य प्रयोजनवाचन पना कल्पना करनेको शक्य नहीं । अर्थात् प्राणादिकों के संवाद की श्रुतियों का अरु सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियोंका, शरीरादिसंघातमें सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपना, अरु आत्माका एक अद्वैतपना जानने की बुद्धि की उत्पत्तिके विना अन्य प्रयोजन कल्पना करने को शक्य नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि प्राणादि भावकी प्राप्तिके लिये ध्यानार्थ प्राणादिकों का कीर्तन है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि कलहकी उत्पत्ति अरु प्रलयकी प्राप्ति यह सर्वकोही अनिष्टहोवे है

आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः ॥ उपासनो
पदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया १६ । ६५ ॥

ताते उक्त आख्यायिका प्राणका कीर्तननहीं । एतदर्थ उत्पत्त्या-
दिकोंकी जो श्रुतियां हैं सो आत्माके एकताकी बुद्धिकी उत्पत्त्यर्थ
हैं, अन्य अर्थवाली कल्पना करनेको योग्यनहीं । एतदर्थ, उत्पत्ति
आदिकों का किया भेद किसीप्रकार से भी है नहीं १५ । ६४ ॥

१६ । ६५ हे सौम्य ! शंका । ननु, “एकमेवाद्वितीयम्” एकही
अद्वितीयहै, इत्यादि श्रुतियोंके वाक्य प्रमाणसे यदि परब्रह्मरूपही
आत्मा, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यसुख, स्वभाववाला एकपरमार्थ
रूपसत् है अरु अन्यअसत्यहै, तब “आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः” “यआ
त्माऽप्रहृतपाप्मा, सक्रतुंकुर्वीत” “आत्मेत्येवोपासीतेत्यादि”
अरेमैत्रेयी आत्मा निश्चय करके देखनेयोग्यहै, जो आत्मा पाप-
रहितहै सो ध्यानकरने के योग्यहै, सो अधिकारी क्रतु (उपास्य
के संकल्प) को करे, आत्मा है इसप्रकारही उपासना करना ।
इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे यह उपासना किस अर्थ उपदेशकियाहै ।
अरु अग्निहोत्रादि कर्म कित्वास्ते उपदेशकिये हैं ॥ जहाँ ऐसी
शंकाहै तहाँ सिद्धान्ती कहे हैं, कि हैं वादी । तहाँ कारण श्रवणकर
“आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः” (आश्रम तीन प्रकार
के हैं, मन्द, मध्यम, अरु उत्कृष्ट, दृष्टिकरेके युक्तहैं) अर्थात् आश्रम
। अर्थात् आश्रमवाले अधिकारी । अरु आश्रमशब्दके देखावनेके
अर्थ शूद्रसे पृथक् सन्मार्गगामी वर्ण (वर्णवाले अधिकारी) तीन
प्रकारके हैं । प्रश्न । कैसे वे तीन प्रकारके हैं । उत्तर । ये, मन्द, कार्य
ब्रह्मको विषय करनेवाली, अरु मध्यम, कारण ब्रह्मको विषय
करनेवाली, अरु उत्कृष्ट, शुद्ध अद्वैतको विषय करनेवाली, दृष्टि
(बुद्धिकी सामर्थ्य) करके युक्तहैं । वा मन्द तैश्यवर्ण, मध्यम अग्निप्र
वर्ण, उत्कृष्ट ब्राह्मणवर्ण, यह तीन क्रमशः उक्तप्रकारकी दृष्टिकरके
युक्तहैं । उपासनोपदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया । निनिकेअर्थ दयाकरके

स्वसिद्धान्तव्यवस्थसिद्धैतिनोतिश्चित्तादृढम् ॥ पर
स्परविरुध्यन्तेतैरियेनविरुध्यते १७ । १६ ॥

यह उपासना उपदेश किया है, अर्थात् तिनमन्द अरु मध्यम
कार्यब्रह्मकी अरु कारण ब्रह्मकी दृष्टिवाले वर्णाश्रमियोंके अर्थ, कि
मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले सन्मार्गगामी हुये इस सर्वोत्तम । ब्रह्म
आत्माकी एकताकी सम्यक् दृष्टिको कैसे प्राप्त होवेंगे, इनकोभी
अभेद दृष्टि जो परम कल्याणकारी है, प्राप्त होनी चाहिये इस प्रकार
चित्रचार के परमदयालु वेद ने उनपर दयाकर के यह उपासना
उपदेश कही है, अरु कर्म उपदेश किये हैं अर्थात् जो मन्द मध्यम
अधिकारी है, जिनको अभेद सर्वात्म दृष्टि प्राप्त होनेकी इच्छा है तिन
पुरुषों के हितार्थ दयाकर के वेद भगवान् ने उनके अन्तःकरणकी
शुद्धिके अर्थ त्रिहित नित्य निष्कामकर्म अरु अन्तःकरणकी स्थिर-
ताके अर्थ अणवकी वा भ्रवण मननरूपसे आत्माकी ज्ञानांग उपा-
सना कही है क्योंकि अन्तःकरणके मलविक्षेपरूप दोष अभावि
हुये बिना आवरण भोगपूर्वक सर्वात्म अभेद दृष्टि प्राप्त होवे नहीं ।
“आत्मैक एवादितीय” आत्मा एक ही अद्वितीय है, इस प्रकारकी
निर्द्वयात्मक उत्तम दृष्टि जिनको प्राप्त हुई है तिन उत्तमाधिकारी
के अर्थ कर्म उपासना कही नहीं । क्योंकि “यन्मनसा न मनुते ये-
नाहुर्मनोमतः तत्रैव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते” “तत्त्वमसि”
“आत्मैवेदं सर्वमिति” [उपास्य जो है सो ब्रह्म ही नहीं, इस प्रकार
के निषेधसे उपासनाको मन्द मध्यम दृष्टिवाले पुरुषोंकी विषयता
भासती है, ऐसा कहते हैं] जिसको मनसे मनन करता नहीं, अरु
जिसने मनको जान्यो है तिसहीको तू ब्रह्म जान, जिस इसको लोक
उपासते हैं यह ब्रह्म नहीं । सो तू है, आत्मा ही यह सर्व है ॥ इत्यादि
श्रुतियोंसे १६ । १७ ॥

१७ । १६ हे सोम्य ! शास्त्र अरु युक्तिकरके निश्चित होनेसे अद्वैत
आत्माका दर्शन श्रियार्थ अनुभवा सम्यक् दर्शन है, ताते अन्य दर्शन

शास्त्र अरु युक्तिसे बाह्य होनेकरके मिथ्यादर्शन हैं, यह निर्धार किया । अब इस कथनके हेतुसे भी द्वैतवादियोंका मिथ्यादर्शन है, क्योंकि उन द्वैतवादियोंको रागद्वेषादि दोषोंकरके युक्तपना है ताते । अरु उनके यहां अद्वैतबोधक श्रुतियोंका अग्रहण है अरु जो कदापि ग्रहण भी है तो विपरीत अर्थसे है ताते । प्रश्न । उन द्वैतवादियोंको उक्त दोषकरके युक्तपना कैसे है, । उत्तर । तहां कहते हैं "स्वसिद्धान्त व्यवस्थासु द्वैतनो निश्चितादृढम्" । द्वैतवादी अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंविषे दृढ़ निश्चित हुये, अर्थात् कपिल कणाद अरु बुद्ध इन आदिकोंकी दृष्टिके अनुसारी जो द्वैतवादी हैं सो अपने सिद्धान्तकी रचनाके नियमोंमें "एवमेवैवपरमार्थानान्यथेति" यह ऐसेही परमार्थ रूप है अन्यथा नहीं । इस प्रकार तहां तहां अपने अपने सिद्धान्तोंविषे । दृढ़ आसक्त हुये । अरु अपने प्रति पक्षीको देख तिसके अर्थ द्वेष करते हुये । अर्थात् द्वैतवादी अपने कल्पित सिद्धान्तोंमें आसक्त हुये अरु "परस्परं विरुध्यन्ते तैरियं विरुध्यते" । परस्पर विरोध करते हैं तिसकरके यह विरोधको प्राप्तानेहीं, अर्थात् कपिलादि द्वैतवादी स्वकल्पित सिद्धान्तमें राग पूर्वक आसक्त हुये अपने प्रतिपक्षियों से द्वेषमान उनकी निन्दा पूर्वक उनके सिद्धान्तोंका खंडन करते हैं । इस प्रकार राग द्वेषकरके युक्त हुये अपने सिद्धान्तके दर्शन के निमित्त ही परस्पर विरोध को प्राप्तते हैं । तिन परस्पर विरोधवादियोंकरके यह हमारा चेदोक आत्माकी एकताके दर्शनका पक्ष सर्वसे अपृथक् (अनन्य) होनेसे । जैसे पुरुष अपने हस्त पादादिकोंसे विरोधको प्राप्त होना नहीं, तैसे ही, विरोधको प्राप्ताना नहीं । वरु सर्वत्र एक आत्माकी दृष्टि वाला सम्यक् आत्मवेत्ता "नानिवादी" अनिवादी किसीकी भी निन्दा स्तुति करनेवाला होतानहीं । इस प्रकार रागद्वेषकी क्लेशव्यवस्था (त्यागी) होनेसे आत्माकी एकताकी दृष्टि ही सम्यक् दर्शने उत्तर नहीं । उत्पत्तिप्रश्नः १७ । ६६ ॥

१ ॥ ६७ ॥ हेतोम्यः । प्रश्न । निम्नोक्तके यह अद्वैत सत्त्वात्मा,

अद्वैतपरमार्थो हि द्वैततद्भेद उच्यते । तेषामुभयथा द्वैततेनायं न विरुद्ध्यते ॥ १८ ॥ १७ ॥

पक्षतिन द्वैतवादियोंसे विरोधको पावता नहीं, उत्तर । "अद्वैतपरमार्थो हि द्वैततद्भेद उच्यते" । अद्वैतही परमार्थरूप है, द्वैततिसका भेद कहते हैं; अर्थात् जिसकरके अद्वैतही परमार्थरूप है, अरु द्वैत जो नानात्व सो तिस अद्वैतका भेद कहिये कार्य्य कहते हैं । अर्थात् जितना कुछ द्वैत नानात्व है सो सर्व अद्वैतकाही भेदरूपकार्य्य है, क्योंकि "एकमेवाद्वितीयम्, तत्तेजोऽसृजत" । एकही अद्वितीय है, सो तेजको सृजता हुआ । इसप्रकार श्रुतिका प्रमाण है ताते । अरु निर्विकल्प समाधि विषे, अरु घन सुषुप्ति विषे, अरु गाढ़मूर्च्छा विषे, द्वैतके अभावहुये अपने चित्तके स्फुरणके अभावसे द्वैतके अदर्शनरूप युक्तिकरके अद्वैतही सिद्ध है । अर्थात् उक्तप्रकार समाधिसुषुप्ति अरु मूर्च्छा इनतीनों अवस्थाविषे चित्तवृत्तिके अफुर हुये द्वैतके अभावसे केवल उनका साक्षी अद्वैत आत्माही अवशेष रहता है, इस युक्तिके सारानानात्व चित्तकी स्फुरणाकरके कल्पित है, अरु बिना आश्रय कल्पना होवे नहीं, अतएव एक अद्वैत आत्मसत्ताके आश्रय चित्तकी स्फुरण नानात्वकी कल्पना करे है । ताते नानात्वको अद्वैतका कार्य्य कहते हैं, कारण नहीं । अरु "तेषामुभयथा द्वैततेनायं न विरुद्ध्यते" । तिनको उभयप्रकार सेभी द्वैतही है, तिनसे यह विरोधको पावता नहीं; अर्थात् तिन द्वैतवादियोंकोतो व्यवहार अरु परमार्थ इन उभयप्रकारसेभी द्वैत ही है । अरु जब उन भ्रान्तभेदी पुरुषोंको द्वैतकी दृष्टि है, अरु अस्मदादि अभ्रान्त अभेदी पुरुषोंको अद्वैतकी दृष्टि है, तब तिसहेतुकरके यह हमारा अद्वैतपक्ष तिनहींसे विरोधको पावता नहीं । "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" । "ननु तद्वितीयमस्ति" । "इन्द्र माया करके बहुतरूप पावता है" सोतो द्वितीय है नहीं, इन श्रुतियों के प्रमाणसे । [भ्रान्तिरूप मूल है जिसका ऐसे द्वैतके सिद्धान्तसे,

मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजंकथञ्चन । तत्त्वतो
भिद्यमानेहि मर्त्यताममृतं व्रजेत् १९ । २० ॥

प्रमाणरूप मूल है जिसका ऐसा अद्वैत सिद्धान्त अविरुद्ध है, इस
अर्थको यहाँ दृष्टान्तसे प्रतिपादन करते हैं] जैसे उन्मत्त गजारूढ़
हुआ जो पुरुष सो पृथ्वी पर आरूढ़ हुए पुरुष के प्रति " गजा-
रूढ़ोऽहं बाह्यमां प्रतीति " & मैं गजारूढ़ हूँ मेरे प्रति वहन कर
(लेजा) इसप्रकारके कहनेवाले भी उन्मत्त पुरुषों को देखिके
तिसके ताई विरोध बुद्धिसे वहन करता नहीं, तद्वत् । ताते पर-
मार्थ से ब्रह्म चैतन्य द्वैतवादियों का भी आत्माही है । इसहेतु
से यह हमारा पक्ष तिन द्वैतवादियों से विरोध को पावता नहीं ।
क्योंकि अपने आप आत्मा से किसी का भी विरोध सम्भव
नहीं १८ । ६७ ॥

१६ । ६८ हे सौम्य ! द्वैत जो है अद्वैतका भेद कहिये कार्य है, इस
प्रकारका जो कथन किया ताते द्वैत भी अद्वैतवत् परमार्थसे सत्
होवेगा, जहाँ इसप्रकार की किसीको भी शंका होय तहां कहते हैं ।
परमार्थ से सत् रूप जो अद्वैत है, यह तिमिर दोष करके श्रुत दृष्टि
वाले पुरुषों करके कल्पित अनेक चन्द्रमावत्, अरु सर्प अरु जल
धारा आदिक भेदोंसे रज्जुवत् " मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं
कथञ्चन " & मायासे भेदको पावता है, यह अजन्मा किसी भी
प्रकारसे अन्यथा होता नहीं ; अर्थात् मायाकरके भेदको पावता है,
परमार्थ से नहीं [विवाद का विषय जो भेद, सो मिथ्या है, भेद
होनेसे चन्द्रादिकोंके भेदवत् ॥ विवादका विषय जो आत्मतत्त्व,
सो स्वरूप से भेद रहित है, क्योंकि निरग्रयव है ताते, अरु नित्य
है ताते, अरु अजन्मा है ताते, व्यतिरेक से मृत्तिकादिकों वत् ।
इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि आत्मा निराकार निरग्रयव है ताते ।
अरु जिसकरके साग्रयव वस्तु अग्रयवन के अन्यथा भाव से
भेदको प्राप्त होता है । जैसे घटसरावादिकन के भेदों से मृत्ति-

अज्ञातस्यैव भावस्य जातिमिच्छन्तिवादिनः । अजा-
तो ह्यमृतो भावो मर्त्यतां कथमेष्यति २७ । १९९ ॥

का भेद को पावनी है, 'यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है, ताते निर-
वयव अरु अजन्मा जो अद्वैत सो किसी भी प्रकार से अन्यथा
(भेदको प्राप्त) होता नहीं, यह अभिप्राय हैं ॥ अरु 'तत्त्व तो
भियमानेहि मर्त्यताममृतं व्रजेत्' ॥ 'जाते तत्त्वसे भेदको प्राप्त
हुये अमृत मरणकी योग्यताको प्राप्त होवेगा' अर्थात् जिसकरके
परमार्थ से भेदको प्राप्त होनेके स्वभावसे अमृत । अमरणधर्मा ।
अरु अजन्मा हुआ अद्वैत मरणकी योग्यताको प्राप्त होवेगा । जैसे
अग्नि, शीतलताको प्राप्त होवे तैसे सो स्वभाव के विपरीतपने की
प्राप्ति, सर्व प्रमाणोंके विरोधसे अनिष्ट है । अर्थात् अग्निका अप-
नी स्वभावभूत उष्णता को त्याग शीतलस्वभाव होना सर्व प्रमा-
णों से विरुद्ध है, तैसे निरवयव निराकार अजन्मा एक अद्वैत
स्वभाववाले आत्मतत्त्वका, सावयव सांकार सजन्मा नानाद्वैत
स्वभाववाला विनाशीधर्मा होना सर्व प्रमाणों से अरु युक्तिअनु-
भव से विरुद्ध है, ताते सो किसीको भी इष्ट नहीं । एतदर्थ अजन्मा
अविनाशी जो आत्मतत्त्व सो अपनी मायाकरके ही भेदको पावता
है परमार्थ से नहीं । एतदर्थ द्वैत किसी प्रकार भी परमार्थ से सत्य
है नहीं १६ । ६८ ॥

२० । ६६-हे सौम्य ! जो- [इस प्रकार अपने पक्षको कहके,
अब अपने वेदान्ती के युथविये परिगणित वादियोंके पक्षको अनु-
वादकरके दूषण देते हैं] पुनः कोई एक उपनिषदों की व्याख्या क-
रनेवाले वाचाल ब्रह्मवादी (- उपासक) 'अज्ञातस्यैव भावस्य
जातिमिच्छन्तिवादिनः' ॥ 'वादीलोक अजन्मा भावकी उत्प-
त्तिको इच्छते हैं' अर्थात् जे अन्तरसे उपासना के आग्रहवाले
अरु वाह्य अद्वैत ज्ञानके वक्ता ऐसे जे वाचाल ब्रह्मवादी सो
स्वभावसे अजन्मा अरु अमररूपही आत्मतत्त्वरूप भावकी पर-

नभवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यं ममृतं नन्तथा । प्रकृतेरन्यथा
भावो न कथञ्चिद्भविष्यति २१ । १०० ॥

मार्थसेही उत्पत्तिको इच्छतेहैं “जातं चेत्तदेव मर्त्यतामेष्यत्यवश्यम्”
जन्म को पाया है सो अवश्यही मरणकी योग्यताको प्राप्तहोवे-
गा, इस न्यायसे तिनका सो आत्मा, स्वभाव से अजन्मा अरु
अमृतभावरूपहुआ मरणकी योग्यताको कैसे प्राप्तहोवेगा, किन्तु
किसी प्रकारसेभी मरणकी योग्यतारूप स्वभाव की विपरीतता
को पावनेकानहीं। अर्थात् जो तत्त्ववास्तवकरके अपने स्वरूपसेही
अजन्मा अविनाशी शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै सो कभी किसीप्रकार
सेभी अपने स्वरूप स्वभावसे अन्यथाभावको प्राप्तहोता नहीं।
इत्यर्थः २० । ६६ ॥

२१ । १०० हे सौम्य ! [पदार्थोंको स्वभावके विपरीतपने की
प्राप्तिअघटितहै, ऐसा जो कहा तिसहीको वर्णन करतेहैं] “नभव-
त्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यं ममृतं नन्तथा ” ६ अमृत मरनेकेयोग्य होता नहीं
तैसे मरनेके योग्य अमृत होता नहीं; अर्थात् जिस करके लोक
विषे अमृत (अविनाशी) वस्तु मरने (विनाशके) योग्य होती
नहीं । ताते अग्नि के [यहाँ यह अर्थहै कि अग्नि के स्वभावरूप
उष्णपनेको शीतलपनेकी प्राप्तिरूप विपरीतपना अयुक्तहै, तैसे
अन्य ठिकाने भी स्वभाव का विपरीतपना अयुक्तहै, क्योंकि तैसे
हुयेस्वरूप के नाशका प्रसंग प्राप्तहोताहै ताते] उष्णस्वभाववत् ।
ताते “ प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ” ६ स्वभाव का
अन्यथा भाव किसीभी प्रकारसे होता नहीं; अर्थात् जैसे स्वरूप से
ही जो अग्निका उष्णस्वभाव सो अन्यथा होतानहीं तैसेही स्वभाव
का अन्यथाभाव (स्वरूपसे इतरपना) कदापि किसी प्रकारसेभी
होगानहीं॥ हे सौम्य ! वस्तुको अन्यथाकरना ‘जैसे आम्रका फलप्रय-
म खटाहोताहै सोई पश्चात् परिपक्व अवस्था विषे मधुर होता है
सो कालकरके होताहै, क्योंकि वस्तुको अन्यथा करना कालका

स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति मर्त्यताम् । कृतके
नामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः २२। १०१ ॥

लक्षण है, परन्तु जो वस्तु उत्पन्न होती है सो कालके व्यवधानसे
युक्त होने करके, कदाचित् कालके प्रभावसे अन्यथा भावको प्राप्त
होवे तो होवे परन्तु जो अजन्मा कालके व्यवधानसे रहित सर्वदा
एकरस स्वभाव है तिसका किसी करके किसी प्रकार से भी अन्य-
थाभाव होवे नहीं । यह परम सिद्धान्त है २१। १०० ॥

२२। १०१ हे सौम्य ! "स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति
मर्त्यताम्" जिसका स्वभावसे अमृतरूप भाव मरणकी योग्यता
को प्राप्त होता है, अर्थात् शङ्का । ननु, ब्रह्म कारणरूपसे कार्यो-
त्पत्तिके पूर्व मरणरहित हुआ भी कार्यके आकार से उत्पत्तिके अ-
नन्तर कालविषे मरणकी योग्यताको पावेगा, ताते स्वरूपके भेदसे
दोनों अविरोद्ध हैं । जहां ऐसी शङ्का है तहां कहते हैं । जिस वादीका
स्वभावसे अमृतरूप भाव मरणकी योग्यता को पावता है । अर्थात्
परमार्थ से जन्मको पावता है तिस वादीकी " प्रागुत्पत्तेः स-
भावः स्वभावतोऽमृत इति " सो भाव, उत्पत्ति से पूर्व स्वभाव
से अमृत है । ऐसी जो प्रतिज्ञा सो मिथ्याही होवेगी । पृश्न । तत्र
कैसे है । उत्तर " कृतकेनामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः " ।
तिसका अमृत निश्चल हुआ कैसे स्थित होवेगा, अर्थात् तिस
वादीका जन्म होने करके अमृत, सो भाव निश्चल हुआ । अर्थात्
अमृतपने के स्वभावकरके कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी
प्रकारसे भी स्थित होवे नहीं । इसका यह अभिप्राय है कि आत्मा
की उत्पत्ति वादीके मतविषे सर्वदा अजन्मा वस्तु कोई है नहीं,
किन्तु यह सर्ववस्तु मरणके योग्य है, इसकरके मोक्षके अभाव
का प्रसंग प्राप्त होवेगा २२। १०१ ॥

२३। १०२ हे सौम्य ! [परिणामवादकी सृष्टिप्रतिपादकश्रुतिके
अनुसारसे अंगीकार करने की योग्यताकी शङ्का करके निषेध करते हैं]

भूततोऽभूततोवाऽपिसृज्यमानेसमाश्रुतिः । निश्चितं
युक्तियुक्तश्चयत्तद्वतिनेतरत् २३ । १०२ ॥

शङ्का। ननु, आत्मा की अनुत्पत्तिके वादी को सृष्टिकी प्रतिपादक श्रुति-
प्रमाणिक न होवेगी, जहाँ ऐसी शङ्का है तहाँ कहते हैं, सृष्टिकी प्रति-
पादक श्रुति हैं यह जो तेरा कहना है सो सत्य है परन्तु सो अन्य अर्थ के
परायण है, सृष्टि परायण नहीं। अरु यह हमने “उपायः सो वताराय”
सो अद्वैत बोध की उत्पत्त्यर्थ उपाय है। इस प्रकार के पंचदश १५
वें श्लोक विषे कहा है। अब समाधान के पूर्व कहें हुये भी तेरा प्रश्न
अरु उत्तर जो कहते हैं सो कहने को वांछित अर्थ के प्रति सृष्टि प्रति-
पादक श्रुतिके अक्षरो के अनुलोम पने के विरोध की शङ्का मात्र के निवा-
रणार्थ है “भूततोऽभूततोवाऽपि सृज्यमाने समाश्रुतिः” भूत से
वा अभूत से भी उत्पन्न होने वाले विषे श्रुति सम है। अर्थात् भूत से,
कहिये परमार्थ से, उत्पन्न होनहार वस्तु विषे, वा अभूत, कहिये माया
से, वा माया बिना ही सृज्यमान वस्तु विषे, सृष्टिकी श्रुति तुल्य है
[यहाँ यह भाव है कि, परिणामिवाद विषे अरु विवर्तवाद विषे सृष्टि
प्रतिपादक श्रुतियों के अविशेष से अद्वैत के अनुसारी श्रुति अरु युक्ति
के वशते विवर्तवाद की ही अंगीकार करने की योग्यता है]। शङ्का। ननु,
‘मुख्य अरु गौण दोनों कार्यों के मध्य मुख्य विषे शब्द के अर्थ का
निश्चय युक्त है,। इस प्रकार जो वादी ने कहा सो बने नहीं, क्योंकि
मिथ्या पने बिना अन्य प्रकार से सृष्टि अप्रसिद्ध है ताते, अरु निष्प्र-
योजन है ताते।। अर्थात् वास्तव सिद्धान्त के विचार से देखिये तो
आप्त काम एव अद्वैत परिपूर्ण परमात्मा को सृष्टि रचने के प्रयोजन का
अभाव होने से सृष्टि अप्रयोजन है। अरु “स वा ह्यभ्यन्तरो ह्यजः”
“वा ह्य अन्तर सहित है अरु अजन्मा है”। इस श्रुतिके प्रमाण से।
अरु अविद्या अवस्था विषे ही विद्यमान सर्वगौणी (स्वप्नगत र-
थादि) अरु मुख्या जाग्रतगत घटादि ‘रूप सृष्टि परमार्थ से है
नहीं, इस प्रकार हम कहते हैं। ताते [सृष्टिकी श्रुति को अद्वैत

‘नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमायाभिरित्यपि । अजा-
यमानोबहुधामाययाजायतेतुसः २४ । १०३ ॥’

के अनुसार प्रनेकेद्वये प्रमाण अरु युक्तिके अनुग्रह सहित अद्वैत ही अंगीकार करनेके योग्य है, इस प्रकार फलित अर्थ कहते हैं,] ताते “ निश्चित-युक्तियुक्तञ्च यत्तद्वति नेतरत् ” । निश्चित युक्ति करके युक्त सोई होता है, अन्य नहीं ; अर्थात् श्रुति करके निश्चित जो एकही अद्वितीय अजन्मा अमृत रूप वस्तु है, अरु युक्तियों करके युक्त है, सोई श्रुतिका, अर्थ होनेको योग्य है अन्य कदाचित् भी, नहीं । इस प्रकार इस पूर्वके ग्रंथसे कहते हैं २३ । १०२ ॥

२४ । १०३ ॥ हे सोम्य ! [सृष्टिके मिथ्यापनेके स्पष्ट करनेरूपद्वारासे अद्वैतकोही श्रुतिके अर्थपनेसे निर्धार करनेको श्रुतिके निश्चयकोही वर्णन करते हैं] ॥ १०० । श्रुतिका निश्चय कैसा है । ३० । जव भाव रूपही सृष्टि होय तो तिसकरके नाना सत्यही होवेगा । अरु जव नानात्व सत्य होय, एतदर्थ तिसके अभावके दिखानेके अर्थ वेदका वाक्य न होवेगा । अरु “ नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रोमायाभिरित्यपि ” । इसविषे नाना कुछ भी नहीं, यह वेदका आम्नाय (वाक्य है, अरु इन्द्र मायाकरके ऐसे भी है) अर्थात् “ नेह नानास्तिकिञ्चन ” । यह नाना कुछ भी नहीं, इत्यादि, यह द्वैतभाव के निषेधरूप अर्थवाला वेदका वाक्य है । अर्थात् जो यह सृष्टिभाव (सत्य, कुछवस्तु) रूप होती तो, सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियां सर्व उपनिषदोंमें एकरूपही होतीं, अरु “ नेहनानास्ति किञ्चन ” यह नानात्वके अभावके प्रतिपादक अर्थवाली श्रुति न होती, अतएव सृष्टिके वाक्यों में विरुद्ध नानात्व अरु नानात्वके निषेध की श्रुतियों के देखने से नानात्वका अभावही प्रतीत होना है । ताते प्राणके संवादवत् । अर्थात् प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद की जो आख्यायिका है सो सर्व संपात में

प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके लखावनेके अर्थ कल्पित है, तैसेही एक अद्वैत आत्मतत्त्वके निश्चयकरावनेके अर्थ कल्पित जो सृष्टि से मिथ्याही है अरु "इन्द्रोमायाभिः" "इन्द्रमायाकरके" इसप्रकार मिथ्या अर्थके प्रतिपादक मायाशब्दकरके कथन है ताते शङ्का ननु, मायाशब्द पूजाका वाची है, ताते मिथ्या अर्थवाला नहीं है, । उ० । यह जो तेरा कथन है कि मायाशब्द पूजाका वाची है सो सत्य है । [यहां यह अर्थ है कि मायाशब्द की वाच्य जो पूजा सो चैतन्य ब्रह्म है नहीं, क्योंकि "भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः" "पुनः अन्तर्विषे विश्वं कार्यं अरु माया । कारण । इसकी निवृत्ति होती है " इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से मायाकी निवृत्ति श्रवण करने में आवती है ताते । किन्तु यह प्रज्ञा इन्द्रियजन्य है अरु तिसको अविद्या के अन्वय अरु व्यतिरेक की अनुसारी होने से अविद्यारूप होने करके मिथ्या होनेसे मायाशब्द के मिथ्या अर्थवानूपने विषे असंभव नहीं] तथापि इन्द्रियजन्य पूजाको अविद्यात्मक होने करके माया (मिथ्या) पनेके अंगीकारसे दोष नहीं । अर्थात् अविद्या से आकाशादि भूत तिनसे इन्द्रियां तिनसे पूजा इसप्रकार होनेसे अविद्या का अन्वय जो अविद्यात्मक प्रज्ञा तिसको मायारूप से अंगीकार करने में दोष नहीं, एतदर्थ इन्द्र शब्द करके जो परमात्मा सो अविद्यारूप इन्द्रियजन्य घुच्छिष्टि मय माया करके बहुत रूपहुआ प्रतीत होता है । तथाच "अजायमानो बहुधा विजायत इति" "जन्मरहित हुआ बहुत प्रकारसे जन्मता है" इस श्रुतिके प्रमाणसे । ताते "अजायमानो बहुधा मायया जायते तु मः" "सो तो जन्म रहित हुआ माया करके ही बहुत प्रकार जन्मता है" अर्थात् सो इन्द्र नाममात्र परमात्मा मायाकरके ही बहुत रूपसे जन्मता है । अनन्य जेमे एरुही अग्निविषे तीनलता अरु उष्णता ' जो परस्परमे विरुद्ध है, उन दोनों का होना असंभव है, तैमे एरुही आत्मा विषे जन्मरहित अजपना, अरु बहुत प्रकार से जन्मपना, यह दोनों

संभूतेरपवादाच्चसम्भवः प्रतिसिद्ध्यते । कोन्वेनंजन-
येदितिकारणंप्रतिसिद्ध्यते २५ । १०४ ॥

। जो परस्परमें विरोधी हैं । संभवे नहीं । एतदर्थं सो परमात्मा
माया करकेही बहुत प्रकारसे जन्मता है, यह कथन युक्तही है ।
अरु फलवान होने से आत्मा की एकता का ज्ञानही सृष्टिकी
श्रुतियोंका निश्चितार्थ है " तत्र को मोहः कः शोकः एकत्व-
मनुपश्यत " ८ तहां एकताके देखनेवालेको क्या मोह अरु क्या
शोक है? इत्यादि वेदसंज्ञ का कथन है ताते । अरु " मृत्योः
समृत्युमामोति य इह नानेव पश्यति " ८ जो यह एक आत्मा
विषे नानात्व को देखता है सो मृत्यु से मृत्यु को पावता है इस
प्रकार सृष्टि आदिक भेद दृष्टि निन्दित है २४ ॥ १०३ ॥

२५ । १०४ ॥ हे सौम्य । [भेद दृष्टिके मिथ्यापन विषे अन्य हेतु
कहते हैं] " सम्भूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिसिद्ध्यते " । ६ संभूतिके
अपवाद (निन्दा) से संभव का निषेध करते हैं, अर्थात् " अन्धतमः
प्रविशन्ति ये संभूतिमुपासते " जो संभूति की उपासना करते हैं
सो अन्धतम में प्रवेश करते हैं, इस श्रुतिके प्रमाण करके संभूति
के उपासकों की निन्दा से संभव कहिये कार्य का निषेध किया है ।
अरु जिस करके परमार्थ से संभूतिके विद्यमान होने से तिसकी
निन्दा संभवे नहीं, अरु श्रुतिविषे निन्दा किया है, एतदर्थं तिस-
का अवस्तुपत्ता ही सिद्ध हुआ । शंकी । ननु, विनाश (कर्म) से सं-
भूति कहिये देवता की उपासना के समुच्चयार्थ संभूति की निन्दा
है, जैसे " अन्धतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते " जो अवि-
द्या (कर्म) को उपासते हैं सो अन्धतममें प्रवेश को पावते हैं, इस
वाक्यविषे कर्म से उपासना के समुच्चय की विधि अर्थ कर्म ही
निन्दा है न से, समाधान । संभूति (हिरण्यगर्भ) रूप विषयवाली
देवता की उपासना के, अरु विनाश, शब्द के वाच्य कर्म से समु-
च्चय के विधानार्थ, संभूति की निन्दा है, यह तेरा कथन सत्य है,

तथापि जैसे [यहाँ यह अर्थ है कि कामचार (यथेष्टाचरण) काम वाद (यथेष्टकथन) अरु कामभक्षण (यथेष्टभोजन) इत्यादि स्वाभाविक प्रमाद मय प्रवृत्तिरूप अशुद्धिका वियोग रूप संस्कार जैसे नित्य अग्निहोत्रादिकों का फल है, तैसे निष्काम पुरुष करके अनुष्ठानकिये कर्म उपासनाके समुच्चय का फलरूप काम नामक अशुद्धि की निवृत्ति है, सो भी संस्कार है] पुरुषके संस्काररूप अर्थ वाले विनाश नामक कर्म को स्वाभाविक अज्ञानसे जन्य प्रवृत्ति रूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान् पना है, तैसे पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले देवताके ज्ञान अरु कर्म के समुच्चय को, कर्मफल विषयक रागसे जन्य जो प्रवृत्ति तिस प्रवृत्तिरूप साध्य अरु साधन इन दोनोंकी इच्छारूप मृत्युका तरणरूप अर्थवान् पना है । इस प्रकार कर्मरूप अविद्यासे दोनों एषणारूप मृत्यु से तरे हुये, अरु उपनिषद् रूप शास्त्रके विचारविषे तत्पर हुये, विरक्तको परमात्मा के एकताके विद्याकी उत्पत्ति अन्तरायवाली नहीं, इस प्रकार पूर्व होनेवाली कर्मरूप अविद्याकी अपेक्षासे पश्चात् होनेवाली अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या, एक पुरुषसे सम्बन्ध को प्राप्त हुई कर्मरूप अविद्यासे समुच्चय को प्राप्त होती है, इस प्रकार कहा है । एतदर्थ अन्यर्थ के होनेसे अमृत भावकी साधनरूप ब्रह्मविद्या की अपेक्षाकरके संभूतिका जो अपवाद है सो निन्दा के अर्थ ही होता है, समुच्चयकी विधिके अर्थ नहीं । अरु यद्यपि कर्म अरु उपासनाका समुच्चय अशुद्धिके वियोग (अभाव) का हेतु है, एतदर्थ सोई तिसका अन्यार्थ होवेगा, अपवादरूप अन्यर्थ नहीं । तथापि परमार्थ से पवित्रतारूप फलके अभाव से अपवादकी सिद्धि है, एतदर्थ संभूतिके अपवादसे संभूतिका आपेक्षक ही सत्पना है, इस प्रकार परमार्थ सत्तारूप आत्माके एकताकी अपेक्षाकरके अमृत नामवाले संभव (कार्य) का निषेध किया है । इस प्रकार मायासे रचित अरु अविद्यासे स्थित हुये जीवकी अविद्याके नाश हुये स्वभाव रूप होनेसे परमार्थसे कोन्वेनं जनयेदिति कारणं प्रति सिद्धयते ।

स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निन्दुते यतः । सर्व्व
मग्राह्यभावेन हेतुनाऽजं प्रकाशिते २६ । १०५ ॥

६ उसको कौन उत्पन्न करेगा इस प्रकार कारणका निषेध किया है ?
अर्थात् इसको कौन उत्पन्न करेगा किन्तु कोई भी नहीं । जैसे
अविद्या से रज्जुविषे आरोपित, अरु पुनः रज्जुके विवेक से नष्ट
हुये सर्पको कोई भी उत्पन्न करता नहीं, तैसे इसको कोई भी
उत्पन्न करता नहीं, इस प्रकार कारणका निषेध करि है । अभिप्राय
यह है जो, अविद्यासे उत्पन्न हुये अरु नष्ट हुये जीवका उपजावने
वाला कारण कुछ भी नहीं, क्योंकि यह किसीसे भी हुआ नहीं
अरु कोई भी नहीं होता हुआ “नाऽयंकुतश्चिन्नं बभूव कश्चिदिति
श्रुतेः” २५ । १०४ ॥

२६ । १०५ । हेसौम्य ! [इस कथन करनेसे वास्तव करके द्वैत
होता नहीं इस प्रकार कहते हैं] “अथातो नेति नेतीति आदेशः”
अब इसके अनन्तर नेति नेति यह आदेश होता है इस प्रकार सर्व्व-
निषेधके प्रतिपादन किये आत्माके दुःखसे बोधन करनेकी योग्य
ताको मानती हुई श्रुति, वारम्बार अन्य उपायपने करके तिसही
आत्माके प्रतिपादन करनेकी इच्छासे जो जो व्याख्यान किया
है तिनसर्व्वको निषेध करे है, अर्थात् [सर्व्वको निषेध करे] इ-
त्यादि रूप अर्थको स्पष्ट करते हुये “स एष नेति नेतीति” सो यह
ऐसे नहीं, ऐसे नहीं । इस श्रुतिवाक्यका व्याख्यान करते हैं ।
यहां यह अर्थ है कि सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, इत्यादि रूप
श्रुति विशेषके निषेधमुख द्वारसे आत्माकी अदृश्यरूपताको दे-
खावती हुई जो दृश्यरूप कार्य, मन अरु वाणीका विषय है तिन
सर्व्व को अर्थ से निषेध करे है । सोई श्रुति परमार्थ से जो अदृश्य
ऐसे कहती हुई दृश्यका वस्तुपना बने नहीं, इस प्रकार कहती है ।
अरु तैसे हुये वस्तुपनेके असंभवसे दृश्यवर्गका अवस्तुपनाही सिद्ध
हुआ] “स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निन्दुते यतः” सो यहनेति

नेति व्याख्यान करते हैं जाते निषेध करते हैं, अर्थात् सोयह ऐसानहीं
 ऐसानहीं इस प्रकार आत्मा की अदृश्यता को देखावती हुई श्रुति,
 अर्थसे उत्पत्तिवाले बुद्धि के विषय ग्राह्यवस्तु को निषेध करती है ।
 अरु अर्थसे शङ्का ननु यह श्रुति प्रपञ्च के समूह को क्यों निषेध करती
 है, अरु इस प्रकार होते से पङ्कप्रच्छालन, (कीचड़ के धोने के)
 न्याय की प्राप्तिसे व्याख्यान किये अर्थ की व्यर्थता होवेगी, यह शङ्का
 करके “अग्राह्यभावेन” अग्राह्यभावसे इत्यादि पदों का व्याख्यान
 करते हैं । यहाँ अर्थ यह है कि “द्वेवावेत्यादि” २ दोनों प्रसिद्ध
 इत्यादि वाक्य करके व्याख्यान किये, अरु ब्रह्म आत्मा मात्र स्वरूप
 से स्थितिपर्यन्त अभिप्राय न किये अरु ब्रह्मरूप उपेयवत्-उपाय-
 पनेसे मानेहुये प्रपञ्च के वास्तवपने करके जानने के योग्यता की
 जो शङ्का, सा न होय, इस प्रकार सर्व प्रपञ्च से रहित होने करके
 अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप के निर्धार करने के अर्थ श्रुति, प्रपञ्च को
 आरोपित होने से तिसका निषेध करे है] उपाय को उपेय विषे
 स्थितिको न जाननेवाले पुरुष को उपायपने करके व्याख्यान किये
 वस्तु की उपेयवत् ग्राह्यता मति हो, इस अभिप्राय से जिस करके
 अग्राह्य भावरूप हेतुसे व्याख्यान किये सर्व को निषेध करते हैं ।
 [उपाय को कल्पित होने करके उसको वास्तवपने का अभाव है]
 ताते, अरु उपेय (उपाय करके प्राप्त होने योग्य ब्रह्म) को कैसे
 तिसप्रकारसे उपाय के अवस्तुपने के प्रकारसे । वा । तिससत्यरूप
 प्रकारको वस्तु की प्राप्ति कैसे होवेगी । यह शङ्का करके “अजं”
 अजन्मा इत्यादि पद का व्याख्यान करते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि,
 आरोपित सर्व प्रपञ्च के निषेधसे ही, आरोपित सर्पादिकों के
 अधिष्ठानपने से भिन्न अस्तुपनेवत्, स्वतन्त्रपने करके । अर्थात्
 अधिष्ठान की सत्ताविना मूर्त्तादि प्रपञ्चरूप उपाय के वास्तवपने
 के अभाव के निश्चयसे, उपेयरूप अद्वितीय ब्रह्म मात्र स्वरूपता को
 ही प्राप्तहुये, अरु ब्रह्म की, सदा एकरूपता कूटस्थता नित्यज्ञान
 स्वभावता, आदिकों के जाननेवाले जो पुरुष तिन उत्तमाधिकारि-

सतो हिमायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतो तत्त्वतो
जायते यस्य जातं तस्य हि जायते २७ ।

योंको, अन्यकी अपेक्षासे विना उक्त विशेषणवाला आत्मतत्त्वस्वयं
अपि ही प्रकाशित होता है । अरु कल्पित प्रपञ्चका जो उपायपना है
प्रतिबिम्ब आदिको वत अविरुद्ध है] ताते ऐसे उपायकी उपेय विषे
स्थितिको ही जाननेवालोंको अरु उपेयकी नित्य एकरूपता है,
इस प्रकारके जाननेवाले तिसर्ग उत्तमाधिकारी । पुरुषको बाह्य
अन्तर सहित जन्म रहित अजन्मा आत्मतत्त्व आपसे आप ही
प्रकाशता है २६ ॥ १०५ ॥ अथ हिं ज्ञाते हिं ज्ञाते हिं ज्ञाते हिं
२७ ॥ १०६ ॥ हे सौम्य । [जो आत्मतत्त्व है सो अजन्मा अद्वितीय
परमार्थ रूप है, अरु जो द्वैत है सो मायासे कल्पित असत्य है, इस
प्रकार प्रतिपादन किया, तहां ही अन्य हेतुको भी कहते हैं] इस प्र-
कार ही शतावधि श्रुतियों के प्रमाणसे बाह्यान्तर सहित अजन्मा
आत्मतत्त्व अद्वैत है, ताते अन्य है नहीं, इस प्रकार विद्वानोंको
निश्चित ही है, अरु सो तैसे युक्तिसे भी निश्चित ही है, । अब यह
ही आत्मतत्त्व जो श्रुतिके प्रमाणों से अरु युक्तियों से निश्चित
किया है । पुनः अन्य युक्ति से भी निर्धार करते हैं, ऐसे कहा है ।
अरु जो ऐसा कहे कि तहां यह आत्मतत्त्व सदा ही अश्राव्य है ताते
असत् होवेगा, सो कथन बनेन ही, क्योंकि कार्यरूप लिगवाले अनु-
मानके वशसे [यहां यह अनुमानरूप अर्थ है कि विवादका विषय
जो जगत् का जन्म सो सत् रूप अधिष्ठानवाला है, कार्य होने से,
प्रसिद्ध कार्यवत्] आत्मतत्त्वके अकारणपने करके सद्भावके निर्णय
से । जैसे विद्यमान मायाविका मायाकरके जन्मरूप कार्य है, तैसे
जगत् का जन्मरूप जो कार्य है सो ग्रहण किया हुआ मायाविवृत
विद्यमान जगत् के जन्म अरु मायाका आश्रयरूप ही आत्मा को
लुप्तावे है । जो कारण सहित इस जगत् का कोई आश्रय अधि-
ष्ठान सत्य चितन्य रूप है । अरु जिस करके विद्यमान कारण से

असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते । बन्ध्या-
पुत्रो न तत्त्वेन मायया चाऽपि जायते ॥ २८ ॥ १७७ ॥

मायारहित हस्ति आदिक कोयौत्रत् मोयां से जगत्का जन्म घटे है, असत्कारण से नहीं, ताते कारणका सद्भाव विवाद से रहित है । अरु परमार्थसे तो आत्माका जन्म घटता नहीं । अथवा जैसे विद्यमान रज्जुआदिक वस्तुका सर्प आदिकरूपसे जन्मवत्माया करके जन्म घटित है, स्वरूप करके तो नहीं । तैसे "सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः" । सत्का माया से जन्म घटे है तत्त्वसे तो नहीं, अर्थात् जैसे रज्ज्वादिकों का सर्पादिरूप से जन्म घटे है, तैसे अग्राह्य सत् रूप आत्माका भी माया से जन्म घटित है, परन्तु तत्त्व (परमार्थ) से ही अजन्मा आत्माका जन्म है नहीं । अरु "तत्त्वतो जायते यस्य जात तस्य हि जायते" । जिस के मतविषे जाते जन्मता है तिसके मतविषे जन्मको पाय सत्ता जन्मता है, अर्थात् पुनः जिस वादीके मतविषे जिसकरके तत्त्वसे अर्थात् परमार्थसत् रूपसे अजन्मा आत्मतत्त्व जगत् रूप से जन्मेता है, तिसवादीके मतविषे अजन्मा जन्मता है, इसप्रकार कहनेको शक्य नहीं । क्योंकि अजन्माका जन्मसे विरोध है तत् एतदर्थ तिस वादीके मतविषे, अर्थात् जन्मको पावता हुआ जन्मता है, इसप्रकार प्राप्त हुआ । तिसकरके जन्मको प्राप्त हुये आत्मा को पुनः जन्मको प्राप्त होने करके अनयस्थाकी प्राप्ति है अर्थात् अजन्मा एकही आत्मतत्त्व है, यह सिद्ध हुआ २७ । १०६ ॥ । २८ ॥ १७७ ॥ हे सौम्य । [कार्यजो है सो सत् रूप कारण पूर्वक है, ऐसी व्याप्ति है नहीं, क्योंकि असद्वादियों करके असद्रूप कारण से सत् रूप कार्यके जन्मका अंगीकार है, "असदेवे दमग्र आमी-देकमेवा द्वितीयं तस्मादसत् सज्जायेत्" यह शंका करके कहते हैं] "असतो मायया जन्म तत्त्व तो नैव युज्यते" । असत् का माया से वा तत्त्व से जन्म घटता नहीं, अर्थात् असत् वादि-

यथास्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः । यथा जाग्रद्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ॥ २१ ॥ १७५ ॥

योंकि मतविषे असत् पदार्थका मायाकरके वा तत्त्वंसे किसी भी प्रकारसे जन्म घटित नहीं, तिसको अदृष्टरूपता है ताते अरु "वन्ध्या पुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते" ॥ वन्ध्याका पुत्रतत्त्व करके वा मायाकरके भी जन्मको पावतानहीं ॥ अर्थात् वन्ध्याका पुत्र जो अत्यन्त असत् है ताते उसका वास्तव करके तो क्या किन्तु माया करके भी जन्मको पावता नहीं, अतएव असद्वाद दूरसे ही अघटित । त्याजनीय है, इत्यर्थः ॥ २८ ॥ १७७ ॥

२६। १०८॥ हे सौम्य ॥ [सत्त्वस्तु काही मायासे जन्म होता है, इस प्रकार कथन किये अर्थकोही प्रतिपादन करते हैं] । प्रश्नापुनः सत्त्वस्तु काही मायासे जन्म कैसे है । उत्तर । तहां कहते हैं, जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प अपने अधिष्ठान रज्जुरूप से देखाहुये सत्य है, इस प्रकार मन जो है सो परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मरूप से देखाहुआ सत् है । यथास्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ॥ ॥ जैसे मन स्वप्नविषे मायासे द्वैताभास रूपहुआ स्फुरता है ॥ अर्थात् जो मन अपने अधिष्ठान रूपसे देखाहुआ सत् है, सो मन जैसे रज्जुमें सर्प तैसे मायाकरके ग्राह्य अरु ग्राहकरूप से द्वैताभासरूप हुआ स्फुरता है । तैसेही ॥ तथा जाग्रद्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ॥ ॥ तैसे जाग्रद्विषे मन मायाकरके द्वैताभासरूपहुआ स्फुरता है ॥ अर्थात् जैसे मन स्वप्नविषे माया वा अविद्या करके द्वैताभास । जगदाभास । रूपहुआ स्फुरता है, तैसेही जाग्रद्विषे भी मन मायाकरके जगदाभासरूपहुआ स्फुरता है । अर्थात् अविद्या के आश्रय हुआ मन स्वप्नविषे अध्यास संस्कार के वश आपही जगदाकार से स्फुरण होता है, तहां जैसे पूर्वके संस्कार अध्याससे स्वप्नमें आपकी सोयाहुआ स्वप्नान्तर में देखता है तैसेही स्वप्नके जाग्रतमें से स्फुरण के तीव्र संगेसे उस जाग्रतन्तर इस दीर्घ जाग्रतरूप

अद्वयञ्चद्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः । अद्वय-
ञ्चद्वयाभासं तथा जाग्रन्नसंशयः ३० । १०९ ॥

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मनसो-
ह्यं मनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ३१ । ११० ॥

स्फुरणं जगदाकारं होता है । ताते यह सर्व स्वप्नरूपही है, परन्तु
तैसा भासता तबही जब बोधरूप जाग्रत में स्वस्वरूप विषे जा-
गता है अरु जाग्रत स्वप्नका जो भेद है सो मनके 'मन्द' मन्दतर
तीव्र तीव्रतर स्फुरणका भेद है, परन्तु असत्यता अरु स्मृति-
मात्रता में दोनों की तुल्यता ही २६ । १०८ ॥

३० । १०९ ॥ हे सौम्य! [तब द्वैतका स्वीकार किया यह आशंका
करके कहते हैं] ['अद्वयञ्चद्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः'] 'स्वप्नविषे
अद्वैत हुआ मन द्वैताभास स्फुरता है यहाँ संशय नहीं? अर्थात् रज्जु
सर्पवत् 'परमार्थ' से आत्मारूप करके अद्वैत हुआ मन स्वप्नविषे
द्वैताभास 'नानारूप' होयके स्फुरता है । अरु स्वप्नविषे हस्ति
हयादिक ग्राह्य, अरु चक्षुरादिक ग्राहक यह दोनों ज्ञानसे भिन्न-
नहीं, एतदर्थ इसमें । मनके स्वप्नरूप से 'स्फुरणविषे' संशय न-
हीं । तैसेही "अद्वयञ्चद्वयाभासं तथा जाग्रन्नसंशयः" तैसेही जा-
ग्रतविषे भी मन अद्वैतरूप हुआ सताभी द्वैताभास । नानाप्रप-
ञ्चाकार । होयके स्फुरता है इसमें भी संशय कुठनहीं । क्योंकि
परमार्थसत्तरूप विज्ञानमात्ररूपका अविशेष है ताते अर्थात् यावत्
जाग्रत स्वप्नका नानारूप जगत् है सो केवल एक मनके स्फुरण-
मात्र है क्योंकि सुषुप्ति समाधि आदिकों विषे मनके लयहुये जगत्
का अभावही है ताते मनके स्फुरणसे इतर जगत् नहीं ३० । १०९ ॥

३१ । ११० हे सौम्य! मनोमात्र द्वैत है इस । कथना विषे अत्र
प्रमाण कहते हैं रज्जु सर्पवत् कल्पनारूप मनही द्वैतरूपसे युक्त है,
तहाँ किनि प्रमाण है, जब यह शंका हुई तब अन्वय अरु व्यतिरेक
रूप अनुमानको कहते हैं । प्रश्न । सो कैसा अनुमान है । उत्तर ।

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा । अमनस्तां
तदायाति ग्राह्याभावेतदग्रहम् ३२ । १११ ॥

“मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्मनश्चराचरम्” ६ देखने योग्य जो कुछ यह चराचर द्वैत है मन ही है? अर्थात् तिसही कल्पना रूप मन से देखने योग्य जो कुछ यह सचराचर नाना द्वैत है सो सर्व । मन की कल्पनारूप होने से । मन ही है, यह प्रतिज्ञा है, क्योंकि तिस मन के भाव हुये द्वैत का भाव अरु मन के अभाव हुये द्वैत का अभाव होता है ताते । अरु “मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते” ६ जाते मन के अमनीभाव हुये द्वैत को देखते नहीं? अर्थात् जिस करके रज्जुविषे लय को प्राप्त हुये सर्पवत्, विवेक ज्ञान के आभास अरु सम्यक् वैराग्य करके समाधिविषे वा सुषुप्तिविषे मन के अमन भाव (अफुर, निरोध) के हुये द्वैत प्रपंच देखते नहीं । अर्थात् रज्जुविषे जब सर्प की प्रतीति भ्रान्ति से होती है तब तिस अध्यस्त सर्प से भय कम्प स्वेदादिक हो आवते हैं । अरु तिस भ्रान्ती रूप अवस्थाविषे जो भय कम्पत्वादि होते हैं तिसका कारण अध्यस्त सर्प है रज्जु नहीं । अरु जब सत्यरूप रज्जु का सम्यक् विवेक ज्ञान होता है तब उस अध्यस्त सर्प के स्वाधिष्ठान में लय हुये भय कम्पत्वादि सर्वका अशेष अभाव होता है, अरु एकसत्य रूप रज्जु ही अवशेष रहती है । तैसे ही रज्जु स्थानीय एक अद्वैत सत् रूप आत्माविषे तिसके अज्ञान से सर्प स्थानीय मन स्फुरण होता है तिस मन करके भय कम्पत्वादि स्थानीय सचराचर प्रपंच द्वैतरूप जगत् उत्पन्न होता है, ताते द्वैतरूप प्रपंच का कारण मन का स्फुरण है । अरु जब आचार्य करके अपने आप सत्यरूप आत्मा का सम्यक् विवेक ज्ञान होता है तब निर्विकल्प वा विचार समाधि में मन के अमन ‘अफुर’ भाव के प्राप्त हुये समस्त द्वैत भास का अशेष अभाव होता है । एतदर्थ यहाँ द्वैत के अभाव से अद्वैत भाव सिद्ध है ३१ । ११० ॥

३२ । १११ ॥ हे सौम्य ! [समाधि अरु सुषुप्तिविषे द्वैत की अप्रतीति

के हुये, भी तिसका असत्पना, नहीं, यह शंकाकरके प्रमाण के आधीन प्रमेयकी सिद्धि है इस अभिप्रायसे कहते हैं ॥ अरु मनका जो अमन भाव कहा, अब तिसको प्रतिपादन करते हैं] । 'प्रश्न' । पुनः इस मनका । जो द्वैतका कल्पक है । अमनीभाव कैसे होता है, उत्तर "वाचारम्भणं । विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" । वाणीसे उच्चारकिया विकार नाममात्र । कहनेमात्र । ही है अरु मृत्तिकाही सत्य है ? इस श्रुतिके प्रमाणसे मृत्तिकावत् आत्मरूप ही जो सत्य है, तिस सत्का "ऐतदात्म्यमिदं स सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" इत्यादि शास्त्रका आचार्य द्वारा उपदेशहोने के अनन्तर जो बोध होता है सो सत्यरूप आत्माका अनुबोध है, ऐसे कहते हैं । "आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा" । सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे जब 'मन' संकल्पको करता नहीं ? अर्थात् तिस सत्यरूप आत्माके अनुबोधसे संकल्प के अभावसे युक्त होने करके जब (तिसकालविषे) मन, संकल्पको करता नहीं । अर्थात् जैसे बरफकी पूतली सूर्यके तेजके प्रभावसे अपने कारणरूप जलमें लयहोती है, तैसे यह स्वाधिष्ठान से अभिन्न मन रूप पूतली आचार्यरूप सूर्य के उपदेशके प्रभावसे अन्तरमुख हुई बरफकी पूतलीवत् अपने कारण अधिष्ठान आत्मरूप जलमें लीन होता है, तब तिसकालमें वा तिस निर्विकल्प समाधिमें अपने अमनभावको प्राप्तहुआ संकल्प करता नहीं, अर्थात् स्फुरणहोता नहीं । "अमनस्तां तदायाति ग्राह्याभावो तदग्रहम्" । तब ग्राह्यके अभावहुये ग्रहणरहित हुआ सो 'मन, अमनभावको पावता है ? अर्थात् आत्मा के अनुबोधसे यह मन संकल्पको करता नहीं, तब, तिसकाल विषे, जलापने योग्य काष्ठादिकों के अभावहुये अग्निके जलने के अभाववत्, ग्राह्य वस्तुके अभावहुये ग्रहणकी कल्पना से रहित हुआ सो मन अमन भावको प्राप्तहोता है ॥ अर्थात् "अमना शुभ्रो" इत्यादि प्रमाणसे जैसा मनका अधिष्ठान आत्मा अमन है तैसाही मन

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते । ब्रह्मज्ञेयमजं
नित्यमजेनाजं विबुध्यते ३३ । ११२ ॥

अर्पित होता है “ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति” ३२ । १११ ॥
३३ । ११२ ॥ हे सौम्य ! जो यह मनप्रधान द्वैत असत् है, तो
यह समीचीन आत्मतत्त्व किस करके जाना जाता है, जहाँ इस
प्रकारकी शङ्का है तहाँ समाधान कहते हैं “अकल्पकमजं ज्ञानं
ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते” । कल्पनारहित अज ज्ञानस्वरूप को ज्ञेयसे
अभिन्न कहते हैं ; अर्थात् सम्यक् आत्मानुभावी जे ब्रह्मवेत्ता है सो
सर्वकल्पनासे रहित अजन्मा । अर्थात् “येनेदं सर्वं विजाना-
ति तं केन विजानीयात्” “यन्मनेसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं”
इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे, जो मन बुद्ध्यादिकों की कल्पनासे
आवता नहीं अरु जो मन बुद्ध्यादि ‘अर्थात् तृणसे ब्रह्मपर्यन्त,
सर्वका कल्पक है, अरु जो सर्वका कल्पक है सो कल्पित होती
नहीं, इस परम सिद्धान्त से, सर्व कल्पनासे वर्जित है, अरु जि-
सकरके सर्वकल्पनासे वर्जित है तिसही करके अजन्मा है । ऐसा
जो ज्ञेयमात्र ज्ञानस्वरूप । आत्मा । है तिसको परमार्थ से सत्
ब्रह्मरूप ज्ञेय अभिन्न कहते हैं । मुमुक्षुओंकरके अज्ञात अवस्थामें
जाननेयोग्य । से अभिन्न कहते हैं । अर्थात् “अयमात्मा ब्रह्म”
यह आत्माही ब्रह्म है, ताते “नातः परमस्ति” इस आत्मा से
भिन्न ‘ब्रह्म नहीं’ क्योंकि “तत्त्वमेव त्वमेव तत्” “तत्त्वमसि”
इत्यादि श्रुतियों के महावाक्यों ने इस ज्ञानस्वरूप चैतन्य आत्मा
कोही ब्रह्मकरके कहा है, ताते सम्यक् आत्मानुभावी ब्रह्मवेत्ता इस
ज्ञानरूप आत्मा को उक्तप्रकार ज्ञेयरूप ब्रह्मसे अभिन्न कहते हैं ।
क्योंकि, “न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते” “विज्ञान
ज्ञानन्दं ब्रह्म” “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” अग्निकी उष्णता-
वत् विज्ञाती (बुद्धि) के विज्ञाताका लोप नहीं, विज्ञान आनन्द
रूप ब्रह्म है, सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्म है । इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण

निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः । प्रचारः
स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः ३४ । ११३ ॥

से सो ज्ञान ब्रह्मरूप ज्ञेयसे अभिन्न है ॥ अब तिस ज्ञानके विशेष-
पण कहते हैं । सो ज्ञान कैसा है कि, “ब्रह्म ज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं
विबुध्यते” ६ ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला अजन्मा नित्य है, अजन्मा से
जन्मरहित को जानता है ; अर्थात् अग्नि से अभिन्न उष्णता अरु
उष्णतासे अभिन्न अग्निवत् जिस ज्ञानके स्वरूपविषे स्थित ब्रह्म-
रूप ज्ञेय है, इसप्रकारका ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला है । पुनः कैसा है कि,
अजन्मा है अरु नित्य है । अर्थात् जिस करके ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है
तिसही करके अजन्मा है अरु जिस करके अजन्मा है तिसही करके
नित्य है । तिस आत्मस्वरूप अजन्मा ज्ञान से जन्मरहित ज्ञेयको
आत्मतत्त्व आपही सम्यक्प्रकार जानता है । अर्थात् जैसे सूर्य
नित्य प्रकाशरूप है, तैसे नित्य एकरस विज्ञानघन है ताते । अन्य
ज्ञानान्तरकी अपेक्षा करता नहीं ॥ इत्यर्थ ॥ ३३ । ११२ ॥

३४ । ११३ ॥ हे सौम्य ! [मुक्त पुरुषको जो ज्ञानका फल है,
सो स्वर्गादिवत् परोक्ष है नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष है । एतदर्थ प्रसंग
विषे प्राप्तहुये मनके निरोधरूप ज्ञानके फलकी प्रत्यक्षता के अर्थ
प्रसंगको कहते हैं] सत्यरूप आत्माके अनुबोधकरके सङ्कल्पको
न करता हुआ घाद्य विषयों के अभावसे इंधनादि रहित अग्नि-
वत्, मन जो है सो शान्तता अरु निरोधता को प्राप्त होता है, इस
प्रकार कहा अरु इसप्रकार मनके असनीभाव के होनेसे द्वैतका
अभाव कहा । अब कहते हैं । “निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य
धीमतः प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः” ६ निग्रह
किये सर्व कल्पना से रहित विवेकवाले मनका प्रचार सो तो
जाननेयोग्य है सुषुप्ति विषे अन्य है, तिसके तुल्य नहीं ; अर्थात्
इसप्रकार तिस निग्रहकिये सर्वकल्पनासे रहित (निर्विकल्प)
अरु धीमान् (विवेकवाले) ऐसे मनका जो प्रचार । प्रत्यगात्म

रूपसे स्थिति। सो तो कोई एक प्रकार करके योगी पुरुषों करके जानने योग्य है ॥ शंका । ननु, सर्ववृत्तियों के अभाव हुये सुषुप्ति विषे । स्थित मन का जैसा प्रचार है, तैसा ही प्रचार निरोध । अरु निर्विकल्पता । को प्राप्त हुये मन का भी होवेगा, क्योंकि उभय प्रकारसे वृत्तिकी निरोधता तुल्य है ताते । अतएव तिस निरोधको प्राप्त हुये मन विषे क्या जानने योग्य है । समाधान । सोचने नहीं, क्योंकि सुषुप्ति विषे अविद्या अरु तिसके कार्य मोहरूप अज्ञानसे ग्रस्त अरु अन्तर लीन (गुप्त) हुई अनेक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासनावाले । उक्त प्रकार की वासना करके युक्त मन का प्रचार अन्य है । अरु सत् रूप आत्मा के । महावाक्यजन्या, अनुबोधरूप अग्नि से अशेष नाश हुई है अविद्याऽऽदिक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासना जिसकी, अरु शान्त हुये हैं सर्वक्लेशरूप मल जिसके, इस प्रकारके निरोधको प्राप्त हुये मन का जो ब्रह्मस्वरूप विषे स्थितिरूप स्वतन्त्र प्रचार है सो अन्य है । अर्थात् काम कर्म वासना अविद्या इत्यादि अनर्थ करके युक्त मन का जो सुषुप्ति विषे प्रचार (लय) है सो अविद्या में लय है, जैसे सधूम अग्नि आवरणको पाया लय हुये वत् भासता है तैसे । अरु महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञानाग्निकरके जिसकी कामकर्म वासना अरु अविद्या, अशेष भस्म हुई हैं, ऐसे मन की जो निर्विकल्प समाधि विषे आत्मतत्त्व में लयता है सो । इंधनादि उपाधि से रहित हुये अग्नि की अपने सामान्य निर्विशेष रूप में लयता वत् है । ताते सुषुप्ति में मन की लयता से यह ब्रह्मस्थितिरूप लयता अन्य ही है, इस लयता को सोई जानता है कि जिस योगी को निर्विकल्प समाधि प्राप्त है । एतदर्थ यह सुषुप्तिको प्राप्त हुये मन का प्रकार तिस । आत्म स्थितिको प्राप्त हुये मन के प्रचार । के तुल्य नहीं । जिस करके इस प्रकार है, तिस ही करके तिस निरोधको प्राप्त हुये मन को जानने को । वा करने को । योग्य है । इत्यभिप्रायः ३४ । ११३ ॥

३५। ११४ ॥ हे सौम्य ! पूर्व जो कहा कि सुषुप्तिको प्राप्त हुये

लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते । तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ३५ । ११४ ॥

मनके प्रचारका अरु । निर्विकल्पे । समाधिको प्राप्तहुये मनके प्रचारका भेद है, तिसविधे अव हेतु कहते हैं “लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते” । सुषुप्ति विषे सो लीन होता है, गृहीत हुआ लीन होता नहीं; अर्थात् जिस तरह के सुषुप्ति विषे सो मन लीन होता है, अर्थात् सर्व अविद्यादिक वृत्तियों की बीजरूप वासना करके सहित अज्ञानमय अविशेष रूप बीज भावको पावता है, भरु सो समाधिको पाया हुआ मन विवेक ज्ञानपूर्वक निरोधको पायासत्ता लीन होता नहीं अर्थात् अज्ञानरूप बीज भावको पावता नहीं । ताते सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले मनके प्रचारका लीनताका भेद युक्त ही है । अरु जब समाधिको प्राप्त हुआ मन, ग्राह्य अरु ग्राहकरूप अविद्या के किये उभय मलसे रहित होता है, तब सो मन परम अद्वैतरूप ब्रह्म भावको ही प्राप्त हुआ होता है । एतदर्थ “तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः” । सोई निर्भय है ब्रह्म है ज्ञानालोक है सर्व ओर से है; अर्थात् जब । सम्यक् आत्मज्ञानको पायके यह मन अज्ञान रूप बीज भावसे रहित शुद्ध होता है । तब सो मन परम अद्वैत रूप परब्रह्म ही को प्राप्त हुआ है, एतदर्थ सोई भयरहित निर्भय ब्रह्म है । “विद्वान्निभेति कदाचन” क्योंकि भयका निमित्तरूप जो द्वैत तिस द्वैत भावके ग्रहणका अभाव है ताते । ब्रह्म शान्त अरु अभय है ॥ अब तिस ही ब्रह्मको विशेषण देते हैं । सोई ब्रह्म ज्ञानालोक है, अर्थात् आत्मा की स्वभावभूत चैतन्यस्वरूप ज्ञप्तिरूप ज्ञान है (आलोक) कहिये प्रकाश जिसका । अर्थात् ज्ञान रूप है प्रकाश जिसका । ऐसा जो ब्रह्म तिसको ज्ञानालोक । एकरस ज्ञानघन । कहते हैं, अरु सर्व ओर से है, ताते उसको ‘समन्ततः’ कहते हैं । अर्थात् आकाशवत् सर्व ओर से निरन्तर व्याप्त है “आकाशवत्सर्वगतः सन्नित्यः” ३५ । ११४ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् । सकृद्विभातंस
वर्जं नोपचारः कथञ्चन ३६ । ११५ ॥

३६ । ११५ ॥ हे सौम्य ! [प्रसंगविषे प्राप्तहुये अर्थ की अन्य
प्रकारसे भी निरूपण करते हैं] "अजमनिद्रमस्वप्न मनामकम-
रूपकम्" । अज है अनिद्रा है अस्वप्न है अनाम है, अरूप है ;
अर्थात् सोई ब्रह्म । अर्थात् ब्रह्मनामक आत्मा किं जिस विषे
ज्ञानद्वारा लीनहुआ मन ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है । जन्म के
निमित्त के अभावसे "सर्वाहोभ्यन्तरोह्यजः" बाह्य अन्तर सहित
अजन्मा है । अरु जिसकरके रज्जुसर्पवत् अविद्यारूप निमित्त
वाला जन्म है, इस प्रकार हम कहते हैं । अर्थात् जन्म के निमित्त
जे अविद्याकाम कर्मादिक तिनके अत्यन्ताभावसे ब्रह्मविषे ज-
न्मका हेतु न होनेसे वो वास्तव्यकरके सदा अजन्माही है, तिस
विषे अद्वैत के बोधार्थ आरोपमात्र जन्म (जगदुत्पत्ति) कही है,
सो, जैसे भ्रान्तिरूप निमित्त से रज्जुका, सर्परूपसे जन्म है तैसे
उस अज ब्रह्मका अविद्यारूप निमित्तवाला जन्म है ऐसा हम
कहते हैं । अरु सो अविद्या आत्मारूप सत्यके अनुबोध से
निरोध को प्राप्तहुई है, एतदर्थ सो अजन्मा है । अर्थात् जैसे
रज्जुको स्वरूप विषयक भ्रान्तिका अत्यन्ताभावन है ताते सो
भ्रान्ति करके भी सर्परूप से जो केवल भ्रान्तिमात्रही है,
जन्मवान् न होके सदा अजन्माही है, क्योंकि रज्जु जो सर्व-
रूप से भासती है सो भ्रान्तिकाल विषे बुद्धिको भासती है
स्वयंरज्जुको नहीं, तैसेही सदा ज्ञानप्रकाश स्वरूप अद्वितीय
आत्मामे जन्म के निमित्त अविद्या आदिकों के अत्यन्ताभावसे
उसके शुद्ध सत्यज्ञान स्वरूप में द्वैतके अभावसे जन्म (जग-
दुत्पत्ति) अप्यारोपमात्र भी नहीं, ताते उसविषे जे जन्म
(जगदुत्पत्ति) अप्यारोपमात्र कही है सो भी अविद्याश्रित
युद्धिने अद्वैत आत्मनस्त्व के निश्चयार्थ कही है, परन्तु तिस

अविद्यात्मक बुद्धिका उस आत्मदेव विषे सूर्यमें अन्धकारवत् अत्यन्त अभाव है, क्योंकि सो अविद्या अपने अधिष्ठान चैतन्यसत्ता के आश्रय चैतन्यवत् हुई स्वाधिष्ठान में जन्मादि (जगदुत्पत्त्यादि) कों की कल्पना करती है, सो अविद्या आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञानोपदेश पाय अपने अधिष्ठान आत्मारूप सत्यके अनुबोधवती हुई आप अपने सत्य चैतन्य अद्वैत आत्मारूप अधिष्ठान में निरोध (लय) को प्राप्त होती है, ताते वास्तव करके आत्माविषे उस कल्पक अविद्या के लयहुये, उस ब्रह्मनामक शुद्ध निरुपाधि निर्विशेष चैतन्य आत्माविषे कल्पना के भी निमित्त का अत्यन्ताभाव होने से अभ्यारोपमात्र भी जन्म (जगत् की उत्पत्त्यादि) नहीं । ताते वो नित्य अजन्मा है अरु जिस करके सो अजन्मा है तिस करकेही अनिद्र (निद्रासे रहित) है । अर्थात् निद्रादिक अविद्यात्मक बुद्धिके धर्म हैं तिससे पृथक् जो अज आत्मा तिसके नहीं ताते सो अनिद्र है । । अरु जिस करके अविद्यारूप अनादि मायामय निद्रासे अद्वैतरूप आत्मतत्त्व विषे प्रबोध को पाया है, तिसकरके स्वप्नसे भी रहित है । अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदिक जे अविद्यात्मक बुद्धिकी अवस्था तिन से रहित है । अरु जिसकरके अप्रबोधके किये जो अपने नामरूप है, सो रज्जुके ज्ञानसे सर्ववत् अपने प्रबोध से नाश हो प्राप्तहुये पश्चात् यह ब्रह्मनाम करके कहते नहीं । अर्थात् एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व विषे नामरूपादिकों की कल्पना करनेवाले के अभाव से उसविषे नामरूपादि दोनों नहीं । वा वो किसी भी प्रकारसे निरूपण किया जातानहीं । क्योंकि वाणी आदिकों का अविषय है ताते । ताते सो निर्विशेष आत्मतत्त्व आकार विकार से रहित निराकार होने से नाम अरु रूप से रहित है “ यतोवाचो निवर्त्तन्ते ” (जहां से वाणियां निवृत्ति होती हैं) इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे किंचा “ सकृद्विभातंसर्वज्ञोपचारः कथञ्चन ” (सर्वदाही प्रकाशरूप है सर्वज्ञ है किसीप्रकारसे भी उपचार है नहीं)

सर्वविद्यापविर्गतः सर्वचिन्तासमुत्थितः । सुप्र-
शान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलो भयः ३७।११६ ॥

अर्थात् सो । आत्मतत्त्व सर्वदाही प्रकाशरूप है, क्योंकि अग्रहण
अन्यथा ग्रहण आविर्भाव अरु तिरोभाव इन सर्वका अभावहे ताते
अरु । ग्रहण अरु अग्रहणरूप दिवस अरु रात्रि, अरु अविद्यारूप
अन्धकार, यह तीन सदा अप्रकाशपने विषे कारण हैं, तिनका
। उस अद्वैत आत्मतत्त्व विषे । अभावहे ताते । सो सर्वदा प्र-
काशरूपही है । अरु नित्य चैतन्य प्रकाशरूप होने से ब्रह्मका
सर्वदाही प्रकाशरूप होना युक्तही है । इसही करके सर्वरूप जो
ज्ञानस्वरूप सो कहिये ज्ञानस्वरूप सो कहिये सर्वज्ञ, ऐसा है
। अर्थात् उस ज्ञानस्वरूपको सर्वरूप से सुशोभित होने करके
उसको उक्तप्रकारका सर्वज्ञ कहते हैं । इसप्रकारके इस ब्रह्म
(ब्रह्मवेत्ता) विषे किसीप्रकार से भी उपचार (कर्तव्य) है
नहीं । जैसे अन्य । अनात्मवेत्ता । को आत्म स्वरूप से इतर
चित्तकी एकाग्रता आदिक कर्तव्य है, तैसे ब्रह्मवेत्ता को नित्य
शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव करके अविद्या के सम्यक् विनाशहुये कि-
सी प्रकार से भी कर्तव्यताका संभव है नहीं [यहाँ यह अर्थ है कि
अविद्यादशाविषेही सर्व व्यवहारहै, अरु विद्यादशाविषे अविद्या
को असत् होने करके कोईभी व्यवहारहै नहीं । परन्तु ' बाधिता-
मुवृत्तिसे ' अर्थात् बाधितहुये व्यवहारकी अनुवृत्ति से । विद्वान्
विषे । व्यवहार के प्रतीति की सिद्धि है । प्रातिभासिकवत् ।
। तिस करके उस विद्वान् के स्वरूप विषे किञ्चित् भी क्षति
नहीं ३६।११५ ॥

के अर्थ कारण कहते हैं, “सर्वअभिलाप विगतः सर्वचिन्ता समुत्थितः” १ “सर्वअभिलापसे रहित है, सर्वचिन्ता से सम्यक् उत्थान को पाया है” अर्थात् भाषण करते हैं जिसकरण विशेषसे ऐसा जो सर्वप्रकारके कथनका करण वाणी, तिसको अभिलाप कहते हैं, तिस सर्वअभिलाप । कथन । से रहित है “नातिवादी” अर्थात् वह जो एक वागेन्द्रियको कहा है सो उपलक्षमात्रके अर्थ है, एतदर्थ ब्रह्मरूपे विद्वान् वागेन्द्रिय उपलक्षणकरके सर्व वाह्यकरणों से रहित है, यह इसका अर्थ है । तैसे ही जिसकरके चिन्तन करते हैं ऐसी जो बुद्धि तिसको चिन्ता कहते हैं, तिससर्व चिन्तासे सम्यक् प्रकार उत्थान को पाया है, अर्थात् बुद्धि उपलक्षण करके बुद्धि आदि सर्व अन्तःकरणों से रहित है, क्योंकि “अप्राणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः” २ “अप्रमाण है अमन है, अरु शुभ्र कहिये शुद्ध है, अरु कार्य से पररूप अक्षर (कारण) तिससे पर है । इस श्रुतिके प्रमाणकरके सर्वकरण अरु तिनके विषयादि इनसे रहित है । अरु “सुप्रशान्तः सकृज्ज्योति समाधिरचलोऽभयः” ३ “निरन्तरशान्त है, सर्वदा ही प्रकाशरूप है समाधिरूप है अचल है, अभय है” अर्थात् जिसकरके बाह्यान्तरके करणादिकों से रहित है, इसहीकरके निरन्तरशान्त है अरु आत्म चैतन्य स्वरूपसे सर्वदा ही प्रकाशरूप है, अरु समाधि रूप निमित्तवाली बुद्धिसे जानने योग्य होने से समाधिरूप है । अर्थात् “दृश्यते तन्मया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः” ४ “प्रज्ञानेनेन माप्नुयात्” इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समाधिरूप, निमित्तवाली बुद्धिका विषय होने योग्य है, ताते समाधिरूप है, वा “समाधानं क्रियते चित्तं यस्मिन् स समाधिः” “जिस विषे समाधान करते हैं चित्तकी सो कहिये समाधि, ताते भी आत्म चैतन्य प्रकाशको समाधिकहते हैं, ताते वो समाधि है, वा इस परमात्मा विषे जीव वा तिसकी उपाधि स्थापित करते हैं, याते यह, परमात्मा समाधि है, अरु अचल (सर्वक्रियासे रहित) है अरु जिस करके क्रिया का उस विषे अभाव है तिनही करके अभय है ३७ । ११६ ॥

ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते । आत्मसं-
स्थन्तदाज्ञानमजाति समतांगतम् ३८ ॥ ११७ ॥

॥ अर्थः ॥ ११७ ॥ हे सोम्य । [प्रसंगविषे प्राप्तद्वये अविकारी ब्रह्म-
विषे विधि निषेधके आधीन लौकिकरूप अरु वादिकरूप ग्रहण अरु
त्याग व्यवहार है नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिस करके ब्रह्म
की समाधि अचल अरु अभय है इस प्रकार कहा है, एतदर्थ
“ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते” । तिसविषे ग्रहण
नहीं त्याग नहीं, अरु जिसविषे चिन्ता विद्यमान नहीं, अर्थात्
तिस ब्रह्मविषे ग्रहण नहीं वा त्याग नहीं । अर्थात् जहाँ विकार वा
विकारका विषयपना होता है, तहाँ ग्रहण अरु त्याग होता है । ताते
अन्य विकार हेतुके अभावसे अरु निर्वच्यवहोने से इस ब्रह्मविषे
वे ग्रहण अरु त्याग दोनों संभवेनहीं पाते तिस विषे ग्रहण अरु
त्याग यह है भी नहीं अरु तिस ब्रह्मविषे चिन्ता नहीं । अर्थात्
जहाँ सर्वप्रकार की मोक्षपर्यन्त की भी चिन्ता नहीं संभव है, अरु
अमनीभाव है, तहाँ ग्रहण अरु त्याग कहाँसे होगा, किन्तु कदापि
नहीं होगा, इत्यर्थः । अरु जबही आत्मरूप सत्यका अनुबोध हुआ
तबही विषयके अभावसे अग्निकी उष्णतावत् “आत्मसंस्थन्त-
दा ज्ञानमजाति समतांगतम्” । आत्माविषेही स्थितहुआ जन्म
से रहित समताको प्राप्तहुआ ज्ञान होता है, अर्थात् आत्माके
सम्यक् बोधद्वये विषयोंके अभावसे अग्निविषे उष्णतावत्, आ-
त्माविषेही स्थितहुआ, अरु जन्मसे रहित परमसमताको प्राप्त
हुआ ज्ञान होता है “अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतांगतमि-
ति” । याते जन्मरहित अरु समताको प्राप्तद्वये अद्वयभावको
कहता हों । इसप्रकार जो इस तृतीयप्रकरणकी आदि के दूसरे
श्लोक में पूर्व प्रतिज्ञाकिया है सो यह युक्ति से अरु शास्त्र से कहा,
सो यहाँ “अजाति समतांगतम्” । जन्मरहित समताको प्रा-
प्तहुआ होता है । इसप्रकार कहके समाप्तकिया । अरु इस आत्म-

अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः । योगि
नो विभ्यति ह्यस्माद्भये भयदर्शिनः ३६ । ११८ ॥

रूप सत्यके अनुबोधसे जन्य ज्ञान कृपणताको, विषय करनेवाला है, क्योंकि “ यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा अस्माह्लोकात् प्रैति स कृपण, इति ” “ हे गार्गी ! जो इस अक्षरको न जानके इस मनुष्य शरीररूप लोकसे मरणको प्राप्त होता है सो कृपण है ” इस प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद्के पञ्चमाध्याय के अष्टम ब्राह्मण विषे याज्ञवल्क्यमहाराजने गार्गीप्रति कहा है । इस श्रुतिके प्रमाण से इस तत्त्वज्ञानको पायके सर्वजन कृतकृत्य ब्राह्मण होते हैं । इत्यभिप्रायः ॥ “ यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वा अस्माह्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः ” इत्यादि श्रुतिः ३८ । ११७ ॥

३६ । ११८ ॥ हे सौम्य ! यद्यपि [परमार्थरूप ब्रह्मस्वरूप से स्थितिरूप फलवाला जब अद्वैतका ज्ञान है, तब तिसका सर्वपुरुष आदर क्यों नहीं करते, जहाँ ऐसी शंका है, तहाँ कहते हैं] यह परमार्थरूपतत्त्व प्रत्यगात्मारूप कूटस्थ सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म इस प्रकार पूर्वोक्तरीत्या तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होता है तथापि । तिसकी अप्राप्तिसे । संतोष को प्राप्त हुये जे मूढ़पुरुष सो तिसविषे निष्ठावान् होते नहीं इस प्रकार कहते हैं “ अस्पर्श योगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः ” “ अस्पर्शयोग नामवाला प्रसिद्ध स्मरण करते हैं, अरु योगियों से दुःखसे वर्जन करने योग्य है ? । सर्ववर्णाश्रमादि धर्म अरु पापादिसल] से सस्वन्धरूप स्पर्श से रहित है ताते, अरु जीवको ब्रह्मभावविषे योजना करता है, यह अद्वैतका अनुभवरूप अस्पर्श योग उपनिषदोंविषे स्मरण करते हैं । अर्थात् उक्त योग उपनिषदोंके वाक्य प्रमाण से निश्चित करते हैं । सो वेदान्तशास्त्र । उपनिषद् ब्रह्मसूत्रादि । के विज्ञानसे रहित बहिर्मुख जे कर्म निष्ठरूप सर्वकर्मयोगी । कर्मासक्त । तिनोकरके श्रवण मननादि रूप दुःख से देखने के योग्य है । अर्थात् कर्मासक्त कर्मी पुरुषोंकरके

मनसोनिग्रहायत्तमभयंसर्वयोगिनाम् । दुःखक्षयः प्र
बोधश्चाऽप्यक्षयाशान्तिरेव च ४० । ११९ ॥

वदान्तशास्त्र ब्रह्मविद्या के श्रवण मननादि साधनों के दर्शन भी
आति दुःसाध्य हैं । क्योंकि “न कर्मिणो प्रवेदयन्ति रागात्”
इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे उस कर्मनिष्ठको कर्मोंके फलके निमित्त
कर्ममें रागअधिकहै ताते । अर्थात् आत्मीरूप सत्यके अनुबोधरूप
वस्तुकी प्राप्ति, सो भयसे होनेको योग्यहै । अरु “योगिनो विभ्यः
ति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः” १८ भयरहित विषे भयको देखने के
स्वभाववाले । कर्मयोगी । भयको करतेहैं ; अर्थात् जिस करके
भयरहित इस । आत्मीरूप सत्यके अनुबोधरूप । योगविषे, भयका
निमित्त जो अपना नाश तिसको देखनेके स्वभाववाले । अर्थात्
अविनाशी अभयरूप अपनेआप आत्माविषे नाशरूप भयके देखने
के स्वभाववाले । जे अविवेकी । कर्मयोगी । हैं सो अपने नाशरूप
योगको मानतेहुये, सर्व भयसे रहितभी इस । आत्मानुबोधरूप ।
योगसे, भयको करते हैं । ताते सो । आत्मानुबोधरूप योग ।
सर्व योगियों करके दुःख सेही देखने (प्राप्तहोने) को योग्यहै,
इसप्रकार इस उलोक के पूर्वार्द्धसे सम्बन्ध है ३६ । ११८ ॥

४० । ११९ । हे सौम्य ! [उक्तप्रकार उत्तमबुद्धिवाले अधिकारी
पुरुषोंके अर्थ, अद्वैतज्ञान अरु अद्वैत ज्ञानकाफलरूप मनके नि-
रोधको कहके, अब मन्दबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषोंके अर्थ मनके
निरोध के आधीन आत्मज्ञान के कहने का आरंभ करते हैं] पुनः
जिनको ब्रह्मस्वरूप से भिन्न मन अरु इन्द्रियादिक । आत्मा विषे
रज्जुविषे सर्पादिवत् कल्पितहीहै, परमार्थ से नहीं । इसप्रकारका
अनुबोध हुआ है । तिन ब्रह्मस्वरूप पुरुषों को अभय (तत्त्वज्ञान)
अरु मोक्षनामक अक्षय शान्ति स्वभावसेही सिद्धहै, अन्यसाध-
नोंके आधीन नहीं, क्योंकि, “सकृदिभातंसर्वज्ञं नोपचारः कथञ्च
न ” किसी प्रकारसेभी उपचार कहिये कर्तव्य सोहैनहीं यह पूर्व

४८. उत्सेकउदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकविन्दुना । मनसोनिग्रहस्तद्वद्वेदपरिखेदतः ४९ ॥ १२० ॥

इसही प्रकरणके ३६ वें श्लोक विषे कहा है ताते, इसप्रकार हम कहते हैं। अरु जो इन उत्तमाधिकारियों से । अन्य सन्मार्गगामी मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले योगी (कर्मयोगी अरु उपसनयोगी) आत्मा से भिन्न मन अरु अन्य इन्द्रियादिके तिनको आत्माका सम्बन्धी देखते हैं तिनको 'मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम्' । 'सर्व योगियोंको मनके निग्रह के आधीन अभय है' अर्थात् जो मन अरु इन्द्रियोंको आत्माके सम्बन्धी देखते हैं तिन आत्मरूप सत्य के अनुबोधसे रहित, सर्व योगियोंको मनके निग्रह के आधीन अभय (तत्त्वज्ञान) है । अर्थात् मनका संकल्पादिकों से अरु इन्द्रियोंका विषयोंसे यावत् निग्रह होतानहीं तात यथार्थतत्त्व (आत्म) ज्ञान होता नहीं इसप्रकार योगीजन मानते हैं । अथवा जिसकरके अश्विनेकी पुरुषोंको आत्माके सम्बन्धी मनको चंचल होनेसे दुःखका क्षय होतानहीं, एतदर्थ उनको दुःखका क्षय मनके निग्रह के आधीन है । अर्थात् जो अश्विनेकी मनको आत्माका सम्बन्धी मानते हैं तिनके मतमें आत्माको जो दुःख है सो तिसके सम्बन्धी मनके चंचल होनेसे ही ताते आत्माके दुःखका क्षय मनके निग्रह होनेके आधीन है जब मनका निग्रह होय तबही दुःखका क्षय होवे तिस विना नहीं । ताते । 'दुःखक्षयः प्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिश्च' । 'दुःख का क्षय आत्माका प्रबोध अरु अक्षय शान्ति भी' । 'मनके निग्रहसे ही है' अर्थात् जो योगी पुरुष मनको आत्माका सम्बन्धी मानते हैं तिनके मतमें दुःखका क्षय अरु आत्मज्ञान अरु पराशान्ति मोक्ष यह मनके निग्रह के आधीन ही है ४० । ११६ ॥ ४१ । १२० ॥ हे सौम्य ! [मोक्षकी इच्छावाले सुमुखपुरुषोंको मनका निरोध कैसे सिद्ध होवेगा, यह शङ्का करके कहते हैं] 'उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकविन्दुना' । 'जैसे कुश के अग्र से

उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः । सुप्रसन्नं
लये चैव यथाकामो लयस्तथा ४२ । १२१ ॥

एक बिन्दुकरके समुद्रका उत्सेक हुआ है; अर्थात् जैसे अतिसू-
क्ष्म कुशिके अग्र करके बाह्यफेके हुये एक बिन्दु करके समुद्र का
उत्सेक । बाह्यफेकनेका निश्चय । टिट्ठिम नामक पक्षी को हुआ
है "मनसो निग्रहस्तद्वज्रवेदपरिखेदतः" । ६ तैसे अखेद से म-
नका निग्रह भी होता है; तैसे निश्चयवाले अरु उद्वेग रहित
अन्तःकरणवाले जो हैं तिन पुरुषों को अनिर्वेदरूप अखेदसे । खेद
रहित । मनका निग्रह भी होता है "अभ्यासेनतु कौन्तेय त्रैराग्ये
ण च गृह्यते" ४१ । १२० ॥

४२ । १२० ॥ हे सौम्य ! [समाधि करनेवाले पुरुषोंको तत्त्वके
साक्षात्कार होनेके प्रतिबन्धक विघ्नाः लय, विक्षेप, रसास्वाद
(सुरुचि) अरु कषाय (राग) हैं, तिनमें आगे कहने के उपाय
करके मनका निग्रह करना, क्योंकि अन्यथा समाधिकी सफलता
का असंभव है ताते, इस प्रकार कहते हैं [प्रश्न ॥ क्या खेदरहित
निश्चयमात्रही मनका निग्रह होने, विषे उपाय है । उ० । तर्हा
'नहीं, इस प्रकार कहते हैं । उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभो-
गयोः । उपायसे कामभोग विषे विक्षेपको प्राप्तहुयेको निरोध
करे; अर्थात् खेदसे रहित निश्चयवान् हुआ अग्रिम कहनेके उ-
पायसे कामभोग अरु विषयोविषे विक्षेपवान् हुये मनको आत्मा
विषेही निरोधकरे । अर्थात् मन सहित सर्व उत्तम स्वर्गादिकों के
अरु मध्यम इसलोकके यावत् दृश्य अरु अदृश्य विषयादि भोगे
हैं सो, एक सर्वाधिष्ठान आत्माविषे अध्यस्तहैं ताते स्वाधिष्ठान से
उनकी इतरसत्ता के अभावमें वो असत् है अरु उन सर्वका अधि-
ष्ठान, आत्मा सत्य है, ताते जहां जहां जिन जिस विषे मन जाये
तहां तहां तिसको असत्य कल्पितजान तिनका आश्रय सत्यरूप
आनन्दधन आत्माका, निश्चयकर तहांही मनको स्थिरकरे अरु

दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् । अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति ४३ । १२२ ॥

“ सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा ” १ लय विषे प्रसन्नहुये को जैसा काम तैसा लय भी है ; अर्थात्, किंवा जिस विषे मन लीन होता है, ऐसी जो सुपुत्ति तिसको लय कहते हैं, तिस लय विषे प्रसन्नहुये । अर्थात् खेद रहित हुये । भी मनको निरोध करे । अर्थात् प्राणादिकोंका निग्रह करके समाधिमें स्थित हुआ पुरुष अपने मनको सुपुत्ति, निद्रा, विषे न जाने दे क्योंकि निर्विकल्प चिन्मात्र स्थितिमें अविद्यारूप जड़ सुप्ति विघ्नकारी है ताते । शङ्का ॥ ननु जब मन प्रसन्न हुआ तब किसवास्ते तिसका निरोध करिये । जहा इस प्रकारकी शङ्का है, तहां समाधान कहते हैं “ सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा ” १ लय विषे प्रसन्नहुये को भी । निरोध करे । जैसा काम है तैसा ही लय भी है । अर्थात् सुपुत्ति में लय हुआ मन प्रसन्न होता है परन्तु सुपुत्ति अनिदिरूप होनेसे तिस विषे लय हुआ मन पुनः जाग्रत् स्वरूप विशेष दुःखको ही पावता है, ताते जैसा काम मनको अनर्थका हेतु है, तैसा ही । सुपुत्ति विषे लय का होना भी अनर्थकारी है, अतएव कामको विषय करनेवाले मन के निग्रहवत् । अर्थात् जैसे काम अरु विषयादिकों से मनका निग्रह करते हैं । निद्रारूप लयसे भी मनका निरोध करना योग्य है । अर्थात् लय । सुपुत्तिमें मनमालय (निद्रा) का होना, अरु विक्षेप, अफुरहुये मनमें संकल्पोंका फुरना, अरु रसास्वाद, समाधिसुखमें रागका होना, अरु कषाय कर्मणी बुद्धिआदिक अन्तःकरणके दोष ।

आत्माके श्रवण मननरूप ज्ञानका अभ्यास अरु समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत् से वैराग्य । इनदोनों उपायों करके 'लय' अरु विक्षेप से निवर्त्त (निरोध) किया जो मन सो जब रागसे प्रतिबन्धको प्राप्तहोवे, तब श्रवण मनन अरु निदिध्यासन के अभ्यास से जन्य संप्रज्ञात् (सविकल्प) समाधिपर्यन्त अभ्यास से तिस रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करने को योग्य है । अर्थात् आत्मा के श्रवणादिकों के अभ्यासरूप उपाय करके इस मन को रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त्त करना योग्य है ।] ॥ प्रश्न ॥ तिस मनके । कि जिसका स्थित अचलहोना योगीजन इच्छतेहैं । निग्रह करने का उपाय कौन है, । तहां ज्ञानाभ्यास अरु वैराग्य । उपाय । है, इस प्रकार उक्त प्रश्न का उत्तर कहतेहैं "दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत्" । सर्व दुःखरूपही है इस प्रकार स्मरण करके कामके भोगको निवारणकरे, अर्थात् अविद्यारचित समस्त द्वैतसर्व दुःखरूपही है, इस प्रकार ज्येष्ठ श्रेष्ठों से वा शास्त्रसे स्मरणकर । सर्वदा स्मृतिमें रखाके कामके भोग (रूपादिविषय) से प्रसरित हुये मनको । अर्थात् जो कामनाके वशहुआ मृगजलवत् इसलोक परलोकादिकों के उत्तम मध्यम विषयभोग तिनविषे आसक्त प्रसरितहुआ क्षणमात्रको भी विश्राम पावता नहीं, ऐसा जो विक्षेपवान् चञ्चलमन तिसको वैराग्यकी भावना से निवारणकरे । अर्थात् यावत् उत्तम मध्यम विषयभोग हैं, तिन विषे यद्यपि सुखभी प्रतीतहोता है, तथापि विषयुक्त अति सुन्दर स्वादिष्टपाकवत् साधन परतन्त्रत्वं अरु क्षीणत्व यहदो अनिवार्यदोष तिनकरके युक्त विषय दुःखरूपहीहैं इसप्रकार सम्यक्ज्ञान के अनुभूतकरके, अरु "इवोभावांमर्त्यस्य यदन्तर्केतत् सर्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः" । इत्यादि श्रुतिवाक्यों से स्मरणकर उक्त प्रकार सर्वत्र सम्यक्दोषदृष्टिरूप वैराग्यकी भावनासे निवारणकरे । अरु "अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति" । अजन्मा सर्व है ऐसा स्मरण करके उत्पन्नहुआ कुछभी तो जानता नहीं ; अर्थात्

लयेसम्बोधयेचित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः । सकषायं वि-
जानीयात्समप्राप्तं न चालयेत् ४४ । १२३ ॥

अजन्मा ब्रह्मरूप सर्वहै, इसप्रकार श्रुति अरु आचार्यके उपदेशसे स्मरणकरके पश्चात् तिस ज्ञानाभ्यासके दृढ़होनेसे तिससर्वात्म भावसे विपरीत द्वैतके समूह को तिसके अभाव से देखताही नहीं ४३ । १२२ ॥

४४।१२३॥ हे सौम्य! "लये सम्बोधयेचित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः" लयविषे चित्तको प्रबुद्धकरे विक्षेपके प्राप्तहुयेको शान्तकरे? अर्थात् उक्तप्रकारके इन ज्ञानके अभ्यास अरु वैराग्य रूप उभय उपायोंकरके लय (सुषुप्ति) विषे लीनहुये चित्तको जगावे । अर्थात् आत्माके अनुभव ज्ञान विषे लगावे । अर्थात् समाधिकाल में जब चित्त सुषुप्तिमें प्राप्तहोनेलगे तब लयहोने से पूर्व उस निर्विकल्प अवस्था विषे कि जहां मन अरु प्राण के अवरोध से विशेष वृत्ति आदिकों का अभाव अरु सामान्य आत्मानुभवाकार वृत्ति का भाव है तिनभावाभाव का प्रकाशक साक्षीआत्मा अज्ञात सुषुप्तिसे पृथक् सिद्धहै कि जिसकरके अज्ञानसुषुप्ति सिद्धहोतीहै सो अनुभवतत्त्व लयादिकोंका साक्षी नित्य जाग्रत् (बोध) स्वभाव है तिस अधिष्ठानविषे चित्तको जोड़े ॥ पुनः कामों के भोगों (विषयों) विषे विक्षेपको प्राप्तहुये चित्तको शान्तकरे । इसप्रकार धारणारविचार अभ्यासकरनेवाले योगीका चित्त लयसेजगाया गया, अरु विषयोंसे निवृत्त क्रियागया, अरु समभावको प्राप्तहुआ नहीं, किन्तु मध्य अवस्थायालाहै, तब सो उस अवस्थामें कषाय दोषवालाहै "सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत्" कषाय सहितको जानना समप्राप्तको चलावेनहीं, अर्थात् लयतासेजागा अरु समताको प्राप्तहुआ नहीं ऐसेजो समाधिकी मध्यमावस्था को प्राप्तहुआ चित्त सो कषायदोष सहित होताहै तब तिन कषाय रागके (वीज) सहितको जानना । अरु तिस कषायसेभी निर्विकल्प

नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत् । निश्चलं
निश्चरत् चित्तं एकीकुर्यात् प्रयत्नतः ४५ । १२४ ॥

समाधिरूप प्रयत्नसे निर्विकल्प समाधिरूप समभाव को प्राप्त करें
हैं, परन्तु जब चित्त सर्व विशेष वृत्तियों को त्यागके केवल सम-
भाव की प्राप्ति के सम्मुख होय तब तिस सम प्राप्तिवाले चित्त
को चलावे 'स्फुरणा के सम्मुख करे नहीं ४४ । १२३ ॥

४५।१२४॥ हे सौम्य ! [समाधिकरनेकी इच्छाविषे जो सुख
उपजताहै तिससुखको विषय करनेवाली इच्छासे भी मनको रो-
कना योग्यहै इसप्रकार कहते हैं] समाधि करनेकी इच्छावाले
योगीको " नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसंगप्रज्ञया भवेत् " [सुख को
स्वादन करे नहीं तहां प्रज्ञाकरके निःसंगहोय, अर्थात् । निर्विक-
ल्प । समाधि को प्राप्त होनेकी इच्छावाले योगीको । निर्विकल्प
समाधि से पूर्व सविकल्प समाधि विषे चित्तको विषयोंसे उपराम
अरु प्रत्यक् आत्मा के सम्मुख होनेसे । जो सुख होताहै तिसको
सोयोगी आस्वादन करे नहीं । अर्थात् सविकल्प समाधिके अन्त
अरु निर्विकल्प समाधिके पूर्वमें जो सुखहै तिसके आस्वादनको
रसास्वाद कहते हैं तिस विषे आसक्त होयेनही । क्योंकि तिस स-
माधि विषे जो सुख प्रतीत होताहै सो अविद्याकरके कल्पित । वि-
शेषके अभाव अरु अन्तर सुखता करके जन्य । मिथ्याहै । क्योंकि
वो सत्य आत्मानन्द सुखनहीं ताते । ऐसी विवेकवती बुद्धिकरके
निःसंग । अर्थात् उक्त अविद्यात्मक सुखसे निस्पृह । होवे । अर्था-
त् उस सुखकी स्पृहासे रहित असंगहुआ परमानन्दमय आत्मा
की भावना करे, अर्थात् तिस समाधि सुखके रागसे भी चित्तको
निरोधकर अराग आत्माकार होवे । अरु " निश्चलं निश्चरत्
चित्तं एकीकुर्यात् प्रयत्नतः " [निश्चल बाहर जानेवाले चित्तको
प्रयत्नसे एकाकारकरना, अर्थात् जब सुखके रागसे निवृत्तहोके
निश्चल स्वभाववाला हुआ चित्त पुनः बाहर जानेवाला होवे

यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः । अनिगंन
मनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ४६ । १२५ ॥

। अर्थात् रसास्वादसे निवृत्त निश्चल हुआ चित्तभी जो कदापि
पूर्वाभ्यासके संस्कारवश बाह्य विषयों के सम्मुख वा तिस' अव-
स्थाविषे दर्शितहुई जो सिद्धि तिसमें रागजान् हुआ तिनके स-
ममुख होये । तब तिस निश्चल हुये परभी पूर्व संस्कारों के वश
बाह्य जानेवाले चित्त को भी, तिन तिन विषयों से उक्त ज्ञाना-
भ्यासादिक उपायों से रोंकके पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न
करके आत्माविषेही एकरूप करना । अर्थात् निर्विकल्प समाधि
करके युक्त चैतन्यस्वरूप सत्ता समान मात्रही सम्पादन करना ॥
। अर्थात् समाधि से उत्थान (विषय सम्मुख) हुये चित्तको पुनः
सविकल्प समाधिरूप प्रयत्नसे अन्तर आत्माके सम्मुखकर अचे-
त्य चिन्मात्र सत्ता समान स्वरूपविषे अभेदतासे एकाकार स्थि-
त करना ४५ । १२४ ॥

स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम् । अज-
मजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते ४७ । १२६ ॥

सम्पन्न होता है? अर्थात् जब उक्तप्रकार अचल अरु अनाभास होता है तब सो चित्तब्रह्म स्वरूपकरके सम्पन्न होता है ४६।१२५॥
' ४७।१२६ हे सौम्य! [असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधि विषे जिसरूपकरके चित्त सम्पन्न होता है तिस ब्रह्मस्वरूप को विशेषण देते हैं] ' स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणं अकथ्यं सुखमुत्तमम् ' । ६ उत्तम सुखको स्वस्वरूप विषे स्थित शान्त निर्वाण अरु अकथ्य कहते हैं? अर्थात् उक्तप्रकारके योगीके पूत्यक्ष परमार्थरूप सर्वोत्तमब्रह्म सुख को ब्रह्मवेत्ता 'आत्मरूप सत्यका अनुबोधरूप स्वस्वरूपविषे स्थित अरु सर्व अनर्थोंकी (कामनाकी) निवृत्तिरूप शान्त, अरु निर्वाण । मोक्षकरके सहित वर्तमान, अरु असाधारण विषयवाला होने से कहने को अशक्य ।' अर्थात् नेत्रमें लगाया अंजननेत्र के अति समीप नेत्रान्तर होनेसे वो नेत्रका विषय नहीं, तैसेही बागादिक सर्व इन्द्रियों का अन्तरात्मा अत्यन्त निकट होनेसे बागादिकों का अविषय है । अरु ' अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते ' । जन्मसेरहित अनुत्पन्नहुये ज्ञेयसे सर्वज्ञ ब्रह्मही कहते हैं? अर्थात् जैसे स्त्रीसंगादि सुख विषयजन्य है तैसे सर्वोत्तम ब्रह्मानन्द सुख विषयजन्य ज होने से अरु केवल परमशान्त निर्वाण रूप होनेसे बाणी आदिकों का विषय नहीं किन्तु जन्म से रहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेयसे । अर्थात् 'अज्ञान पर्यन्त जानने योग्य अरु वास्तवसे ज्ञानस्वरूप' निर्विकल्प समाधि करके प्राप्त जो निर्विशेष ज्ञतिमोक्ष सत्तासमान आत्मतत्त्व सो अव्यक्तादिवत् जन्मवान् न होनेसे जन्मरहित अज है अरु । आकाशादिक जो ज्ञेय हैं सो उत्पन्नहुये ज्ञेय हैं, अरु आत्मतत्त्व जो ज्ञेय हैं सो 'अज्ञान पर्यन्त ज्ञेय है वास्तवकरके अनुत्पन्न ज्ञेय है । तिस जन्मरहित अनुत्पन्न हुये ज्ञेयसे अभिन्नहुआ अपने सर्वज्ञरूप से सर्व ब्रह्मही कहते हैं

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ४८ । १२७ ॥

इति अद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अर्थात् निर्विकल्प समाधिकरके ब्रह्मको प्राप्तहुआ योगी “ब्रह्म विद्ब्रह्मैवभवति” इत्यादिप्रमाणसे ब्रह्मही होताहै ४७ । १२६ ॥

४८ । १२७ ॥ हे सौम्य ! [उक्त उपायोंको परमार्थसे सत्यताके हुये, अद्वैत की हानिहोवेगी, अरु अन्यथा उन उपायों का प्रमाज्ञान न होवेगा, यह शङ्काकरके तब कहतेहैं] मनके निग्रहादिक उपाय, अरु मृत्तिका सुवर्ण आदिकोंवत् सृष्टि अरु उपासना, यह सर्वही परमार्थ स्वरूप की प्राप्तिके उपाय होने करके । परमार्थरूप । कहे हैं, परन्तु वास्तवसे सत्य हैं नहीं, क्योंकि “न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते” । कोई भी जीव उत्पन्न होता नहीं, इसका कारण है नहीं ; अर्थात्, मनके निग्रह आदिक जे उपाय (साधन कहे हैं) सो परमार्थ से सत्य नहीं, क्योंकि परमार्थसे सत्यतो कोई भी करता भोक्तारूप जीव किसी भी प्रकारसे उत्पन्न होतानहीं । एतदर्थ स्वभावसे अजन्मारूप इस एकही आत्मा का कारण है नहीं । अरु जिस करके कारण नहीं तिसही करके कोई भी जीव उपजता नहीं । यह इसका अर्थ है । अरु “एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते” । तिनके मध्य यह उत्तम सत्य है जहां (जिसविषे) कुछ भी उपजतानहीं ; अर्थात् पूर्वके ग्रन्थविषे उपायपने करके कथन किये जो तिन व्यावहारिक सत्यरूप साधनों के मध्य यह उत्तम सत्य है जिस सत्यरूप ब्रह्मविषे कुछ (अणुमात्र) भी उत्पन्न होतानहीं ४८ । १२७ ॥

इति श्रीगोडपादाचार्यरुतमांडूक्योपनिषद्कारिकायां

-अद्वैताख्यतृतीयप्रकरणभाषाभाष्यं समाप्तम् ॥

हरिः

ॐ तत्सद्ब्रह्म

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य
चतुर्थप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

ज्ञानेनाका कल्पेन धर्म्मान् योगगनोपमान् । ज्ञेया
भिन्नेन सम्बुद्धस्तवन्दे द्विपदावरम् १ । १२८

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य
चतुर्थप्रकरणभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१।१२८ हे सौम्य ! [पूर्वके अरु पिछले प्रकरणके सम्बन्धकी सिद्धि
के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकरणों विषे उक्तार्थ को क्रमसे कथन करते हैं]
ॐकारके निर्णयरूप द्वारकरके आगम नामक प्रथम प्रकरण से
प्रतिज्ञा किये । अरु द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरण विषे बाह्य विषयों
के भेद को मिथ्यापने से सिद्ध हुये अरु पुनः अद्वैताख्य तृतीय प्र-
करणविषे शास्त्र अरु युक्तियों करके साक्षात् निर्द्धारकिये अद्वैत
का "तदुत्तमं सत्यमिति" । यह उत्तम सत्य है । यह इस तृतीय
प्रकरणके अन्तके श्लोक विषे । पूर्व प्रकरण की प्रतिज्ञा । समाप्त
किया । अरु तिस इस श्रुतिके अर्थरूप जो अद्वैत सिद्धान्त तिसके
विरोधी (प्रतिपक्षी) हुये जे भेद (द्वैत) वादी अरु वैनाशिक
(निरात्मवादी) हैं तिनका परस्पर में विरोध होनेसे उनका सि-
द्धान्त रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रय है । अर्थात् सर्व भेद वादियोंके
सिद्धान्तरूप वृक्ष रागद्वेषादि क्लेशरूप पक्षियोंके विश्रामका आश्रय
हैं । अरु अद्वैतवादियों का जो सिद्धान्त है सो रागद्वेषादि क्लेशों
का अनाश्रय है । अर्थात् रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रय नहीं, क्योंकि
रागद्वेषादि क्लेशपरस्परके भेदको आश्रयकरके रहते हैं, अरु परस्पर
का भेद द्वैतके आश्रय है, अरु सो सर्व अनर्थोंका आश्रय जो द्वैतभाव
सो अद्वैत सिद्धान्तमें नाममात्रभी नहीं ताते तिनके आश्रित जे राग
द्वेषादि अनर्थ क्लेश सो कैसे होगा, किन्तु कदापि नहीं । वा अद्वैत

सिद्धान्तसे "सर्वमात्मैवाभूत"। जिनको सर्वोत्तम दृष्टिहोनेसे उसको भेदके अभावसे रागद्वेषादि क्लेश आश्रय करने नहीं, अरु "नांतिवादी" वो अतिवादी होते नहीं अर्थात् निंदास्तुति करने नहीं ॥ अरु भेदवादियों को परस्परमें रागद्वेषादि क्लेशोंका आश्रयपना, वैष्णव मतवादी, अरु शैवमतवादियोंमें इस सांप्रतकालमें सर्वको प्रत्यक्ष है, ताते भेदवादियोंका सिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेशका आश्रय है, अरु अद्वैत सिद्धान्तहै सो उक्तक्लेशोंका अनाश्रयहोनेसे सम्यक्ज्ञान है। इसप्रकार अद्वैत ज्ञानकी स्तुतिके अर्थ, तिन भेदवादियोंके सिद्धान्तका मिथ्या ज्ञानपना सूचित किया। अरु सो तिनके पक्षोंका मिथ्या ज्ञानपना यहां परस्पर विरुद्ध होने करके विस्तार से देखायके तिसके निषेध से अद्वैत ज्ञानकी सिद्धि, आवीत-न्याय करके (आवीत न्याय नाम, व्यतिरेक न्यायका है जैसे जो कियाकरके साध्य है सो अनित्य है इस अन्वय से अनित्यताके जानेहुये भी जो अनित्य नहीं, सो कियाकरके साध्य भी नहीं, इस प्रकार का व्यतिरेक भी व्यभिचारकी शंकासे, रहित होने करके व्याप्ति के निश्चयार्थ अंगीकार करते हैं। अरु तैसे तर्कसे घटितहुये अर्थके ज्ञान से जानेहुये भी विरोधी अन्यवादके निषेधके वर्णन बिना अन्यपक्ष के सम्यक् पनेकी शंकाहोवेगी। एतदर्थ अन्यवादोंके निषेधसे अद्वैत सिद्धान्तकी सिद्धि समाप्त करने को योग्य है। इस अभिप्राय से अलात शान्ति के (अर्द्धदग्ध काष्ठ के धुमावने के), दृष्टान्तसे उपलक्षित अलात शान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इत्यर्थः] समाप्त करनेके योग्य है। एतदर्थ यह अलात शान्ति नामक चतुर्थ प्रकरण प्रारंभ करते हैं। अरु तिस चतुर्थ प्रकरणविषे अद्वैत ज्ञानके सम्प्रदायके कर्त्ता नारायण भगवान् रूप आचार्यके अद्वैत स्वरूप से ही नमस्कारार्थ यह प्रथम श्लोक है। [आदिअन्त अन्त मध्य विषे संगलाचरण करके युक्त जो ग्रंथ हैं सो प्रवृत्तिवाले होते हैं, इस अभिप्रायसे श्रीगोडपादाचार्य आदि विषे उच्चारणवत् अन्त विषे परदेवताके पूजामन्त्र मध्यविषे भी परदेवता

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्वसत्त्वसुखोहितः । अवि-
वादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् २ । १२९ ॥

रूप उपदेष्टा (आचार्य) को प्रणाम करते हैं] जिस करके शा-
स्त्रके आरंभ विषे वांछित अर्थकी सिद्धिके लिये आचार्यकी पूजा
अंगीकार करते हैं । एतदर्थ यहां आचार्यको नमस्कार रूप मंगल
करते हैं । " ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्मान् योगगनोपमान् ज्ञेयाभि-
ज्ञेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदावरम् " [जो ज्ञेयोसे अभिन्न आकाश
के तुल्य ज्ञानसे आकाशकी उपमावाले धर्मोंको सम्यक् जानता
हुआ, तिन द्विपदनके मध्य श्रेष्ठको वन्दनाकरता हों] अर्थात् जो ना-
रायण नामक परमेश्वर अग्निकी उष्णताअरु सूर्य के प्रकाशवत्
उपाधि करके कल्पित भेदसे बहुरूप आत्मस्वरूपधर्मरूप ज्ञेयपक्ष
से अभिन्न आकाशके तुल्य यद्यपि [आकाशको जड़ताकी अधि-
कतासे स्वप्रकाशरूप ज्ञानकी आकाशकी उपमाअपूर्ण है, तथापि
ज्ञानके व्यापकपने आदिक विषे आकाशकी उपमा पूर्णतासे जा-
ननेयोग्य है] ज्ञानरूपतासे आकाशके तुल्यताकी उपमावाले आत्मा
के धर्मों को सम्यक् प्रकार जानता हुआ, तिस द्विपदों में मनुष्य
से उपलक्षित पुरुष के मध्यश्रेष्ठ (प्रधान) पुरुषोत्तम [गौडपादा-
चार्य जो हैं सो पूर्व नरनारायणकरके आश्रित वदरिकाश्रमविषे
नारायण भगवान् को चित्त में ल्यायके विड़े तपको तपते हुये,
ताते नारायण भगवान् प्रसन्न होयके तिनके अर्थ विद्या वरदान
देते हुये । तातेतिस नारायण भगवान् रूप परमेश्वरविषे वेदान्त
सम्प्रदायका परमगुरुपना प्रसिद्ध है । यह भाव है] कोमें वन्दना
करता हों, यह अभिप्राय है ॥ उपदेष्टा आचार्य के नमस्काररूप
से विरोधी पक्षों के निषेध द्वारा इसचतुर्थ प्रकरणविषे प्रतिपादन
करने को इच्छित, ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाताके भेद रहित । अर्थात्
ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इसत्रिपुटी से रहित । परमार्थ तत्त्वका ज्ञान
परमार्थ बोधरूप । प्रतिज्ञा किया होता है १ । १२८ ॥

२ । १२६ ॥ हे सौम्य ! अब अद्वैत दर्शनरूप योगकी (अर्थात् अद्वैत ज्ञानकी) स्तुति के अर्थ तिसको नमस्कारसे स्तुति करते हैं “अस्पर्शयोगो वै नाम सर्वसत्त्वसुखोहितः” ॥ अस्पर्शयोग प्रसिद्ध नाम है सर्वसत्त्व सुख होता है हितरूप है, अर्थात् जिसयोगका किसी से भी कदाचित् भी स्पर्श । सम्बन्ध होवे नहीं, ऐसा जो ब्रह्मस्वरूप योग सो कहिये अस्पर्शयोग नाम है, सो ब्रह्मवेत्ताओं को यह अस्पर्श योग है । अन्योको नहीं । यह प्रसिद्ध है । अर्थात् अस्पर्श योगनाम वाला अद्वैत ब्रह्मरूप ज्ञान है सो अद्वैत ब्रह्मके जानने वाले सम्यक् ब्रह्मवेत्ताओंको है । तिनसे इतरजे कर्मवादि तर्कवादि आदिक भेदी हैं तिनको “न कर्मिणो वेदयन्ते” “नैषा तर्केण मतिरापनेया” । इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे सो ज्ञान नहीं । ॥ अरु कोई एक अत्यन्त सुखके साधन । दिव्य सर्वोत्तम भोग्य सामग्री । करके युक्त हुआ भी योग दुःखरूप हैं । जैसे तप, अरु यह ब्रह्मरूप अस्पर्श योग । ऐसा नहीं । किन्तु “सर्वेषां सत्त्वानां देहभृतां सुखयतीति” इस व्युत्पत्त्यर्थ से जो सर्व देहधारी जीवोंको सुखी करे, सो सर्व सत्त्वसुख है । ताते सो अस्पर्श नामयोग । सर्व जीवोंको सुखरूप है । अरु तैसेही इस योग करके हित होता है । अर्थात् जो कदापि किसी विषयका उपभोगरूप सुख है सो सुख तो है परन्तु सो हितरूप नहीं । क्योंकि विषयों का उपभोग जन्य सुख है सो क्षणिक अरु परिणामी है ताते । अरु यह अस्पर्श योग । सुखरूप है, अरु हितरूप है, क्योंकि । सो क्षणिक अरु परिणामी न होयके । सर्वदा एकरस अचल स्वभाव वाला है ताते । किंवा “अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम्” ॥ अविवाद है अविरोद्ध है उपदेश किया है तिसको मैं नमस्कार करता हूँ । अर्थात् जिसविषेपक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहणसे विरुद्धकथनरूप विवाद नहीं, एतदर्थ अविवाद है । अर्थात् जहां द्वैत है तहां स्वपक्ष आ प्रतिपक्षका ग्रहण है तहां ही परस्परमें राग द्वेष पूर्वक विरुद्धकथन रूप विवाद है अरु इसभेदरहित अद्वैत अस्पर्श नामयोगविषे भेदवे

भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेवहि । अभू-
तस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् ३।१३० ॥

भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते । विवदन्तो
ऽद्वयाह्यवमजातिं ख्यापयन्ति ते ४।१३१ ॥

अभावसें स्वपक्ष अरु परपक्ष अरु तदाश्रिते रागद्वेष अरु पर-
स्परका विरुद्ध कथनरूपे विवाद समूलनहीं, ताते सो अविवाद
हे । अर्थात् जिस पुरुष को एक अद्वितीय ब्रह्मका सो रूपही अस्पर्श
योग प्राप्त हुआ है सो विद्वान् “विद्वान् भवते नातिवादी” सम्यक्
अद्वैत ज्ञानी हुआ किसीकी भी खंडन मंडनरूप विवाद करतानहीं,
ताते सो अविवाद हे । क्योंकि अविरोद्ध है । अतएव ऐसा जो
[सर्वोत्तम, सुख रूप हितरूप अविवाद अरु अविरोद्ध योग
जिसशास्त्रने सम्यक् उपदेश कियो है, तिस शास्त्रको मैं नमस्कार
करता हों, २।१२६ ॥

३।१३० हे सौम्य ! [अद्वैत वादको अविरोद्ध होने करके तिस
विषे विवादके अभावको स्पष्ट करनेको प्रथम द्वैतवादिषोंके विवा-
दको उदाहरण करके कहते हैं] । प्रश्न । द्वैतवादी परस्पर विरोध
को कैसे प्राप्त होते हैं, । उत्तर । कहते हैं “भूतस्य जातिमिच्छन्ति
वादिनः केचिदेवहि” [कोई एकवादी विद्यमान भूतों (वस्तुओं)
की उत्पत्ति इच्छते हैं, अर्थात् जिस करके कोई एक सांख्यशास्त्र
मतके अनुसारी द्वैतवादी विद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति को इच्छ-
ते हैं, सर्व नहीं अरु “अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम्”
पंडितपने के अभिमानी अन्य अविद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिको
इच्छते परस्पर विवाद करते हैं, अर्थात् जाते सांख्यवादियों से
अन्य अपनेविषे पंडितपने के अभिमानी वैशेषिक अरु नैयायिक
मतके, अविद्यमान वस्तुकी उत्पत्तिको इच्छते हैं, एतदर्थही पर-
स्पर विवाद करते हैं (अन्यको जय करने को इच्छते हैं इत्यादि-
प्रायः) ३।१३० ॥

ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम् ।
विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत ५ । १३२ ॥

४।१३१ हे सौम्य ! । प्रश्न । इसकहे प्रकार विरुद्ध कथन से परस्परके पक्षके खंडनकेकर्त्ता वादियों करके सिद्धकिया क्याहोता है । उत्तर । तहां कहतेहैं “भूतं न जायते किञ्चिद्भूतं नैव जायते” (कुछभी भूत (विद्यमान) उपजता नहीं, अविद्यमान उपजता नहीं ; अर्थात् कुछ भी विद्यमान वस्तु उपजना नहीं, क्योंकि सो आत्मावत् विद्यमान है ताते, इसप्रकार कहताहुआ असत्वादी सत् के जन्मरूप सांख्यके पक्षका निषेध करताहै । अरु तैसे अविद्यमान वस्तुभी उपजतानहीं, क्योंकि सो शशशृंगवत्अविद्यमान है ताते । इस प्रकार कहताहुआ सांख्यवादी भी असत् के जन्मरूप असत्वादीके पक्षका निषेध करताहै “विवदन्तोऽद्वया-ह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते” । ऐसे अद्वैतवादी विवाद करते हुये अनुत्पत्तिको ख्यापन करते हैं ; अर्थात् जो अद्वैतवादी हैं सो विवाद करते (निर्णयकरते) हुये । अरु सत् अरु असत् के जन्मरूप, इस परस्पर के पक्षरूप विवादको निषेध करतेहुये । कोई कहताहै इसविद्यमान वस्तुकी उत्पत्ति है कोई कहताहै अविद्यमान की उत्पत्ति है इस प्रकार परस्परमें वादी विवाद करते हैं, तिनदोनोके पक्षको निषेध करतेहुये । सत् अमत् से भिन्न (विलक्षण) वस्तुके अर्थ से अनुत्पत्ति को प्रकाश करते हैं ४।१३१ ॥

५।१३२ हेसौम्य ! [तब वादियोंकरके उक्तहोनेसे अनुत्पत्तिभी तुमकरके निषेध करनेको योग्यहै यह शंका करके कहते हैं [इस प्रकार तिनप्रतिवादियों करके । अर्थात् “ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम्” । तिनकरके प्रकाशित किया अनुत्पत्ति को हम अनुमोदन करतेहैं ; अर्थात् ऐसे तिन प्रतिवादियों करके प्रकाशित किया जो अनुत्पत्ति निसकोही इसप्रकार होवो, ऐसे हम केवल अनुमोदन करते हैं । परन्तु “विवदामो न तैः सार्द्धम-

अजातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः ।

अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ६।१३३ ॥

न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा ।

प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ७।१३४ ॥

विवादं निबोधत ॥ ६ तिनके साथ विवाद करते नहीं अवि-
वाद को श्रवणकरो, अर्थात् जैसे वे भेदवादी परस्पर
विवाद करते हैं, तैसे हम तिनके साथ पक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहण
से विवाद करते नहीं । एतदर्थ हे हमारे शिष्यो ! हमकरके
अनुमोदनकिये अविवादको । अर्थात् विवाद से रहित परमार्थ
रूप ज्ञान को श्रवण करो ५।१३२ ॥

६।१३३ हे सौम्य ! [उत्पन्नहुये वस्तुकेही जन्मकरके अनर्थकी
प्राप्तिसे अरु अनवस्था दोषकी प्राप्तिसे अनुत्पन्नहुये पदार्थकेही ज-
न्मको सत्वादी अरु असत्वादी सर्वही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार
अन्यवादियों के पक्षका अनुवाद करते हैं] - “अजातस्यैव धर्मस्य
जातिमिच्छन्ति वादिनः” ॥ ६ सर्ववादी जन्मरहित धर्मकी उत्पत्ति
को इच्छते हैं ॥ अर्थात् सर्व जो सत् असत्वादी है सो जो जन्म
रहित ही धर्मनामवाला परमात्मा है, तिसकी उत्पत्ति को इच्छते
हैं परन्तु “अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति” ॥ ६ अज-
न्मा मरणरहित धर्म मरनेकी योग्यताको कैसे पावेगा ? अर्थात्
अजन्मा अरु अमृत । मरणरहित । जो धर्म नामक परमात्मा सो
मरणकी योग्यताको कैसे प्राप्त होवेगा, किन्तु किसी प्रकारसे भी प्राप्त
होवे नहीं ॥ अर्थात् जो जन्मता है तिसका मरण भी निश्चित है,
ताते जो परमात्मा उत्पन्न होय तो विनाश भी अवश्य होगा, परन्तु
सो परमात्मा श्रुतिके प्रमाण अरु अनुभवसे निराकार महासूक्ष्म
एकअद्वैत परिपूर्ण अजन्मा है, अरु जिसकरके अजन्मा है तिसही
करके कदापि मरणके योग्य नहीं । ६।१३३ ॥

७।१३४ हे सौम्य ! [परिणामी ब्रह्मके वादविषे जो अत्र द्ववा-

स्वभावेनामृतो यस्य धर्मो गच्छति मर्त्यताम् ।

कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थारयति निश्चलः ॥ १३५ ॥

दियों करके दूषण कहे हैं, सो भी हमने अनुमोदन किया है, इस प्रकार मानके कहते हैं,] "न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा" । मरणरहित मरनेके योग्य होता नहीं, तैसे मरनेके योग्य मरण रहित नहीं, अर्थात् मरणरहित जो ब्रह्म सो मरने के योग्य होता नहीं, क्योंकि स्थितरूपका विरोध है ताते । तैसेही मरने के योग्य कार्य सो स्वरूपकी स्थिति विषे वा प्रलय अवस्था विषे मरणरहित ब्रह्मको पावता नहीं । एतदर्थ "प्रकृतेऽन्यथाभावो न कथञ्चिद्विष्यति" । प्रकृतिका अन्यथा भाव किसी प्रकार से भी होगा नहीं । अर्थात् प्रकृति कहिये स्वभाव, का अन्यथा भाव किसी प्रकार से भी होनेका नहीं ॥ इति सिद्धम् ७ । १३४ ॥

"॥ १३५ हे सौम्य । "स्वभावेनामृतो यस्य धर्मो गच्छति मर्त्यताम्" । जिसका स्वभावसे मरणरहित धर्म मरने की योग्यता को पावता है, अर्थात् जिस परिणामवादी के मतमें स्वभावसेही मरणरहित धर्म । परमात्मा नामक पदार्थ का कार्य भावकी प्राप्ति से मरने की योग्यता को प्राप्त होता है । "कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थारयति निश्चलः" । जिसका समुच्चयके अनुष्ठानसे मरणरहित निश्चलहुआ कैसे स्थित होवेगा, अर्थात् तिस वादी के मतविषे समुच्चय के अनुष्ठान से मरणरहित अरु मुक्तहुआ कहने के योग्य है । सो धर्म निश्चलहुआ कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी प्रकार से भी स्थित होवे नहीं ॥ [पूर्व अद्वैत नामक प्रकरण विषे कथन किया है अर्धजिन्होंका ऐसे इन ६ से लेके ८ पर्यन्त तीन श्लोकों का जो पुनः यहाँ निवेश किया है, सो अन्य चादियों के पक्षों के परस्पर विरोध करके प्रसिद्धहुये अपने अनुमोदनके लखावने के अर्थ किया है ॥ १३५ ॥]

सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या । प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभाव न जहाति या १३६ ॥

६।१३६ हे सौम्य ! जिसकरके जब यह लौकिक प्रकृति भी अन्यथा भावको पावती नहीं, तब यह अजन्मा अरु अमृत स्वभाव वाली प्रकृति अन्यथा भावको न प्राप्त होवे, इसमें क्या कहना है किन्तु कुछ भी नहीं । प्रश्नांकौन यह प्रकृति है तहाँ उत्तरा कहते हैं । "सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या" । ६।१३६ सांसिद्धिकी है स्वाभाविकी है सहजा है अरु जो अकृत है, अर्थात् [प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी भी प्रकारसे होनेका नहीं, इस प्रकार ७ वें श्लोकविषे कहा] तहाँ प्रकृति शब्दके अर्थको कहते हैं] सम्यक् सिद्धिविषे होनहार है एतदर्थ सांसिद्धिकी है । जैसे सिद्ध योगियोंकी अणिमादि ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप जो प्रकृति है, सो भूत अरु भविष्यत्काल विषे अन्यथा भावको पावती नहीं, तैसेही सो प्रकृति अन्यथा भावको पावती नहीं, एतदर्थ तिसको सांसिद्धिकी कहते हैं तैसेही स्वभावहीसे सिद्ध है याते सोई स्वाभाविकी है, जैसे अग्निआदिकोंकी उष्ण अरु प्रकाशादिरूप प्रकृति है सोभी कालान्तरविषे अरु देशान्तर विषे भी व्यभिचारको प्राप्त होती नहीं, तैसेही यह भी व्यभिचारको पावती नहीं एतदर्थ इसको स्वाभाविकी कहते हैं । अरु तैसेही सहजा । आत्माके साथही होनहार है । जैसे पक्षी आदिकों की आकाश विषे गमनादिरूप प्रकृति (स्वभाव) सहज है । तैसेही यह आत्माके साथही होनेवाली है, एतदर्थ इसको सहज कहते हैं । अरु अन्यभी जो कोई एक किसी निमित्त से भी अकृत (अरचित) होवे, जैसे जलकी अधोदिश विषे गमनादिरूप प्रकृति है, अरु जैसे घटका घटत्व है अरु पटका पटत्व है, तैसे अन्यभी जो कोई एक कदाचित् भी स्वभावको त्यागे नहीं सो सर्व प्रकृति है । इस प्रकार जाननेको योग्य है । अरु "प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभाव न जहाति या" । ६।१३६ जो स्वभावको त्यागे नहीं सो

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते । जायमानं
कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् ११ । १३८ ॥

विकार रहित जो आत्मा तिस विषे विकार की कल्पना के हुये
तिसकी वासना से उन वादियों की स्वभाव की हानिही होती है
यह दोष है १० । १३७ ॥
११ । १३८ ॥ हे सौम्य ! प्रसंगविषे प्राप्त हुये अर्थ को त्यागके सांख्य
वादियों के प्रक्षविषे वैशेषिक आदिकर के कथन किया अरु आप अ-
द्वैत वादियों करके अनुमोदन किया जो दूषण है, तिसका अनुवाद
करते हैं । सत् कहिये विद्यमान वस्तु की उत्पत्ति के कहनेवाले
सांख्यवादियों करके अवर्तित कैसे कहा है, । जहां ऐसा प्रवर्तन है
तहां वैशेषिक कहते हैं । कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते ।
जिसके मतविषे कारणही कार्य होता है तिसके मतविषे
कारण जन्मता है । अर्थात् जिस सांख्यवादियों के मतविषे
मृत्तिकावत् उपादानरूप कारणही कार्य होता है । जैसे मृत्त-
पिंड घटरूप परिणाम को तैसे कारण कार्य के आकार से प-
रिणाम को प्राप्त होता है । तिसके मतविषे जन्मरहित ही कारण
महत्त्वादि कार्य रूपसे ही जन्मता है । अरु जब महत्त्वादिकों
के आकार से उत्पन्न होनेवाला प्रधान है तब सो अजन्मा अरु
नित्य कैसे कहा है, । यतर्थ जन्मता है अरु अजन्मानित्य है,
इसप्रकार तिन करके यह विरुद्ध कथन किया है । अरु जिय
माने कथमजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् । सो जायमान है तब अजं
कैसे होगा, अरु विदारण को प्राप्त हुआ नित्य कैसे होवेगा ? अ-
र्थात् सो प्रधान एकदेशसे भिन्नता भेद वा विदारण को प्राप्त
हुआ नित्य कैसे होवेगा । विवाद का विषय जो प्रधान सो अ-
नित्य है, क्योंकि सावयव है ताते । घटादिकोंवत्, इस अनुमान
के अभिप्राय से दृष्टान्त को साधते हैं । जिसकरके लोक विषे
सावयव एक देशसे फूटने रूप धर्मवाला घट नित्य देखा नहीं,

कारणाद्यनन्यत्वमतः कार्यमजं यदि । जायमानाद्वि वै कार्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् १२ । १३६ ॥

अजाहै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै । जा
ताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते १३ । १४० ॥

एतदर्थ एक देशसे विदारण को पाया जो प्रधान सो अजन्मा है
अरु नित्य है, इसप्रकार जो उन सांख्यवादियों करके कथन किया
है सो विरुद्ध किया है । यह इसका अभिप्राय है ११ । १३८ ॥

१२ । १३६ ॥ हे सौम्य ! अब पूर्व देखाया जो कार्य कारणका
भेदवाद तिसके निषेधरूप उक्तार्थको ही स्पष्ट करने के अर्थ कहते हैं
“कारणाद्यनन्यत्वमतः कार्यमजं” जव कारण से अनन्यपना
मानता है तब कार्य अजन्मा है ; अर्थात् जब जन्मरहित कारण
से कार्यका अनन्यपना तेरेको वांछित (मन्तव्य) है, तब तिस
प्रकारके (जन्मरहित ; कारण से अपृथक् होने करके कार्य भी
अजन्मा है, ऐसे प्राप्त हुआ । एतदर्थ तेरे मतको प्रधानका अज-
न्यपना, अरु जन्यपना यह विरोध हुआ । अरु कार्य है ओ अ-
जन्मा है यह दूसरा विरुद्ध हुआ । किंवा कार्य कारण के अनन्य
भावविषे अन्यदोष यह है कि “यदि, जायमानाद्वि वै कार्यात् का-
रणं ते कथं ध्रुवम्” जव प्रसिद्ध जायमानकार्य से अनन्य कारण
है तब सो तेरे मतविषे नित्य अरु अचल कैसे होवेगा, किन्तु
किसी प्रकारसे भी होवे नहीं । अरु जैसे कोई कहे कि कुकुट
(सुरगे) का एक अङ्ग । मस्तकादि कोई । भोजनार्थ पचावते (प-
कावते) है अरु दूसरा अंग, गर्भाशय, अंठोंके जन्मार्थ कल्पना
करते हैं । रहने देते हैं । सो कहना बने नहीं । तैसे कार्य से अ-
भिन्न कारण नित्य अरु ध्रुव है, ऐसी व्यवस्था तेरे मतविषे बने
नहीं, अरु अद्वैतवादियों के माया विवाद विषे कार्य कारण के
अभेद होनेसे भी कार्य केही कारणमात्रपने के अंगीकार से यह
दोष है नहीं यह सिद्ध हुआ १० । १३६ ॥

हेतोरादिः फलं येषामादिहेतुः फलस्य च । हेतोः
फलस्य चानादिः कथं तैरुपैवर्ण्यते १४।१४१ ॥

१३।१४०॥ हे सौम्य ! "अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति
वै" अजन्मा से जन्मता है तिसविषे दृष्टान्त है नहीं, अर्थात् जिस
प्रधानवादीके मतविषे अनुत्पन्न वस्तुसे कार्य उत्पन्न होता है, तिस
के मतविषे दृष्टान्त है नहीं । अरु दृष्टान्त के अभाव से केवल अर्थ
करकेही अनुत्पन्न वस्तुसे कुछ भी, उत्पन्न होता, नहीं, इसप्रकार
सिद्ध होता है । अरु "जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्राप्त
ज्यते" उत्पन्न हुये से उत्पन्न हुयेका अंगीकार है तब । सो
व्यवस्थाको प्राप्त होता नहीं, अर्थात् जब पुनः उत्पन्न हुये कारण
से उत्पन्नहुई वस्तुका अंगीकार है, तब सो अन्य उत्पन्न हुये से
उत्पन्न होता है, अरु सोभी अन्य उत्पन्न हुयेसेही उत्पन्न होना है,
इसप्रकार होनेसे व्यवस्था प्राप्त न होगी, किन्तु अनवस्था दोषही
प्राप्त होवेगा । इत्यर्थ १३।१४० ॥

१४।१४१ ॥ हे सौम्य ! [द्वैतवादियोंकरके परस्परके पक्षके
निषेधद्वारा सिद्ध किया जो वस्तुका जन्यपना, सो अद्वैतवादीने
अनुमोदन किया । अब श्रुतिप्रतिपादित अरु विद्वान्के अनुभवा
का अनुसारी द्वैतका निषेध भी इस अद्वैतवादीने अनुमोदन कि-
याही है । इसप्रकार कहते हैं] " वत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाऽभूत्त-
दिति ", जहाँ तो जिस पुरुषको सर्व आत्माही होता हुआ
इसप्रकार श्रुतिने परमार्थ से द्वैतका अभाव कहा है । तिसको आ-
श्रयकरके कारणरूप द्वैतका दुर्निरूपणपना कहते हैं । हेतोरादिः
फलं येषामादिहेतुः फलस्य च । जिसहेतुका आदि फल है अरु
फलका हेतु आदि है, अर्थात् जिन वादियों के मतविषे धर्मादि
रूप हेतुका आदि । कारण । देहादि संघातरूप फल है, अरु दे-
हादि संघातरूप फलका धर्मादिरूप हेतु आदि (कारण) है ।
इसप्रकार हेतु अरु फलके परस्परके कार्य अरु कारणभावकरके

सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः । क्रमस्त्वया । युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत् १६ । १७३ ॥
 फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति । अप्रसिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति १७ । १७४ ॥

१७३ वा १७४ ॥ हे सौम्य ! [प्रतीतिसे हेतु अरु फलकी उत्पत्ति को स्वीकार करने योग्य होनेसे तिसका निषेध करना युक्त नहीं, यह शंका करके कहते हैं] । "सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया" । "हेतु अरु फलकी उत्पत्तिविषे क्रम तुम्हकरके अन्वेषण करने को योग्य है" अर्थात्, हे वदी, जब उक्त प्रकारका विरोध अंगीकार करने के योग्य नहीं, ऐसे तू मानती है । तब हेतु अरु फलकी उत्पत्ति विषे हेतु पूर्व है फल पश्चात् है इस प्रकारका जो क्रम है सो तुम्हकरके अन्वेषण करने योग्य है । अरु । "युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत्" । "जाते एककालविषे सम्भव के हुये शृंगोंवत् असम्बन्ध होवेगा" अर्थात् जिसकरके एककाल विषे उत्पत्तिके होने से शृंगोंवत् असम्बन्ध होवेगा । जैसे एक काल विषे उत्पन्न होने वाले चाम दक्षिणरूप जो गौके दोनों शृंग तिनका परस्पर कार्य कारण भावकरके असम्बन्ध है, तैसेही एककालविषे उत्पन्न हुये हेतु अरु फलकी कार्य कारण भावसे असम्बन्ध होवेगा, एतदर्थ तिनका क्रम तुम्हकरके अन्वेषण करने के योग्य है १६ । १७३ ॥

१७ । १७४ ॥ हे सौम्य ! [अब । "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति" । "पुण्य कर्म करके निश्चय पुण्यरूप होता है" इत्यादिक श्रुति प्रमाणसे धर्मादिकों विषे हेतु अरु फल भावकी शंका करके श्रुतिको अघटित अर्थ विषे प्रमाण होने के असम्भव से श्रुतिका पूर्वापर भाव (प्रथम पश्चात् पना) अवश्य कहने के योग्य है, इस प्रकार कहते हैं] । प्र० । तब तिनका । हेतु अरु फलकी सम्बन्ध कैसे है । उ० । कहते हैं, "फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति" । फलसे उत्पन्न होनेवाला हुआ हेतु

यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः । कतं
रत्पूर्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया १८ । १४५ ॥

अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः । एवं हि
सर्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता १९ । १४६ ॥

सिद्ध होगा नहीं? अर्थात् जन्य अरु स्वरूप से अप्रतीत रूपवाले
फलसे उत्पन्न होनेवालाहुआ हेतु शशशृंग आदिक असत् वस्तु-
वत् सिद्ध न होवेगा । अर्थात् जन्मको न पावेगा । अरु “अप्र-
सिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति ।” ६ अप्रसिद्धहुआ हेतु कैसे
फलको उत्पन्न करेगा? अर्थात् शशशृंगादिकोंवत् अप्रतीतिरूप-
वाला अप्रसिद्धहुआ हेतु तेरेमंतविषे कैसे फलको उत्पन्न करेगा ।
क्योंकि परस्परकी अपेक्षाकरके सिद्धिवाले शशशृंगके तुल्य वस्तु-
ओंका कार्य कारणभाव से कहीं भी सम्बन्ध देखा नहीं ॥ यह
अभिप्राय है १७ । १४४ ॥

१८ । १४५ ॥ हे सौम्य ! “यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धि
श्च हेतुतः ।” ६ जब फलसे हेतुकी सिद्धि अरु हेतुसे फलकी सिद्धि
है? अर्थात् असम्बन्धवने रूप दोषसे हेतु अरु फलके परस्पर कार्य
कारण भावके निषेधकियेहुये भी जब तुझकरके फलसे हेतुकी
सिद्धि अरु हेतुसे फलकी सिद्धि अंगीकार कियाही है, तब “कतं
रत्पूर्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया” ६ पूर्वकी सिद्धिकी अपेक्षासे
जिसकी सिद्धि होती है ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है? अर्थात् उक्त
प्रकार जब हेतु अरु फलकी परस्परसे सिद्धि अंगीकार कियाहै,
तब हेतु अरु फलके मध्य पूर्वकी सिद्धिकी अपेक्षासे जिस प-
श्चात् होनेहारकी सिद्धि होती है, ऐसा पूर्व उत्पन्नहुआ कौन है
सो आप कहिये १८ । १४५ ॥

१९ । १४६ ॥ हे सौम्य ! “अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः”
६ अशक्ति अपरिज्ञान है, अथवा क्रम कोप होवेगा? अर्थात् जब
यह क्रम जाननेको अशक्य है, इसप्रकार मानता है, तब सो यह

बीजांकुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः । नहि
साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते २०। १४७ ॥

अशक्ति । अर्थात् कहनेका असामर्थ्य । अज्ञान है, अर्थात् तत्त्वका
अविवेकरूप मूढ़ता है । अथवा पुनः जो यह तूने, हेतुसे फलकी
सिद्धि होती है, अरु फलसे हेतुकी सिद्धि होती है, इसप्रकार अ-
न्योन्यके पश्चात् होने रूप क्रमकहा । अर्थात् हेतुसे पश्चात् फल
होता है अरु फल से पश्चात् हेतु होता है ऐसा क्रम तूने कहा । ति-
सका कोप । अर्थात् अन्यथा भावरूप विपर्यय होवेगा । यह
अभिप्राय है । अरु ' एवं हि सर्वथावुद्धैरजातिः परिदीपिता ' ।
' ऐसे बुद्धिमानों ने सर्वप्रकारसेही अनुत्पत्तिही प्रकाशित किया
है ' ; अर्थात्, इसप्रकार [परस्पर के पक्षके निषेधरूप द्वारसे सत्
अरु असत् वस्तुके जन्मके निषेध कियेहुये क्रम अरु अक्रम करके
उत्पत्तिके असम्भवसे वादियों करके देखाईहुई अनुत्पत्तिही हम
को इष्ट होती है, इसप्रकार अजातवादको समाप्त करते हैं] हेतु
फलके कार्यकारण भावके असम्भवसे परस्परकी अपेक्षासे दोष
के कहनेवाले वादीरूप पण्डितोंने सर्वप्रकारसेही सर्व वस्तुकी
अनुत्पत्तिही प्रकाशित किया है १४) । १४६ ॥

२०। १४७ ॥ हे सौम्य ! अब पूर्वपक्षी शङ्काकरता है । शङ्का । हे
सिद्धान्ती ! हेतु अरु फलका कार्य कारण भाव है, इसप्रकार हम
ने कहा है । अरु तूने ' जैसे पुत्रसे पिताका जन्म होता है, अरु
गौके शृङ्गावत् असम्बन्ध होवेगा, इत्यादिरूप कहने को इच्छित
अर्थसे रहित शब्दमात्र को आश्रयकरके, बहल कहा है । अरु
जिसकरके हमों ने असिद्ध हेतुसे फलकी सिद्धि, वा असिद्धफल
से हेतुकी सिद्धि, अंगीकार किया नहीं, किन्तु बीजांकुर न्यायवत्
हेतु अरु फलका कार्यकारण भाव अंगीकार किया है, तहां हमारे
मतविषे कोई भी दोष नहीं । अब समाधान । कहते हैं ' बीजांकु
राख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः ' । ' बीज अंकुर नामवाला

जो दृष्टान्त है सो सदा साध्यकरके तुल्य है ? अर्थात् जो बीजांकुर
 न्यायवाला दृष्टान्त है सो मुझ मायावादी के मतविषे, साध्यकरके
 सदा तुल्य ही है, क्योंकि वास्तव करके कार्य कारण भावकी प्रतीति
 कही भी नहीं ताते । यह तात्पर्य है । शब्दा । ननु, बीज अरु अंकुर
 का जो कार्यकारण भाव है सो प्रत्यक्ष अनादि है, इस प्रकार जेव
 वादी ने कहा तब सिद्धान्ती समाधान कहता है, हे वादी ! बीज
 अरु अंकुर व्यक्तिका कार्य कारणभाव तुझकरके अंगीकार किया है,
 किंवा बीज अरु अंकुरके सन्तानका, कार्याकारणभाव अङ्गीकार
 किया है, तहां प्रथमपक्ष । जो बीज अरु अंकुरकी व्यक्तिका कार्या-
 कारणभाव, सो बनेनहीं, क्योंकि पूर्व, पूर्वके पिछलेवत् आदि-
 मानेपनेकी, अङ्गीकार है, ताते । जैसे, असी उत्पन्न हुआ बीज आ-
 दिवाला पिछला अंकुर औ पिछला बीज, अन्य अंकुर अरु बीज
 से पूर्व है, एतदर्थ क्रमकरके उत्पन्न होतेसे, आदिवाला है । इस
 रीति से एकएक सर्व बीज अरु अंकुरके समूह को आदिवाला
 होने से किसी के भी अनादिपनेका, अर्थात् परस्पर कारणपनेका
 सम्भव नहीं, इस प्रकार हेतु अरु फलों के भी अनादिपनेका अरु
 परस्पर कारणपनेका सम्भव नहीं । अरु जो दूसरा पक्ष कहे कि
 बीज अरु अंकुरकी सन्तति (सन्तान) का अनादिपना है, तो सो
 भी बनेनहीं, क्योंकि तिनकी सन्ततिकी एकरूपताका असम्भव है
 ताते । अरु जिसकरके उन बीज अरु अंकुरके अनादिपनेके वादियों
 करके, बीज अरु अंकुर से भिन्न बीज अरु अंकुरका सन्तान
 नामके एक व्यक्ति अङ्गीकार किया नहीं । अतएव हेतु अरु फल
 का अनादिपना उन वादियोंकरके कैसे वर्णन किया है, सो कहो ।
 तेसे हेतु अरु फलके कार्यकारण भावकी कहीं भी प्रतीतिका स-
 म्भव न होनेसे, अन्यभी जो हमोंने कहा है, सो छलरूप है नहीं । यह
 अभिप्राय है । अरु लोक में प्रमाणविषे कुशल पुरुषोंकरके " नहि
 साध्यसमो हेतुः सिद्धो साध्यस्य युज्यते " साध्यसे तुल्यहेतुसाध्य
 की सिद्धी विषे जोड़ते नहीं ? अर्थात् साध्यवस्तु से तुल्यहेतु कहि

पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम् । जायमाना-
द्भि वै धर्मात्कथं पूर्वं न गृह्यते २१ । १४८ ॥

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते । स-
दसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते २२ । १४९ ॥

इष्टान्त साध्यकी सिद्धिविषय सिद्धिके निमित्त योजना करतेनहीं
यहां हेतुशब्दके मुख्यार्थको त्यागके इष्टान्तरूप गौणार्थ कहने
को इच्छितहै, क्योंकि सूचकहै ताते । अरु जिसकरके प्रसंगाविषे
प्राप्तहुआ हेतुहेनहीं इष्टान्तहै, यातेसोई ग्रहणकियाहै २०।१४७॥

२१।१४८॥ हे सौम्य ! प्रश्न । पण्डितोंने सर्ववस्तुकी अनु-
त्पत्ति कैसे प्रकाशित कियाहै । उत्तर । 'पूर्वापरापरिज्ञानमजा-
तेः परिदीपकम्' । 'पूर्वापर (कार्य कारण) का अपरिज्ञान
अनुत्पत्तिका प्रकाशक है ; अर्थात् जो यह हेतु अरु फलके कार्य
अरु कारणभावका अपरिज्ञानहै सोई यह अनुत्पत्तिका प्रकाशक
कहिये अवबोधकहै । अरु 'जायमानाद्भि वै धर्मात्कथं पूर्वं न
गृह्यते' । 'उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध धर्मसे पूर्व कैसे ग्रहणकरते
नहीं ; अर्थात् जब उत्पन्नहोनेवाला धर्म कहिये कार्य ग्रहण
करतेहै, तब उत्पन्नहोनेवाले प्रसिद्ध कार्यरूप धर्मसे पूर्व (का-
रण) कैसे ग्रहणकरते नहीं । अरु जिसकरके उत्पन्न होनेवाले
कार्यके ग्रहणकरनेवाले पुरुषोंकरके तिसकाजनक अवश्यग्रहण
करनेयोग्यहै, क्योंकि जन्यजनकका संबन्ध अभिन्नहै ताते, अत-
एव सो कार्य कारण का अज्ञान अनुत्पत्ति का प्रकाशक है
इत्यर्थः २१।१४८॥

२२।१४९॥ हे सौम्य ! इस कथनकरनेके हेतुसे कुछभी वस्तु
जन्मता नहीं, इसप्रकार सिद्धहोताहै । अरु 'स्वतो वा परतो वाऽ-
पि न किञ्चिद्वस्तु जायते । सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जा-
यते' । 'स्वतः वा परतः वा उभयसे कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं
याते सत्, असत्, वा सदसत्, कुछभी वस्तु उत्पन्नहोता नहीं

अर्थात् जिसकरके आपसे वा परसे वा दोनोंसेभी कुछभी वस्तु उपजता नहीं, एतदर्थं सत्, असत्, वा सदसत् दोनों रूपभी कुछभी वस्तु उत्पन्न होता नहीं । अर्थात् जब स्वतः वा परतः कुछ किसीप्रकारभी उत्पन्न होता नहीं, तब सत् रूपसे वा असत् रूपसे वा सदसत् उभयरूपसे कुछभी उपजता नहीं ॥ इसका यहभावार्थ है कि जो उत्पन्न होनेवाला वस्तु आपसे वा पर- (दूसरे) से वा स्व, पर- दोनोंसे सत् वा असत् वा सदसत् उभयरूप उपजता है, तिसका किसीभी प्रकारसे जन्म संभवे नहीं । जैसे घट आपही तिसही घटसे उपजता नहीं, तैसे प्रथम आपही अनुत्पन्न होनेसे अपने स्वरूपसे उपजता नहीं, जैसे घटसे पट अरु पटसे अन्यपट उपजता नहीं, तैसे अन्यसे, अन्यभी उपजता नहीं । अरु जैसे घट अरु पट इन दोनों से घट वा पट उपजता नहीं, तैसे दोनोंसेभी कोई वस्तु उपजतानहीं । शंका । ननु, मृत्तिकाले घट उपजता है अरु पितासे पुत्र उत्पन्न होता है । तब कैसे कहते हो जो उक्तप्रकार कुछभी उपजता नहीं । समाधान । तर्हिकहते हैं 'सूक्ष्म पुरुषोंको' उपजता है, ऐसा ज्ञान अरु शब्द है, यह तैरा कथन सत्य है, तथापि सोइ शब्द अरु ज्ञान विवेकी पुरुषों करके वे शब्द अरु ज्ञान क्या सत्य है वा असत्य है, इसप्रकार यावत् परीक्षा करते हैं तावत् वो मिथ्या है, क्योंकि तद्विषयक निश्चय नहीं । इसप्रकार परीक्षा क्रियुद्ध्य शब्द अरु ज्ञानका विषय घट पुत्रादिकरूप जो वस्तु है सो शब्द मात्र ही है "वाचारभणविकारो नाम धेयम्" वाणी से उच्चारण किया विकार कहने मात्र ही है । इस श्रुतिके प्रमाणसे । अतएव शब्द अरु ज्ञानको । अर्थात् शब्द अरु तदाश्रित ज्ञानको । असत्यविषयज्ञानपना माननेके योग्य है अरु जब सत् है तब उपजता नहीं, क्योंकि सत् वस्तु उत्पत्तिमान होती नहीं ताते, । मृत्पिंडादिवत् । अरु जब असत् है तो भी जन्म तानहीं (विद्यमान नहीं) क्योंकि शशशृंगवत् असत् है ताते । अरु जब सदसद्रूप है तो भी जन्म तानहीं, क्योंकि तमप्रकाशवत् परस्पर-

हेतुर्न जायतेऽनादेः फलञ्चापि स्वभावतः । आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते २३ । १५० ॥

विरुद्धरूपके एकवस्तुपनेका असंभव है ताते । एतदर्थ कुछ भी वस्तु जन्मता नहीं, इति सिद्धम् ॥ पुनः जिन बौद्धों के मत विषे उत्पत्तिरूप क्रियाही उपजती है, इसप्रकार क्रियाकारक अरु फल की एकता अरु वस्तुका क्षणिकपना अङ्गीकार किया है, एतदर्थ वेवादी दूरसेही युक्तिकरके रहित हैं, क्योंकि 'यह ऐसे है, इस निश्चयकी स्थिति का अन्यक्षण विषे अभाव है ताते, अरु अनुभव किये वस्तुकी स्मृतिका अभाव है ताते' २२ । १४६ ॥

२३।१५० ॥ हे सौम्य! किञ्च, हेतु अरु फलके अनादिपने को अङ्गीकार करनेवाले तुम्हें वादी करके बलात्कारसे हेतु अरु फल की अनुत्पत्तिही अङ्गीकार की होगी । प्रश्न । कैसे अङ्गीकार की होगी । उत्तर । तहां कहते हैं 'हेतुर्न जायतेऽनादेः फलञ्चापि स्वभावतः । आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते' । आदिरहित से हेतु जन्मता नहीं अरु आदि रहित हेतु से फल भी स्वभावसे 'उपजता नहीं' । अरु जिसकी आदि नहीं तिसकी आदि विद्यमान नहीं ; अर्थात् आदि रहित फल से । । अर्थात् जो फल 'वेहादिक' आदि से है नहीं तिन से । । तिनसे हेतु (अदृष्ट) जन्मता नहीं, अरु आदि रहित हेतु से फल भी स्वभावसे । अपने आपसे । जन्मता नहीं । अरु जिस करके अनुत्पन्न हुये 'अनादि फल से' । अर्थात् जो उत्पन्नही नहीं हुआ ऐसे फल से । हेतुका जन्म, अरु आदि रहित अजन्मा हेतुसे फल भी स्वभावसेही । अर्थात् निमित्त विनाही । उपजता है इस प्रकार तुम्हें करके अङ्गीकार न किया होगा । ताते हेतु अरु फल के अनादिपने के अङ्गीकार करनेवाले तुम्हें करके हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही अङ्गीकार किया है । एतदर्थ लोकविषे जिसका आदि (कारण) है नहीं तिसकी आदि (उत्पत्ति) है नहीं । अर्थात् कारण वाले वस्तु

प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथा द्वयनाशतः । सङ्क्षेप-
स्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽसितामता २४ । १५१ ॥ १, १,

की ही उत्पत्ति अंगीकार करते हैं, कारणरहित की नहीं । एतदर्थ अनादिरूप इन हेतु अरु फलकी अनुत्पत्तिही सिद्ध हुई ।
इति सिद्धम् २३ । १५० ॥

२४ । १५१ ॥ हे सौम्य ! [वस्तुके वास्तव करके जन्मके असं-
भवसे एक अजन्मा विज्ञान घनमात्र तत्त्व है इसप्रकार कहा
अथ बाह्य अर्थके घाद को उठावते हैं] उक्तार्थ को ही दृढ़ करने
की इच्छा से पुनः आक्षेप करते हैं " प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथा
द्वयनाशतः " । प्रज्ञप्तिका निमित्त करके सहितपना है, अन्यथा
द्वैतके नाशसे तिसका नाश प्राप्त होवेगा ; अर्थात् शब्दादिकों की
प्रतीति रूप जो ज्ञान सो प्रज्ञप्ति है' तिस प्रज्ञप्तिका विषय रूप
निमित्त (कारण) करके सहितपना (आपसे पृथक् विषयवान्
पना) है, इसप्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं । ताते शब्दादिकोंकी
प्रतीति रूप प्रज्ञप्ति विषय रहित होवे नहीं, तिसको विषय रूप
निमित्त करके सहितपना है ताते । अतएव इस प्रज्ञप्तिको आपत्ते
भिन्न वस्तुरूप विषयवान्पना युक्त है । अन्यथा (अर्थात् तिसको
विषय रहितपने के हुये) शब्द स्पर्श नील पीत रक्तादिकोंके
ज्ञानों की विषयता रूप द्वैतका अभाव है नहीं, क्योंकि सो प्रत्यक्ष
है ताते । एतदर्थ ज्ञानो की विचित्रतारूप द्वैतके दर्शन से अन्य
वादियों का शास्त्र परतन्त्र है, इस प्रकार अन्यों का जो शास्त्र
तिसके परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञानसे । भिन्न बाह्यार्थ की अस्तित्वा
(विद्यमानता) माननी (हमको वांछित) है अरु प्रकाशवान्
स्वरूप प्रज्ञप्तिका नील पीतादि बाह्य विषयोंकी विचित्रता बिना
स्वाभाविक भेदसेही विचित्रपना संभवे नहीं, जैसे स्फटिक का
नीलादिक उपाधिरूप आश्रयों के बिना विचित्रपना घटे नहीं,
तेसे, यह अभिप्राय है । इस [बाह्यार्थबिना अग्निकरके दाहआदिकों]

प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमिष्यते युक्तिदर्शनात् । निमित्त-
स्यानिमित्तत्वमिष्यते भूतदर्शनात् २५ । १५२ ॥

के किये दुःख की प्रतीतिका असंभव है ताते, वाह्यार्थ है, इस प्रकार करते हैं।] अन्य हेतु से भी परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञान से पृथक् वाह्यार्थ की अस्तित्ता (सद्भाव) है। अरु "सङ्क्लेशस्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽस्तित्तामता"। क्लेश की उपलब्धि से परतन्त्र की अस्तित्ता मानी है अर्थात् क्लेश कहिये दुःख तिस की प्रतीति से परतन्त्र की अस्तित्ता मानी है। जिस करके अग्नि आदिक निमित्त का किया दुःख प्रतीति होता है। अरु जब दाहाऽऽदिकों का निमित्त अग्नि आदिक वाह्यवस्तु ज्ञान से भिन्न न होय तो दाहादिक रूप दुःख प्रतीत न होना चाहिये, परन्तु सो प्रतीत होता है, एतदर्थ तिस प्रतीति करके वाह्यार्थ है, इस प्रकार हम मानते हैं। अरु जिस करके विज्ञानमात्र विषे क्लेशयुक्त नहीं, अरु अन्य सूक्ष्म चन्दनादिकों के ठिकाने दुःख का अदर्शन है ताते। अर्थात् अग्नि दाहादिकों से क्लेश की प्रतीति है ताते, अरु सूक्ष्म चन्दनादिकों के ठिकाने दुःख का अदर्शन है ताते। एतदर्थ ज्ञान से भिन्न वाह्यार्थ के अभाव हुये दुःख की प्रतीतिका अभाव है, ताते। ज्ञान से भिन्ने वाह्यार्थ संभव है ताते। इत्यभिप्रायः २४ । १५१ ॥

निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसुत्रिषु । अनि-
मित्तो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति २७ । १५४ ॥

कहिये भ्रम होवेगा, क्योंकि तिसकरके रहित विषे तिसकी बुद्धि-
रूप विपर्यास तिस प्रकार का है ताते, अरु विपर्यास के अंगी-
कार किये कहीं भी अविपर्यास कहिये अभ्रान्ति कहने के योग्य है,
क्योंकि अन्यथा ख्यातिवादियों करके भ्रान्तिकी अभ्रान्ति पूर्वक
तिसका अंगीकार है ताते] अर्थाभास भी उक्त चित्तसे भिन्न है
नहीं, किन्तु चित्त कहिये 'ब्रह्म' चैतन्य, ही घटादिरूप अर्थवत्
भासता है । जैसे स्वप्नविषे भासता है तैसे २६ । १५३ ॥

२७।१५४ हेसौम्य ! [ज्ञानको विपर्ययरूप आश्रय करके सहितता-
के अभाव हुये तिसके तिसप्रकार होनेकी प्रतीति भ्रान्ति होवेगी,
अरु भ्रान्ति जो है सो आभ्रान्तिरूप प्रतियोगी वाली है, इसप्रकार
अन्यथा ख्यातिके मतकी शंका लेके कहते हैं] शंका । ननु, तब
चैतन्यको असत् घटादिकों विषे घटादिक की आभासतारूप विप-
र्यय (भ्रम) होवेगा, । अरु तैसे हुये कहिक (किसी भी ठिकाने)
अविपर्यय कहने को योग्य है । अर्थात् जब चैतन्य को असत् घ-
टादिकों विषे घटादिकों की आभासतारूप भ्रम होवेगा तब तिस
भ्रमका प्रतियोगी जो अभ्रम सो भी किसी न किसी विषे कहने
को योग्यही है । तहां उत्तर कहते हैं, [भ्रान्ति तो अन्यप्रकारसे
भी होवेगी, इसप्रकार कहते हैं] " निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्य-
ध्वसुत्रिषु " ६ निमित्त तीनमार्गों विषे भी सदा चित्त (चैतन्य)
को स्पर्श करता नहीं ; अर्थात् निमित्त जो है विषय सो भूत भ-
विष्यत् अरु वर्तमानरूप इन तीन मार्गों (कालों) विषे भी चि-
त्ताख्य चैतन्य को स्पर्श करता नहीं, जब कहीं भी स्पर्श करे तब
सो परमार्थ से अविपर्यय है । एतदर्थ तिस चित्तके स्पर्शकी आ-
पेक्षा से असत् घटविषे घटका आभासरूप विपर्यास होवेगा,
परन्तु सो चित्त (चैतन्य) का अर्थ (विषय) से कदाचित्भी स्पर्श है

तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न जायते । तस्य पश्य-
न्ति ये जातिं खेवै पश्यन्ति ते प्रदम् २८ । १५५ ॥

नहीं । अनिमित्तो विपर्ययासः कथं तस्य भविष्यति ? निमित्तरहितं विपर्ययासं तिसको कैसे होवेगा ? अर्थात् जब चैतन्यका अर्थ से स्पर्श किसी प्रकार भी नहीं, ताते निमित्तरहित तिस चित्तको विपर्ययास कहिये आन्ति कैसे होवेगी, किन्तु किसी प्रकारसे भी विपर्ययास है नहीं । इत्यभिप्रायः । अरु यह ही चित्त (ब्रह्मचैतन्य) का स्वभाव कहिये अविद्या है कि जो घटादिरूप निमित्तके अविद्यमान हुये तद्वत् (विद्यमान हुये वत्) भासना एतदर्थ अभ्रान्तिके अभावसे आन्तिके भी असम्भवे हुये । अर्थात् जो जिसका सापेक्ष कहै, सो तिसके अभावसे अभाव होता है । ज्ञानकी असत् घटादिकों विषे घटादिकों की आभासरूपता निर्वाह करते हैं २७।१५४॥ २८।१५५॥ हे सौम्य ! [इस प्रकार ब्राह्मण्य वादी के पक्षको विज्ञानवादी के मतद्वारा निषेध करके अथ विज्ञानवादका भी निषेध करते हैं] “प्रज्ञप्तेः संनिमित्तत्वं” प्रज्ञप्तिका निमित्त सहित पना है । इससे आदिले के यहां पर्यन्त विज्ञानवादी जो बौद्ध तिसका आचार्य के वादी के पक्षके निषेध परायण वचन है, सो आचार्यने अनुमोदन किया । अब तिस ही वचनको हेतु करके तिस विज्ञानवादी के पक्षके निषेधार्थ यह कहते “तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न जायते” ताते चित्त जन्मता नहीं । जैसे । चित्तका दृश्य जन्मता नहीं ? अर्थात् जिसकरके विज्ञानवादीने असत् ही जो घटादिक तिस विषे चित्त (चैतन्य) को घटादिकों की आभासरूपता अङ्गीकार किया है सो हमने भी परमार्थ दृष्टि से अनुमोदन किया । अतएव तिस चित्तकी भी जन्मके अविद्यमान हुये ही जानने में आवनहार वस्तुकी आभासरूपता होनेको योग्य है एतदर्थ चित्त कहिये चैतन्य जन्मता नहीं, जिसे चित्तका दृश्य जन्मता नहीं तेसे । एतदर्थ तिस ही चित्तकरके देखने को अशक्य

अजातं जायते यरमादजातिः प्रकृतिस्ततः । प्रकृतेर
न्यथाभावो न कथञ्चिद्भवति २९ । १५६ ॥

चित्तस्वरूपके धर्म, तिसकारणसे, क्षणिकता दुःखरूपता अरु
अनात्मरूपता, इत्यादिकों को देखते हुये “तस्य पश्यन्ति ये जातिं
खैवैष पश्यन्ति ते पदम्” जो तिसकी उत्पत्तिको देखते हैं सो
आकाशविषे पादोंको प्रसिद्ध देखते हैं; अर्थात् जो विज्ञानवादी
तिस चित्त । चैतन्य । की उत्पत्ति को देखते हैं सो आकाश विषे
अनहुये । पक्षि आदिकों के पादचिह्नों को प्रसिद्ध देखते हैं ।
एतदर्थ यह विज्ञानवादी अन्य द्वैतवादियों से भी अत्यन्त विचार
शून्य है । इत्यर्थः । अरु जे शून्यवादी हैं सो भी । सर्वकी शून्यता
को देखते हुये ही अपने सिद्धान्तको भी शून्यताकी प्रतिज्ञा करते
हैं, सो आकाशको मूठी विषे ग्रहण करने की इच्छा करते हैं ।
अतएव सो शून्यवादी विज्ञानवादी की अपेक्षा तिससे भी अधि-
कतर विचार शून्य ही है २८ । १५५ ॥

२६ । १५६ ॥ हे सौम्य ! “अजमेकं ब्रह्मेति” अजन्मा एक
ब्रह्म है । इसप्रकार जो पूर्व प्रतिज्ञा किया है, तिसके कहे हुये हे-
तुओं से जो जन्मका अनिरूपण तिसकरके सो अजन्मा ब्रह्म
सिद्ध हुआ । तिस सिद्ध हुये अर्थके फलकी समाप्ति के अर्थ यह
दलोक है । [यहाँ यह अर्थ है कि, जब चैतन्यरूप स्फूर्ति अ-
जन्मा इष्ट है, तब सो ब्रह्म ही है, क्योंकि सो एक कूटस्थ स्व-
भाव वाला है ताते । अर्थात् कूट नामे है लोहकार वा सुवर्णकार
की ऐसन का कि जिसके आश्रय वो सर्व कार्यों को करते हैं अरु
वो जहाँ जैसा है तहाँ तेसाही निर्विकार है, तद्वत् निरुपायि
निर्विकार एकरस चैतन्यको भी “कूटप्रतिष्ठनीनि कूटस्थः”
इस व्युत्पत्त्यर्थ से उसको कूटस्थ कहते हैं । सो पुनः वास्तवसे
अजन्मा ही है, तथापि मायामे जन्मवान् होता भासे है, इसप्रकार
अज कल्पना करते हैं, तब तिस कूटस्थ को अजन्मा होनेकरके

अनादेरन्तवत्त्वं च संसारस्य न सेत्सति । अनन्तता चा-
दिमतो मोक्षस्य न भविष्यति ३० । १५७ ॥

तिसकी अनुत्पत्तिही । अजन्मापनाही । प्रकृति कहिये स्वभाव
होता है] " अजातं जायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः " १६ जि-
सकरके अजन्मा जन्मता है, तिसकरके अनुत्पत्तिही प्रकृति है,
अर्थात् अजन्माही जो चैतन्य ब्रह्म है सो जन्मता है, इसप्रकार
वादियों करके कल्पना किया है । अरु जिसकरके सो चैतन्य ब्रह्म
कुटस्थ, अजन्मा जन्मता है, एतदर्थ तिसकी अनुत्पत्ति प्रकृति
कहिये स्वभाव है । ताते " प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति " ।
प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी प्रकारसे भी होतानहीं ? अर्थात्
जाते चैतन्य ब्रह्मकी अनुत्पत्तिही स्वभाव, प्रकृति, है ताते सो
अनुत्पन्नतारूप प्रकृतिका अन्यथाभाव कहिये उत्पत्ति, जन्म,
किसी प्रकारसे भी होता नहीं ॥ इति सिद्धम् ॥ २६ । १५६ ॥
३० । १५७ ॥ हेसौम्य ! आत्माके विषे संसार अरु मोक्ष, इनके
परमार्थसे सद्भावके माननेवाले वादियोंको यह दूसरादूषण कह-
ते हैं । पूर्वधानहीं, इस अवच्छेदसे रहित अनादि संसारकी अन्त-
वानता कहिये समाप्ति युक्तिसे सिद्ध न होगी । अरु जिस करके
लोकविषे अनादिहुआ कोईभी पदार्थ अन्तवान् देखानहीं, एतद-
र्थ [यहाँ यह अनुमान है कि विवादका विषय जो संसार सो अन्त-
वान् है नहीं क्योंकि आत्मावत् अनादि भावरूप है ताते] यह अर्थ
घटित है ॥ अरु जो ऐसा कहें कि बीज अरु अंकुरका हेतु अरु फल
भावसे जो सम्बन्ध है, तिसके सन्तानके अनादि भावरूप हुयेभी
तिसका अन्त देखते हैं ताते, संसारकी अनन्तताके साधने विषे
'अनैकान्तिकतेति' 'अनादिहोनेसे' । यह जो हेतु कहा तिसको
व्यभिचारवानता है । सो कथन घने नहीं, क्योंकि बीज अरु अंकुर
के सम्बन्ध के सन्तानरूप वस्तुको एकरूपताके अभावकर के पूर्व
इसप्रकरणके २० वें श्लोकसे निषेध किया है । अरु " अनन्तताचा-

आदावन्तेचयन्नास्तिवर्त्तमानेऽपितत्तथा । वितथैः
सदृशाः सन्तोऽवितथाइवलक्षिताः ३१ । १५८ ॥

दिमतो मोक्षस्य न भविष्यति । आदिवाले मोक्षकी भी अनन्तता न होगी; अर्थात् तैसे ज्ञानकी प्राप्तिकालविषे उत्पत्तिरूप आदिवाले मोक्षकी अनन्तताभी न होगी, क्योंकि आदिवाले घटादिकों विषे अनन्तताको देखते नहीं । अरु जो कहें कि घटादिक नाशवान् हैं क्योंकि अवस्तुरूप हैं ताते, इसप्रकार मानेहुये दोष नहीं, तो तैसा होनेसे परमार्थसे मोक्षके सद्भावके प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी, अरु मोक्षको शशशृंगवत् असत् होतेही तिसके आदिवान्पनेका (ज्ञानसे उत्पत्तिका) अभाव होवेगा ३० । १५७ ॥

३१ । १५८ ॥ हे सौम्य ! वादी कहता है तब मोक्षको आदिअन्त वान्पना होहु, तहां सिद्धान्ती कहता है, "आदावन्तेचयन्नास्ति वर्त्तमानेऽपितत्तथा, वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथाइवलक्षिताः" । जो आदि अरु अन्तविषे नहीं है सो वर्त्तमानविषे भी नहीं, जैसे मिथ्यावस्तुके सदृशहुयेभी सत्यवत् जानते हैं, अर्थात् मृगजलादिक वस्तुआदि अरु अन्तविषे हैं नहीं सो अपने वर्त्तमानसमयभी तैसेही आदि अन्तवत्ही हैं नहीं । अथवा जो वस्तु अपने अभाव हुये हैं नहीं, सो अपनी उत्पत्तिसे पूर्वभी हैं नहीं अरु जो अपनेआदि अन्तमें नहीं सो अपने वर्त्तमान कालमेंभी हैं नहीं "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि गीतोक्तिप्रमाणसे । जैसे यह दृष्टान्त है तैसे मोक्षादिक पदार्थभी । सम्यक् ज्ञानकरके जन्य होनेसे । मिथ्यावस्तु के तुल्य है, तथापि उसको मूढ़ पुरुष सत्यवत् जानते हैं । अर्थात् सत् शुद्ध स्वरूप आत्माविषे जो भ्रान्तिमात्र बंध है सो अविवेकी को सत्यवत् भासता है, तैसेही भ्रान्तिरूप बन्धका प्रतिपक्षी (सापेक्षिक) जो मोक्ष सोभी भ्रान्तिरूप असत् है तथापि सो भी अविवेकी पुरुषोंको सत्यवत् भासता है । ३१ । १५८ ॥

३२ । १५९ ॥ हे सौम्य ! शंका ननु, मृगजलादिकोंसे स्नानपाना-

संप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते । तस्मादाद्यन्त
वत्त्वेन मिथैव खलु ते स्मृताः ३२ । १५६ ॥

दिरूप प्रयोजनकी अप्रतीति (असिद्धि) से-सो मिथ्या है, परन्तु मोक्ष अरु स्वर्गादिकों के सुखादिकों की प्राप्तिरूप प्रयोजन की प्रतीति है, ताते मोक्षादिकोंका मिथ्यापना नहीं, । यह शंका करके समाधान, कहते हैं "संप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते" तिनकी संप्रयोजन सहितता स्वप्नविषे विपर्ययकी पावती है, अर्थात् तिन मोक्षादिकोंकी संप्रयोजनता स्वप्नविषे विपर्ययको प्राप्त होती है । अरु जैसे स्वप्नविषे देखेहुये पदार्थोंकी विपरीतता (असत्यता) जाग्रत् विषे होती है । अर्थात् स्वप्नमें यह स्वप्न है अरु मिथ्या है ऐसी प्रतीति होती नहीं अरु जब जाग्रत्को प्राप्त होता है तब जाग्रत्से स्वप्नकी विपरीतता प्रतीति होती है । तैसे जाग्रत्विषे देखेहुये पदार्थोंकी विपरीतता स्वप्नविषे होती है । अर्थात् जाग्रत्से विपरीत स्वप्न है अरु स्वप्नसे विपरीत जाग्रत् है इस कहने से स्वप्न विषे जाग्रत् नहीं अरु जाग्रत् विषे स्वप्न नहीं, अतएव ये दोनों परस्पर विपरीत व्यभिचारी होनेसे मिथ्या हैं । यह अर्थ है । अरु "तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथैव खलु ते स्मृताः" । तस्मात् आदि अन्तवान् होनेकरके तिनको निश्चयकरके मिथ्याही जाना है, अर्थात् तिस जाग्रत् अरु स्वप्नके परस्पर विपरीत व्यभिचारीपने के दृष्टान्तों करके आदि अरु अन्तवान् होनेसे, विवेकी पुरुषों ने निश्चय करके मोक्षादि सर्व मिथ्याही जाने हैं । अर्थात् जाग्रत् अरु स्वप्न वत्, बन्ध अरु मोक्ष यह भी परस्पर विपरीत व्यभिचारी, अरु सापेक्षिक होनेसे मिथ्या हैं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नका परस्पर व्यभिचार है, तैसे उनका एकसाक्षी आत्मासे भी व्यभिचार है, तैसे ही इन बन्ध अरु मोक्षका परस्पर, अरु अव्यभिचारी निर्वेक्ष सत्य एक रूप आत्मासे, व्यभिचार है, ताते ज्ञानवानोंने इन बन्ध अरु मोक्ष दोनोंको निश्चयसे मिथ्याकरके ही जाना है । । अरु यद्यपि यह

सर्वधर्माभृषास्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात् । संवृत्ते
ऽस्मिन्प्रदेशे वैभूतानां दर्शनं कुतः ३३ । १६० ॥

दोनों श्लोक द्वितीय प्रकरणमें व्याख्या किये हैं, तथापि, यहां वध
अरु, मोक्षके अभावके प्रसंगसे पुनः पठन किये हैं, ताते यहां पुन-
रुक्तिदोष विचारणीय नहीं ३२। १५, ६ ॥

३३। १६० हे सौम्य ! " निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यते भूतदर्श-
नात् " उपरमार्थके देखनेसे निमित्तका अनिमित्तपत्ता हमों करके
अंगीकार किया है, यह २५ वें श्लोकविषे कथन किया, जो अर्थसो
अब इन श्लोकोंसे विस्तारित करते हैं । [जिस हेतुकरके स्वप्नका
मिथ्यापना इष्ट है तिस हेतुको, जाग्रत् विषे भी तुल्य होनेसे । जाग्रत्
का भी मिथ्यापना इष्ट करके । अजन्मा (जन्मादि विकार रहित)
ज्ञानमात्र तत्त्वही अंगीकार करने योग्य है, इस कहनेके अभिप्राय
से कहते हैं] " सर्वधर्माभृषास्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात् " । स्वप्न
विषे सर्वधर्म मिथ्या है शरीरान्तर होनेसे, अर्थात् जब शरीरान्तर
होनेसे स्वप्नके सर्व पदार्थ असत्य हैं, तब विराट् के शरीरान्तर
सर्व जगत्के देखनेसे तिसका मिथ्यापना निवारण करनेको शक्य
नहीं । अर्थात् बृहदारण्यक उपनिषद् विषे, शरीरके अन्तर, एक
खड़े केशके सहस्रवें भाग प्रमाण हितानाम्नि नाड़ियाँ हैं तिनमेंसे
एकनाड़ी के अन्तर स्वप्नजगत् भासता है, परन्तु स्वप्नके पर्वत
सागरादि सहित जगत् के होने प्रमाण देशकाल वस्तुका अति
संकोच अभाव होनेसे, अरु तिस नाड़ी के अन्तर भी महासूक्ष्म
आत्माकी पूर्णता से, एकठिकाने दो वस्तु रहे नहीं इस न्यायसे,
उस नाड़ीके अन्तरस्थानादिकों के अभावसे वहां भासमान जो
स्वप्नजगत् सो भ्रान्तिमात्र होनेसे असत् है । तेसेही इस जाग्रत्
जगत्को विराट्के शरीरान्तर होनेसे अरु तहां भी इस व्यष्टिशरी-
रवत् देशकालादिकोंके संकोचसे अरु चेनन्य आत्माकी पूर्णव्या-
प्तिसे यह दृश्यमान जो जाग्रत् जगत् तिमको भी भ्रान्तिरूप होने

“नियुक्तं दर्शनं गत्वा कालस्यानियमाद्गतौ ।” प्रतिबुद्ध-
श्च वै सर्वस्तस्मिन् देशे न विद्यते ३४ । १६१ ॥

से तिसका मिथ्यापना निवारण करनेको शक्य नहीं । अरु जो ऐसा कहो कि यह समस्त जगत् विराट्का वपुहै, विराट् के शरीरान्तर स्वप्नवत् नहीं, ताते असत् भी नहीं, तो श्रवण करो हे सौम्य ! आकाशसे भी महासूक्ष्म आत्मतत्त्व धनशिलावत् पूर्ण-तासे व्याप्त है, उससे खाली स्थान जगत्के रहनेको कोई नहीं, अरु एकठिकाने दोबस्तु रहे नहीं इसन्याय प्रमाण देखने से उस परिपूर्ण अखंड चैतन्यविषे उससे रीते स्थानके अभावसे आका-शादि सर्व जगत् उस अधिष्ठान तत्त्वविषे रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्त होने से भ्रान्तिरूप असत्यही निश्चय करने के योग्य है । यह अर्थ है, किंवा, जब योग्य देशके अभावसे स्वप्नका मिथ्यापना बृष्ट है, तब प्रत्यगोरसा से अभिन्न अखंड एक रस अवकाश रहित इस ब्रह्मरूप देशविषे प्रसिद्ध विद्यमान वस्तु का दर्शन कहाँसे होगा, किन्तु ब्रह्मको आपसे इतर अवकाश रहित होनेसे किसी प्रकारसे भी, उसविषे अन्यका दर्शन बने नहीं, । अरु जिस करके स्थान विना जगत्का दर्शन होता है, ताते स्थान विनाके स्वप्नवत् जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है । यह इसका अर्थ है ३३ । १६० ॥ ३४ । १६१ ॥ हे सौम्य ! अब उक्तार्थको ही वर्णन करते हैं “नियुक्तं दर्शनं गत्वा कालस्यानियमाद्गतौ ।” गति विषे काल के अनियमसे जायके दर्शन युक्त नहीं, अर्थात् जैसे स्वप्नविषे देशान्तर को जाने में कालके अनियमसे देशान्तरको जायके देखना युक्त नहीं । अर्थात् स्वप्नमें जो अनेक योजनोंके अन्तरवाले देशान्तर वा दीपान्तरको अरु तहाँके पदार्थोंको पुरु देखता है सो शरीरसे बाह्य उन देशान्तर वा दीपान्तरमें जायके देखता नहीं क्योंकि जाग्रत्को त्यागके स्वप्नको प्राप्त होने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो उन देशान्तरके प्राप्त होने में चाहिये, किन्तु शनैः शनैः

जाग्रतकी निवृत्ति अरु स्वप्नकी प्रवृत्ति प्रायः समकालही होती है, अरु तैसेही स्वप्नकी निवृत्तिके समकालही जाग्रतकी प्राप्ति होती है ताते जाग्रतसे स्वप्नमें जाने अरु स्वप्नसे जाग्रतमें आने के मध्य इतना दीर्घ काल नहीं जो स्वप्नमें देहसे बाह्य देशान्तर को जाय अरु आवे । तैसे जाग्रत विषे भी मरणोत्तर अर्चिरादि मार्गसे जायके ब्रह्मका दर्शन युक्त नहीं, क्योंकि ब्रह्म जो है सो काल, अरु देश, के अवच्छेदसे रहित है । अर्थात् यहाँ जो स्वप्नके दृष्टान्तसे, जाग्रतविषे मरणोत्तर अर्चिरादि मार्ग से जायके ब्रह्म के दर्शन युक्त नहीं ऐसा कहा है सो अस्तु परन्तु अर्चिरादि उत्तरायण मार्ग के साधनेवालेको, ब्रह्मात्माके अभेद ज्ञानीवत् शरीर से उत्क्रमण (निकसे) बिना यहाँहीं " ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " निर्विशेष ब्रह्म भावकी प्राप्तिवत्, ब्रह्म प्राप्ति नहीं, किन्तु उसको अर्चिरादि क्रमसे ब्रह्मलोक प्राप्ति है, ताते उसका मरणोत्तर बाह्य गमन युक्त है " यच्चेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासते तेऽर्विपमभिसम्भवत्यर्चिपोऽहरह आपूर्यमाण यच्चापूर्यमाणपक्षाद्यान् पडुदङ्घ्रिमासांस्तान् । मासेभ्यः संवत्सरः । संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसोविद्युतं तत्पुरुषोमानवः स एनां ब्रह्म गमयत्येपदेवयानः पन्था इति " " तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति " इत्यादि प्रमाण से अर्चिरादिकों के उपासकों को साक्षात् मोक्ष प्राप्ति न होयके उसको सुषुम्णानाडीके मार्ग देहसे उत्क्रमण होय देवयान मार्गकी रीतिसे ब्रह्मलोक प्राप्ति अरु ब्रह्माके साथ सापेक्षिक मोक्ष है, ॥ किंवा ॥ " प्रतिबुद्धश्च ये सर्वस्तस्मिन्देशे न विद्यते " । सर्वजन प्रबोधको पाया हुआ तिस देशविषे विद्यमान होता नहीं, अर्थात् जैसे सर्वजन जिस देशविषे स्थित होय सोयेहुये स्वप्नोंको देखते हैं सो पुनः प्रबोध (जाग्रत) को पाव के तिस देशविषे कि जिन देशान्तर वा द्वीपान्तरोंको स्वप्नमें देखता है, स्थित होता नहीं । इसप्रकार होने से स्वप्नका मिथ्यापन ही वांछित है । तैसे जाग्रतविषे भी जिस देहरूप देशविषे स्थित

मित्राद्यैः सह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते । गृहीत
श्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति ३५ । १६२ ॥

हुआ पुरुष संसारको अनुभव करता है, पुनः ब्रह्मभावको पाया
हुआ तिस देहरूप देशविषे स्थित नहीं है, क्योंकि परिपूर्ण
ब्रह्मरूप होयके स्थित हुआ है । एतदर्थ जाग्रतका भी मिथ्यापना
अंगीकार करने योग्य है ॥ इस श्लोक का तात्पर्यरूप अर्थ यह है
कि जाग्रतविषे गमनागमनके काल जो नियमित हैं अरु जो देश
प्रमाणसे हैं, तिनके नियमसे स्वप्नविषे देशान्तरको गमन होवे
नहीं, किन्तु देहके भीतर देशान्तरादि प्रपञ्च देखते हैं, तैसे जा-
ग्रतविषे भी घटित हैं, याते तिन । जाग्रत् अरु स्वप्न । दोनों को
तुल्य होने से, उन दोनोंका मिथ्यापना भी तुल्य ही है ३४ । १६१ ॥

३५ । १६२ ॥ हे सौम्य ! [जैसे स्वप्नविषे विसंवादसे अर्थात् नि-
ष्फल प्रवृत्तिके जनक भ्रमरूपतासे, अप्रमाणपनों इच्छित है, तैसे
ही जाग्रतविषे भी ब्रह्मवादियोंके साथ मिल विचार करके अविद्या
निद्राले सम्यक् प्रकार प्रबोधको पाया जो पुरुष, सोपुरुष, परम
श्रेय, हमोंकरके साधने योग्य है, त्रा नहीं । इस प्रकार विचार किये
मोक्षके साध्यभावको जानता नहीं । अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओंका सत्-
संगी सम्यक् विचारवान् आत्मानुभावि पुरुष मोक्ष हमों करके
साधने योग्य है इस भावको जानता नहीं । क्योंकि, उसको सत्-
संगके प्रभाव से आत्माकी एकता के अनुभव हुये सर्वकी नित्य
मुक्तताका निश्चय है ताते । एतदर्थ मुमुक्षुपना अरु श्रवणादिसा-
धनोंकी कर्त्तव्यता भ्रान्तिसही है, इस प्रकार कहते हैं] मित्राद्यैः स
ह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते, गृहीतश्चापि यत्किञ्चित् प्रतिबु-
द्धो न पश्यति । मित्रादिकोंके साथ गुप्त भाषण करके प्रबोधको पाया
हुआ पावता नहीं, अरु ग्रहण किये जिस किसीको भी देखता नहीं,
अर्थात् स्वप्नविषे मित्रादिकोंके साथ गुप्त भाषण करके प्रबोधको
पाया हुआ पावता नहीं । अरु [किंवा स्वप्नवत् अनुभव किये उप-

स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात् । यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम् ३६ । १६३ ॥

देशादिकों को विद्वान् देखता नहीं, क्योंकि तिस विद्वान् करके साध्य फलका अभावहै, [उससे श्रेष्ठ अरु अन्य कुछभी न होनेसे] इसप्रकार कहते हैं] ग्रहणकिये जिसकिसकी । अर्थात् स्वप्नविषे ग्रहणकिया जो कुछा सुवर्णादिपदार्थ तिनकोभी देखता (पावता) नहीं, अरु गयाहुआ देशान्तरके ताई जातानहीं । अर्थात् स्वप्न विषे जिन देशान्तरको जाता है, तिन देशान्तरको जाग्रत् हुआ जातानहीं ३५ । १६२ ॥

३६ । १६३ ॥ हे सौम्य ! [किंवा स्वप्नावस्था विषे जिस शरीर करके नवी अरण्यादिकोविषे विचरता है, सो मिथ्या है, क्योंकि तिस स्वप्नगत देहसे भिन्न निश्चल जाग्रत्गत शरीर को देखतेहैं, तैसे जाग्रत् विषे भी जिस संन्यासी आदिक शरीरसे लोकोंकरके पूजने योग्य वा द्वेषकरने योग्य देखते हैं, तिसको मिथ्या कहते हैं, क्योंकि तिस शरीरसे पृथक् ब्रह्मनामवाला कूटस्थरूप शरीर का यथार्थ अनुभवहै ताते, इसप्रकार कहते हैं] “स्वप्ने चावस्तु कः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्” ६ स्वप्नविषे जो शरीर है सो अवस्तु रूप है, अन्य से पृथक् देखने से ३ अर्थात् स्वप्नविषे अरण्यादिमें भ्रमताहुआ जो शरीर देखते हैं सो अवस्तुरूप है, क्योंकि तिस स्वप्नके शरीर से पृथक् जाग्रत् का शरीर देखते हैं ताते “यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम्” ६ जैसे शरीर तैसे चित्त का दृश्य सर्व अवस्तुरूप है ३ अर्थात् जैसे स्वप्नका दृश्य शरीर असत् है तैसे जाग्रत् विषे भी सर्व चित्तका दृश्य अवस्तुरूपही है, क्योंकि चित्तका दृश्य (कल्पित) है ताने । अरु स्वप्न के तुल्य होने से जाग्रत् भी असत्यही है, ऐसा इस प्रकरण का अर्थ है ३६ । १६३ ॥

३७ । १६४ ॥ हे सौम्य ! [जैसे जाग्रत् को अनुभव करते हैं,

ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते । तद्धेतुत्वात्
तस्यैव सजागरितमिष्यते ३७ । १६४ ॥

तैसे स्वप्न को भी अनुभव करते हैं । अरु स्वप्न को जाग्रतका कार्य होनेसे जो स्वप्नका द्रष्टा है तिसहीका जाग्रत-स्वप्नरूप कार्य हुआ विद्यमान है । अरु स्वप्न असत् है । एतदर्थ स्वप्नवत् जाग्रत का मिथ्यापनाही है । इस प्रकार कहते हैं] इस कहने के हेतु से भी जाग्रत की वस्तुका असत्पना है । "ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते" । जाग्रतवत् ग्रहणसे तिस हेतुवाला स्वप्न अंगीकार करते हैं ; अर्थात् जाग्रतवत् ग्राह्य ग्राहक रूपसे स्वप्न के ग्रहणसे तिस जाग्रतरूप हेतुवाला (जाग्रत का कार्य) स्वप्न अंगीकार करते हैं, [किंवा, जाग्रतका अनेक पुरुषों को साधारण होने रूप जो विद्यमानपना है सो वास्तवसे है नहीं, क्योंकि स्वप्न का कारण है ताते, किन्तु तैसे अनेक को साधारण होनेवत् भासमानपना है, इसप्रकार कहते हैं] तिस हेतुवाला होने से (जाग्रतका कार्य होनेसे) तिसही स्वप्नके द्रष्टाको जाग्रत सत्य अंगीकार करते हैं, अन्योका नहीं, जैसे स्वप्न है । [प्रमाता के होते बाध्य होनेरूप स्वप्नका मिथ्यापना है, अरु जाग्रत को पुनः तिस बाध्यहोने की अप्रतीति से परमार्थ से सत्पना है, अरु कार्य को मिथ्यापने के हुये कारणको भी मिथ्यापना है, इस विषे प्रमाणके अभावसे सर्वको साधारण अरु विद्यमान जो जाग्रत सो मिथ्याहोने के योग्य नहीं । यह शंकाकरके कहते हैं] यह अभिप्राय है । जैसे स्वप्नजो है सो स्वप्नके द्रष्टाकोही सत्य है, अर्थात् साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, तैसे तिस जाग्रत रूप कारणवाला होनेसे तिस स्वप्नका स्वप्नके द्रष्टाकोही साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, परन्तु साधारण विद्यमान जाग्रत है सो स्वप्नवत् है नहीं । यह इसका अभिप्राय है ३७ । १६४ ॥

३८ । १६५ ॥ हे सौम्य ! [स्वप्न अरु जाग्रत के कार्य कारण

उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्वमुदाहृतम् । नचभूता
दभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन ३८ । १६५ ॥

भावके हुये भी दोनोंका मिथ्यापना तुल्य नहीं 'क्योंकि सो पर-
स्पर अत्यन्त विलक्षण है । यह शंकाकरके कहते हैं] शंका । ननु,
जाग्रत्के पदार्थको स्वप्नकी कारणताके हुये तिस । जाग्रत्के प-
दार्थ । का स्वप्नवत् अवस्तुपना न होवेगा, क्योंकि जिसकरके
स्वप्न अत्यन्त अस्थिर है अरु जाग्रत्को स्थिर देखते हैं, अतएव
तिनकी परस्पर विलक्षणता है ताते । तहां । समाधान । कहते
हैं । हे वादी ! तिसप्रकारका अनुभव अविवेकी पुरुषोंको होता है,
यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु विवेकी पुरुषोंको तो किसी भी
वस्तुकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है नहीं "उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्व
मुदाहृतम्" । [उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोने से सर्व अजन्मा कहा है]
अर्थात् विवेकी पुरुषोंको किसी भी पदार्थकी उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं,
एतदर्थ उत्पत्तिको अप्रसिद्धहोनेसे अज आत्माही सर्व है "सवा
ह्याभ्यन्तरोह्यज." 'घाहर भीतर सहित है अरु अजन्मा है' इस
श्रुतिके प्रमाणसे । इसप्रकार वेदान्तों विषे सर्व अजन्माही कहा
है । अरु सत्त्वरूप जाग्रत्से असत्त्वरूप स्वप्न उपजाता है, इस प्रकार
तू मानता है, तथापि सो । जाग्रत् । असत्ही है । क्योंकि "नच
भूतादभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन" विद्यमान से अविद्यमानका
किसीप्रकार से भी संभव नहीं] अर्थात् विद्यमान पदार्थ से अ-
विद्यमान वस्तुका किसीप्रकार से भी संभवहोना संभवे नहीं ।
अरु लोक विषे असत्यरूप शशशृंगादिकों का किसीप्रकार से भी
संभव होतानहीं अरु देखा भी नहीं ३८ । १६५ ॥

३६ । १६६ ॥ हे सौम्य ! शंका । ननु, हे सिद्धान्ति ! तूनेही तो
३७ वें श्लोकविषे स्वप्न जाग्रत्का कार्य्य है इसप्रकार कहा है तब
उत्पत्ति अप्रसिद्ध है ऐसा कैसे कहता है, तहां समाधान कहते
हैं, हे वादी ! जिसप्रकार कार्य कारणभाव हमोंकरके कहने को

असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः । असत्
स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति ३६ । १६६ ॥

नास्त्यसद्वेतुकमसत्सदसद्वेतुकन्तथा । सच्चसद्वेतुकं
नास्तिसद्वेतुकमसत्कुतः ४० । १६७ ॥

इच्छितहै, तैसे कहतेहैं, सो तू सावधानहोय श्रवणकर "असज्जा
गरितेदृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः" [जाग्रत् विषे असत्को देखके
तन्मयहुआस्वप्नविषेदेखताहै] अर्थात् असत् (रज्जुसर्पवत्कल्पित)
वस्तुको देखके तिसके भावकी भावना करके युक्त 'वा तिस अ-
सत् वस्तुके ज्ञानके दृढ़ संस्कार करके युक्त' तन्मय हुआ पुरुष
जाग्रत्वत् स्वप्नविषे ग्राह्य अरु ग्राहक (विषय अरु इन्द्रिय) रूप
से कल्पना करता हुआ देखताहै, [जैसे जाग्रत्विषे देखेहुये प्र-
पञ्चको स्वप्नविषे देखने से जाग्रत्की वासनाके आधीन जो स्वप्न
सो जाग्रत् का कार्य होने करके व्यवहार करते हैं, तैसे स्वप्नविषे
देखेहुये प्रपञ्चको जाग्रत्विषेभी देखनेसे जाग्रत्को तिस स्वप्नका
कार्यपना सिद्ध होता है, यह शंका करके श्लोकके उत्तरार्द्ध को
कहते हैं (व्याख्यान करते हैं)] तैसे "असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च
प्रतिबुद्धो न पश्यति" ६ स्वप्नविषे असत्को देखके जाग्रत्को प्राप्त
हुआ देखता नहीं ६ अर्थात् 'जैसे जाग्रत्के असत् पदार्थों में त-
न्मय हुआ स्वप्नविषे तिनको देखताहै, तैसे स्वप्नविषे भी असत्
अविद्यमान, वस्तुको देखके जाग्रत् को प्राप्तहुआ पुरुष कल्पना
न करताहुआ देखता नहीं, अरु तैसे कदाचित् जाग्रत् विषे भी
देखके स्वप्नविषे नहीं देखताहै, यहअर्थ श्लोकके चकारसे बोधित
है । ताते विशेषकरके स्वप्नको जाग्रत्की वासनाके आधीनहोने
से, जाग्रत्को स्वप्नका हेतुहै इसप्रकार कहते हैं, परन्तु सो जा-
ग्रत् । परमार्थसे सत्यहै ऐसेकरके कहते नहीं ३६ । १६६ ॥

४०।१६७ ॥ हे सौम्य ! [व्यवहार दृष्टिसे जाग्रत् अरु स्वप्नका
कार्य कारणपना कहा, अरु वास्तवदृष्टिसे तो कहीं भी कार्य का-

रणपनाहै नहीं । इसप्रकार कहतेहुये वस्तुके अज्ञानसे अवस्तुही कार्य होता है, ऐसे कहनेवालेके मतका निषेध करते हैं,] परमार्थसे तो किसीका भी किसीभी प्रकारसे कार्य कारणभाव संभवता नहीं । प्रश्न । कार्य कारणभाव कैसे नहीं संभवे है, । उत्तर । तहां प्रथम, जो वस्तुके अज्ञानसेही अवस्तुरूप कार्य होता है, ऐसे माननेवाले पुरुषोंप्रति कहते हैं, “ नास्त्यसद्धेतुकमसत् सद्धेतुकन्तथा ” [असत् हेतुवालेको असत् कहते हैं सो है नहीं, सत् असत् हेतुवाला है नहीं-] अर्थात् असत् जो शशशृंगादिक सो जिस असत्काही कारण है ऐसे जे आकाशके पुष्पादिक तिनको असत् हेतुवाला असत् कहते हैं सो है- नहीं । अरु शून्यवादी तो । “ असत्तः सज्जायते ” इस विकल्पकी श्रुति प्रमाण से । शून्यसेही सत् रूप कार्य होता है इसप्रकार मानते हैं, अब तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत्, विद्यमान, घटादिरूप वस्तु भी असत् हेतुवाला । अर्थात् शश शृंगादिकोंका कार्य । होता नहीं । अर्थात् अभाव (असत्) रूप जे शशाके शृंग (सींग) तिसका कार्य भावरूप, सत्य, धनुष किसीने भी कहीं भी किसी कालविषे भी देखा नहीं, ताते अभावरूप शून्य कारणसे भावरूप सत्य कार्यकी उत्पत्ति कहनी माननी असत् ही है ॥ अब कारण अरु कार्य दोनों के सद्भाव के माननेवाले जे सांख्यादि वादी तिनके प्रति कहते हैं “ सच्च सद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकममत्कुतः ” [सत्, सत् हेतुवाला नहीं, तब सत् रूप हेतुवाला असत् कैसे होगा, कदापि होता नहीं,] अर्थात् । सांख्यवादी कारण-प्रधान अरु तिसका कार्य सूक्ष्म-स्थूल प्रपंच, इन दोनोंविषे सद्भाव मानते हैं कि सत् कारण से सत् कार्य होता है । तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत् विद्यमान घटादिक सत् हेतुवाला । अर्थात् अन्य सत् वस्तुका कार्य नहीं । [अर्थात् सत् उसको कहते हैं जो उत्पत्त्यादि रहित कालत्रयअवाच्य- सदा एकरसरहै- सो सत्, अरु प्रधान कार्यरूप से उत्पन्न होनेवाला ताते सत् नहीं, अरु कार्य अपनी उत्पत्तिसे पूर्व

अरु लयके पड़चात् अभावरूप होनेसे उत्पत्ति अभाववाला हुआ कदापि सत् होनेके योग्य नहीं, ताते कार्य, कारण उभय विसत् भावनाके करनेवालेका मत सत् नहीं । अच-कोई-एकवादी इस मिथ्या प्रपंचरूप सृष्टिका सत् रूप ब्रह्मकारण है । अर्थात् सत् रूप ब्रह्मसे यह मिथ्यासृष्टि उत्पन्न होती है, इस प्रकार वर्णन करते हैं, तिनके प्रतिनिपेध करते हैं कि, तैसे सत् रूप हेतुवाला (सत् का कार्य) कैसे संभवेगा किन्तु कदापि नहीं । अर्थात् जो सत् होता है सो कार्य भावको प्राप्त होता नहीं क्योंकि एकरस सत् रूप है ताते, अरु सत् से असत् कार्य, अर्थात् सत् का कार्य असत् होता नहीं क्योंकि कारण सद्वृत्त है, अरु कार्यरूप प्रपंच असत् है, ताते सो सत् का कार्य होने के योग्य नहीं, ताते सत् रूप ब्रह्म अरु असत् प्रपंच इनका कार्य कारण भाव युक्त नहीं । अरु जो कहो कि “सदेवसौम्यदमग्र आसीत्” इत्यादि श्रुतियोंने इस सृष्टिका कारण सत् कहा है, तो तिन श्रुतियों का तात्पर्य कार्यका कारण भाव कहने का नहीं किन्तु एक अद्वैत आत्मतत्त्व के प्रकाशनार्थ है, क्योंकि “वाचारम्भण विकारो नामधेयं” इत्यादि श्रुतियोंने कार्यको वाचारम्भण (कहने) मात्र ही कहा है पृथक् सत्तावाला नहीं, ताते “मृत्तिकेत्येव सत्यं” । एकमृत्तिकी ही सत्य है, इस दृष्टान्तसे एकसर्वाधिष्ठान सत् आत्मा ही सत् है, ऐसे कहके “एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि” । इस उपदेश से कार्यकारण भाव भेद रहित एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रकाशित किया है ॥ ताते सत् रूप ब्रह्मका असत् रूप सृष्टिकार्य है यह कथन अयुक्त है ॥ अरु अन्य प्रकारका कार्यकारण भाव सम्भवे नहीं, वा कल्पना करनेको शक्य नहीं, एतदर्थ त्रिवे की पुरुषोंको किसी भी वस्तुका कार्यकारण भाव सिद्ध नहीं ॥ इत्यभिप्रायः ॥ ४० । १६७ ॥

४१ । १६८ ॥ हे सौम्य ! पुनः भी असत् रूप जाग्रत् अरु स्वप्नके पदार्थों से कार्य कारण भावकी शङ्काको अन्य हेतुसे दूर करते हुये

विपर्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् ।
तथा स्वप्ने विपर्यासाद्धर्मास्तत्रैव पश्यति ४१ । १६८ ॥

‘उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम् । जाति
स्तु देशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा ४२ । १६९ ॥’

कहते हैं “विपर्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत्”
‘जैसे जाग्रदविवेके विपर्याससे अचिन्त्य परमार्थवत् स्पर्शकरता
है’; अर्थात् जैसे कोई पुरुष जाग्रदविवेके विपर्यास कहिये अविवेक
से अचिन्त्य कहिये चिन्तन करनेको अशक्य, रज्जु सर्पादिक
पदार्थोंको परमार्थवत् स्पर्श करता है । अर्थात् स्पर्श करतेहुयेवत्
विकल्प करता है “तथा स्वप्ने विपर्यासाद्धर्मास्तत्रैव पश्यति”
‘तैसे स्वप्नाविवेके विपर्याससे धर्मोंको तहाँहीं देखता है’; अर्थात् जैसे
जाग्रदविवेके तैसे स्वप्नाविवेके विपर्यास (अविवेक) से हस्ति अश्व आदि
पदार्थोंको तहाँहीं (अपने अन्तरजहाँ स्वप्नके पदार्थयोग्यस्थान
का अभाव है) देखता है, । अर्थात् देगेहुयेवत् कल्पना करता है,
परन्तु जाग्रत् से उत्पन्न होनेवालेको देखतानहीं ४१ । १६८ ॥

४२ । १६९ ॥ हे सौम्य ! [वास्तव दृष्टिसे कार्यकारण भावके अ-
प्रसिद्धहुये “जन्माद्यस्य यतः”, इस जाग्रत्के जन्मादिक जिस
से होते हैं, इत्यादि वेदान्त शास्त्र व्याससूत्रोंकरके ब्रह्मको जगत्
का कारण कैसे सूचित किया है, । यह शङ्का करके कहते हैं] “उपल-
म्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम्, जातिस्तु देशिताबुद्धैर-
जातेस्त्रसतां सदा” ‘उत्पत्ति उपालम्भसे अरु सम्यक् आचरण
से, ऐसे कहनेके स्वभाववाले अरु अनुत्पत्ति से सदा भयके पात्र-
नेवाले के अर्थ उपदेश किया है’; अर्थात् व्यासादिक अद्वैतवादी
पण्डितोंने जो जगदुत्पत्ति कही है (उपदेश किया है) सो तो उपा-
लम्भ, द्वैतकी प्रतीति, से । अरु उर्णाश्रमादिक धर्मोंके सम्यक् आच-
रणसे । इन दोनों हेतुओं से “वस्तुभावमस्ति”, द्वैतका वस्तुभाव
है, इसप्रकार कहनेके स्वभाववाले वस्तुवादी, राम जगत् की

अनुत्पत्तिसे सदाभयके पावनेवाले दृढ़ आग्रही कर्मादिकोंविषे श्रद्धावान् मन्दविवेकियोंके अर्थ [कार्यकारण भावको अंगीकारकरके जन्मके उपदेश करनेवाले अद्वैतवादियों का उपदेश मन्द विवेकियों विषे विवेकी दृढ़ता का उपाय होने करके कैसे होवेगा, यह शङ्का करके तब कहते हैं] वो । कर्मवादी मन्द विवेकी । तिस उत्पत्तिको प्रथम ग्रहण करो, परन्तु पश्चात् वेदान्तके अभ्यासियों को अजन्मा अद्वय आत्मा को विषय करनेवाला विवेक स्वतः ही होवेगा " वेदान्ताभ्यासिनान्तु स्वयमेवाजाद्वयात्मविषयो विवेको भविष्यतीति " इस प्रकार दृढ़विवेक का उपाय होनेकरके, उपदेश करते हैं, परन्तु परमार्थ बुद्धि से नहीं । अरु जिसकरके वे । कर्मवादी । अविवेकी पण्डित स्थूल, बहिर्मुख, बुद्धिवाले होने से, अनुत्पन्नहुये वस्तुसे अपने विनाशको मानतेहुये सदा भयकोही पावने हैं, एतदर्थ तिनके लिये सूत्रकारादिक पण्डितों की प्रवृत्ति उचित है । यह अर्थ है । अर्थात् कर्मवादी आदिके बहिर्मुखवृत्तिवाले मन्द विवेकी हैं तिनको आत्मसत्ता से पृथक् सत्तावाला जगत् भासता है, तिसकी निवृत्तिके अर्थ उनपर उपकार करतेहुये सूत्रकार व्यासादि वेदान्ती पण्डितों ने ब्रह्म से जगदुत्पत्ति कही है तिसकरके वो स्वतः ही समझेंगे कि कारणसे कार्य की पृथक् सत्ता होती नहीं अरु यह सर्वजगत् ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ है ताते इसकी पृथक् सत्ताके अभाव से यह ब्रह्मरूपही है, इस प्रकार एक अद्वैत ब्रह्मज्ञान होनेके अर्थ सूत्रकार ने ब्रह्म से सृष्टि का जन्म (उत्पत्ति) कही है, परमार्थ दृष्टि से नहीं । अरु यह ही अर्थ " उपायः सोवतारोय नास्ति भेदः कथञ्चन " इस तृतीय प्रकरणके १५ वें श्लोक विषे कहा है । सोसृष्टिका प्रकारा अद्वैत विषे बुद्धिकी उत्पत्ति के अर्थ है । ४२ । १६६ ॥

४३ । १७० ॥ हे सौम्य ! [" उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवतीति "] जो थोड़ा भी अन्तर (भेद) करता है पश्चात् तिसको भय होता है । इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म विषे विकार के

अजातेष्वसतान्तेषामुपलम्भाद्वियन्ति ये । जातिदोषा
न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पो भविष्यति ४३।१७०॥

देखने वाले को भयका होना सुनते हैं-। अरु तैसे हुये श्रुति के
अर्थ के जाननेवाले पण्डितों को भी भेदज्ञानसे अनुग्रहकी योग्य-
ता न होगी । यह शङ्का करके तब कहते हैं] “अजातेष्वसतान्ते-
षामुपलम्भाद्वियन्ति ये, १” अनुत्पत्तिसे भयको पावते हुये उपलम्भ
(आत्मा) से विरुद्ध जाते हैं, २ अर्थात् जो ऐसे उपलम्भ (प्र-
तीति) से अरु सम्यक् आचरणसे अनुत्पत्ति । अर्थात् अनुत्पन्न
हुई वस्तुसे । भयको पावते हुये द्वैत वस्तु है, इसप्रकार अद्वैत
आत्मासे विरुद्ध जाते हैं । अर्थात् द्वैत को प्राप्त होते हैं । तिन अनु-
त्पत्ति से भयको प्राप्त होनेवाले श्रद्धा सम्पन्न सन्मार्ग को आश्रय
करनेवालेको “जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पो भविष्यति”
“जाति के किये दोष होते नहीं, यद्यपि कोई दोष अल्पही होवेगा,
अर्थात् जाति कहिये प्रतीति के किये दोष होते नहीं । अर्थात् सिद्धि
को पावते नहीं, क्योंकि सन्मार्ग कहिये विवेकमार्ग तिसविषे प्रवृत्त
होते हैं ताते । अरु यद्यपि (जो कदापि) कोई एक दोष होता है, सो भी
सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्त का क्रियागर्भवासादिरूप अल्प
ही दोष होवेगा यह अर्थ है ॥ अर्थात् यहां जो कहा है कि जो कदापि
कोई एक दोष होता है सो भी सम्यक् ज्ञानकी अप्राप्तिरूप निमित्त
का क्रिया गर्भवासादि अल्प दोष होवेगा, सो गर्भवासको अल्प
दोष कहा सो आक्षेप प्रतीति होता है, क्योंकि गर्भवासरूप दोष
सर्व दोषोंका मूल है, ताते उक्त कथनका यह अभिप्राय प्रतीत
होता है कि सम्यक् ज्ञानसे रहित पुरुष को गर्भवास-उपलक्षण
करके सर्व दोष (अनर्थ) प्राप्त होता है ४३।१७० ॥

४४।१७१ ॥ हे सौम्य ! शंका । ननु, द्वैत की प्रतीति अरु
वर्णाश्रमके धर्मके आचारको प्रमाणरूप होनेसे, द्वैतवस्तु वास्तव
ही है, सो कसन बने नहीं, क्योंकि प्रतीति कहिये अनुभव अरु आ-

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च । अजा-
चलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम् ४५ । १७२ ॥

चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च । [जात्याभास है चलाभास है
अरु वस्तुआभास है तैसेही] अर्थात् जैसे देवदत्त । अर्थात् कोई
एक मनुष्य । उत्पन्न होता है । अर्थात् देवदत्त इस नामसे जो
शरीर तिस शरीरान्तर जो शरीरी जीव सो, देवदत्त नामका ल-
व्य है सो जीव अनादि होने से उत्पन्न होतानहीं परन्तु शरीरकी
उत्पत्ति से तिस शरीरी का उत्पन्न होना है, सो आभासमात्र है, प-
रन्तु कहते हैं, जैसे देवदत्त उत्पन्न होता है । तैसे विज्ञान (विज्ञान
घन, विज्ञप्ति) सो उत्पत्त्यादिकों से रहित हुआ भी । स्वमाया
करके । उत्पन्नहुयेवत् भासता है, एतदर्थ वो जात्याभास है । अरु
जैसे सोई देवदत्त चलता है, । अर्थात् वास्तव करके देवदत्तना-
मक देही (जीवात्मा) अचल है, परन्तु शरीरके सम्बन्ध से घ-
टाकाशवत् चलता भासता है सो उसमें आभासमात्र है तथापि
तिसकों देख के कहते हैं कि, देवदत्त चलता है । तैसे सो । विज्ञान
आप अचलहुआ स्वमायाकरके । चलता भासता है, अतएव सो
चलाभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त गौर है दीर्घ है पीन (मोटा)
है, इसप्रकार भासता है तैसे सो विज्ञान (विज्ञप्ति चैतन्य) द्रव्य
रूप धर्मीयत् भासता है । परन्तु “ अस्थूलमन एवमदीर्घ ” इत्या-
दि प्रमाणसे द्रव्यके धर्मों से रहित अद्रव्य है । अरु “ रूपं रूपं प्र-
तिरूपो घटिश्च ” द्रव्यों के साथ मिलने से द्रव्य धर्मवान् भास-
ता है । एतदर्थ वो वस्त्वाभास है । ताते, देवदत्त जन्मता है, चलता
है, वस्तु है, दीर्घ है, गौर है तैसेही यह विज्ञान भासना है । परन्तु
“ अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम् ” अजन्मा है, अचल है,
अवस्तुभाव है, विज्ञानघन है, शान्त है, अद्वय है, अर्थात् जो
। विज्ञप्ति शरीरादि धनहुई उपाधि साथ मिलने से, उपजेवत्
चलतेवत् वस्तुवत् भासना है, सो वास्तव करके अजन्मा है

अजुवक्रादिकाभासं मलांतरस्पन्दितं यथा । ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा ४७ । १७४ ॥

४७ । १७४ ॥ हे सौम्य ! अजन्मा अचल अरु जात्याभास है । इसप्रकार पूर्व ४५ वें श्लोक विषे, कथनकिये परमार्थरूप ज्ञानको दृष्टान्तसं वर्णन करतेहुये कहते हैं, “अजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितं यथा” । जैसे सरल अरु वक्रादिक आभास अलातका चलना है, अर्थात् जैसे लोकविषे सरल अरु वक्र (अर्थात् सीधा अरु टेढ़ा) आदिक प्रकार, वां आकारवाला जो आभास कहिये प्रकाश है, सो अलात कहिये वनेठी वा अर्द्धदग्ध काष्ठ रूपउल्हा, तिसका चलना है (अर्थात् वनेठी वा अर्द्धदग्धकाष्ठके मुखपर जो एक अग्निविन्दु है) तिस अग्नि विन्दुवा जो वक्रादिरूपसे सीधा टेढ़ा आदिक भासना है सो उस वनेठी वा अर्द्धदग्ध काष्ठके चलने वा भ्रमणसे है, उस अग्नि विन्दुके स्वरूपसे ही नहीं । “ग्रहण ग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा” । जैसे ग्रहण अरु ग्राहकका आभास विज्ञानका चलना है (अर्थात्) जैसे अलातगत अग्निविन्दुका जो सीधा टेढ़ा भासना है सो उस अलातके भ्रमणादिकों से है, तेसेही ग्रहण अरु ग्राहकका जो [अपने स्वरूपको न त्यागकरनेवाले अधिष्ठानका जो नाना आकारसे अवभास प्रतीति अरु तिसका विषय है निवर्त्त कहते हैं । यहां विज्ञानका जो स्फुरण, जो आकारसे नां हे सो निवर्त्त रूप है] विचारके अचल विज्ञानको चलनानहीं, तिसकरकेही विज्ञानको अजन्मा अचल है, प्रकार पूर्व कहा है ४७ । १७४ ॥

४८ । १७५ ॥ हे सौम्य ! अब विज्ञानशान्त है, इसप्रकार पूर्व ४५ श्लोकविषे वर्णन किया है तिसको अब दृष्टान्त करके ४५ “अस्पन्दमानमलानमनाभानमजं यथा” । जैसे चलनेसे

अस्पन्दमानमलातमनाभासमजंयथा । अस्पन्दमा
नंविज्ञानमनाभासमजं तथा ४८ । १७५ ॥

अलातेस्पन्दमानेवै नानामा अन्यतो भुवः । नततो
ऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशान्तिते ४९ । १७६ ॥

अलाति अनाभासं अरु अजन्माहै? अर्थात् निस्पन्दमान अलात
। अर्थात् भ्रमणे से रहित बनेटी । सरलादिक आकार से जन्म
रहित हुआ अनाभास अरु अजन्मा है । अर्थात् अलातके वा
काष्ठके मुखपर लगा जो अग्निबिन्दु सो अलातके भ्रमणसे भ्रमण
रूपसे उत्पन्न होय भ्रमतेवत् भासताहै अरु उन अलातके स्थित
हुये वो अग्निबिन्दु जैसा उत्पत्ति अरु भ्रमणसे रहितहै तैसाही
अनाभास अरु अजन्मा होताहै, अर्थात् वो अलातपरका अग्नि
बिन्दु जैसे अलातके भ्रमण से पूर्वहै तैसाही अलातके भ्रमण के
शान्तहुये है, अरु मध्यविषे जो भ्रमणरूप से उत्पन्नहुये अरु भ्रम-
तेवत् भासताहै सो अलातके भ्रमणरूप उपाधि करके भासताहै,
परन्तु तिस अलात के भ्रमणकाल में भी वो अग्निबिन्दु अपने
स्वरूपसे अलातके भ्रमणादिकों करके रहित सदा एकरस हैं ।

“ अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा ” ६ तैसे निस्पन्दहुआ
विज्ञान अनाभास अरु अजन्माहै? अर्थात् जैसे अलातका अग्नि-
बिन्दु जैसा अज, अचल है, तैसा अलातके स्थिर हुये भासता है
तैसाही अविद्या करके चलायमान अरु अविद्याकी निवृत्तिके हुये
चलनेसे रहित अर्थात् उत्पत्त्यादि आकारसे अभासमाना हुआ
जो विज्ञान सो अनाभास कहिये अचल अरु अजन्माही है । वा
विज्ञान कहिये बुद्धि तद्विशिष्ट जो विज्ञान (चेतन्य) सो बुद्धिरूप
उपाधिके साथ मिलनेसे बुद्धिके जन्मादि वा कर्तृत्व भोक्तृत्वादि
धर्मवान् भासताहै परन्तु स्वरूपसे तैसानहीं इत्यर्थः ४८ । १७५ ॥

४८ । १७६ ॥ हे सौम्य! [अलातके दृष्टान्तविषे सरले वक्रादिक
आकारोंका असत्पना कैसेहै, इस शङ्काके हुये निरूपण के असहन

करने से तिनका असत्पना है, इस प्रकार समाधान कहते हैं, यहाँ यह अर्थ है कि अलात वा अर्द्धदग्धकाष्ठ जब भ्रमता है तब तिस विषे अन्य देशान्तर से उसमें आयके प्रकाश होता है, इस प्रकार कथन करने को शक्य नहीं क्योंकि सरल अरु वक्रादिक प्रकाशों के देशान्तर से आगमन की अप्रतीति है ताते, अरु जब सोई अलात स्थित वा स्थिर होता है तब तिससे अन्य ठिकाने प्रकाश होता है यह भी कहने को शक्य नहीं क्योंकि तहाँ भी तिमकी अप्रतीति भी तुल्यता है ताते । अर्थात् जैसे अलात के अग्निबिंदु के जे सरल वक्रादि रूप प्रकाश है तिनका अलात के भ्रमणकाल में देशान्तर से आयके अलात में प्रवेश की अप्रतीति है, तेसे ही अलात के भ्रमण रहित स्थिर हुये उन प्रकाशों भी देशान्तर जाने की भी अप्रतीति है ताते अलात बिन्दु के सरल वक्रादिक प्रकाशों की देशान्तर से आगमन भी अप्रतीति तुल्य ही है । अरु वे आभास, प्रकाश, इस ही अलात विषे लीन भी होते नहीं, क्योंकि उस अलात को उन आभासों के उपादानपने का अभाव है ताते । अरु जब भ्रमण का निमित्त अलात उपादान होवे, तब तिसको प्रतीतिमात्र निमित्त होने से तिस निमित्त करके हुये जे प्रकाश तिन के अभाव के अदर्शन से सरल अरु वक्रादिक जे आकार हैं, सो भ्रमण के अभाव के हुये भी अलात विषे होवेंगे । परन्तु ऐसा है नहीं, एतदर्थ सो अलात सरल वक्रादि प्रकाशों का उपादान नहीं, ताते किन्ही प्रकार से भी निरूपण के असहने से तिनका असत्पना है । अलाने स्पन्दमाने ने नाभासा अन्यतोभुय । अलात के स्पन्दमान हुये आभास अन्य ते होनेवाले नहीं, अर्थात् किंवा तिम ही अलान के चलते हुये सीधे अरु वक्रादिक आभास (प्रकाश) अलात से अन्य किन्ही भी देश से आयके अलात विषे होने नहीं, एतदर्थ सो प्रकाश अन्य से होनेवाले नहीं । अरु नततोऽन्यत्र निस्पन्दान्नालान्प्रविशन्ति । अचल हुये तिम से अन्य ठिकाने निकसते नहीं, ओ अलात के ताई प्रवेश करते नहीं, अर्थात् अलान के बचल हुये सो सीधे टेढ़े

न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः । विज्ञानेऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः ५०।१७७ ॥

प्रकाश अलात से निकल अन्य ठिकाने (देशान्तर) को जाते नहीं, अरु वे प्रकाश अचल हुये अलात विषे प्रवेशकरते नहीं । अर्थात् अलात-विषे लगा जो अग्निविन्दु निसके भ्रमण से भासते जे सीधे टेढ़े प्रकाश सो किसी देशान्तर से आयके भासते नही अरु उस अग्निविन्दु के स्थिरहुये देशान्तरको जातेनहीं अलातही में लयभी होते नहीं ' क्योंकि अलात से निकसे नहीं, ताते, अभिप्राय यह है कि अलातके जे सीधे टेढ़े आदिक प्रकाश हैं सो न तो उस अग्निविन्दु से निकसे है न देशान्तरसे आये हैं, अरु अग्निविन्दुके स्थिरहुये न तो देशान्तर को जातेहैं न उसही में लयहोते हैं । किन्तु उस काष्ठके भ्रमणसे वह अग्निविन्दु आपही सीधा टेढ़ाहो भासताहै सोभी उपाधि के सम्बन्धसेहै स्वरूप से नहीं ४६ । १७६ ॥

५० । १७७ ॥ हे सौम्य, किंवा "न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः" । अलातसे निकसेहुये नहीं द्रव्यभाज के अभावके योग से; अर्थात् वे आभास कहिये सीधे टेढ़े प्रकाश ग्रह से निकसे हुयेवत् अलात । अग्निविन्दु । से निकसे हुये नहीं, क्योंकि उनको द्रव्यभाव के अभाव का योग है । अर्थात् उनको वस्तुपने का अभावहै । ताते । जिस करके वस्तुका प्रवेशादिक सम्भवे है अवस्तुका नहीं, ताते तिन आभासों को वस्तुपने के अभाव से अवस्तुरूपहुये । तिनके, निकसनेका अरु प्रवेशहोनेका असम्भवहै ताते । अरु "विज्ञानेऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः" । तैसेही विज्ञानविषे भी आभाससे अविशेष (तुल्य) होनेसे; अर्थात् अलातके अग्निविन्दुवत्, विज्ञान (विज्ञप्तिमात्र चैनन्य) विषे भी उत्पत्त्यादिकों के आभास होनेहैं, तिनकी अलातके आभासों से अविशेषता है । अर्थात् अग्निविन्दु के सीधे टेढ़े प्रकाश-

विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः । न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्ति ते ५१ । १७८ ॥
 कारों विषे अरु विज्ञान (चैतन्य) के जन्मादिक आकारों विषे आभासमात्रता की तुल्यता है ५० । १७७ ॥

५१ । १७८ ॥ हे सौम्य, । प्र० । तिस । अलात के सीधे टेढ़े प्रकाशरूप आभारा की अरु विज्ञान के जन्मादिक आभासों की । विषे आभासों की एकता कैसे है, । तहां उत्तर कहते हैं "विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः" । ६ विज्ञान के स्पन्दहुये अन्य से भी आभास होने को योग्य नहीं ; अर्थात् विज्ञान । कहिये विज्ञानमात्र चैतन्य आत्मा, जो कि अपने स्वरूपकरके अचल है । तिसके जिस किस प्रकार से । अर्थात् मायादिक उपाधिसे । भी चलतेहुये तिस विज्ञान से अन्य । प्रधानादिक । अन्य किसी कहीं से भी आयके आभास । जन्मादिक । तिस 'विज्ञान' विषे होनेको योग्य नहीं, क्योंकि तिसकी प्रतीति का अभाव है ताते । अरु "न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्ति ते" । ६ निस्पन्द हुये तिराके अन्य ठिकाने होने को योग्य नहीं, अरु वे विज्ञानविषे प्रवेश करते नहीं ; अर्थात् । जो किसी भी प्रकार से चलनको प्राप्तहुये विज्ञानके । चलनेसे रहित अचल स्थिरहुये तिस विज्ञान से इतर ठिकाने वे आभास होनेके योग्य नहीं, क्योंकि प्रतीति रूप आभास को सर्वत्र तबही विज्ञानकी अचलपने करके विषे तुल्यता है ताते । अरु सो आभारा तिमही विज्ञानविषे प्रवेश करते नहीं क्योंकि तिस केवल शुद्ध विज्ञानको तिस आभास के उपादान पने की अप्रतीति है ताते ॥ अर्थात् ज्ञानमात्र चैतन्य विज्ञान से जन्मादि आभास उपजते नहीं तिसही से विज्ञानविषे प्रवेशको पावते नहीं एतदर्थ वे जन्मादि आभास तिस विज्ञानविषे मायाकृत् भ्रान्तिनात्रही हैं, वास्तव से नहीं ५१ । १७८ ॥
 ५२ । १७९ ॥ हे सौम्य, । निर्निर्गता विज्ञानात्तेद्रव्यताभा

न निर्गताविज्ञानात्तेद्रव्यत्वाभावयोगतः कार्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याः सदैव ते ५२ ॥ १७९ ॥

गतः । सो विज्ञानिसे निकसते नहीं द्रव्यत्वके अभावकरके युक्त होने से ? अर्थात् जैसे वे जन्मादि आभास विज्ञान कहिये चेतन्यविषे प्रवेश करते नहीं, तैसेही वे आभास विज्ञानिसे निकसते भी नहीं, क्योंकि वह द्रव्यभाव कहिये वस्तुभाव के अभाव करके युक्त हैं ताते ॥ इसका यह तात्पर्य है विज्ञानका अन्यसर्व अलातके तुल्य है, परन्तु विज्ञानका जो सदा अचलपना है सो अलातसे विशेष है । अर्थात् विज्ञान विषे जो जन्मादिक आभास हैं सो कुछरस्तु न होयके केवल आभास । (भ्रान्ति) मात्रही है ताते वास्तव करके न तो विज्ञानसे निकसते हैं न विज्ञानमे प्रवेशको प्राप्त होते हैं । अरु अलात के आभासोंका (प्रकाशोंका) जो अलात से निकसना अरु अलातमें प्रवेशका पात्रना भासता है सो अलातके भ्रमणे करके भासता है, अरु विज्ञान है सो अलातवत् चल न होयके अचल है यह उसमें अलातसे विशेषता होनेसे उसविषे जन्मादिक आभासके होनेके हेतुको अभाव है । प्रश्न । तब अचल विज्ञान, ज्ञप्तिमात्र, विषे जन्मादिको के आभास किसके किये है । तहाँ उत्तर कहते हैं, " कार्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याः सदैव ते " । जाते वे कार्य कारण भावके अभावसे सदैव अचिन्त्य हैं ? अर्थात् जिसकरके वे जन्मादि आभासतिन आभासोंके अरु विज्ञप्तिमात्रविज्ञानके कार्यकारण भावका अभाव होनेसे । अर्थात् जन्य जनक भावके असंभवकरके सो आभास अभावरूप है ताते सो सदा अचिन्त्य कहिये अनिर्वचनीय है ॥ । अथवा आभासोंको अरु विज्ञानको कार्यकारण भावका अभाव है, अर्थान् आभासोंको भ्रान्तिमात्र होनेसे नतो कोई उनका कारण है न वह किसी का कार्य है, अरु विज्ञान को अजन्मा होनेसे न वह किसीका कारण है न किसीका कार्य है, अतएव आभास अरु विज्ञानके कार्य कारण

द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्यदन्वयस्य चैव हि । द्रव्यत्व
मन्यभावो वाधर्माणां नोपपद्यते ५३ । १८० ॥

भावका अभाव है, परन्तु वे आभास केवल, भ्रान्ति मात्र अव्यस्त होनेसे सत् नहीं किन्तु असत् हैं अरु विज्ञान उन आभासों का अधिष्ठान (आश्रय) होनेसे असत् न होकर सत् रूप है क्योंकि आश्रयविना भ्रान्ति होती, नहीं, अरु ज्ञानकाल विषे भ्रान्तिके अभावहुये सत् रूप अधिष्ठान पावता है, अरु जैसे मरुस्थलका जल अनहुआभी अपने अधिष्ठान मरुस्थलको सत् रूप होनेसे सदैव भासता है ताते अत्यन्त असत् भी नहीं, अरु जो गुरु जलजानके प्रवर्त होता है तिसको जलकी प्राप्ति होती नहीं ताते सो सत् भी नहीं किन्तु अनिर्वचनीय है, तैसेही अनहुये जन्मादि आभास अपने अधिष्ठान नित्य सत् विज्ञान विषे संदाही, अनिर्वचनीय है । एतदर्थ सो मिथ्याही होते हैं ॥ जैसे अलात विन्दुमात्र विषे मिथ्या जो सरलादिक अलातके आभास तिनविषे । विनाविचारित । सरलादि आभास बुद्धि होती है, तैसेही विज्ञान (निज्ञप्ति) सापविषे मिथ्या जो जन्मादिक तिन विषे । विनाविचारितही । जन्मादिक बुद्धि है सो मिथ्या है । ताते सो सर्वथा त्याग करने योग्यही है । यह समुदायका तात्पर्यार्थ है ५२ । १७६ ॥

५३ । १८० ॥ हे सौम्य ! “कार्यकारणताभावात्” “कार्य अरु कारण भावके अभावसे” इसप्रकार जो ५२ वें श्लोकविषे कहा, तिसको प्रतिपादन करनेका अब आरंभ करते हैं । यहाँ यह अर्थ है कि, अवयवरूप जो द्रव्य है सो अवयवीरूप द्रव्यका उपादान है । अरु अवयवके जो गुण हैं सो अपने समान जातिवाले अवयवके गुणोंविषे असमवायी कारण देखे हैं । इसप्रकार आत्मा को द्रव्यपना है नहीं कि जिसकरके उसको उपादानपना होवे । अरु तिसरूपवाले गुणों का कहीं भी असमवायी कारणपना है नहीं क्योंकि तिस आत्मा विषे भेदरूप गुण गुणी भावके कथन का

एवं न चित्तजा धर्माश्चित्तं वाऽपि न धर्मजम् ।
एवं हेतुफलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः ५४ । १८१ ॥

असंभव है ताते ।] इस प्रकार, “अजमेकमात्मतत्त्वमिति” अज, कहिये अवयव अवयवी भाव रहित, अरु एक कहिये गुण गुणी भाव रहित, आत्मतत्त्व है ? इस प्रकार सिद्ध हुआ । तिस आत्मतत्त्वविषे, जिन वादियों करके जन्मादिकों के आभास अरु विज्ञान का कार्यकारण भाव कल्पित है, तिनके मतविषे “द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्यदन्यस्य चैव हि” ६ द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्य का हेतु (कारण) होता है ; अर्थात् जिन वादियों के मत विषे जन्मादि आभासों का अरु विज्ञान का कार्य कारण भाव कल्पित है, तिनके मतविषे द्रव्य द्रव्यका अरु अन्य अन्य का कारण होता है, परन्तु तिस ही का । अर्थात् अपना कारण आप ही सो होता नहीं । अरु जिस करके लोकविषे जो अद्रव्य कहिये रूपादि गुण है, सो स्वतन्त्र किसी का भी कारण देखा नहीं । अरु “द्रव्यत्वं सन्यभात्रो वा धर्म्माणां नोपपद्यते” ६ धर्म का द्रव्यभाव वा अन्य भाव उपपद्य नहीं ; अर्थात् जिस करके आत्मा को अन्य का कारणपना वा कार्यपना प्राप्त होवे, ऐसा आत्मरूप धर्मों का द्रव्य भाव वा किसी से भी अन्य भाव बनता नहीं । अर्थात् द्रव्यभाव करके रहित निराकार निर्विशेष आत्मा का द्रव्यभाव न होनेसे वो किसी का भी कारण नहीं अरु एक अद्वैत होने से उसका किसी से अन्यभाव भी नहीं । एतदर्थ अद्रव्यरूप होनेसे अरु सर्वसे अभिन्न अनन्य होने से आत्मा न किसी का कार्य है न किसी का कारण है, यह अर्थ है ५३ । १८० ॥

५४ । १८१ ॥ हे सौम्य ! [रचने को इच्छित जो घटतिस घटके ज्ञान के अनन्तर घट उत्पन्न होता है, अरु उपजा हुआ, ईदं घट, इस प्रकार विषय रूप होनेसे अपने ज्ञान का उत्पादक है, इस प्रकार का व्यवहार भी संभवता नहीं, क्योंकि किसी भी वस्तु को

यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलाद्भवः । क्षीणेहेतु फ-
लावेशे नास्तिहेतुफलोद्भवः ५५ । १८२ ॥

विद्वान्की दृष्टानुसार भिन्नरूपता नहीं इसप्रकार कहते हैं ।
“ एवं न चित्तजा धर्माश्चित्तं वा ऽपि न धर्मजम् ” [इसप्रकार
धर्म , चित्त से जन्यनहीं , वा चित्त भी , बाह्य , धर्मसे जन्य
नहीं ; अर्थात् ऐसे उक्तप्रकार के हेतुओं करके आत्मरूप विज्ञान
स्वरूपही चित्त कहिये चैतन्य ब्रह्म है , एतदर्थ घटादि रूप बाह्य
धर्म चित्तजो चैतन्य तिन करके जन्यनहीं । वा चित्तभी बाह्य
धर्म से जन्य नहीं । अरु जीवरूप धर्मोंका परमात्मस्वरूपचित्त
से जन्म युक्तनहीं , क्योंकि सर्वजीवाख्य धर्मोंको विज्ञानस्वरूप
के आभास कहिये प्रतिबिम्ब भाव है ताने । अर्थात् यावत् जीव
हैं सो सर्व विज्ञानरूप चैतन्य के जलगत सूर्य के प्रतिबिम्बप्र-
तिबिम्बरूपहै ताते उनका परमात्मा से जन्म युक्त नहीं , “ एवं
हेतु फलाजार्ति प्रविशन्ति मनीषिणः ” [इसप्रकार बुद्धिमान्
पुरुष हेतु अरु फलकी अनुत्पत्ति को निश्चय करते हैं ; अर्थात्
चैतन्य करके बाह्य घटादिक जन्य नहीं , तैसेही चैतन्य भी बाह्य
घटादिक करके जन्यनहीं , अरु अन्तरसर्वजीव भी चैतन्यसे जन्य
नहीं , प्रतिबिम्बरूपहोने से , ताते अन्तर बाह्यके सर्वधर्म चैतन्य
करके जन्य नहीं केवल भ्रान्तिमात्र हैं । इसप्रकार बुद्धिमान् पुरुष
कहते हैं वा निश्चय करते हैं । तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्मरूप
हुये ब्रह्मवेत्ता हैं सो वह ब्रह्मवेत्ता कहिये यथार्थ वेदवेत्ता हैं सो
आत्माविषे हेतु अरु फलको । अर्थात् प्रारब्ध अरु देह जो पर-
स्पर हेतु अरु फलरूपहैं तिन्होंको । अभावरूपही निश्चयकर के
जानते हैं ५४ । १८१ ॥

५५ । १८२ ॥ हे सौम्य ! [फल जो देहादिक तिनसे हेतु जे
धर्मादिक सो होते नहीं , अरु तैसेही उक्तहेतु से उक्तफलादिकभी
होते नहीं । इसप्रकार वास्तविक दृष्टि से उपदेश किया । अत्रनिम

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः । क्षीणेहेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ५६ । १८३ ॥

विषयक मुमुक्षुओंके आग्रहकी निवृत्ति के अर्थ तिस विषे आग्रहके अभावाभावके हुये तिनकी उत्पत्ति अरु अनुत्पत्ति को देखावेहें] प्रश्न । जो पुनः हेतु अरु फल विषे आग्रहको प्राप्तहुये हैं तिनको क्या फलहोता है । उत्तर । “ यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः ” ५६ यावत् हेतु अरु फलविषे आग्रहहै तावत् हेतु अरु फलका उद्भव होता है ; अर्थात् धर्म अरु अधर्मनामवाले जे हेतु । शरीर-त्पत्तिके कारण । हैं तिनको कर्त्ता मैं हों, धर्मअधर्म मेरे हैं तिन धर्म अधर्मों का फल कालान्तरविषे कोई एक । स्वर्गनरकादि । देश विषे प्राणधारियों के समूह विषे । अर्थात् कोईककयोनिविषे । उत्पन्नहुआ मैं भोगूंगा । इसप्रकारका यावत् हेतु अरु फलविषे । कर्तृत्व भोक्तृत्वका । आग्रह है । अर्थात् तिनविषे तत्पर चित्तवाले पुरुषकरके अपने आपविषे हेतु अरु फलका आरोप करते हैं तावत् धर्म अधर्मरूप हेतुका अरु तिनके फलका उद्भव कहिये, उच्छेदरहित प्रवृत्ति, होती है । तथाच “ धर्मेतरोत्तमपुनः शरीरकं पुनः क्रियाश्चात्र उदीर्यते भवः ” अरु “ क्षीणेहेतु फलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः ” ५६ हेतु अरु फलविषे आग्रहके क्षीण हुये हेतु अरु फलका उद्भव होता नहीं ; अर्थात्, जब पुनः, जैसे मन्त्र अरु ओषधिकरके प्रेतादिक के आवेशके अभावहोनेवत्, उक्तप्रकारके अद्वैत तत्त्वके, श्रवण मनन, दर्शनसे अविद्याकरके उद्भूत जो हेतु अरु फल तिनका आवेश सम्यक् प्रकार दूर होता है, । तब तिन उक्त हेतु अरु फलविषे आग्रहके क्षीण नाश । हुये हेतु अरु फलका पुनः उद्भव होता नहीं । इति सिद्धम् ५५ । १८२ ॥

५६ । १८३ हे सौम्य ! प्रश्न । जो कदापि हेतु अरु फलका उद्भव होवे तो क्या दोष है । उत्तर । कहते हैं । “ यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः ” अर्थात् यावत् सम्यक् ज्ञानकरके हेतु अरु

संघृत्या जायते सर्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै । सद्भावेन
ह्यजं सर्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै ५७ । १८४ ॥

फलका आग्रह । सम्यक्प्रकार अशेष । निवृत्त होता नहीं, किन्तु
अज्ञान । करके होता है तावत् अक्षीणहुआ संसार दीर्घ होता है
अर्थात् यावत् सम्यक् आत्मज्ञान करके उक्त हेतु अरु फल इन
विषयक आग्रह अशेष निवृत्त होतानहीं तावत् अज्ञानकरके हेतु
अरु फलरूप संसार विस्तारको ही पावता है । अरु “क्षीणे हेतु
फलावेशे संसारं न प्रपद्यते” हेतु अरु फलविषयक आग्रहके
क्षीणहुये संसारको पावता नहीं ; अर्थात् पुनः जब । सम्यक्
आत्मज्ञानकरके । उक्तहेतु अरु फल विषयक । समूल अज्ञान
के । आग्रह अशेष क्षीण (नाश) होता है तब कारण के अभाव
हुये संसारको पावतानहीं ॥ इति सिद्धम् ५६ । १८३ ॥

५७ । १८४ ॥ हे सौम्य ! शङ्का । ननु, “अजादात्मनोऽन्य
द्वास्ति” अजन्मा आत्मा से अन्य है नहीं इसप्रकार कूटस्थ
अद्वितीय आत्मतत्त्वको इच्छनेवाले तुम करके हेतु अरु फल,
अरु संसारकी, उत्पत्ति अरु विनाश कैसे कहा है, हे यादी ! अ-
पनी इस शंका का समाधान श्रवण कर “संघृत्या जायते सर्वं
शाश्वतं नास्ति तेन वै” द्वापने से सर्व उपजता है तिसकरके
नित्य नहीं है ; अर्थात् अविद्या के आधीन लौकिक व्यवहाररूप
द्वापने से सर्व उपजता है तिसहेतु करके उत्पन्न हुये अविद्या के
आधीन वस्तुविषे नित्य । नित्यता । है नहीं, एतदर्थ उत्पत्ति
अरु विनाशरूप संसार उपजता है, इसप्रकार कहने हैं । अरु
“सद्भावेन ह्यजं सर्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै” सद्भावसे जन्मरहित
सर्व है तिसकरके उच्छेद है नहीं ; अर्थात् जिस करके परमार्थ
सद्भाव, परमार्थमत्ता, से तो जन्म रहित सर्व आत्माही है
“आत्मवेदं सर्वं” इत्यादि श्रुति । एतदर्थ तिस जन्म के
अभावरूप कारणकरके हेतु अरु फलादिक किसी का भी उच्छेद

धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्त्वतः ॥ जन्म
मायोपमन्तेषां सा च माया न विद्यते ॥ ५८ ॥ १८५ ॥

कहिये विनाश है नहीं ॥ [यहां यह भाव है कि, जैसे सम्मुखवर्ति
रज्जु विषे सर्प के अभावको अनुभवकर्त्ता विवेकी पुरुष सर्प नहीं
यह रज्जु है वृथाही भयको क्यों प्राप्त होता है, इस प्रकार भ्रान्त
पुरुषको कहता है अरु वह भ्रान्त पुरुषा तो अपने अपराध से ही
शुद्ध रज्जु विषों सर्पकी कल्पना कर मयको पावत सन्ते भागता
है । तहां विवेकी को वचन मूढ़ की दृष्टिसे विरोधको पावतानहीं,
तैसे परमार्थरूप कूटस्थ आत्माकी दर्शन व्यावहारिक जन्मादि-
कों के वचन से विरोध को न पायके अविरुद्ध ही है, ५७ ॥ १८५ ॥

५८ ॥ १८५ ॥ हे सौम्य ! [“संवृत्या जीयते सर्वम्” लौकि-
क व्यवहार से सर्व होता है । इस प्रकार ५७ वें श्लोक के विषे कही,
तिसको अब पुनः वर्णन करते हैं ।] “धर्मा य इति जायन्ते
जायन्ते तेन तत्त्वतः” ६ जो भी धर्म जन्मते हैं ऐसे तत्त्व से
सो जन्मते नहीं ३ अर्थात् जो भी आत्मा अरु अन्य अनात्म-
रूप धर्म कहिये पदार्थ उपजते हैं इस प्रकार कहते हैं ॥ अर्थात्
कल्पना करते हैं । सो धर्म इस प्रकार के हैं, इस प्रकार पूर्वोक्त
लौकिक व्यवहाररूप ढक्कन (पड़दा) कहते हैं, कि ढांपने क्र-
हिये गुप्तपने से ही वे धर्म जन्मते हैं, परन्तु तत्त्व कहिये परमार्थ
से जन्मते नहीं । अरु “जन्म मायोपमन्तेषां सा च माया न
विद्यते” तिनका जन्म मायाकी उपमावाला है अरु सो माया
विद्यमान है नहीं ३ अर्थात् जो पुनः ढपने से तिन उक्त प्रकार के
धर्मोंका जो जन्म है सो जैसे मायाका जन्म होता है तैमे है,
एतदर्थ सो तिनका जन्म मायाकी उपमावाला प्रतीत करने के
योग्य है । प्रश्न । तब मायानामक कुछ वस्तु होवेगी, । उ० । सो
माया कुछ विद्यमान नहीं, अभिप्राय यह है कि अविद्यमान
वस्तुका नाम माया है ॥ ५८ ॥ १८५ ॥

यथा माया मया द्वीजा ज्ञायते तन्मयोऽङ्कुरः शब्दा-
 ऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजनां ॥ ५८ ॥
 नाजेषु सर्वधर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा । यत्र
 वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ॥ ५९ ॥
 हे सौम्य ! प्रश्न-तत्तिन धर्म कहिये प्रदार्थों का
 जन्म माया की उपमावाला कैसे है, तहां उत्तर कहते हैं यथा
 मायामया द्वीजा ज्ञायते तन्मयोऽङ्कुरः जैसे मायामय बीजसे
 मायामय अंकुर होती है, अर्थात् जैसे आम्रादिकों की मायामय
 बीजसे, अर्थात् कोई ये मायावी पुरुष करके आरोपित आम्रा-
 दिक वृक्षके मायामय बीजसे मायामय अंकुर उपजता है, अर्थात्
 ऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजनां यह नित्य नहीं वा
 विनाशी नहीं तैसे धर्मों विषे योजना है, अर्थात् यह मायामय,
 अंकुर नित्य नहीं, वा विनाशी नहीं, क्योंकि मित्या है ताते, तैसे ही
 धर्म कहिये प्रदार्थों विषे जन्म अरु नाश आदिकों की योजना है अर्थ
 यह है कि परमार्थसे धर्मों का जन्म वा नाश घटता नहीं ॥ ५८ ॥
 ॥ ५९ ॥ हे सौम्य ! तिसका प्रश्न से सर्व अजन्मा है, इस
 प्रकार जो ५७ वें श्लोक विषे कहा, तिसकी वर्णन करते हैं
 नाजेषु सर्वधर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा, अजन्मा सर्व
 धर्मों विषे नित्य है वा अनित्य है ऐसा नाम कहना नहीं, अर्थात्
 परमार्थसे तो नित्य एकरसे विज्ञप्तिमात्र सत्तारूप अजन्मा सर्व
 धर्म कहिये आत्मा विषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा नाम कहना
 प्रवर्त होता नहीं, क्योंकि "यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र
 नोच्यते" जिन विषे वर्ण प्रवर्त होते नहीं तिन विषे विवेक कहते
 नहीं, अर्थात् जिन्हों करके अर्थों का वर्णन करिये ऐसे जे
 शब्द तिनको वर्ण कहते हैं, सो जिस आत्मा विषे वर्ण "यह
 ऐसा है" इस प्रकार कहने को प्रवर्त होते नहीं, तिस आत्मा
 विषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा विवेक कहते नहीं क्योंकि

यथा स्वप्ने द्रव्याभासं चित्तं चलति मायया । तथा जाग्रद्व्याभासं चित्तं चलति मायया ६१ । १८८ ॥

अद्वयश्च द्रव्याभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः । अद्वयश्च द्रव्याभासं तथा जाग्रत्संशयः ६२ । १८९ ॥

“यतोर्वीचो निवर्तन्ते” इत्यादि श्रुति प्रमाण है ६० । १८७ ॥ ६१ । १८८ ॥ हे सौम्य ! आत्मा को शब्द की अगोचरता के अर्थात् अविषयता के । हुये, यह आत्मा व्याख्याकारों करके, शब्दों से ही प्रतिपादन करने की योग्यता को कैसे प्राप्त होता है, यह शंका करके चित्त का स्फुरण मात्र अविचारित सुन्दर प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैत है, इस प्रकार दृष्टान्त सहित कहते हैं । यथा स्वप्ने द्रव्याभासं चित्तं चलति मायया । तथा जाग्रद्व्याभासं चित्तं चलति मायया ॥ ६१ ॥ जैसे स्वप्नविषे द्वैताभासरूप चित्त (मन) मायासे चलता है, तैसे जाग्रत्विषे द्वैताभासरूप चित्त माया करके चलित होता है ६१ । १८८ ॥

६२ । १८९ ॥ हे सौम्य ! शंका । ननु, स्वप्नविषे प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैत को मन के चलन कहिये स्फुरण मात्र रूप के हुये भी जाग्रत्विषे तिस प्रकार । मन का स्फुरण मात्र । कैसे होवेगा, यह शंका करके उत्तर कहते हैं । अद्वयश्च द्रव्याभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः । अद्वयश्च द्रव्याभासं तथा जाग्रत्संशयः । स्वप्नविषे अद्वैतरूप हुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है, प्राप्ति संशय नहीं, तैसे जाग्रत्विषे अद्वैतरूप हुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है इसमें संशय नहीं, अर्थात् स्वप्नविषे वास्तव करके अद्वैतरूप हुआ ही मन अपनी स्फुरणता से द्वैतरूप होता है तिसमें संशय नहीं, तैसे जाग्रत्विषे भी अद्वैतरूप हुआ ही मन अपनी स्फुरणता से द्वैतरूप होता है इसमें भी संशय नहीं ॥ अरु जो पुनः परमार्थ से अद्वैतरूप विज्ञान मात्र वस्तु को वाणी का विषय पना है सो मन का स्फुरण मात्र है परमार्थ से नहीं, यह पूर्व अद्वैत नामक तृतीय

॥ स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान् ।
अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान्
सदा ६३ ॥ १६० ॥

स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् ।
तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते ६४ ॥ १६१ ॥
प्रकरणविषये व्याख्यान क्रिये इन ६१, ६२, दो श्लोकोंका तात्पर्य है ६२ । १६६ ॥

६३ । १६० हे सौम्ये ! " स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान् । अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा " । ६ स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नविषये विचरता हुआ दशहों दिशाविषे स्थित, अण्डज वा स्वेदजरूप भी जीवों को सदा देखता है ? अर्थात् इस कथनके हेतु से भी वाणी का निष्यजो द्वैत तिसका अभाव है, जैसे स्वप्नरूप स्थानविषे स्वप्न जगत् का देखने वाला ऐसा जो स्वप्नका द्रष्टा सो स्वप्नविषे विचरता हुआ दशहों दिशा विषे स्थित कहिये वर्तमान अण्डज वा स्वेदजरूप भी । जरायुज अरु उद्भिज्जरूप । जिन प्राणियोंको सदा देखना है [सो तिससे भिन्न नहीं इसप्रकार अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है ६३ । १६० ॥

६४ । १६१ ॥ हे सौम्य ! प्र० । जत्र ऐसे है तत्र तिसकरके हुआक्या, । तहां उत्तर कहते हैं " स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् " । स्वप्नद्रष्टा के चित्तकरके देखनेयोग्य तिससे पृथक् नहीं, अर्थात् स्वप्नद्रष्टाके चित्तक्रिये मनकरके देखनेयोग्य वे जीव सो स्वप्नद्रष्टाके चित्त से भिन्न नहीं । अरु जो ऐसा है कि ता चित्तही जीवादिक भेदके । द्रष्टा अरु चित्तके । आसफ से चित्तको पावता है, । सो कथन घने नहीं । तहां कहते हैं " तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते " । नैमे यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्त तिसकरके देखनेके योग्यही अस्तीति कहते हैं ? अर्थात् तैमे यह स्वप्नके द्रष्टाका चित्तनिम स्वप्नके द्रष्टाकरके देखनेके योग्यही

चरन् जागरिते जाग्रद्विधुवै दश सुस्थितान् अ-
ण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् स-
दा ६५ । १९२ ॥

जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक् । तथा
तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते ६६ । १९३ ॥

अंगीकार करते हैं । अर्थात् जैसे स्वप्न के द्रष्टा करके स्वप्न के पदार्थ
देखने योग्य हैं, तैसे चित्त भी है । एतदर्थ स्वप्न के द्रष्टा से भिन्न
चित्तनाम कोई वस्तु नहीं, इत्यर्थः ६४ । १९१ ॥

६५ । १९२ ॥ हे सौम्य ! अब दृष्टान्त विषे स्थित अर्थको दार्ष्टान्त
विषे योजना करते हैं । “चरन् जागरिते जाग्रद्विधुवै दशसुस्थिता-
न्, अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान्सदा” । “जाग्र-
त्विषे जाग्रत् के दशहोदिशा विषे विचरता तहां स्थित अंडज वा
स्वेदज भी जिन जीवोंको सदा देखता है” अर्थात् जाग्रत् विषे
जाग्रत् अवस्थावाला पुरुष दशहो दिशा विषे स्थित जे अंडज वा
स्वेदज, जेरायुज अरु उद्भिज्जरूप, चारिखानिके जिन जीवोंको ।
अर्थात् कार्य कारणआत्मक संघातको । सदा देखता है ६५ । १९२ ॥

६६ । १९३ ॥ हे सौम्य ! “जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः
पृथक्” । “जाग्रत् के चित्त से देखने के योग्य तिससे पृथक् विद्यमान
नहीं” अर्थात् जाग्रदवस्थावाले पुरुष के चित्त करके देखने के योग्य
वै । उक्त चारखानिके । जीव तिस जाग्रदवस्थावाले पुरुष के
चित्त से भिन्न नहीं । तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रतश्चित्तमिष्यते ।
“तैसे यह जाग्रत् का चित्त तिस द्रष्टा करके देखने के योग्य ही अंगी-
कार करते हैं” अर्थात् जैसे जाग्रत् के द्रष्टा करके जाग्रत् के जीवादि
पदार्थ देखने के योग्य हैं, तैसे इस जाग्रदवस्थावाले पुरुष का चित्त
तिस जाग्रत् के द्रष्टा पुरुष करके देखने के योग्य है ऐसा अंगीकार
करते हैं ॥ अरु इन ६५, ६६ दो श्लोकों के भावार्थरूप यह दो
अनुमान हैं । जाग्रदवस्थावाले पुरुष के दृश्य जो जीवादि सो तिस

उभे ह्यन्योन्यदृश्येते किन्तिदस्तीति चोच्यते । ल-
क्षणाशून्यभुभयः तन्मतेनैव गृह्यते ६७। १९४ ॥

के चित्तसे अभिन्न है, क्योंकि चित्तकरके देखने योग्य है, तात्, जैसे स्वप्न के द्रष्टा के चित्तकरके देखने के योग्य स्वप्न के जीवादिक । चित्तसे अभिन्न है । तैसे ॥ अरु सो जीवों के देखने रूप चित्त है सो द्रष्टा से अभिन्न है, क्योंकि, द्रष्टा का दृश्य है ताते, स्वप्न के चित्तवत् ६६। १९३ ॥

६७। १९४ ॥ हेसौम्य ॥ [दृश्य अरु दर्शन के भेद के ग्राहक प्रमाण

करके घातित हुये यह दोनों हेतु हैं, । यह शंका करके तब कहते हैं ।
यहां यह अर्थ है कि दृश्य अरु दर्शन, यह दोनों परस्परकी अपेक्षा से सिद्ध होनेवाले हैं । दृश्य के सिद्धि हुये तिसकरके अविच्छिन्न कहिये विशिष्ट दर्शन (ज्ञान) सिद्धि होता है, अरु तिस दर्शन के सिद्ध हुये तिस करके अविच्छिन्न दृश्य (विषय) सिद्ध होते हैं । इस प्रकार अन्योन्याश्रय रूप दोष करके दृश्य वा दर्शन सिद्ध होते नहीं । एतदर्थ तिनके भेद के ग्राहक प्रमाण के अभाव से उन दोनों हेतुओं का बाध है नहीं] । ने जीव अरु चित्त, यह दोनों परस्परके दृश्य कहिये विषय होते हैं । अरु जिसकरके जीवादिक विषयों की अपेक्षा वाला चित्त प्रसिद्ध होता है, अरु जिसकरके चित्त की अपेक्षा वाला जीवादिक दृश्य है, एतदर्थ " उभे अन्योन्यदृश्येते किन्तिदस्तीति चोच्यते " । ये दोनों अन्योन्यकरके दृश्य हैं सो क्या है ऐसे (प्रश्नकर्त्ता प्रति) कहते हैं, अर्थात् वे जीव अरु चित्त दोनों परस्परके दृश्य हैं । । अर्थात् परस्पर करके देखने (विषय करने) योग्य हैं, अरु जिसकरके वे दोनों परस्पर के दृश्य हैं, एतदर्थ अन्योन्याश्रयरूप दोष के सद्भावे । चित्त अथवा चित्तकरके देखने के योग्य जो दृश्य पदार्थ हैं सो क्या है, इस प्रकार प्रश्न किये हुये निम्नी रूप करके "यह कुछ भी है नहीं, इस प्रकार कहा है वा कहते हैं । जैसे स्वप्नविषे । " तत्र प्रधानरथयोगा " इत्यादि प्रमाण

यथास्वप्नमयोजीवो जाग्रतेमृयतेऽपि च ॥ यथाजी-
वाश्चामीसर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥ ६८ ॥ १६५ ॥
से । हस्ती वा हस्तीका चित्तविद्यमानहेनहीं तैसे यहाँ जाग्रत विषे
भी विवेकीपुरुषको कुछभी वस्तु विद्यमानकरके प्रतीत होतानहीं ॥
यह अभिप्राय है । प्रश्न ॥ जाग्रत विषे चित्त वा चित्तका दृश्य यह
दोनों विद्यमान कैसे नहीं, तितहाँ उत्तर कहते हैं ॥ लक्षणाशून्य
मुभयान् तन्मतेनैव गृह्यते ॥ ग्रह दोनों लक्षणाशून्य है तिनके मत
सेही ग्रहण करते हैं ॥ अर्थात् जिस करके लक्षा (देखा) जाय सो
कहिये लक्षणा ऐसा जो प्रमाण तिसको ग्रहण लक्षणा कहते हैं । अरु
जिस करके चित्त अरु चित्तका दृश्य चेत्य ॥ यह दोनों लक्षणा
कहिये प्रमाण तिससे रहित हैं, ताते तिनके भेदका प्रमाणीक
पत्ता प्रमाण करने योग्यपना ॥ है जहाँ ॥ अरु वादियों ने तो तिन-
के मत करके । तिस दृश्य अरु ज्ञानविषे तत्पर चित्तवन्ति स्वरूप
दोष करके ॥ सो दृश्य अरु दर्शन ग्रहण किये हैं, ताते घटकी बुद्धि
को दूर करके ॥ यहाँ यह अर्थ है कि घट विषे क्या प्रमाण है, इस
प्रकार प्रश्न किये हुये ज्ञान प्रमाण है, ऐसा उत्तर विने नहीं
क्योंकि अन्य वस्तुओं के ज्ञानविषे अतिप्रसङ्ग ॥ अति व्याप्ति हो,
बेगी ताते । अरु घटका ज्ञान प्रमाण है, ऐसा उत्तर भी विने नहीं
क्योंकि अन्योन्याश्रय दोषका प्रसंग प्राप्त होता है ताते । अतएव
घट अरु तिसके ज्ञानका प्रमाण अरु प्रमेयभाव सम्भव नहीं ॥ घट
गृहण करते नहीं, अरु घटको दूर करके घटकी बुद्धि (ज्ञान) भी
गृहण करते नहीं । एतदर्थ तिस ज्ञान अरु ज्ञेयरूप चित्त अरु चित्त
के दृश्यविषे प्रमाण अरु प्रमेय का भेद कल्पना करने का शक्य
नहीं ॥ इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥ १६४ ॥
६८ ॥ १६५ ॥ हे सौम्य ! ॥ दर्शन कहिये ज्ञान से भिन्न अण्ड-
जादि दृश्य पदार्थों के असंज्ञावके अनुमानके ग्राहक प्रमाणकरके
बाधको निवारण करके, अब दर्शन से भिन्ने तिन अण्ड जादिकनके

यथामायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजी-
वाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच ६६ । १९६ ॥

यथानिर्भितकोजीवो जायतेम्रियतेऽपिवा । तथा
जीवाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच ७० । १९७ ॥

असद्भाव के हुये जन्मादिकोंकी प्रतीतिका बाधहोवेगा, इसशब्दा
को दूर करते हैं,] "यथास्वप्नमयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच"
तथाजीवाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच"] ६६ जैसे स्वप्नमय जीव
जन्मताहै अरु मरताभी है, तैसेही यह सर्वजीव होते भी हैं अरु
नहीं भी होते, ॥ अर्थात् जैसे स्वप्न विषे अनहुयेही जीव जन्मते
अरु मरते हैं, तैसे यह जागृत के जीव भी न हुये हुये जन्मते
अरु मरते हैं ६६ । १९६ ॥

६६ । १९६ ॥ हे सौम्य ! [अत्र मायामय जीव के अरु निर्मि-
तक जीवके भेदके जानने की इच्छावाले के प्रति कहतेहैं] "यथा
मायामयोजीवो जायतेम्रियतेऽपिच । तथाजीवाअमीसर्वे भव-
न्तिनभवन्तिच"] ६६ जैसे मायामय जीव उपजता है अरु मरता
भी है, तैसे यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते, अर्थात्
जैसे इन्द्रजालिक मायावियों की माया से । मायामय जीव
जन्मताहै अरु मरता भी है, तैसेही प्रज्ञप्तिमात्र चैतन्यकी मायासे
। जो कि वास्तवमें हैं नहीं । यह । अण्डजादि । सर्व जीव उत्प-
त्त्यादि होते भी हैं अरु नहीं भी होते ६६ । १९६ ॥

७० । १९७ ॥ हे सौम्य ! "यथानिर्भितकोजीवो जायतेम्रिय-
तेपिवा । तथाजीवाअमीसर्वे भवन्तिनभवन्तिच"] ७० जैसे नि-
र्माण किया जीव जन्मता भी है वा मरता भी है, तैसे यह सर्व
जीव होते भी हैं अरु नहींभी होते, ॥ अर्थात् जैसे मन्त्र ओषधि
आदिक सामग्री से इन्द्रजाली आदिक मायावियों करके निर्माण
किया जीव जन्मताभी है अरु मरता भी है, तैसेही यह अण्डजा-
दि सर्वजीव होते हैं नहीं भी होते । अर्थात्, ६६, ६६, ७०, इनतीन

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते । एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ७१ । १६८ ॥

श्लोकोंका तात्पर्यार्थ यह है कि, जैसे [संवित्र कहिये त्रैतन्य रूप ज्ञान तिससे भिन्न अण्डआदिकों का परमार्थकरके सद्भावके अभावके अनुमान का जन्मादिककी प्रतीति से बाधहोता नहीं, क्योंकि सद्भावके अभावहुये भी स्वप्नादिकों विषे जन्मादि विकल्पके बाहुल्यता की प्रतीति है ताते । इसप्रकार , ६८, ६९, ७०, इनतीन श्लोकों के तात्पर्यको कहते हैं] स्वप्नसय मायासय अरु औपधि आदिकरके रचित अण्डजादि जीव जन्मते हैं अरु मरते हैं, तैसेही यह मनुष्यादिरूप जीवभी अविद्यमानहुयेही चित्तकी कल्पनामात्रही हैं ७० । १६७ ॥

७१ । १६८ ॥ हे सौम्य ! “न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते” । इसका कारण नहीं ताते कोई भी जीव जन्मता नहीं ; अर्थात् जिसकरके [जो वादी जन्मादिक सत्य है , इस प्रकार मानता है तिसके प्रति पूर्व तृतीय प्रकरणके अन्तके श्लोकविषे “ न कश्चिज्जायते जीवः ” इत्यादि कहा है तिस अर्थको पुनः स्मरण कराते हैं] इस (जगत्) का कारण नहीं, तिसही करके कोई भी जीव जन्मता (उपजता) नहीं । अरु “ एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ” [जिसविषे कुछ भी जन्मता नहीं, यह तिनके मध्य उत्तम सत्य है] अर्थात् जिस सत्यरूप एक अद्वितीय । ब्रह्मविषे कुछ किञ्चिन्मात्र भी उपजता नहीं, यह उन पूर्वके ग्रन्थोंविषे उपायपने करके उक्त सत्योंके मध्य उत्तम सत्य है । इसका भावार्थ यह है कि , व्यवहारविषे सत्य विषयका अरु जीवोंका जन्म मरणादिक स्वप्नादिकों के जीवोंवत् है । अर्थात् जैसे स्वप्नविषे जीवादिक अनेक पदार्थ उपजते विनशते हैं तैसेही यह जाग्रत् के जीवादिकों को कल्पना मात्रही जानना । इसप्रकार पूर्वके तीन श्लोकोंविषे कहा, परन्तु “ न कश्चिज्जायते

२६६

चित्तरूपनिन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम् । चित्तं निर्विषयं नित्यमसंगन्तेन कीर्तितम् ७२ । १५६ ॥

जीवः” ८ कदापि कोई भी जीव जन्मता नहीं ॥ यह परमार्थ से जो सत्य है ॥ इस श्लोकका अर्थ पूर्व तृतीय प्रकरणके अन्त के श्लोकविषे कहा है ७१ । १५६ ॥

७२ । १५६ ॥ हे सौम्य । “चित्तरूपनिन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम्, चित्तं निर्विषयं नित्यमसंगन्तेन कीर्तितम्” १ चित्तका स्फुरण रूपही यह ग्राह्य अरु ग्राहकवाला द्वैत, विषयरहित चित्त है तिसकरके नित्य असंग कहा है २ अर्थात् [ज्ञानको, कल्पित दृश्यकरके उपहित कहिये उपाधिवाले रूपकरके पृथक्पना होने से, तिसका देखेहुये पदार्थों से भिन्न संज्ञाव है नहीं, इसप्रकार स्वप्नके दृष्टान्त से कहा, अब वास्तवसे ज्ञानको विषयसे सम्बन्ध के अभावसे आत्माही ज्ञान है, इसप्रकार कहते हैं] चित्त जो मन तिसका स्फुरणरूपही यह ग्राह्य कहिये विषय अरु ग्राहक कहिये इन्द्रिय, इनवाला द्वैत है, अरु विषयरहित चित्त कहिये चैतन्य आत्मा है ॥ तिस हेतुकरके सो चित्त कहिये आत्म चैतन्य को नित्य असंग कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि सर्व ग्राह्य अरु ग्राहकवाला चित्तका स्फुरणरूपही द्वैत परमार्थ से आत्माही है “आत्मैवेदं सर्वं” एतदर्थ सो चित्त संज्ञक चैतन्य आत्मा निर्विषय है । अरु तिस निर्विषयहोने रूप हेतुकरके तिसको नित्य असंग कहा है “असंगो ह्ययं पुरुषः” ८ असंगही यह पुरुष है यह बृहदारण्य उपनिषद् के प्रमाणसे । विषय सहित वस्तुका विषयविषे संग कहिये आसक्ति होवे है अरु चित्त संज्ञक आत्मा जिसकरके अविषय है एतदर्थही असंग है, इस युक्तिसे आत्मा का असंगपना सर्वदा सिद्धही है । जैसे आकाश निराकार निरवयव अतिसूक्ष्महोने से जल घृत तैलादिक सर्वमें व्याप्त हुआ जलादिक किसीपदार्थ अरु तिनके धर्मोंसाथ कदापि स्पष्ट

योऽस्तिकल्पितसंवृत्याः परमार्थेन तत्तास्त्यसौ । परत-
न्त्राभिसंवृत्याः स्यान्नास्ति परमार्थतः ॥ ७३ ॥ २०० ॥
भी करता जहाँ, तैसे आकाशसे भी महासूक्ष्म निराकार निर्वि-
कार आत्मा आकाशादि सर्व में व्याप्त हुआ हुआ भी सदा असं-
गही है । ७२ । १६६ ॥ ७३ ॥ २०० ॥ "तोहना" निर्वि-
७३ । २०० ॥ हे सौम्य । शंका । तनु, जब निर्विषय होने करके
चित्त जो चैतन्य प्रह्व, तिसका असंगपना है, तब सो असंगपना
सिद्ध होता नहीं, क्योंकि शास्ता कहिये शिक्षा का करनेवाला गुरु
शास्त्र अरु शिष्य । अर्थात् शास्ता, शास्त्र, अरु शिष्य, इत्यादि ।
प्रमाता प्रमाणादिक विषय विद्यमान हैं ताते, समाधान । यह दोष
बने नहीं, क्योंकि "योस्तिकल्पितसंवृत्याः परमार्थेन तत्तास्त्यसौ"
६ जो कल्पित तिसंकरके हैं यह परमार्थसे है नहीं? अर्थात् जो
शास्त्र शास्तादि प्रदार्थ विद्यमान हैं, सो परमार्थकी प्राप्ति का सा-
धन । उपाय । होने करके कल्पित जो व्यवहार तिसंकरके हैं ।
परन्तु यह शास्त्रादि प्रदार्थ परमार्थ से है नहीं । इसमें "ज्ञाते द्वैतं
न विद्यते" जो ज्ञेय द्वैत है नहीं । यह प्रथम प्रकरणके २५ वें
श्लोक करके, उक्त वाक्य अनुकूल है । अरु [तनु, वैशेषिक वादी
जो हैं सो द्रव्यसे आदिलेके समवाय पर्यन्त पट्पदार्थोंको परमार्थ
से मानते हैं, अरु जब तैसे है तब चैतन्यको असंगपना कैसे है,
तहाँ, समाधान, कहते हैं, यहाँ यह अर्थ है कि वैशेषिक मतवा-
दियोंकी परिभाषासे कल्पित व्यवहारके अनुसारसे जो द्रव्य से
आदिलेके समवाय पर्यन्त प्रदार्थ हैं सो परमार्थसे हैं नहीं, किन्तु
व्यवहार सत्ता करके भासता है, अतएव चैतन्य आत्माकी असंगपना
सर्वदा अविरुद्ध ही है ।] "परतन्त्राभिसंवृत्याः स्यान्नास्ति परमार्थतः"
६ अन्य, शास्त्रके, व्यवहार से होय सो परमार्थ से नहीं, अर्थात्
जो अन्य वैशेषिकादि मतवादियों के शास्त्रके व्यवहार से होवे
सो परमार्थ से निरूपण किया हुआ नहीं । अतएव, तिसंकरक

अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः । परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्या जायतेतु सः ७४। २०१।

असंग कहा है, इस प्रकार का जो हमारा कथन सो युक्त ही है ७३। २००।
 ७४। २०१ ॥ हे सौम्य ॥ शंका । ननु, शास्त्रादिकनको व्यवहाररूप
 ताके होनेसे “अजइति” “अजन्मा है” यह । शास्त्रोक्त कल्पना भी
 व्यवहाररूप ही होगी, । समाधान । तहां ऐसे ही सत्य है, यह कहते
 हैं “अजःकल्पितसंवृत्या परमार्थेननाप्यजः” “कल्पितव्यवहार
 से ही अजन्मा है परमार्थसे अजन्मा भी नहीं”, अर्थात् शास्त्रादिकों
 के कल्पित व्यवहार से ही अजन्मा है, ऐसा कहते हैं, अरु परमार्थ
 से तो अजन्मा भी नहीं । अरु “परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्या जा-
 यते तु सः” “अन्य शास्त्र की प्रसिद्धि से तो व्यावहारिक है, अरु
 जन्मता है”, अर्थात् जिसकरके [यहां यह अर्थ है कि, द्रव्यका अरु
 गुणादि पांचका जो लक्षण है, सो तिससे व्यावर्त्तक अपने लक्षण
 के संभवविना कल्पते नहीं । अरु तैसे हुये तिन तिनके लक्षण से
 तिनकी प्रतीतिके हुये तिससे भिन्नकी प्रतीति होये है, अरु तिस
 भिन्न पदार्थ के ओ लक्षणसे तिसकी प्रतीतिके हुये तिससे व्यापृत
 । पृथक्किये । पदार्थकी प्रतीति होये है । इस प्रकार परस्परके आश्र-
 यरूप दोपसे कुछ भी वस्तु वास्तवसे सिद्ध होती नहीं] अन्य परि-
 णामवादियोंके शास्त्रकी प्रसिद्धिसे । [अर्थात् अन्योके शास्त्रमि-
 जो परिणामरूप जन्मकी प्रसिद्धि है तिसके निषेधसे । जो “आ-
 त्मा अजन्मा है” ऐसे कहा है सो तो व्यवहारसे है । अरु जिसकरके
 अजन्मा है ताते जन्मरूप प्रतियोगी को व्यवहारकरके सिद्ध होने
 से तिसका निषेधरूप अजन्मापना भी तैसा ही है । यह अर्थ है ।
 एतदर्थ “अजइति” अजन्मा है, इस प्रकारकी यह कल्पना भी
 परमार्थरूप विषयसे प्रवृत्त होनी नहीं । [अजन्मापने आदिकव्यव-
 हारकरके उपलब्धित जो स्वरूप है तिसका अकल्पितपना है, क्योंकि
 तिसको कल्पनाका अधिष्ठानपना है नाने । अरु कल्पित]

अभूताभिनिवेशोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते । द्वयाभावं
स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते ७५ । २०२ ॥

यदा न लभते हेतूनुत्तमाधममध्यमान् । तदा न
जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः ७६ । २०३ ॥

दिकोंको अकल्पित वस्तुके प्रमाज्ञान । प्रमाणं जन्यज्ञान । की
अहेतुता नहीं, क्योंकि प्रतिविम्बादिकों को विम्बादिकों के प्रमा
की हेतुता सिद्ध है ताते, ऐसा जानना] इत्यर्थः ७४ । २०१ ॥

७५ । २०२ ॥ हे सौम्य ! शङ्का । ननु, [ज्ञानको, कल्पित
शास्त्रादिकोंसे अन्यता (पृथक्ता) के हुये तिसको मिथ्याहोनेसे
अपुनरावृत्ति कहिये आवागमनसे रहित मोक्षरूप फलकी सा-
धनता होगीनहीं,] । समाधान । तहां कहते हैं “ अभूताभिनि-
वेशोस्ति द्वयं तत्र न विद्यते, द्वयाभावं स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न
जायते ” । असत्विषे अभिनिवेश है तिसविषे द्वैत विद्यमान नहीं,
द्वैतके अभावको जानके ही निमित्तसे रहित होता है सो नहीं ;
अर्थात् जिसकरके असत् कहिये मिथ्या ज्ञानका विषय संसार
है, एतदर्थ असत्वरूप द्वैतविषे केवल अभिनिवेश , कहिये आ-
ग्रह, है । अरु जिस करके तिस आत्माविषे मिथ्या आग्रहमात्र
अरु जन्मका कारण द्वैत विद्यमान है नहीं, एतदर्थ जो पुरुष द्वैत
के अभावको जानके ही मिथ्या द्वैतके आग्रहरूप निमित्तसे रहित
होता है सो जन्मता नहीं । अर्थात् मिथ्या ज्ञानरूप द्वैत प्रपञ्चके
आग्रह रूप अभिनिवेशके सम्यक् अभाव हुये ही मोक्ष है । “ ऋते
ज्ञानान्नमुक्तिः ” । ७५ । २०२ ॥

७६ । २०३ ॥ हे सौम्य ! [“ निर्निमित्तो न जायते ” नि-
मित्त से रहित हुआ जन्मता नहीं] इसप्रकार जो पूर्व ७५ वें
श्लोक विषे कहा तिस इस अर्थको वर्णन करते हैं] जाति क-
हिये वर्ण अरु आश्रमको । अर्थात् ब्राह्मणादि वर्ण अरु ब्रह्मच-
र्यादि आश्रम, इनकरके युक्त पुरुषके अर्थ विधान किये जे शिम

दम अग्निहोत्रादि विहित कर्म रूप हेतु, सो फलामिलापा से
 रहित निष्काम अधिकारी पुरुषों करके अनुष्ठान किये धर्म । अ-
 र्थात् धर्म अरु कर्मका इसप्रकार विचार है कि कर्म जो शब्द
 है सो, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, अरु कामुक, अरु निषिद्ध
 इन पांचोप्रकारके कर्मों विषे समान, वर्त्तता है, परन्तु सर्व कर्म
 धर्म नहीं क्योंकि निषिद्ध आदि कर्मोंको धर्मपना नहीं, ताते
 जिन सन्ध्या गायत्री अग्निहोत्रादिक कर्मोंके न करने से प्रत्यवाय
 (पातक) होता है सो कर्म मुख्य (उत्तम) धर्म है, अरु जिन
 अश्वमेधादिक यज्ञ रूप कर्म के न करने में प्रत्यवाय नहीं अरु
 करे तो फलकी प्राप्ति होय, ताते सो कामनावाले के अर्थ होने से
 गौण (मध्यम) धर्म है, अरु अश्वमेधादि यज्ञ जो पूर्वरजपियोंने
 किये हैं सो बहुधा स्वर्ग प्राप्तिकी कामनासे, वा महत् प्रायश्चित्त
 की कामना से किये हैं, अतएव यज्ञादिक कामुक कर्म गौण धर्म
 है, ताते निष्काम अधिकारी करके अनुष्ठान किये अग्निहोत्रादि
 कर्म रूप मुख्य धर्म । सो देव भावादिक उत्तम जन्मकी प्राप्ति
 के प्रयोजनार्थ होनेसे केवल उत्तम है । अरु धर्म अधर्म मिश्रित
 रूप कर्म । अर्थात् यहां धर्म अधर्म को मिश्रित कहा है तिस
 करके कुछ अश्वमेधादि धर्म अरु ब्रह्महत्यादि अधर्मका समु-
 चय नहीं कहा, किन्तु कामनासे रहित जो केवल उत्तम अग्नि-
 होत्रादि धर्म, अरु तिनकी अपेक्षा कामुक कर्म रूप अधर्म
 तिनका समुच्चय धर्माधर्म अरु मिश्रित, शब्दका अर्थ जानना ।
 सो मनुष्यादिक मध्यम जन्म भावकी प्राप्तिके अर्थ होनेसे, म-
 ध्यम है । अरु जो निषिद्धाचरण है सो तिर्यगादि अधम योनिकी
 प्राप्तिका निमित्त होनेसे अधर्म रूप प्रवृत्ति विशेष अधर्म है ।
 अतएव "यदा न लभते हेतु न तमाधम मध्यमान्, तदा न जायते
 चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः" ६ जव चेतन्य उत्तम मध्यम अरु
 अधम हेतुओं को देखता नहीं, तब जन्मता नहीं अरु हेतुके अभाव
 हुये फल कहाँसे होगा ? अर्थात् । उक्त प्रकार के उत्तम मध्यम

अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः, समाऽद्वया । अ-
जातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि, तद्यतः ॥ ७७ ॥ २०४ ॥

अधम हेतुओं को । जब चित्त कहिये चैतन्य उन अविद्या करके
कल्पित उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को, सर्व कल्पना से
रहित एक ही अद्वितीय आत्मतत्त्व को जानता हुआ, देखता
नहीं । जैसे अविवेकी वालकों करके आकाश विषे दृश्यमान
जो मल (मलिनता) तिसको विवेकी पुरुष देखता नहीं, तद्वत्
तब देवादिक आकारों करके उत्तम मध्यम अरु अधम, कर्मों के
फलरूप से जन्मता नहीं । अरु बीजादिक के अभाव हुये धान्य
के वृक्षादिकोंवत् हेतु के अविद्यमान हुये फल उपजता नहीं;
एतदर्थ हेतु के अभाव हुये फल कहाँ से होवेगा किन्तु कहीं से
भी नहीं ७६ । २०३ ॥

७७ । २०४ ॥ हे सौम्य ! [“ तदा न जायते चित्तं ” तब
चित्त जन्मता नहीं] इसप्रकार अभी ७६ वें श्लोक विषे कहा, सो
कालपरिच्छेदकी प्रतीतिसे आगंतुकताकी शंका करके निवारण
करते हैं] “ हेत्वभावे चित्तं नोत्पद्यत इति ” हेतु के अभाव
हुये चित्त उपजता नहीं] इसप्रकार पूर्व श्लोकविषे कहा । पुनः
तिस चित्तकी अनुत्पत्ति किस प्रकारकी है सो अब कहते हैं “ अनि-
मित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया ” अनिमित्त चित्त
की जो अनुत्पत्ति है सो सम अद्वैतरूप है ; अर्थात् परमार्थ ज्ञान
दर्शन से निवृत्त हुआ है, धर्म अधर्म नामवाला जो उत्पत्तिका
निमित्त है सो, जिसका ऐसा जो चित्त सो अनिमित्तचित्त कहते
हैं । तिस अनिमित्त चैतन्यकी जो मोक्षनामवाली अनुत्पत्ति है
सो सर्वदा [जैसे रूपकी कल्पना कालविषे भी सीपीका अरूपा-
पना स्वाभाविक है । अर्थात् अविवेकी पुरुष को लोभ के बलसे
जिसकालमें सीपीविषे रूपकी भ्रान्ति होती है, तिस कालविषे भी
सीपीका जो अरूपापना है सो स्वाभाविक सिद्ध ही है । तैसे ही

बुद्धानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनिमुवन् । वीतशो-
कं तथा काममभयं पदमश्नुते ७८ । २०५ ॥

जन्मकी कल्पना कालविषे भी चैतन्यरूपे ज्ञानकी निष्प्रपंच अद्वि-
तीय ब्रह्मरूपता स्वाभाविकही है । अरु जन्मके भ्रमकी निवृत्तिकी
अपेक्षा से तो “तदा न जायते” तब जन्मता नहीं इसप्रकार कहा ।
अरु यह , सर्वदा, इसपद करके सूचित करते हैं । केवलमोक्षा-
वस्थावाले चैतन्यकाही अजन्मापना होय ऐसा नहीं, किन्तु घटा-
दिक उपहित चैतन्यको भी अजन्मापना है, इस अभिप्रायसे यहां
, सर्व अवस्था विषे, इसप्रकार कहा । अरु चैतन्य के सर्वही
प्रतिविम्बको अपने विम्बके तुल्य ब्रह्मरूपता है ताते । इसहेतुके
अभिप्राय से यह अनुत्पत्ति अद्वैतरूप कही है] सर्वावस्था विषे
समकहिये विशेष रहित अरु अद्वितीय है । [सर्व द्वैतको चैतन्यका
दृश्य होने करके मिथ्यात्व होनेसे, अरु नित्य सिद्ध परिपूर्ण चैतन्य
नामक स्फूर्तिको जन्मका असंभव है ताते, तिसकी जो अनुत्पत्ति
है सो उक्त लक्षणवाली युक्त ही है] अरु “अजातस्यैव सर्वस्य
चित्तदृश्यं हि तद्यतः” [जन्मरहित चित्तका सर्व दृश्यही है,
अर्थात् जिसकरके सम्यक् ज्ञानसे पूर्व भी सो द्वैत अरु जन्मचित्त
(चैतन्य) का दृश्यही है । एतदर्थ निमित्त रहित अद्वैतरूप चैतन्य
की जो अनुत्पत्ति सो सम अरु अद्वैतही है । अरु सो अनुत्पत्ति
पुनः कदाचित् होता है, इसप्रकार नहीं, वा कदाचिन होता नहीं,
इसप्रकार नहीं, किन्तु चैतन्य आत्मा सर्वदा एकरूप एक रसही
है “ पर, प्रत्यक् एकरसः ” इत्यर्थः ७७ । २०४ ॥

७८ । २०५ ॥ हे सौम्य ! [“द्रयाभावं सनुद्धोत्र निर्निमित्तो न
जायते ” सो द्वैतके अभाव को जानके निमित्त से रहित हुआ
जन्मता नहीं , इसप्रकार, पूर्व ७५ वें उलोकविषे कहा है, तिसकी
अब पुनः वर्णन करते हैं] “ बुद्धानिमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगना-
मुवन् ” ६ निमित्तरहित सत्ताको जानके हेतुको पृथक् ग्रहण करता

‘अभूताभिनिवेशाद्भि सदृशे तत्प्रवर्तते । वस्तुभा-
वं सवुद्धैव निःसङ्गं विनिवर्तते ७६ ।’ २०६ ॥

हुआ ; अर्थात् उक्त प्रकारकी युक्ति करके जन्मका निमित्त जो
द्वैत तिसके अभावहुये, निमित्तरहित परमार्थरूप सत्ताको जान
के धर्मादिक कारणरूप हेतु को देवादिक योनिकी प्राप्तिके अर्थ
भिन्न ग्रहण करता हुआ । अर्थात् बाह्य विषयोंकी इच्छासे रहित
हुआ । “वीतशोकं तथाकाममभयं पदमश्नुते” । विगतशोक काम
से रहित अभयपदको प्राप्त होता है ; अर्थात् देवादि योनिके प्रापक
जे उक्त धर्मादिक तिनको अग्रहण करता हुआ, अरु कामसे रहित
विगत शोक हुआ । अर्थात् अविद्यादि कारण कार्य से रहित
हुआ । अभय पदको प्राप्त होता है । पुनः जन्मको पावता नहीं
। अर्थात् यहां जो कहा कि पुनर्जन्मको पावता नहीं सो जिन अ-
विवेकियों की दृष्टिसे आत्मा जन्मता है तिनकी दृष्टिकी अपेक्षा
से कहा है, नतु आत्मा तो सदा अजन्मा एकही है ७६ । २०५ ॥

७६ । २०६ ॥ हे सौम्य ! [जव ऐसे है तब उक्त प्रकारके
पदकी प्राप्ति सदाही है, यह शंका करके कहते हैं] “अभूताभि-
निवेशाद्भि सदृशे तत्प्रवर्तते” । अभूत अभिनिवेश से सदृश विषे
सो प्रवर्त होता है ; अर्थात् जिसकरके मिथ्या द्वैतविषे द्वैतके
सम्भावका निश्चयरूप जो मिथ्या आग्रह है, तिस अविद्यात्मक
व्यामोहरूप मिथ्या अभिनिवेश कहिये आग्रह से सदृश कहिये
तिसके अनुसारी, वस्तुविषे सो चित्त प्रवर्त होता है । एतदर्थ
“वस्तुभावं सवुद्धैव निःसङ्गं विनिवर्तते” । सो वस्तुके अभावको
जानकेही निःसङ्ग हुआ निवृत्त होता है ; अर्थात् सो पुरुष तिस द्वैत
रूप वस्तुके अभावको सम्यक् प्रकार जानके ही । अर्थात् जव जा-
नता है तब अपना चित्त जैसे तिस मिथ्या अभिनिवेश के
विषयसे निःसङ्ग, कहिये निरपेक्ष, हुआ निवृत्त होता है, तैने
निसकी निवृत्तिके अनुसारी होता है ७६ । २०६ ॥

निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः ।
 विषयः सहिबुद्धानां तत्स्वाम्यमजमद्वयम् ८० । २०७ ॥
 अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् । सकृद्वि-
 भातो ह्येवैष धर्मो धातुः स्वभावतः ८१ । २०८ ॥

८० । २०७ ॥ हे सौम्य ! “ निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला
 हि तदा स्थितिः, विषयः स हि बुद्धानां तत्स्वाम्यमजमद्वयम् ”
 ६ निवृत्त हुये अप्रवर्त्त भये की अचल ब्रह्मरूप स्थिति होती है,
 जाते वह बुद्धिमानों का विषय है सो समभाव अज अद्वैत है,
 अर्थात् यदि ऐसे (उक्तप्रकार) होय तदा द्वैतरूपविषयोंसे निवृत्त
 हुये, अरु अन्य विषय विषे अभावके ज्ञानसे अप्रवर्त्त हुये चित्त
 (आत्मा) की चलन से रहित (अचल) स्वरूपही अद्वैत एक रस
 विज्ञान घन ब्रह्मरूप स्थिति होती है । अर्थात् भेदवादियों करके
 कल्पित शास्त्रोंका जो द्वैत भावरूप विषय तिस द्वैतभावादि
 रूप विषयों से निवृत्त हुये, अरु अन्य शब्दादि विषयों विषे
 तिनको भ्रान्ति रूप होनेसे तिनके अभावदर्शक यथार्थ ज्ञान से
 तिनविषे अप्रवर्त्त हुये चित्त कहिये आत्मा, की यह निश्चल
 स्वरूपही । अर्थात् स्वरूपसेही, जैसी है तैसी । निश्चल अद्वैत
 एकरस विज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थिति होती है । अरु जिस करके सो
 मोक्षरूप आत्मा “ दृश्यते त्रयायबुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः,
 प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ” इत्यादि श्रुतिप्रमाण से, परमार्थदर्शी
 बुद्धिमानों का विषय है, एतदर्थ सो समभाव कहिये परम
 निर्विशेष वस्तु अजन्मा अरु अद्वैत रूप है ८० । २०७ ॥

८१ । २०८ ॥ हे सौम्य ! प्रज्ज् । पुनः भी यह सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान
 पण्डितोंका विषय ब्रह्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकैमाह, तहां उत्तर
 कहते हैं “ अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् ” ६ अज है,
 निद्रासे रहित है, स्वप्न रहित है, अरु आपही प्रकाशरूप होता है,
 अर्थात् सो समभाव अजन्मा है, अरु निद्रा अरु स्वप्नसे रहित है,

सुखमात्रियते नित्यं दुःखं विवित्रियते सदा । यस्य कस्य च
धर्मस्य ग्रहेण भगवानसौ ८२।२०६॥

असं आपंही प्रकाशरूप होता है, अन्य सूर्यादिक प्रकाशवानोंकी अपेक्षावाला नहीं, अर्थात् ज्ञानरूप स्वप्रकाश स्वभाववाला है “तस्य भासा सर्वमिदं त्रिभाति” अरु “सकृद्विभातो ह्येवैष धर्मो धातुः स्वभावतः” ६ सर्वदा प्रकाशरूपही यह धर्म स्वभावसे धातु है ३ अर्थात् सर्वदा प्रकाशरूपही यह इस लक्षणवाला आत्मनामक धर्म स्वभावसेही धातु कहिये सर्वको धारण करनेवाला है वा धातु कहिये वस्तुके स्वभाव से युक्त प्रकार का है ८१।२०८॥

८२।२०६॥ हे सौम्य ! प्रश्न । इस प्रकार कथन किया भी परमार्थतत्त्व लौकिक पुरुषों करके क्यों नहीं ग्रहण होता । तहां उत्तर कहते हैं । सुखमात्रियते नित्यं दुःखं विवित्रियते सदा, यस्य कस्य च धर्मस्य ग्रहेण भगवानसौ । ६ जिस किस भी धर्म के ग्रहणसे सुख सदा आच्छादित करते हैं, दुःख सदा प्रकट करिये है यह भगवान् ३ अर्थात् तिसकरके जिस किस भी द्वैतवस्तुरूप धर्म । कहिये पदार्थ, के ग्रहणके आग्रहसे । अर्थात् द्वैतरूप वस्तु कुछ है इस प्रकारके आग्रहसे । सुख जो है सो सदा श्रमविनाही आच्छादन करते हैं । अर्थात् उक्त प्रकारके असत् द्वैतरूप वस्तुके आग्रहरूप आवरण करके सुख स्वरूप जो आत्मा है तिसको निरन्तर विना ही श्रमके आच्छादन करते हैं । अरु तिस सुखविषे । उक्त प्रकारका आवरण जो है, सो अपनी निवृत्तिके अर्थ अद्वैतके ज्ञानके निमित्त । साधन । कोही इच्छता है, अन्य प्रयत्नकी अपेक्षा करतानहीं । अरु दुःख जो है सो सदा प्रकट करते हैं, क्योंकि परमार्थका ज्ञान अतिदुर्लभ है ताते । अर्थात् यावत् यह पुरुष अपने दुःखोंको आचार्यके समीप जाय प्रकट कहता नहीं अरु आचार्य उसको दुःखी देखता नहीं तावत् उसको दुःखकी समूल निवृत्तिके अर्थ तत्त्व ज्ञान उपदेश करता नहीं, अतएव तत्त्व ज्ञानको अति दुर्लभ जान

अस्तिनास्त्यस्तिनास्तीति नास्तीतिनास्तिवापुनः ।
चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येववालिशः ८३ । २१० ॥

के दुःखको सदा प्रकट करते हैं। तिस हेतुसे यह भगवान् कहिये सर्व करके पूजनेयोग्य अद्वैतरूप आत्मदेव, वेदान्त शास्त्र अरु आचार्यों करके अनेक प्रकारसे कथन किया हुआ भी जाननेको शक्य नहीं । क्योंकि “आश्चर्योयस्यवक्ताकुशलोऽस्यलब्धा” इस आत्मा का कहनेवाला आश्चर्यरूप है, अरु प्राप्त होनेवाला कुशल है, यह श्रुतिके प्रमाणसे आत्मदेवका वक्ता श्रोता आश्चर्यवत है ८२।२०६॥

८३ । २१० ॥ हे सौम्य ! “अस्तिवानास्ति” है वा नहीं है, इत्यादिक सूक्ष्मविषयवाले बुद्धिमान् पंडितोंके भी आग्रहसे जब भगवान् परमात्माके आवरणही है तब मूढ़जनोंकी बुद्धिको आवरण है तिसमें क्या कथन है, इस प्रकार के अर्थको देखावते हुये कहते हैं “अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्तिवा पुनः, चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येववालिशः” है, नहीं है, है नहीं है, नहीं है पुनः नहीं है, ऐसे । अरु सत् असत्भावजो है सो स्थिर अस्थिर रूप है ताते इन चल, स्थिर उभयरूप अरु अभावों करके बालक आवरण करते ही हैं, अर्थात् “आत्मा देहादिकों से भिन्न है, इस प्रकार कोई एक वैशेषिकादि मतवादी जानते हैं । अरु आत्मा देहादिकों से तो भिन्न है परन्तु बुद्धिसे भिन्न नहीं । इन प्रकार अन्य क्षणिकवादी जानता है । अरु आत्मा है भी अरु नहीं भी है, इस प्रकार अन्य जो अर्द्धक्षणिकवादी सत्य अरु असत्यका कहनेवाला दिगम्बर जानता मानता कहना है । अरु आत्मा नहीं है पुनः नहीं है, इस प्रकार हठपूर्वक अत्यन्त शून्यवादी मानता है [यहां यह अर्थ है कि अनित्य घटादिकों से सुखादि आकार परिणामवाला होने करके, विलक्षण होने से अस्ति भाव रूप-जो यह प्रमाण कहा सो चल अरु सोपाधिक हुआ परिणामी है] तिनमें अस्ति जो है सो चल कहिये अस्थिर, है । क्योंकि घटादि अनित्य

कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदा वृतः । भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक् ८४।२११ ॥

वस्तुओं करके त्रिलक्षण है ताते । अरु नास्तिभाव जो है, सो स्थिर, है क्योंकि सदा निर्विशेष निरुपाधि है ताते अरु सदसद्भाव जो है सो, स्थिर अरु अस्थिर, उभयरूप है । अरु स्थिर, अस्थिर विषय हैं, सो अभाव है । तिन इन, चल, अरु स्थिर उभय रूप, अरु अभाव करके सर्व भी सत् अरु असत् वादियों को वादीरूप, बालक कहिये अविवेकी भगवान् (प्रत्यगात्मा) को आच्छादन करताही है । अरु यद्यपि वो वादी पण्डित है, तथापि परमार्थ तत्त्वके अवोधसे उक्तप्रकार के, बालकही हैं । तत्र जो स्वभावही से मूढ़ पुरुष हैं सो बालक कहिये परमार्थ तत्त्वके विवेक से शून्य होय इसमें क्या आश्चर्य है । इत्यभिप्रायः ॥ तथाच “ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमे वैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणते तनूँस्वाम् ८३।२१० ॥ ८४।२११ ॥ हे सौम्य ! प्रश्न । पुनः जिसके सम्पन्नज्ञान करके पुरुष, अबालक, कहिये विवेकी बुद्धिमान् पंडित, होते हैं ऐसा जो परमार्थ तत्त्व प्रत्यगात्मा, सो कैसा है, तहां, उत्तर, कहते हैं “ कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदा वृतः ” जिन, के आग्रह से सदा आवृत है, चारकोटियां हैं तिनकरके ? अर्थात् जिनकोटियों के प्राप्ति के निश्चयरूप गूढ़ों से अर्थात् आग्रह, हठ, विशेषसे । आत्मा सदा आवृत, कहिये ढका हुआ, है । अरु वे प्रसिद्ध “ अस्ति नास्ति, इति ” है अरु नहीं है । इत्यादिक प्रकारसे कथन करी दुई वादियों, करके कल्पितशास्त्रों के निर्णय से निरूपण करने योग्य चार कोटियां, कहिये, पक्ष, हैं । अरु “ भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्व्वदृक् ” भगवान्, स्पर्श रहित जिसने देखा है सो सर्व्वदृक् (द्रष्टा) होता है ? अर्थात् तिन वादियों को इन “ अस्ति नास्ति ” इत्यादि चार कोटियोंसे । अर्थात्

प्राप्य सर्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम् । अनाप-
न्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते ८५।२१२ ॥

‘अस्ति’, ‘नास्ति’, निर्विशेष, विशेष, इन चार कोटियों से जो भग-
वान् (प्रत्यगात्मा) स्पर्शरहित । अर्थात्, अस्ति, नास्ति, भा-
वादिकों से रहित । है जिस । मुनि कहिये वेदान्तशास्त्र के मनन
विषे कुशल पुरुष ने देखा (साक्षात् यथार्थ अनुभव किया)
है सो उपनिषदों का वेत्ता पुरुष । अर्थात् मुख्यता के रूँके उपनिष-
द ही वेदान्त है । सर्वदृक्, कहिये सर्वज्ञ, परमार्थदर्शी बुद्धिमान्
पंडित होता है ॥ क्योंकि “मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते वि-
ज्ञाते इदं सर्वं विदितम्” इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से जो
सर्वाधिष्ठान प्रत्यगात्मा को सम्यक् प्रकार जानता है सो पण्डित
सर्वज्ञ होता है । तिससे इतर सर्व मायिक सर्वज्ञता है, इस प्र-
कार जानना ८४।२११ ॥

८५।२१२ ॥ हे सौम्य ! “ प्राप्य सर्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं
पदमद्वयम्, अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते ” १ सम्पूर्ण
सर्वज्ञता को पायके अद्वैत अरु आदि मध्य अन्त को प्राप्त हुये
अरु ब्रह्म-भावरूप पद को पायके इसके पश्चात् क्या चेष्टा करता
है, कुछ भी नहीं, २ अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, इस उक्त प्र कार
की समस्त सर्वज्ञता को पायके अद्वैत, अरु ‘आदि मध्य अन्त क-
हिये उत्पत्ति स्थिति अरु लय’ इनको अप्राप्त होयके, अरु “एष नित्यो
महिमा ब्राह्मणस्य ” यह नित्य महिमा ब्राह्मण का है ३ इस बृह-
दारण्यकी श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मभावरूप पद को पायके इस सर्वो-
त्कृष्ट आत्मलाभ के । कि, “आत्मलाभान्नपरं विद्यते ” इत्यादि
प्रमाण से जिस लाभ से पर (श्रेष्ठ) अन्य लाभ विद्यमान नहीं ।
पश्चात् क्या निष्प्रयोजन चेष्टा करता है, । अर्थात् साक्षात् आत्म-
ज्ञान होने के पश्चात् सो विद्वान् क्या निष्प्रयोजन कर्म्मों-
में प्रवर्त होता है । किन्तु कदापि यथा चेष्टा करता नहीं क्योंकि

विप्राणां विनयो ह्येष शमः प्राकृत उच्यते ॥ दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्छमं व्रजेत् ८६ । २१३ ॥

“नैव तस्य कृतेनार्थं तस्य कार्यं न विद्यते,” इत्यादि गीतास्मृति के प्रमाण से उसको कर्मों से कुछ भी अर्थ नहीं, ताते उसको कुछ भी कर्तव्यता विद्यमान है नहीं । अर्थात् उक्त प्रकार के आत्मलाभी को कुछ भी कर्तव्य नहीं ८५ । २१२ ॥

८६ । २१३ ॥ हे सौम्य ! [“यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति ” “यावत् जीवतारहे तावत् अग्निहोत्र को करे ” इत्यादि श्रुतिको अविद्वान् को विषय करनेवाली होने से, विद्वान् (आत्मज्ञानी) को अग्निहोत्रादि कर्म कर्तव्य नहीं, इसप्रकार कहा] अब तिस विद्वान्को भी शमदमादिककी विधिसे कर्तव्य है, यह शङ्काकरके कहते हैं, । यहाँ यह अर्थ है कि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को, यह विनय स्वाभाविक है, ताते सो श्रुतिकी आज्ञाके अधीन कर्तव्यताको सम्पादन करता नहीं अरु शमभी स्वाभाविक है ताते श्रुतिकी आज्ञासे करता नहीं । अरु दम भी स्वाभाविक होने से श्रुतिकी आज्ञाको इच्छता नहीं । अर्थात् शमदमादिक जो साधन है सो सम्यक् आत्मज्ञानकी प्राप्ति से पूर्व जिज्ञासावस्था में “शान्तो दान्त उपरतितिशुसमाहितो भूत्वा ” इत्यादि श्रुति आज्ञा प्रमाण कर्तव्य है अरु जब उन साधनों करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा सम्यक् ज्ञान होता है, तब वह पूर्वकिये शमादिक साधन स्वभाव भूत होने से वह विद्वान् साधनप्रवर्त्तक श्रुति आज्ञाको इच्छता नहीं । इसप्रकार कूटस्वरूप आत्मस्वरूप का जानने वाला विद्वान् पुरुष सर्व विकार से रहित ब्रह्मस्वरूपसे स्थित होता है “ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति” [“विप्राणां विनयो ह्येष शमः प्राकृत उच्यते, दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्छमं व्रजेत्”] ब्राह्मणों का विनय है सोई स्वाभाविक शम कहते हैं, अरु दम भी यही है स्वाभाविक दम होने से ऐसे विद्वान् शमको पावता है, अर्थात् ब्राह्मणों

रावस्तु सोपलम्भञ्च द्वयं लौकिकमिष्यते । अवस्तु
सोपलम्भञ्च शुद्धलौकिकमिष्यते ८७।२।१४ ॥

(ब्रह्मवेत्ता) का जो यह स्वाभाविक आत्मस्वरूपसे स्थितिरूप विनय है, यह विनय है । अरु यहही विनय स्वाभाविक शम कहते हैं । अरु दमभी यही है, क्योंकि स्वभावसे शान्तरूप होनेसे स्वाभाविक दमकरके युक्त है ताते । ऐसे उक्तप्रकारका स्वभावसे शान्त ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मस्वरूप स्वाभाविक शान्तिरूप शमको पानता है । अर्थात् सम्यक् आत्मवेत्ता विद्वान्की जो स्वरूप स्थिति है सोई शमदमादि हैं, क्योंकि आत्मास्वभावसेही शमदमादि रूप है ताते, सो विद्वान् भी तैसाही है ८६ । २१३ ॥

८७ । २१४ ॥ हे सौम्य ! [इसप्रकारपरमत्के निराकरण द्वारा आत्मतत्त्व निर्धार किया । अथ अपनी प्रक्रियासे तीन अवस्थाके कथन द्वारा भी तिस आत्मतत्त्वका निर्धार करने को प्रथम दोनों अवस्थाका कथन करते हैं] ऐसे (उक्तप्रकार) परस्पर विरुद्ध होनेसे संसारके कारण अरु रागद्वेषरूप दोषोंके आश्रयवादियोंके सिद्धान्त है, एतदर्थ सो मिथ्याज्ञातरूपही है, इसप्रकार तिनकी युक्तियोंसेही देखायके, अरु उक्त चारकोटियोंसे रहित राग द्वेषादिक दोषोंका अनाश्रय स्वभावसेही शान्त अद्वैत सिद्धान्त ही सम्यक्ज्ञान है, यह निर्णय यहाँपर्यन्त समाप्त किया । अथ [यहाँ यह अर्थ है कि शिष्यकरके साधने योग्य जे आरोपदृष्टि तिसको आश्रय करके जाग्रदादि पदार्थके शोधनपूर्वक जो बोधका प्रकार सो अपनी प्रक्रिया है । ताते तिसही आत्मतत्त्वके लखानेके अर्थ (परायण) शेषग्रन्थ है] अपनी प्रक्रियासे आत्मतत्त्व लखानेके अर्थ अग्रशेष रहे ग्रंथका आरम्भ है, [जो प्रातिभासिक अरु व्यापहारिक रूप स्थूल पदार्थोंका समूह, सूर्यादि, देवताके अनुग्रहकरके, युक्त इन्द्रियों करके जाना जाय व जानते हैं सो जाग्रदवस्था है] सत्, कहिये स्थूल, वस्तु करके सहित जो वर्तमान होवे ऐसा जो व्यवहार,

अवस्तुवस्तुपलम्भश्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् । ज्ञानं ज्ञे-
यञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धेः प्रकीर्तितम् ॥ २१५ ॥

तिसको सवस्तु कहते हैं । सवस्तु सोपलम्भश्च द्वयं लौकिक-
मिष्यते । ६ अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शास्त्र द्वैत लौकिक प्र-
सिद्ध है । अर्थात् स्थूल वस्तुकरके वर्तमान होय ऐसा जो व्यवहार
तिसको सवस्तु कहते हैं । अरु तैसेही उपलम्भ कहिये प्रतीति
तिसकरके सहित जो वर्तमान होवे तिसको सोपलम्भ कहते हैं ।
ऐसा जो सवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शास्त्रादिक सर्व व्यवहारका
विषय ग्राह्य अरु ग्राहकरूप द्वैत लौकिक । अर्थात् लोक विषे प्र-
सिद्ध जाग्रदवस्था । ऐसे लक्षणवाला जाग्रत वेदान्तविषे अङ्गी-
कार किया है । बाह्य इन्द्रियतका क्रिया जो व्यवहार, सो संवृत्ति,
शब्दका अर्थ है । सो भी स्थूल पदार्थोंवत् स्वप्नविषे होते नहीं ।
तैसे होने से बाह्य इन्द्रियों के विलयहुये जाग्रतकी वासना से
मृतका तिन तिन पदार्थोंके आभास रूप आकार से भासना सो
स्वप्न, शब्दका अर्थ है । अरु ११ अवस्तुसोपलम्भश्च शुद्ध लौ-
किकमिष्यते । ६ अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध लौकिक अं-
गीकार करते हैं । अर्थात् स्थूल व्यवहारके भी अभावसे अवस्तु
रूप अरु प्रतीति सहित वस्तुवत् असत् वस्तु विषे भी प्रतीति
होवे है । तिस प्रतीति करके सहित वर्तमान है, एतदर्थ सोप-
लम्भ है । ऐसा अवस्तु अरु सोपलम्भ रूप शुद्ध । अर्थात् स्थूल
जाग्रतसे केवल सूक्ष्म । लौकिक । अर्थात् सब प्राणियों को सम-
धारण (सम) होने से लोक विषे प्रसिद्ध स्वप्न है इस प्रकार
अंगीकार करते हैं ॥ २१५ ॥

ज्ञानेचत्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम् । सर्वज्ञ-
ताहि सर्वत्र भवतीह महाधियः ॥ २१ ॥ २१ ॥

आह अरु ग्रहणसे जो रहित है सो लोकोत्तर है । अर्थात् उक्त ज्ञा-
न अरु स्वयं रूप । लोकसे पीछे होनेवाली जो सुषुप्ति अवस्था
तिसको लोकोत्तर कहते हैं । इस प्रकार जान्या है, अतएव तिस
सुषुप्ति को लोकातीत कहते हैं । अरु जिस करके आह अरु ग्रहण
का विषय ही लोक है, तिसके अभावसे सर्व प्रवृत्तिका बीज सुषुप्ति
अवस्था है, इस प्रकार शास्त्रवेत्ता पुरुषोंको प्रसिद्ध है । अरु "ज्ञानं
ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धिः प्रकीर्तितम्" । ज्ञानं अरु ज्ञेय, अरु वि-
ज्ञेय सदा बुद्धिर्मात्रोने कहा है, अर्थात् उपाय सहित परमार्थ
तत्त्व लौकिक, शुद्ध लौकिक, अरु लोकोत्तर, इस क्रम करके जिस
ज्ञानसे जानिये है, सो ज्ञान उक्त इन तीन ज्ञेय रूप है, क्योंकि
इस ज्ञानसे भिन्न ज्ञेय का असम्भव है ताते । अरु सर्ववादियों करके
कल्पित वस्तुके इन्ही तीनों विषे अन्तरभाव होनेसे, विशेष करके
जानने योग्य परमार्थ रूप सत्य एक । तुरीय नामवाला अद्वैत अ-
जन्मा आत्मतत्त्व ही सदा परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पण्डितों ने कहा
है "ज्ञेयं तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञातामृतमश्नुते" । इत्यादि गीतोक्त
भगवद्वाक्य प्रमाणसे सर्व ब्रह्मवेत्ता पण्डितों ने अपने शिष्य
मुमुक्षुओं प्रति विशेष करके जानने योग्य वस्तु एक तुरीय नाम
वाला आत्मतत्त्व ही कहा है । अतएव सर्व जिज्ञासुओं को आत्म-
ज्ञानार्थ पुरुषार्थ कर्तव्य योग्य है ॥ ११५ ॥

८६ । २१ ६ ॥ हे सौम्य । ["आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भ-
वतीति" आत्माके जानतेमंते सर्व यह जाना जाता है । इस श्रुति
की जो प्रतिज्ञा है सो उक्त वस्तु (आत्मा) के ज्ञान हुये ही मिछ होनी
है, इस प्रकार कहते हैं] "ज्ञानेचत्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम्,
सर्वज्ञता हि सर्वत्र भवतीह महाधियः" । ज्ञानविषे अरु तीन प्रका-
रके — अज्ञान (आत्माको) जाने हुये, महाबुद्धिमान्

हेयज्ञेयाप्यप्राप्त्यानिर्विज्ञेयान्यग्र्याणतः ॥ तेषाम-
न्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषुस्मृतः ॥ ६० ॥ २१ ७ ॥

पुरुषको इसलोक विषय सर्वत्र सर्वज्ञताही होती है ॥ अर्थात्
लौकिकादिक विषयवाले ज्ञानविषय, अरु लौकिकादिक तीन प्रकार
के ज्ञेयविषय, तहां प्रथम, लौकिक, ज्ञातं, स्थूल है, तिसके अभाव
हुये पश्चात् शुद्ध लौकिक, स्वप्न है, तिसके अभावहुये पश्चात्
लोकोत्तर, सुषुप्ति है । इसप्रकारही कमकरके तीनों स्थानके
अभावसे परमार्थ सत्य, तुरीय, अज्ञ, अद्वैत असंय, आत्मतत्त्व के
जानेहुये सर्वलोकसे अतिशय अलौकिक वस्तुको विषय करने
वाली सूक्ष्म बुद्धिकरके युक्त होने से, इसप्रकार ज्ञाननेवाला जो
आत्मवेत्ता महाबुद्धिमान पुरुष है तिसको इस संसारविषय सर्वदा
आत्मस्वरूपभूतही सर्वज्ञता कहिये सर्वरूप ज्ञानभाव, होती है,
क्योंकि एकवारके जानेहुयेही स्वरूप विषय व्यभिचारका अभाव
होता है । अर्थात् जैसे एकवारही सम्यक्प्रकार रज्जुके जानेहुये
पुनः उसविषय सर्प, जलधारादि भ्रान्तिरूप व्यभिचार होता नहीं
तैसे । अरु जिसकरके अन्यवादियोंवत् परमार्थके ज्ञाता पुरुषको
ज्ञानके उद्भव अरु तिरस्कार होतानहीं, एतदर्थ आत्मवेत्ता, विद्वान्
नको परिपूर्ण ज्ञानरूपता होवे है ॥ २१ ६ ॥ ७ ॥
६० २ ७ ॥ हेसौम्य ! [तीत अवस्थाके ज्ञेयपनेके कथनसे तिन
का परमार्थसे सद्भाव होवेगा । यह शंकाकरके तिसका निषेध करते
हैं] लौकिकादिकन के कमकरके ज्ञेयपनेके कथनसे परमार्थसे अस्ति
भावकी शंका होती है । सो युक्तही इसप्रकार कहते हैं । त्यागने
योग्य लौकिकादि, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीनों आत्मा विषय
असत्पने करके रज्जुविषय सर्पवत् त्यागकरने योग्य (हेय) है । अरु
यहां उक्त चार कोटियोंसे रहित जो परमार्थतत्त्व सो ज्ञेय कहते हैं
अरु बाह्य तीन पक्षोंसे संन्यासीकरके प्राप्त होने योग्य, पांडित्य,
बाल्य, अरु मौन, इन नामवाले क्रमसे जे, ध्वन, मन्त्र, निदि-

प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्मा अनादयः ।
विद्यते नहि ज्ञानात्वं तेषां कचन किञ्चन ११ । २१८ ॥

ध्यासन, रूप साधन सो प्राप्त करने योग्य है । अरु राग द्वेष काम क्रोध मोहादि जो कर्पायनामवाले दोष हैं सो पकवाने को योग्य होनेसे पाक्य हैं । अर्थात् जैसे पाककिया अन्नादिक उदर विषे विकारकेहेतु वा अंकुरके उत्पादक होतेनहीं, तैसेही शमदम क्षमा आर्जवता आदिरूप अग्निकरके सम्यक् प्रकार से पाककिये उक्त कर्पायादि दोष सो विद्वान्केविषे आभासमात्र रहेहुये अपने अनर्थरूप अंकुर वा फलके उत्पादक होतेनहीं । ताते हेयज्ञेयाप्य पाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः । तेषामन्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः । हेयज्ञेय आप्य पाक्य उपायोंकरके जाननेयोग्य है । तिन काज्ञेयसे अन्यत्र उपलम्भ तीनठिकाने जान्या है ; अर्थात् उक्तसर्व हेय (त्याज्य) ज्ञेय (जाननेयोग्य) आप्य (पावनेयोग्य) पाक्य (पकावनेयोग्य) जो हैं सो संन्यासियोंकरके उपायनसे जाननेके योग्य हैं । अरु प्रथमसे तिन हेयादिकोंका ज्ञेयते । अर्थात् परमार्थसत्य एकब्रह्मरूप ज्ञेयको छोड़िकै । अन्य ठिकाने जो अविद्याकी कल्पनामात्र उपलम्भ कहिये ज्ञान, हे, सो, हेय, आप्य, अरु पाक्य, इन तीनविषे भी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने जान्या है । तिनके परमार्थ सत्य से नहीं ॥ इत्यर्थः ॥ ६० । २१७ ॥

६१ । २१८ हे सौम्य ! [जो पूर्व कहा अस्तिआदि चार कोटियों से रहित जो ज्ञेय (जानने योग्य) है सो परमार्थ तत्त्व है, तिसको अब स्पष्ट करते हैं] " प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्मा अनादयः । विद्यते नहि ज्ञानात्वं तेषां कचन किञ्चन " । सर्व धर्म स्वभावसे आकाशवत् हैं अरु अनादि हैं अरु जानने योग्य हैं । तिनका ज्ञानात्वं कहीं भी कुछ भी विद्यमान नहीं ; अर्थात् परमार्थ से तो सर्व धर्म ' कहिये आत्मा ' स्वभावसे सूक्ष्मनिरंजन अरु सर्वगतपने विषे आकाशवत् है " आकाशवत्सर्वगतः

आदिवुद्धाः प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चिताः ।

यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वाय कल्पते ६२।२१९॥

स नित्यः ” अरु अनादि । कहिये व्यवधान से रहित नित्य है, इस प्रकार मुमुक्षुओं करके जानने योग्य है । अरु तिनका नानात्व कहीं भी । अर्थात् देशकाल अवस्थादिक किसी विषे भी । कुछ भी । अर्थात् अणुमात्र भी । विद्यमान नहीं । अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण आत्मा विषे एक अणुमात्र भी नानात्व नहीं ॥ यह अर्थ है ११ । २१८ ॥

६२।२१९॥ हे सौम्य ! अब आत्माख्य धर्म की ज्ञेयता कहिये जानने की योग्यता, भी व्यावहारिक ही है, पारमार्थिक नहीं, इस प्रकार कहते हैं । आदिवुद्धाः प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चिताः । सर्व धर्म स्वभाव से ही आदि विषे बुद्ध निश्चित स्वरूपवाले हैं, अर्थात् सर्व धर्म, कहिये आत्मा, स्वभाव से ही आदि विषे बुद्ध है, अर्थात् जैसे नित्य प्रकाश स्वरूप है तैसे ही नित्य बोध स्वरूप है अर्थात् नित्य निरन्तर बोध रूप ही प्रकाशवाला है । अरु तिसका निश्चय अब करने का है ऐसा नहीं, अरु ऐसा है, ऐसे भी नहीं इस प्रकार के संशय युक्त स्वरूपवाले नहीं, किन्तु नित्य निश्चित स्वरूप वाले हैं । यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वाय कल्पते । जिस को ऐसे शान्ति होती है सो अमृत भाव के अर्थ समर्थ होता है, अर्थात् जिस करके सर्व धर्माख्य आत्मा बोध रूप निश्चित स्वरूपवाले हैं, ताते जिस मुमुक्षु को ऐसे उक्त प्रकार करके अपने अर्थ वा परके अर्थ सर्वदा बोध रूप निश्चय विषे निरपेक्षता रूप शान्ति होती है । अर्थात् जैसे सूर्य अपने अर्थ अरु परके अर्थ अन्य प्रकाश की अपेक्षा से रहित होता है, तैसे जिसको आत्मा विषे सर्वदा बोध के कर्तव्यता की निरपेक्षता रूप शान्ति होती है सो अमृत भाव, कहिये मोक्ष, के अर्थ समर्थ होता है ॥ इत्यर्थः ६२।२१९॥

आदिशान्ताहनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्घृताः । सर्व-
धर्माः समाभिन्ना अजं सान्यं विशारदम् ६३ । २२० ॥

वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा । भेदनि-
म्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः ६४ । २२१ ॥

६३।२२० ॥ हे सौम्य ! [अब विद्वान् मुमुक्षु की रुचिबद्धावने
के अर्थ अविद्वान् की निन्दाको दिखावते हैं] 'तैसे (उक्त प्रकार
के) आत्मा विषे शान्ति की कर्त्तव्यता भी है नहीं, 'इस प्रकार
कहते हैं " आदिशान्ताहनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्घृताः । सर्व
धर्माः समाभिन्ना अजं सान्यं विशारदम्" । सर्व धर्म आदिविषे
शान्त अनुत्पन्न हैं अरु स्वभावसे ही सम्यक्-सुखरूप हैं अरु
समान हैं अभिन्न हैं, अरु जन्मरहित समभाव, विशारद हैं, अर्थात्
जिसकरके सर्व धर्म कहिये आत्मा, आदिविषे, कहिये नित्य-
ही शान्त हैं, अरु अनुत्पन्न, कहिये अजन्मा, हैं अरु समान हैं
अरु-अभिन्न हैं, इस प्रकार जिसकरके जन्म रहित समभाव
कहिये आत्मतत्त्व, विशारद कहिये, विशुद्ध है, ताते शान्ति
वा मोक्ष कर्त्तव्य नहीं । अरु जिसकरके नित्य एक स्वभाववाले
आत्मा का कुछ भी किया हुआ होता है नहीं, एतदर्थ आत्माको
संसार दुःख की निवृत्ति वी सुख की, उत्पत्ति किया जन्य नहीं,
किन्तु नित्यही सिद्ध है-इत्यर्थः ६३ । २२० ॥

६४।२२१ ॥ हे सौम्य ! [ऐसे उक्त प्रकार, अविद्वान् नानात्वदर्शी
की निन्दाको दिखायके, अविद्वान् की प्रशंसाको प्रसारित करते हैं]
जो पुरुष उक्त प्रकारके परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं सोई लोकविषे अकृ-
पण (ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण) हैं " एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्मा-
ल्लोकात्प्रेति, स ब्राह्मणः" । अरु निन अकृपण से अन्य तो सर्व
कृपण हैं, इस प्रकार कहते हैं "वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां
सदा, भेदनिम्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः" । द्वैत-
वादी भेदके अनुयायी हैं ताने निनको कृपण जानते हैं, भेदविषे

अजेष्वाजमसंकान्तं धर्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न
क्रमते ज्ञानमसंगं तेन कीर्तितम् ६६ । २२३ ॥

आत्मारूप अरु सर्वभूतों के हितरूप विद्वान् के मार्गविषे पद । पद
चिह्न । को खोजते हुये देवता भी मोहको पावते हैं । जैसे आकाश
विषे पक्षियोंकी वा जलविषे मीनादिकोंकी गति । खोज वा पाद
चिह्न । देखते (पावते) नहीं । तैसेही पावनेयोग्य पद से रहित
पुरुष, परिपूर्ण ज्ञानवान् महात्मा की गति जाननेको शक्य नहीं
। क्योंकि वो ज्ञानवान् आवागमन से रहित होनेसे गति (मार्ग)
से रहित है । ताते “ गतिरग्रनास्ति ” इत्यादिक श्रुतियों के प्रमा-
णसे ६५ । २२२ ॥

६६ । २२३ ॥ हे सौम्य ! [“ अजे साम्ये ” अजन्मा सम-
भाव है । इसप्रकार जो पूर्व ६५ वें श्लोक विषे कहा, सो प्रमेय है,
तिसको विषय करनेवाले निश्चयवाला प्रमाता है, अरु तिस
प्रकारका निश्चयरूप ज्ञान प्रमाण है । इसप्रकार वस्तुके परि-
छेद कहिये भेद के, हुये तिन ज्ञानी पुरुषका महाज्ञानवान्पना
कैसे है । यह शङ्काकरके कहते हैं] । शङ्का । कैसे उनका महाज्ञा-
नीपना है । तहां समाधान, कहते हैं “ अजेष्वाजमसंकान्तं ध-
र्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न क्रमते ज्ञानमसंगं तेन कीर्तितम् । ” अ-
जन्मा धर्मो विषे अजन्मा ज्ञान है न जाननेवाला अङ्गीकार करते हैं ।
जाते ज्ञान गमन करता नहीं, ताते असंग कहा है, अर्थात् जिस-
करके सूर्य विषे उष्णता अरु प्रकाशवत्, अजन्मा ‘ कहिये अचल,
धर्म ‘ कहिये आत्मा ‘ विषे अजन्मा ‘ कहिये अचल ‘ ज्ञान अङ्गी-
कार करते हैं, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है ताते । एतदर्थ
अजन्मा ज्ञान अन्य अर्थविषे न जाननेवाला अङ्गीकार करते हैं ।
अरु जिस करके ज्ञान अन्य अर्थ विषे गमन करता नहीं, तिसही
कारण करके सो आकाश के तुल्य असंग है ६६ । २२३ ॥

६७ । २२४ ॥ हे सौम्य ! [कूटस्थरूप ब्रह्मही तत्त्व है, इसप्र-

अणुमात्रेऽपिवैधर्म्ये जायमानोऽविपश्चितः । असङ्गता सदानास्ति किमुतावरणच्युतिः ६७ । २२४ ॥

अलब्धावरणाः सर्वधर्माः प्रकृतिनिर्मलाः । आदौ बुद्धास्तथामुक्ताबुद्धयन्तद्भतिनायकाः ६८ । २२५ ॥

कार अपने [सिद्धान्ती] के मतविषे ज्ञान असंग सिद्ध होता है, इसप्रकार कहा । अरु मतान्तरविषे पुनः अपने को विषय करने वाला होने से ज्ञानका असंगपना असंगत होता है, इसप्रकार कहते हैं] ' अणुमात्रेऽपिवैधर्म्ये जायमानोऽविपश्चितः । असङ्गता सदानास्ति किमुतावरणच्युतिः ' । अणुमात्र भी विरुद्ध धर्म-वाले अरु उत्पन्न होनेवाले विषे अविवेकी को सदा असंगभाव नहीं तब आवरण को नाश क्या कहना है ? अर्थात् याते अन्य वादियों के मतविषे अणुमात्र ' कहिये अल्प रंचकमात्र, भी विरुद्ध धर्मवाले, अरु बाह्य वा अन्तर उत्पन्न होनेवाले वस्तु (पदार्थ) विषे अविवेकी पुरुषको जब सदा (निरन्तर) असंगभाव नहीं है तब उनको बन्धरूप आवरणका नाश न होवे इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं ६७ । २२४ ॥

६८ । २२५ ॥ हे सौम्य ! जो कोई ऐसा कहे कि तिन वादियोंको आवरणकानाश नहीं ऐसे कहनेवाले जो तुम सिद्धान्ती अनावरणवादी तिन, तुमने अपने सिद्धान्तविषे आत्मारूप धर्मोंको आवरण अंगीकार किया, सो कथन बने नहीं, इसप्रकार कहते हैं ' अलब्धावरणाः सर्वधर्माः प्रकृतिनिर्मलाः ' । सर्व धर्म आवरणको अप्राप्त हैं अरु स्वभाव से निर्मल हैं ? अर्थात् सर्व धर्म ' कहिये आत्मा ' । अर्थात् यहाँ आत्माको सर्व शब्दकेरके जो बहुवचन है सो बुद्ध्यादिरूप उपाधिको लेके हैं ' घटाकाशवत्, ऐसे जानना, अरु निरुपाधि आत्मा तो एकही है महदाकाशवत् ' ऐसे जानना । अविद्यादिक बन्धनरूप आवरणको अप्राप्त ' कहिये बन्धन रहित, हैं । अरु स्वभावसे निर्मल ' कहिये सदा शुद्ध,

॥ क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः ॥ सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम् ॥ १९१ ॥ २२६ ॥

हैं “शुद्धमपापविद्धम्” अरु “आदौ बुद्धास्तथामुक्ता बुद्ध्यन्त इति नायकाः” ॥ आदिविषे बुद्ध है तैसे मुक्त है, ऐसे नायक जानते हैं ऐसे कहते हैं ३ अर्थात् जैसे धर्माख्य आत्मा आवरण रहित शुद्ध है तैसे, आदिविषे कहिये नित्य, बुद्ध कहिये बोधस्वरूप, है। अरु तैसेही नित्य मुक्त है। जिसकरके नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाले आत्मा हैं तातेही बन्धन रहित हैं, इसप्रकार पूर्वके “अलब्धावरणाः” इस पदसे सम्बन्ध है। अरु प्रश्न जब ऐसे हैं तब कैसे जानते हैं, तहां ‘उत्तर’ कहते हैं, जैसे नित्य प्रकाशरूप हुआ भी सूर्य प्रकाशता है, इसप्रकार कहते हैं, अथवा जैसे नित्य अचलहुये भी पर्वत नित्यही स्थित होते हैं, इस प्रकार कहते हैं। तैसेही ये आत्मा नायक। अर्थात् जाननेको समर्थ होनेकरके स्वामी। हुये भी अर्थात् बोधशक्ति युक्त स्वभाव वाले हुये भी जानते हैं, इसप्रकार कहते हैं ६८ ॥ २२५ ॥

६६।२२६॥ हे सौम्य! “क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः। सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम्” ॥ संतापवाले पंडित नका ज्ञान धर्मों विषे जाता नहीं, अरु सर्वधर्म भी अरु ज्ञान भी तैसे हैं ३ अर्थात्, जिसकरके सन्तापवाले ‘कहिये सूर्य के तापवाले, आकाशके तुल्य भेदसे रहित, वा पूजा करने योग्य बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पण्डितका ज्ञान अन्यविषयरूप धर्मों विषे जातानहीं, किन्तु जैसे सूर्यविषे प्रकाश अभिन्नरूपसे स्थित है, तैसे आत्मरूपधर्म विषेही स्थित है, इसप्रकार अंगीकार करते हैं। ताते आत्मा विषे मुख्यपना होनेके योग्य है। अरु सर्व धर्म, कहिये आत्मा, भी तैसेही है अर्थात् ज्ञानवत्ही आकाशके तुल्य होनेकरके अन्य अर्थ विषे कोई भी जाते नहीं। अरु जो इस चतुर्थ प्रकरण के प्रथम श्लोकविषे “ज्ञानेनाकाशकल्पेन” ८ आकाशके तुल्य ज्ञान से

इत्यादिक कथन करनेका आरंभ किया था, सी यह आकाश के तुल्य सन्तापवाले परमार्थदर्शी पण्डितों का, ज्ञान आत्मा से अभिन्न होने करके, आकाश के तुल्य ज्ञान अन्य किसी भी अर्थ विषे जाता नहीं । अर्थात् जैसे आकाशकी अवकाशता आकाश से अभिन्न होने करके अन्य किसी विषे भी जाता नहीं, तैसे परमार्थदर्शी विद्वान् का ज्ञान आत्मा से अभिन्न होने करके अन्य किसी भी अर्थ विषे जाता नहीं, तैसे धर्माख्य आत्मा है ॥ इसरीति से आकाशवत्, अचल, अक्रिय, निर्वच्य, नित्य, अद्वितीय, असंग, अदृश्य, अग्राह्य, क्षुधादिकों से रहित ब्रह्मरूप आत्मतत्त्व है । क्योंकि “ न द्रष्टुर्दृष्टि विपरिलोपो विद्यते ” । द्रष्टा की दृष्टिका लोप विद्यमान है नहीं । इस श्रुति के प्रमाण से । अरु, ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाता, इनके भेद से रहित परमार्थ तत्त्व अद्वैत है । अर्थात् अद्वैत रूप आत्मतत्त्व से इतर ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुका अभाव है तात् जानने रूप ज्ञानका भी अभाव है अरु ज्ञेय, ज्ञानका अभाव है तात् आत्मा विषे ज्ञाता विशेषणका भी अभाव है, इस प्रकार विशेष विशेषण, अरु विशेष्यत्वके अभाव से एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्व ही है । यह बुद्धने कहा नहीं । अरु यद्यपि ध्याहारिका निषेध अरु ज्ञानमात्र की कल्पनारूप अद्वैतवस्तु की समीपता कही है तथापि यह तो परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैत वेदान्त विषे ही जानने के योग्य है ॥ इत्यर्थः ॥ ६६ ॥ २२६ ॥

१८०।२२७ ॥ हे सौम्य ! [चार प्रकरणों करके युक्त इस कारिका रूप शास्त्र की आदिवत् अन्तविषे भी परदेवतारूप तत्त्व को स्मरण करते हुये, तिसके नमस्काररूप मंगलाञ्जल को सम्पादन करते हैं] शास्त्र की समाप्ति विषे परमार्थ तत्त्व की स्तुत्यर्थ नमस्कार कहते हैं “ दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्य विशारदम् । बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मो यथावलम् ६ दुःखसे देखने योग्य अति गंभीर अजन्मा समभाव रूप विशुद्ध नानाभाव से रहित पदको जानके यथावल तथा नमस्कार करते हैं ; अर्थात् दुःखसे दशन

दुर्दर्शमतिगम्भीरमजस्रसाम्यं विशारदम् । बुद्ध्वापद
मनानात्वं नमस्कुर्मो यथाबलम् १०० । २२७ ॥

इति गौडपादीयकारिकायामन्ताशान्ताख्यं
चतुर्थप्रकरणम् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्य कृत कारिका सहित
मांडूक्योपनिषद् समाप्तम् ॥

के योग्य, कहिये “अस्ति, नास्ति” “है, नहीं है” इत्यादि, चार
कोटियोंसे । जो वादियों करके कल्पित सापेक्षक हैं । रहित होने
से अतिश्रम । सूक्ष्मबुद्धिकरने । से जानने योग्य है, अरु एतदर्थ ही
अति गंभीर, कहिये - अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकरके महासमुद्र-
वत् दुःखसे प्रवेश करने के योग्य, अरु अजन्मा, समभावरूप
विशुद्ध नानाभावसे रहित, ऐसे पदको जानके तिसरूपहुये हम
तिसपदके अर्थ, परमार्थ से व्यवहार करने के, अयोग्यको भी,
मायासे व्यवहारका विषय सम्पादनकरके । अर्थात् जो वास्तव
करके सर्व व्यवहारातीत-एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्व है,
तिस विषे नमस्कार करनेयोग्य अरु नमस्कार करनेवाला अरु
नमस्काररूप किया इनकी कल्पना करके । जैसी सामर्थ्य है
तैसे नमस्कार, विधान, करते हैं १०० । २२७ ॥

इति श्री गौडपादाचार्य कृत कारिकाचतुर्थ
प्रकरण, भाषाभाष्य, समाप्तम् ॥

भाष्यकार श्रीशंकराचार्यकृत मंगलाचरणम् ॥

अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्ययोगाद्गतिच गतिमत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविधविषयधर्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तु ब्रह्मयत्तन्नतोस्मि १ ॥

१ ॥ हे सौम्य ! अब भाष्यकार श्रीशंकराचार्य भी भाष्यकी समाप्तिविषे शास्त्रकरके, प्रतिपादन किये पर देवताके स्वरूपको स्मरण करके तिसके, नमस्काररूप मंगलाचरणको आचरण करते हैं ॥ “अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्ययोगाद्गतिच गतिमत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविधविषयधर्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तु ब्रह्मयत्तन्नतोस्मि”-१-६ जो जन्मसे रहित हुआ भी ऐश्वर्य के योगसे प्राप्त होता हुआ, गतिसे रहित हुआ गतिमान् पने को प्राप्त होता हुआ अरु एक हुआ, विविध प्रकारके विषयरूप धर्मों के ग्रहण करनेवाले, विवेकहीन-दृष्टिवाले को अनेकवत् भासता है, अरु जो ब्रह्म-प्रणतके भयको नाश करता है तिसके अर्थ में नमस्कार-करता हों ? अर्थात् जो ब्रह्म जन्मादिक-सर्व-पदभाव । विकार रहित हुआ भी-८ अर्थात् वास्तव से कूटस्थ सिद्ध है तथापि > सो अनिर्वचनीय अज्ञानके शक्तिरूप ऐश्वर्यके योगसे आकाशादि कार्यरूप करके जन्मके बन्धन को प्राप्त होता हुआ । अर्थात् प्राप्त होयके जगत्का उपादान कारण है, ऐसे व्यवहार का भागी होता है, इसप्रकार श्रुति अरु ब्रह्मसूत्र विषे ब्रह्मको जगत् का कारणपना प्रसिद्ध है । अरु जो ब्रह्म, यद्यपि कूटस्थपने अरु व्यापकपने करके गमन से रहित हुआ स्थित होता है, तथापि उक्तप्रकारके अज्ञानके माहात्म्यसे कार्य ब्रह्मरूपनाको पायके गमनमानपने को प्राप्त होता हुआ । अरु जो ब्रह्म एक हुआ, अर्थात् वास्तव से सर्व नानाभावसे रहित एक

॥ प्रज्ञाविशाखत्रेयधुभित्तजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भू-
तान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारु-
ण्यादुदधारामृतमिदममरेर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपू-
ज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ॥ २ ॥

रस अद्वैत है, इस प्रकार उपनिषदों करके जाना जाता है, तथापि
अनादि अनिर्वचनीय अविद्या के वशसे विविध प्रकार के वि-
षयरूप धर्मों के ग्रहण करनेवाले होने करके विवेकरूप इष्टि
से रहित पुरुषों को जीव, जगत्, अरु ईश्वर, इत भेदों करके
अनेकवत् भासता है । अरु जो ब्रह्म आचार्यके उपदेशसे जनित
बुद्धिवृत्तिविषे फलरूपसे आरुढ़ हुआ प्रणति कहिये ब्रह्मनिष्ठा-
वान् पुरुषों के, अविद्या अरु तिसके कार्यरूप भयंकर नाशकर-
ता है, तिस सर्व उपनिषदों विषे प्रसिद्ध सर्व परिच्छेद भेद । ते
रहित प्रत्यगात्मारूप ब्रह्मके अर्थ में नमस्कार करता हों, अर्थात्
तिसको विषय करनेवाले भावको प्रकट करता हों, १ ॥ १

॥ २ ॥ हे सौम्य ! अर्वाग्रन्थरचनाके प्रयोजनके देखावने पूर्वक इस
व्याख्यान किये आगमरूप शास्त्रके कर्त्ता होनेरूपसे स्थित हुये
परमगुरु को प्रणाम करते हैं । प्रज्ञाविशाखत्रेयधुभित्तजलनि-
धेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघो-
रेसमुद्रे । कारुण्यादुदधारामृतमिदममरेर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तं
पूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ॥ २ ॥ जो निरन्तर
जन्मरूप ग्राहोंकरके भयंकर समुद्रविषे परवश हुये भूतोंको
देखके करुणाभावसे बुद्धिरूप मंथनकाण्डके डालने से विडोलन
को प्राप्त हुये वेदनामरु समुद्रके अन्तरस्थित अरु देवताओं को
भी दुःखसे प्राप्त होने योग्य इस अमृत को भूतनके हेतुसे उद्धार
करता हुआ, तिस इस पूज्योंकरके भी पूजने को योग्य परम
गुरुको पादनविषे पतनसे में नम्र हुआ हों, अर्थात् जो जन्मादि
रूप ग्राहादि जलचरोंकरके भयंकर जो संसाररूप समुद्र तिस

यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहृतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्चघोरेह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे । यत्पादावाश्रितातां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा । तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये ३ ॥ इति ॥

विषे पर (कर्म) वशहुये प्राणियोंको देखके प्रकटहुई जो करुणा तिसकरके बुद्धरूपी मथनकाष्ठ (रथ) के डालने से मथनको प्राप्तहुये वेदनामक समुद्रके अन्तर स्थित अरु । “ देवारत्रापि विचिकित्सितं पुरानि हि सुविज्ञेयमणुरेपधर्मः ” इत्यादि प्रमाण से । देवताओं करकेभी दुःप्राप्य, इस ज्ञानरूप अमृतको प्राणियोंके हितार्थ उद्धारकरता । निकासता हुआ, तिस इस पूज्योकरके भी पूजनेयोग्य । अर्थात् श्रीशंकराचार्य करके पूजनेयोग्य, उनके गुरु श्रीगोविन्दाचार्य, अरु तिनकरके पूजनेयोग्य उनके गुरु श्रीगौडपादाचार्य, अतएव यहाँ भाष्यकार श्रीशंकराचार्य ने परमगुरु गौडपादाचार्यके अर्थ । पूज्योकरके भी पूजने योग्य यह विशेषण दिया है । परमगुरुको उनके चरणोंविषे अपनेमस्तक के बारंवार नमनभावरूप पतन से । अर्थात् उनके चरणों में बारंवार अपने मस्तकको स्पर्श करावनेसे । मैं नम्रहुआ हों २ ॥ नि ३ ॥ हे सौम्य ! पुनः अब अपने गुरुकी भक्तिके, विद्याकी प्राप्त विषे अन्तरंगपनेको अंगीकारकरके तिन गुरुके पादपद्म युगलको प्रणाम करते हैं यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहृतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्चघोरेह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे । यत्पादावाश्रितातां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये ” ६ जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेक-जन्ममय घोर भयंकर समुद्रविषे अनुद्भूत अरु उद्भूत अन्तःकरणविषे मोहरूप अन्धकार नाशको प्राप्तहोताहुआ, तिनके उभय पादपद्मके अर्थ आश्रितहुये श्रव-

गज्ञान शान्ति अरु विनयकी प्राप्ति होती है, अरुजाते सफल है ताते श्रेष्ठ है, अरु पवित्र करनेवाले, संसार के किये भय को नाश करने वाले, तिनके उभय पादपद्मोंके अर्थ सर्वके भावसे नमस्कार करताहों ? अर्थात् जिनकी बुद्धिरूप प्रकाशकी प्रभासे मेरा अनेकदेव तिर्यक् आदिक योनियोंविषे नानाप्रकारके देहभेदके ग्रहणरूप जन्ममयघोर कहिये क्रूर, अरु भयकर समुद्र विषे कदाचित् कार्यरूपसे अनुद्भूत अरु कदाचित् कार्यरूपसे उद्भूत कहिये अनर्थकारी अन्तःकरणविषे व्याकुलताके हेतु अविवेकका कारण अनादि अज्ञानमय मोहरूप अन्धकार नाशहोताहुआ, अरु जिन गुरुके उभय चरणोंके ताई आश्रितहुये अन्य शिष्योंको भी मत्तन अरु निदिध्यासन सहित श्रवणज्ञान अरु इन्द्रियोंकी उपरतिरूप शान्ति अरु नमूतारूप विनय (निरहंकारता) की प्राप्ति होती है । अरु जिसकरके उन श्रवणों आदिकोंकी प्राप्ति सफल है ताते श्रेष्ठ है सो होती है । अरु सर्व जगत् केभी पवित्र करनेवाले अरु अपने सम्बन्धी सर्वजनो के संसार के किये भयको कारण सहित नाश करनेवाले, तिन हमारे गुरुके युगलपाद पद्मोंके अर्थ कायिक, वाचिक, मानसिक, इन सर्व के प्रकटभावसे नमस्कार करताहों ॥ नमस्कार करताहों, नमस्कार करताहों ३ ॥ इति मंगलम् ॥

इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य ब्रह्मानन्दसरस्वति पूज्यपाद आति अल्पज्ञ शिष्य यमुनाशंकर नागरवाद्यणकृत सांडूक्योपनिषद् संहितागोडपादीयकारिका, श्रीभगवत्पाद भाष्यानुसार क्वचित् स्वरूपलिप्त भाषाभाष्य समाप्तम् ॥

हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

ॐ अथ

अब इस भाषाभाष्यकार कृत सर्व उपनिषद्
आदिकों का प्रणवोपासन विचार
देखावने के अर्थ संग्रहनाम
प्रकरण प्रारम्भ करते हैं ॥

सूचना ॥

हे सौम्य ! यह माण्डूक्यनाम उपनिषद् केवल प्रणवकी व्याख्या अरु ब्रह्म आत्माकी अभेद एकताका बोधक अरु संन्यासियोंका उपास्य इष्ट होनेसे सर्व उपनिषदोंका सार है, अतएव कर्मादिकों से अरु तिनके फलादिकों से उपराम चित्त वैराग्य शील मुमुक्षुओं को उसकी उपासना अरु अर्थविचार अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यह सर्वोत्तम आलम्बन (आश्रय) है "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम, एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे । एतदर्थ यह इस उपनिषद्की अरु तदुपरि श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिकाकी व्याख्याकी समाप्तिके पश्चात् अवसर पायके अन्य उपनिषदोंमें जो प्रणवोपासना अरु तिसका फल अरु प्रणवकी महिमा कही है, अरु जिसप्रकार हिरण्यगर्भादिक सातो सिद्धान्तकारोंने अपने अपने सिद्धान्तानुसार प्रणवोपासना कही है अरु जिसप्रकार अन्य ऋषियोंने मात्राके विचार कहे हैं अरु प्रणवके जो १० नाम हैं सो अरु तिनकी व्याख्या अरु जिसप्रकार अकारादि मात्राओंके लय चित्तन से सर्वाधिष्ठान निर्विशेष शुद्ध प्रणवके लक्ष्य तुरीय आत्माका लक्ष्य कराया है सो इत्यादि सर्व अरु अन्य भी कल्पित विचार, जो प्रणव विषयक है, तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहता हूँ क्योंकि यहाँ प्रणव विषयक विचार कहने का अवसर अवकाश है, तिसको भी सावधान होय श्रवण करो ॥

ईशावास्योपनिषद्गतॐकारोपासना

ॐकतोस्मरकृतथंस्मरं क्रतोस्मरकृतथंस्मरं ॥

हे सौम्य ! अब प्रथम ईशावास्य नामक शुक्लयजुर्वेदीय संहि-
तोपनिषद्के सप्तदशवें १७ वें मन्त्रके उत्तरार्द्धविषे प्रणवोपास-
ना पूर्वक निष्काम कर्मकर्त्ता पुरुषके अर्थ वा वर्णत्रयी के मनुष्य
जो वेदाध्ययन के अधिकारी हैं तिनके अर्थ उनके अन्तकाल
, कहिये देहावसानसमय, ॐकार के स्मरणकरनेके अर्थ वेदकी
‘वा’ वेद द्वारा ईश्वरकी आज्ञाहै । अरु तिस आज्ञाके अनुसार
‘उ’ के प्रकारके उत्तम विद्वान् पुरुष अपने देहावसान समय अपने
‘मन’को जो शिक्षा करते हैं तिसको श्रवण करो । तथाच श्रुतिः
“ ॐकतोस्मरकृतथंस्मरं क्रतोस्मरकृतथंस्मरं ” ये विद्वान्
अपने मनसे कहते हैं, हे निरन्तर संकल्प विकल्प के घरनेहारे
‘महाचंचल’ संकल्परूप मन ! तू इतनेकालपर्यन्त असंख्य संक-
ल्पोको करताही रहा, अरु उभयलोकके विषयोंको अरु द्वात्रा-
‘नु’सार कर्मों के होनहार फलको स्मरण करताही रहाहै सो
अस्तु, परन्तु अब जो तुझको स्मरण करने योग्यहै तिसही के
‘स्मरण’ करनेवा समय आय उपस्थितहुआहै, अरु जिनकी तेने
सम्यक्प्रकार उपासना , कहिये जप अरु अर्थकी भावना, कियाहै
तिस ॐकारका , जो ब्रह्मका प्रतीकहै, स्मरण कर, क्योंकि जिन
समय के साधने के अर्थ बाल्यावस्थासेही उपासनादिक कियेहैं,
सो समय अब प्राप्तहै । अतएवअचनू अपनेपरम कल्याणार्थ ॐका-
रका स्मरणकर । अरु हे मन ! बाल्यावस्था (यजोपवीत संस्कार)
मे अरु अद्यावधि पर्यन्त जो तूने कर्मानुष्ठान कियाहै, अर्थात्
जिनसंख्या गावत्री अग्निहोत्रादि निष्काम कर्मोंके करनेमे अशुभ
, बामुक, कर्मस्पर्श करने नहीं “ एवं त्वयि नान्यथेनोऽस्ति न कर्म
लिप्येनरे ” इसमन्त्रप्रमाणसे । निन कर्मोंको स्मरणकर । अर्थात्
नरेकर्म उपासना ऐमेनहीं कि देहत्यागोत्तर अगनि प्राप्तहीन

कठवल्ली उपनिषद्गतप्रणवोपासना ॥

सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति तपाश्चंसि सर्वाणि च य
द्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्म चर्य्यश्चरन्ति तत्ते पदं सं
ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्व्येवाक्षरम् ब्रह्म एतदेवा
क्षरम् परम् । एतद्व्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य
तत् ॥ एतदालम्बनं त्र्यंशं प्रमेत दालम्बनम् परम् । एत
दालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

का भय होय, अतएव तू अपने किये सर्वोत्तम कर्म उपासना को
इस उपस्थित समय स्मरण कर-समयको साध-निर्भय हो ॥ हे
सौम्य ! इस प्रकार मनुष्यवर्णत्रयी को सर्वकाल परमोत्तम वेदोक्त
कर्म उपासना करके अन्त समय तिनके स्मरण से, अवगति से
निर्भय होय परमोत्तम गतिको प्राप्त होना योग्य है यह शुक्रयजुमा-
ध्यन्दिनि संहिताकी अन्तिम आज्ञा है- अरु इस मन्त्रार्थ में जो
स्मरण करनेको दो बार कहा है सो स्मरणके आदरार्थ है, अतएव
अपने कल्याणार्थ ओंकारका स्मरण विचार, अवश्यही कर्त्तव्य है ॥
इति सिद्धम् ॥

अर्थ कठवल्ली उपनिषत्सम्बन्धि प्रणवविचार ॥

हे सौम्य ! अब कठवल्ली उपनिषद्विषे जो ओंकारोपासना की
प्रशंसा महिमा-कही है तिसको भी श्रवण करो- हे प्रियदर्शन !
कोई एक उद्दालक नाम ऋषिके-नचिकेता नाम बालक पुत्र स-
र्वोत्तमाधिकारी ने आत्मदेव के जानने की इच्छा धारके तीसरे
वरदान करके अपने आचार्य भगवान् वैवस्वत (यमराज, वा मृत्यु)
सहाराजसे प्रार्थना किया कि हे भगवन् ! “अन्यत्र धर्मादन्यत्रा-
धर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । अन्यत्र भूताश्च भव्याश्च यत्तत्प-
श्यसि तद्वद” जो शास्त्रोक्त धर्म अरु तिसके स्वर्गादिक फल

से, अरु तिनके कारक साधनों से पृथक् है, अरु तैसेही शास्त्रकरके कहे अधर्म अरु तिनके नरकादिफल अरु कारक साधनों से पृथक् है । अरु तैसेही इन कार्य्य अरु कारणों से भी अन्य है, अरु तैसेही भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमान कालत्रयसे भी जो पृथक् है, अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान यह तीनकाल, अरु कार्य्य कारण देश, अरु धर्म अधर्म अरु तिनके फल अरु साधन, यह वस्तु । इसप्रकार उक्त देश काल वस्तुसे पृथक् हुआ, इन करके परिच्छेद (भेद) को प्राप्त होतानहीं, ऐसा जो सर्व व्यवहारके विषय से रहित है, अर्थात् जो प्रमाणादिक अरु बुद्ध्यादिक किसीका भी विषय नहीं, तिस वस्तुको आप देखतेहो अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करतेहो अतएव सो वस्तु भरेप्रति कहो ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब नाचिकेता ने आत्मजिज्ञासापूर्णक मृत्यु भगवान् से विनय किया तब तिसको श्रवणकर प्रथम निर्विशेष आत्मतत्त्वं न कहके तिसकी प्राप्तिमें मुख्य आलम्बन जो आत्माका प्रतीक अकार तिसकी उपासनाकी अरु तिसके ज्ञानकी महिमा कहते हुये ॥ मृत्युरुपाच " सर्व्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाध्वसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यश्चरन्ति तत्पदध्वसं ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् । एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य नत् ॥ एतदालम्बनं ध्वसं श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते " १५, १६, १७, ॥ हे नाचिकेतः ! ऋगादि सर्व वेद , अर्थात् ऋगादि वेदके एक देश ब्रह्मविद्या रूप उपनिषद्, जिस पावने योग्य पदको अविभाग से एकही निश्चयमे, प्रतिपादन करने हैं ॥ हे सौम्य ! यहां वेद शब्दके अर्थ से वेदके एक देशरूप उपनिषद् का ग्रहण है, तिसका यह तात्पर्य है कि उपनिषद् जो है सो ज्ञानके साधन होनेकरके निम । प्रणय के लक्ष्य । परमात्म पदमे साक्षात् सम्बन्धपाते हैं । अर्थात् उपनिषदोंके महापारमार्थ ज्ञानसे परमात्मा की अपरोक्ष साक्षात् अनन्यप्राप्ति

होती है, अतएव उपनिषद् परमात्मपद से साक्षात् सम्बन्धवाले हैं । अरु जिसकी प्राप्तिके अर्थ सर्वविद्वान् तपको (स्वधर्मानुष्ठानको) कहते हैं । अथवा सर्वतपआचरण करनेवाले तपस्वी जिसको कहते हैं । अरु जिसकी इच्छाधारके गुरुकुलवासादि ब्रह्मचर्य्यको आचरते हैं । अर्थात् जिस प्रणवके लक्ष्य परमात्मपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले श्रद्धासम्पन्नहुये गुरुकुल में वासकर उपनिषदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य कर रहे हैं । अरु जिस पद के जानने की इच्छा तुम्हीं करते हैं । हे नचिकेतः ! तिसपदको तेरे अर्थ संक्षेपमात्र कहता हूँ सो यह ॐकारही है । अर्थात् हे नचिकेतः ! जिस पदको जाननेको तू इच्छता है तिसका प्रतीक (प्रापक) ॐकार है, क्योंकि वह ॐकारकालक्ष्य अरु ॐकाररूप प्रतीकवाला है । ताते यह ॐ अक्षर सगुण वा त्रिमात्रिक होने से अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है, अरु यही अक्षर अपने लक्ष्यरूपसे गुण वा मात्रासे रहित अविनाशी अमात्रिक निर्गुण पर (श्रेष्ठ) ब्रह्म है । एतदर्थ इस उक्त अक्षरको सम्यक्प्रकार जानके जो उपासना करता है सो पर वा अपर जिस ब्रह्मको प्राप्त होनेको इच्छता है तिसको सोई होता है । अर्थात् जो ब्रह्मलोककी इच्छाधारके त्रिमात्रिक प्रणवकी समाहित चित्त ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक जपादिरूपसे उपासना करता है तिसकी सोई ब्रह्मलोक होता है । अरु जो मुमुक्षु मोक्षकी इच्छावार के त्रिमात्रिक प्रणवके विचारपूर्वक तिसके अधिष्ठान अमात्रिक आत्माका ब्रह्मके साथ अभेद अभ्यास वा निदिध्यासन करना है तिसको प्राप्त होता है । अतएव हे नचिकेतः ! ब्रह्मलोक प्राप्तिवाले को अन्य अज्ञादि आलम्बनों से इस त्रिमात्रिक प्रणवोपासना रूप आलम्बन श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रणवोपासना के आलम्बन से ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ विद्वान् ब्रह्मा से प्रणव के लक्ष्य का ज्ञान पाय पुनरावृत्ति से रहित मोक्ष होता है । अरु परब्रह्मप्राप्ति की इच्छावाले को इस ॐकारकी विचाररूप उपासना अन्यसर्व साधनों के मध्य प्रशंसा करने योग्य परमोत्तम आलम्बन (आश्रय)

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रणवोपासना ३ ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्या-
यीत कतमं वावसतेन लोकं जयतीति ॥

हे, मुमुक्षु को परमात्म प्राप्तिके अर्थ इस अंकारकी उपासना से अधिकश्रेष्ठ आलम्बन कोई नहीं, एतदर्थ इस आलम्बन को सम्य-
क्प्रकार जानके उपासना करनेवाला ब्रह्मलोकनिपे महिमा को
पावता है, अर्थात् जो ब्रह्मलोक की प्राप्तिकी इच्छासे त्रिमात्रिक
अंकारकी उपासना करता है सो तिसके आश्रय ब्रह्मलोकमें जाय
ब्रह्मावत् पूजनीय होता है । अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ
इस अंकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी उपासना
करता है सो ब्रह्मरूप लोकनिपे अनन्यहुआ तिसकी महिमाको
प्राप्त होता है “ब्रह्मविद्वद्भैव भवति” हे सौम्य ! उक्तप्रकार मुमुक्षु
के अर्थ अमृतत्व प्राप्तिमें अंकारकी उपामनारूप आलम्बन से
इतर सर्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं । ऐसा कठरुद्धी उपनिषद्
की श्रुतिवाच्य प्रमाणसे सिद्धही है । अतएव मुमुक्षु करके अपने
मोक्षार्थ सर्वोत्तम परमश्रेष्ठ अंकारोपासनाकाही आश्रयकरना
उचित है ॥ इति ॥ २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत अङ्कारोपासना ३ ॥

हे सौम्य ! अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिसप्रकार
पृथ्वीपूर्वक अंकारके पर अरु अपर दो भेद अम् क्रमसे मात्राओं
के उपासकोंकी गति रही है, निम्नको भी संक्षेपमात्र कहनाहों
सावधान होय श्रवणकरो ॥ हे प्रियदर्शन ! पृश्नोपनिषद्के पञ्चम
पृथ्वीनिपे सत्यकाम नामक ऋषि ने अपने आचार्य पिप्पलाद
नामक ऋषिसे पृथ्वीकिया है कि “नियो ह वैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रा-
यणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत. कतमं वावसतेन लोकं जयतीति”

तस्मैसहोवाच । एतद्वै सत्यकामे परञ्चापरञ्च ब्रह्म
यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतैनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ :

हे भगवन् (पूजनेयोग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्यवत् है जो
कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्यन्त सम्यक् प्रकार सर्व धर्मा-
चरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहित
चित्ततासे 'ॐ'कारके अभिधान से 'कर्मों के फल-जे, स्वर्गादि
अनेक लोक हैं तिनमें से कौन से लोक का जयकरता है' अर्थात्
वह प्रणवोपासक कौनसे लोक को प्राप्त होता है, सो आप कृपा
करके कहिये ॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब सत्यकामनासवाले ऋषि
ने अपने आचार्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर
कहते हुये, " तस्मैसहोवाच । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म
यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतैनैवायतनेनैकतरमन्वेति -" पिप्पलाद
मुनि, तिस प्रदत्तकर्ता सत्यकाम प्रति कहते हुये हे सत्यकाम ! यह
जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न
हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्म है, सो उभे प्रकारका ब्रह्म 'ॐ'कार
ही है । अथवा 'ॐ'कारका लक्ष्य, सर्वाधिष्ठान, अमात्रिक परब्रह्म
है, क्योंकि मात्रारूप 'उपोधि' से पर (पृथक्) है, ताते वा मात्रा
वाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते । अरु तिसका प्रतीक होनेसे
त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक 'ॐ'कार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है ।
अरु इस 'ॐ'कार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालि-
ग्राम नामक पाषाण को त्रिष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होनेसे
उसको भी त्रिष्णुपना है, तैसे है, ताते इस 'ॐ'कार को निरु-
पाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर
ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्रा की जाग्रद्वादि अवस्थादि रूप
पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को
तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनों में अपेक्षा से, जो सर्वाधि-
ष्ठान चतुर्थ शिव है तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से प-

स यद्येकमात्रमभिधायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव
जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते
स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान्
मनुभवति ३ ॥

कात्म्य ध्यानकरके उस अंकार का लक्ष्य जानने में आवता है ।
इसप्रकार जानके जो परब्रह्म है सो अंकारही है । अर्थात् “ॐ”
इस अंकार अक्षरका जो लक्ष्य अविनाशी अक्षर परब्रह्म है ताते
अंकारही परब्रह्म है, अरु परब्रह्म का वाचक ‘प्रतीक’ होने से
यह अपरब्रह्म है । इसप्रकार अंकार को पर अरु अपर उभय
ब्रह्मरूप जाननेवाला पुरुष अंकारकी उपासना के आश्रय दोनों
में से एकको पावता है । अर्थात् जो अंकारकी उपासना (मा-
त्राओंकी लयता) के विचाररूप आलम्बन से सर्ववृत्ति आदि-
कोंके अभावसे निर्विकल्प समाधिमें निर्विशेष आत्मस्थिति दृढ़-
तासे पावता है सो अभेदतासे परब्रह्म को पावता है । अरु जो
उक्तप्रकार की आत्मस्थिति को न पायके निसकी प्राप्तिके अर्थ
‘ॐ’ इस अक्षरकी जप विचारात्मक उपासनाको सम्यक्प्रकार
यथाशास्त्र विधि आश्रयकरताहै, सो तिसका फल ब्रह्मलोकको
प्राप्तहोय वहाँ ब्रह्मद्वारा लक्ष्यको पावताहै ॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार
कहके पुनः पिप्पलाद मुनि कहताहुआ कि हे सत्यकाम ! अब अं-
कारकी मात्राके ज्ञान उपासनाके आश्रय अधिकारी उपासकों को
जो जो फल, कहिये गति, प्राप्तहोता है तिमकोभी क्रमशः श्रवण
करो जो पुरुष अंकारको ब्रह्मका प्रतीक होनेसे समीपवर्त्ती अरु
आलम्बनों में श्रेष्ठ आलम्बन परम उपकारक साधन जानताहै,
अरु त्रिमात्रिक प्रणयकी उपासना करने योग्य है, इस प्रकार
जानताहै । परन्तु अंकारकी सर्व मात्राओं को यथार्थ विभाग
पूर्वक जानता नहीं, किन्तु अंकारकी एक अक्षर मात्रा ही
उपासना करने योग्य है, इसप्रकार जानके अंकार की पूर्णरूप

से उपासना न करके खण्डरूप से एकमात्र की ही उपासना करता है सो खण्डोपासक भी अवगतिको पावता नहीं, अब उसको जो गति प्राप्त होती है सो श्रवण करो । स यथैकमात्रामभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति । अर्थ यह जो, सो उक्तप्रकार का उपासक जब केवल एकमात्राके विभागका जाननेवाला हुआ सर्वदा एक मात्रा रूप से ही ॐकारको ध्यावता (ध्यात विचार करता) है सो पुरुष तिस ॐकारकी एकमात्राके ध्यानके प्रभावसे ही तिस मात्राका साक्षात्कारवान् हुआ, देहत्यागके अनन्तर तत्काल ही पृथिवी (मनुष्यलोक) विषे । जन्म । पावता है, तहां पृथिवी विषे अनेक योनियों के जन्म हैं तिनमें तिस उपासक को सर्वोत्तम, वर्णत्रयी में से, कोई एक मनुष्यलोक (शरीर) को ॐकारकी श्रव्देवरूप प्रथममात्रा-प्राप्त करती है, तब सो उपासक मनुष्यलोकमें द्विजोत्तमहुआ, तपकरके, ब्रह्मचर्य करके, श्रद्धा करके, सम्पन्नहुआ, महिमाको अनुभव करता है । हे सौम्य ! महिमाका स्वरूप सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषदविषे “ गो अश्व मिहमहिमेत्याचक्षते हस्ति हिरण्यं दासं भार्यं क्षेत्राण्यायतना नीति ” गो अश्व हस्ति आदिक पशु अरु सेवकादिक भृत्य । अरु भार्या उपलक्षण करके भार्या पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब, अरु सुवर्ण उपलक्षण करके सुवर्ण रजत रत्नादिक धन, अरु रोगादिकों से रहित अरु दीर्घायु सहित सुन्दर शरीर, अरु क्षेत्र पृथिवी (राज्य) अरु आयतन कहिये सुन्दर निवासस्थान । इत्यादिको को महिमा करके प्रतिपादन किया है, तिस महिमाको वो ॐकार की एक मात्राका उपासक पावता है । परन्तु श्रद्धादिकोंसे रहित हुआ यथेष्टाचरण करता नहीं किन्तु शास्त्रानुसार ही चेष्टा । अरु पूर्वाभ्यास वश प्रणवोपासना ही करता है । अतएव उक्तप्रकार का प्रणवोपासक दुर्भक्तिको कदापि प्राप्त होता नहीं ॥ ॥ हे सौम्य !

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं
यजुर्भिरुच्चीयते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिम
नुभूय पुनरावर्त्तते ४ ॥

उक्तप्रकारके उपासकसे अन्य पुरुष ॥ अथ यदि द्विमात्रेण मनसि
सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुच्चीयते । स सोमलोकं स सोम-
लोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ अर्थ, यदि ओंकारकी दो मात्रा
के जाननेवाला ओंकारको, अकार, उकार, इन दो मात्रारूप
जानके मात्राओं के विभागपूर्वक ओंकारको ध्यावता है । अर्थात्
ओंकारका जप अरु दोमात्राके विभागके विचारसे अर्ध भावना
रूप ध्यान करता है, सो यजुर्वेदमय चन्द्रमारूप देवतवाले । अ-
र्थात् चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसे मनविषे एकाग्रता से आत्म
भावको प्राप्त होता है, सो देहत्यागान्तरं । यजुर्वेद सम्बन्धी
ओंकारकी दोमात्राके प्रभावसे अन्तरिक्षरूप आधारवाले चन्द्र-
लोक को प्राप्त होता है, अर्थात् तिस ओंकारकी दोमात्राके उपा-
सक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्म प्राप्त
करता है । अर्थात् जो पुरुष यजुर्वेद सम्बन्धी ओंकारकी दो मा-
त्रारूपसे उपासना करते हैं सो उस उपासना के प्रभाव से यहाँ
देहत्यागान्तरं चन्द्रलोक में । जो इस लोक की अपेक्षा उत्तम
अरु द्वितीय है । जन्म पावता है, तब सो तिस चन्द्रलोक सम्ब-
न्धी महिमा (विभूति) को अनुभव करके (भोगके) पुनः
इस मनुष्यलोक में आय जन्म पावता है । यह ओंकार को
दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले की गति कहाँ है । अरु
धूमादि दक्षिणायन मार्गवालोंकी भी यही गति है हे सोम्य !
अब ओंकार के तीनों मात्रा की पूर्ण उपासक की जो गति
है तिसको भी श्रवण करो ॥ यः पुनरेतान्त्रिमात्रेणैवोमित्ये-
तेनैवाक्षरेण परं पुरुषं मभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्यं सम्पद्यः ॥
अर्थ, पुनः जो पुरुष तीनमात्रा का ज्ञाता हुआ, अरु इस ओंकार

अथ पुनरेतन्निमात्रेणैवमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषः
मभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादो-
दरस्त्वचा विनिर्मच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मक्तः
स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् । स एतस्माज्जीविघनात्प-
रात्परं पुरिशयं पुरुषमाचते तदेतौ इलोको भवतः ॥

को ब्रह्मका प्रतीक होने से ब्रह्म प्राप्ति में उसको परम आलम्बन
जानके, त्रिमात्रिक, अंकार, रूप, सूर्य, के अन्तरगत पुरुषको
। अंकारके लक्ष्यको ध्यानकरता है । अर्थात् जिस अधिष्ठान
रूप परम पुरुष के आश्रय तीनों पादरूप मात्रा अध्यस्त हैं, अरु
सर्प में रज्जुके अन्वयवत् जिसका तीनों मात्राओं में अन्वय है ।
अरु सत्यरूप, रज्जु में अध्यस्त असत्य सर्प के व्यतिरेकवत्
व्यतिरेक है, तिस सर्वाधिष्ठान निरुपाधि परम पुरुषको, त्रिमा-
त्रिक अंकार जो ब्रह्मका प्रतीक है तिसरूप सूर्यविषे उक्त पर-
मपुरुषको ध्यानकरता है, वा आकाशगत सूर्य मंडलविषे, अरु
त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षररूप सूर्य विषे जो सूर्यादि सर्वका
प्रकाशक सर्वाधिष्ठान सर्वका आश्रय परमपुरुष है, तिसको उभय
सूर्य विषे एक जानके अरु तिसके साथ आत्माकी एकता जान
के । अर्थात् जो चैतन्यपुरुष प्रकाशरूप से सूर्य विषे स्थित है,
अरु सर्वका साक्षीरूपसे शरीरादि संघातविषे स्थित है, अरु ल-
क्ष्यार्थरूप होयके त्रिमात्रिक 'ॐ' इस अक्षरविषे स्थित है, सो
एकही है इस प्रकार 'ॐ', इस अक्षरविषे, अरु सूर्यमंडलविषे,
अरु शरीरादि संघातविषे, अरु इन तीनोंको उपलक्षणकरके
अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म, इन तीनों प्रकारके जगत्विषे,
एक अखंड अविनाशी चैतन्यपुरुषको 'ॐ' कोरेवेदं सर्वम् ।
इत्यादि श्रुति अरु स्वानुभव प्रमाणसे । जो मात्राओं के ज्ञान
पूर्वक ध्यानकरता है सो तिस ध्यान उपासना के प्रभाव से
सरणोत्तर तेजोमयहुआ । तेजोमय सूर्य विषे प्राप्त होता है ।

अरु सो उपासक, जैसे अंकरिकी दोसात्रा का उपासक चन्द्र-
 लोकमें विभूतिको अनुभवकर पुनरावृत्तिको प्राप्त होता है, तैसे
 त्रिमात्राका उपासक सूर्यमंडलविषे प्राप्त हुआ पुनरावृत्तिको
 प्राप्त होता नहीं, किन्तु सूर्यविषे प्राप्त हुआ ही होता है । अर्थात्
 सूर्यलोकमें जाय वहाँ की विभूति महिमाको भोक्ता हुआ वहाँ
 ही रहता है । यथा 'पादोदरस्त्वचा विमुच्यत एवं हवस पाप्म-
 ना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकः' । अरु सो पुरुष
 जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्यागके पश्चात् नवीन हुआ
 पुनः उस परित्याग की हुई जीर्ण त्वचाको देखता (पावता वा
 ग्रहण करता) नहीं । तैसे ही प्रसिद्ध सो प्रणवोपासक सर्प की
 त्वचास्थानीय अशुचितारूप पापों से मुक्त होता है । अर्थात्
 जैसे सर्प अपनी जीर्ण त्वचाको त्याग नवीन हुआ पुनः उस
 त्यागी हुई त्वचाको ग्रहण करता नहीं, तैसे वो तीनमात्रा
 का उपासक इस मनुष्य लोक सम्बन्धी शरीर रूप पापों से मुक्त
 हुआ सूर्य लोक विषे देव शरीरको पाय पुनः इस लोक सम्बन्धी
 शरीर को न ग्रहण करके देवरूप ही रहता है । अरु इस लोक
 सम्बन्धी शरीररूप पापों से मुक्त हुआ सूर्यलोकविषे देव शरीरको
 पाय वहाँ भी उपासना के प्रभावे, तीसरी मात्रारूप सामवेद
 करके, सूर्यलोकसे भी ऊँचे हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्माके सत्यलोक
 नामक लोकको प्राप्त होता है ॥ अरु "स एतस्माज्जीर्घनत्परात्परं
 पुरिशयंपुरुषमीक्षते तदेतौ ब्रह्मलोकौ भवतः" सो तीसरी मात्रा वा
 तीनोंमात्रा का उपासक विद्वान् पुरुष सत्यलोक में स्थित हुआ
 इस सर्वोत्कृष्ट जीर्घनरूप हिरण्यगर्भ से । अर्थात् सर्व मनुष्य
 शरीरों की समष्ट्यारूप हिरण्यगर्भ है अनएव उसको जीर्घन
 कहते हैं । पर कहिये श्रेष्ठ, परमात्म नामवाले पुरुषको 'जो सर्व
 शरीररूप पुरियों में स्थित है वा सर्व शरीरगत पुरीतति नाड़ीविषे
 स्थित है' देखता है अर्थात् जो अकारण लक्ष्य अरु हिरण्यगर्भादि
 सर्व अप्यस्थोंका अधिष्ठान जो एक सर्वज्ञात्मा परमपुरुष है तिसको

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ताः अन-
विप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्
प्रयुक्तासु न कम्पते । ज्ञः ६ ॥ निर्विकल्पः । ज्ञानं ज्ञापयमानं
साक्षात् सोऽहमस्मिभावसे अनुभवकर्त्ता पुरुषः पुनरावृत्तिसे रहित
हुआ ब्रह्माकेसात् । वा ब्रह्मसे महावाक्यार्थका ज्ञानोपदेश पायके
मोक्ष होता है । तहां इस अर्थ के प्रकाशक अभिम दो मन्त्र प्र-
माण हैं । तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ताः अनेविप्रयु-
क्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ।
अर्थ तीन सख्या हैं जिनकी ऐसी जो अकारकी अकार उकार, मकार,
यह तीन मात्रा हैं, सो मृत्युकी विषय ही हैं अरु परस्पर सङ्ग-
वाली हैं, अरु वो तीनों मात्रा विशेष करके एक एक विषय, विषय ही
योजना करी गई होवे ऐसा नहीं, किन्तु विशेष करके एक ही ध्यान काल
विषय या गती हुई, जायत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन स्थान, अरु तिन
के अभिमानी, जे, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, के अभिमानी । त्रैश्वान-
र, हिरण्यगर्भ, अरु अव्याकृत, तिनसे अपृथक्, विद्वं, तैजस,
प्राज्ञ, पुरुष तिनकी, अकार, उकार, मकार, इतनी तीन मात्रासे तादात्म्य
करके । अर्थात् जाग्रदवस्था । विद्वं अभिमानी स्थूल भोग, इस
व्यष्टि प्रथम पादकी, विराट् स्थान त्रैश्वानर अभिमानी स्थूल
भोग, इस समष्टि पादसे एकता कर । तिसका अकार रूप प्रथम
मात्रासे तादात्म्य करके । अरु तैसही स्वप्नावस्था तैजसाभिमा-
नी विरलभोग, इस व्यष्टि द्वितीय पादकी, सूक्ष्मस्थान । हिरण्य-
गर्भाभिमांनी विरलभोग, इस समष्टि द्वितीय पादसे एकता कर
पुनः तिसका उकार रूप, द्वितीय मात्रा से तादात्म्य करके, पुनः
सुषुप्ति अवस्था प्राज्ञाभिमांनी आनन्द भोग, इस व्यष्टि तृतीय
पादको कारणावस्था रुद्रवा ईश्वराभिमांनी आनन्द वा अज्ञान
भोग इस समष्टि तृतीय पादविषे एकता करके, पुनः उस पादकी
मकार मात्रासे तादात्म्य करके । अर्थात् उक्त प्रकार जाग्रदादि

ऋग्भिरेतं, यजुर्भिरन्तरिक्षं, सः सामभिर्यत्तत्स्वयो
वेदयन्ते ॥ तमोऽकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छ्रि-
न्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ ॥ इति ॥

तीनों प्रादो को अकारादितोनों मात्रासे तादात्म्य (एकता) करके
ध्यानरूप जो विद्या भीतर अरु मध्यकी योगकिया है तिसको
सम्यक् ध्यानके कालविषे योजनाकिये हुये जबवे तीनोंमात्रायो-
जना किया होय, अर्थात् समष्टि उक्त पादोंविषे व्यष्टि उक्त
प्रादोंकी योजनाकरके पुनः क्रमशः प्रथम अकार मात्राको द्विती-
य उकारमात्राविषे लयकरे, अरु उस अकारयुक्त द्वितीय उकार
मात्राको मकाररूप तृतीय मात्राविषे लयकरे, पुनः उस तृतीय
मात्राको उस ओंकारके वाच्य अधिष्ठान विषे नामनामी के अभेद
से लयकरे, वा अध्यस्तरूप तीनों मात्राको उसके अधिष्ठान से
अपेक्षक जानके लयकरे । ॥ इसप्रकार सम्यक् ध्यानके कालविषे
तीनोंमात्रा उक्तप्रकार जब योजना करीहोय, तबउस ओंकारका
ज्ञाता योगी चलायमान होतानहीं । अर्थात् विक्षेपको प्राप्त
नहीं, किन्तु अचलही होताहै । अरु जिसकरके उक्तप्रकारका प्रण-
धोपासक विद्वान् "ओंकारेणैवेदं सर्वम्" इत्यादि प्रमाण अनु-
भवसे सर्व्वत्मा ओंकाररूपहुआहै एतदर्थ उसका चलना (वि-
क्षेप) किसकारणसे होवेगा 'किसीसे भी, नहीं, क्योंकि विक्षेप
का कारण द्वैतभेद भावहै, सो उसको न होयके सर्व्व ओंकार
आत्मभावही है, ताते विक्षेप के करिण द्वैतभावके अभावसे एक
ओंकारदर्शी विद्वान् चलायमान होतानहीं ॥ हे सौम्य ! "ऋग्भि-
रेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्स्वयो वेदयन्ते" । अर्थ, ऋग्वेद
से ओंकारको एक मात्रारूप जानके भजन उपासन करनेवाला
पुरुष इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोताहै, अरु यजुर्वेद से ओंकार
को दोमात्रारूप जानके उपासना करनेवाला विद्वान् देहत्यागो-
त्तर पितृलोक (चन्द्रलोक) को प्राप्त होताहै । अरु जिसको

अथमुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासनाप्रारम्भ्यते ॥

प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्त-
नवेद्ब्रह्म शरवत्तन्मयोभवेत् ॥

अथ मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासनाप्रारम्भ्यते ॥

हे सौम्य ! मुण्डकउपनिषद् के द्वितीय मुण्डकगत द्वितीयखण्ड
के चतुर्थमन्त्र विषे कहा है । प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्ल-
क्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तनवेद्ब्रह्म शरवत्तन्मयोभवेत् । अर्थ । ॐकार
रूप धनुष है, अर्थात् वाणके लक्ष्य (निशाने) विषे प्राप्त होनेको
धनुष कारण है, धनुष बिना वाण लक्ष्य विषे प्राप्त होता नहीं ।
तैसेही आत्मा (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) रूप वाणको अपने लक्ष्य
अक्षर ब्रह्मविषे प्राप्त होनेको कारण ॐकारोपासन है, अतएव
ॐकारको धनुषरूपकरके कहा है । अरु जैसे वाण चलावने का
अभ्यासकिये अरु संस्कारयुक्त (शिलीमुख) हुआ वाणधनुषके
आश्रयहुआ लक्ष्यविषे स्थित होता है, तैसेही ॐकारकी उपा-
सना के विचाररूप से सूक्ष्म शिलीमुख अरु शमदमादि साधनों
करके संस्कारयुक्त हुआ, प्रणवोपासना रूप धनुष के आश्रय
उक्त आत्मारूप वाण से अपने आभास (प्रतिबिम्ब) भावको
जोकि अवस्थात्रयात्मक बुद्धिरूपा उपाधि के सम्वन्धसे प्राप्त
हुआ है, त्यागके अपने अक्षररूपविष्वविषे जैसे प्रतिबिम्ब बिम्ब
में तैसे अमेदता से स्थित होता है । एतदर्थ आत्मारूप वाणको
अपने अक्षररूपलक्ष्य विषे प्राप्त होने को प्रणव जो है सो धनुषवत्
धनुष है । अरु उक्त आत्मारूप वाण है । अर्थात् उपाधि करके
लक्षित परमात्मा अक्षरकाही जलादिकोंगत सूर्यादिकों के
प्रतिबिम्बवत्, इस देहादिक संघात विषे सर्व बुद्धियोंकी वृत्तियों
का साक्षीहुआ प्रवेशको पायाहै सो वाणवत् वाणहै । अरु आत्मा
के अर्थ जो विषयों की तृष्णा सोई प्रमादहै, तिस प्रमादसे रहित

अप्रमत्त अरु सर्व से वैराग्यवान् जितेन्द्रिय समाहितचित्तता इत्यादि साधनरूप संस्कारसम्पन्नता तिसकरके सहिते से वेधन (प्रवेश) के योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्य है । ताते प्रणवरूप धनुष के आश्रय आत्मरूप बाणकी जब ब्रह्मरूप लक्ष्यविषे प्रवेशरूपसे उक्त लक्ष्यका वेधन होता है, तिसके पश्चात् आत्मा बाणवत् लक्ष्य विषे तन्मयतारूप होता है । अर्थात् जैसे बाणको लक्ष्य के साथ एकरूपतामयफल होता है, तैसेही देहादि अनात्माकार वृत्तियों के तिरस्कार से अकरके साथ तन्मयतारूप फलको प्राप्त होना, यह सर्व बुद्धिमान् समुद्भूओं करके योग्य है ॥ हे सौम्य ! अब इसका और प्रकार से कल्पित विचारको श्रवण करो हे प्रियदर्शन ! धनुष से जो बाण चलता है सो अपने मार्गगत वस्तुओंको उल्लंघनकरता अपने लक्ष्यको प्राप्त हो तन्मय होता है, तैसे ही यह चिदाभासरूप बाण अमात्रिक प्रणवरूप धनुष से अपने बिम्ब ब्रह्मरूप लक्ष्य की ओर चलता है, तब अपने जाग्रदादि अवस्थारूप व्यष्टिपादों को, विण्डादि समष्टिपादों के साथ, अरु तिनको अकारादि मात्राओं के साथ अभेद विचार के तिनको अभ्यस्त होने से पीछे अविद्यात्मकता की ओर डाल आप अपने अमात्रिक ब्रह्मरूप लक्ष्य विषे प्राप्त होय पश्चात् विचाररूप वेग से रहित हुआ लक्ष्यमय होता है ॥ अरु यहां जो कहा है कि "शरवत्तन्मयो भवेत्" तिसका विचार इसप्रकार जानना कि, बाण जो है सो अपने लक्ष्यमें प्रवेशको पाय अदृश्य होनेसे तन्मय द्रव्ये वत् भासता है, परन्तु लक्ष्यरूपतासे अभेद तन्मय होता नहीं अर्थात् बाण लक्ष्यमें प्रवेश पायाहुआ भी लक्ष्यके साथ अभेद एकताको पावता नहीं लक्ष्य से विजाति है ताते, एतदर्थ इसका अर्थ अग्रिम कल्पित कहे प्रकार भी जानने योग्य है । प्रणवरूप धनुषके आश्रय चिदाभासरूप बाणकरके ब्रह्मरूप लक्ष्यको प्रमाद (आलस्य वा विषयासक्तता) से रहित होय वेधन करना योग्य है । यहां पर्यंत बाणके दृष्टान्त प्रमाण यथार्थ है

आगे जो तिसका फल "शरवत्तन्मयो भवेत्" तारूप होना कहा है। तिसको जल अरु हिमका दृष्टान्त विचार-युक्त है, क्योंकि जलको भी शर, कहते हैं, अरु जल हिमकी अभेद एकता भी युक्त है। अर्थात् जैसे गुल्लेल, वा धनुष, कि जिनका आकार एकरूप है, नामक यन्त्रके आश्रय हिम (वरफ) का खंड रूप गिह्ला व घाण जलकी ओर चलाया हुआ अपने लक्ष्य जल को प्राप्त होय अभेद तन्मयताको प्राप्त होता है, ताते शर शब्दका अर्थ जल अंगीकार करके उक्त दृष्टान्त प्रमाण विचारनेसे अभेद तन्मयता होने में शंका रहे नहीं, अरु अर्थ भी युक्त है। अर्थात् जैसे जल अपनी शीतलता स्वभाव करके हिम भावको प्राप्त होता है, अरु जलकी कोमलतादि धर्मसे विपरीत काठिन्यतादि धर्मवाला भासता है, परन्तु सो तिस हिम अवस्थामें भी जलसे इतर कहने मात्रही है, अरु पुनः जलमें गया अपने काठिन्यतादि बाह्य धर्म को त्याग अभेदता से जलके साथ तन्मयताको पावता है "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे स्तंगच्छन्ति नामरूपे प्रियाय, तथा विद्वा-न्नामरूपादिमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्" तैसेही ब्रह्मकी इच्छा वा स्वभाव रूपा माया करके ब्रह्मही अल्पज्ञतादि धर्मवाला जीव भावको प्राप्त हुआ भासता है, परन्तु वास्तव करके तत्त्व-मस्यादि प्रमाणों करके ब्रह्मरूपही है, सो जीव (चिदाभास) प्रणव रूप धनुषको आश्रय कर आप घाणवत् हुआ ब्रह्मरूप जल लक्ष्यमें प्रवेश कर तन्मयताको प्राप्त होता है। तात इस चिदाभासरूप आ-त्मा जीवको ब्रह्मरूप लक्ष्य के साथ अभेद तन्मयता होने के अर्थ प्रणवोपासनारूप मुरय आलम्बन है ॥ "ॐमित्येवं ध्यापय" "ॐ" इस उक्त प्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवाले दृष्टे आश्रित कल्पना से ॐकारका ध्यान करो, इस प्रकार ज्ञानवान् आचार्य ने समुद्रशुक्रो ब्रह्म आत्माकी अभेदतारूप मोक्षकी प्राप्ति के अर्थ ॐकार की उपामना रूप सर्वोत्तम आलम्बन कहा, तिमहीको आश्रय करना योग्य है ॥

प्रणवोपासनविचारसम्पूर्णम् ॥ ॐ ॥

अथ कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गतः
प्रणवविचारः ॥

ॐम् । ॐमितिब्रह्मा ॐमितीदृशं सर्वम् । ॐमित्ये
तदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमि
तिसामानि गायन्ति । ॐशोमिति शास्त्राणिशश्रुसन्ति ।
ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ॐमितिब्रह्माप्र
सौति । ॐमितिअग्निहोत्रमनुजानाति । ॐमितिब्रा
ह्मणः प्रवक्षन्नाह । ब्रह्मोप्राप्नुवानिति ब्रह्मैवोपाप्नोति
ॐ दश इति ॥

हे सौम्य! अब तैत्तिरीयोपनिषद्विषेजिसप्रकार प्रणवकी श्रेष्ठ-
ता वर्णन किया है तिसकोभी श्रवण करो- ॐमितिब्रह्म । ॐमिती-
दृशं सर्वम् । ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति ।
ॐमिति सामानिगायन्ति । ॐशोमिति शास्त्राणिशश्रुसन्ति ।
ॐमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । अर्थ अब सर्व उपासनाके
अंगभूत, ॐकारोपासन कहते हैं । ॐ, इसप्रकारका यह शब्दरूप
ब्रह्म है, इसप्रकार मनकरके ॐकारकी मात्रादिकोंका स्मरण वि-
चाररूप उपासनाकरे । अरु जिसकरके 'ॐ' इसप्रकारका शब्द
यह सर्व है । अर्थात् शब्दरूप यह सर्व पूज्य एक ॐकारसेही व्याप्त
है, अरु जो वाच्य (नामी) है सो वाचक (नाम) के अधीन है, एत-
दर्थ यह सर्व ॐकारही है, इसप्रकार कहते हैं ॥ अब ॐकारको सर्व
से ज्येष्ठ, श्रेष्ठ होनेसे तिसकी स्तुति, कहते हैं । ॐकारको उपास्य
होनेसे, ॐकारका यह अनुकरण है । अर्थात् जाते अन्यकरके 'कह-
ता हों' वा पावता हों, ऐसेकहे वचनको श्रवण करके, ॐ, ऐसे अनु-
करण करता है, एतदर्थ ॐकार अनुकरण है, यह ॐकारका अनु-
करणपना असिद्ध है । अरु ॐ, इसप्रकार श्रवण करावो, इस कथ-
नको प्राप्तहुये पुरुष उस ॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवण करावत है

तैसेही जो सामवेद के गायन करनेवाले पुरुष हैं सो 'ॐ' इस प्रकार सामोंको गायन करते हैं । अर्थात् सामवेदके गानरुके सर्वसामग अंकारही को गायन करते हैं । अरु जो ऋचाके पाठक हैं सो 'ॐशो' ऐसे शास्त्र कहिये गानरहित केवल ऋचाको कथन करते हैं । अरु तैसेही जो अध्वर्यु । अर्थात् यज्ञधिषे यजुर्वेदीय ऋत्विज् विशेष है सो 'ॐ' इसप्रकार प्रतिगर (वेदके शब्द विशेष) को हवन करनेवाले के कथन कथनप्रति उच्चारण करता है । अर्थात् यज्ञमें ऋग्वेदीय, ऋत्विज् हवन करनेवाला होता है सो जब मन्त्रों को उच्चार करता है तब अध्वर्यु उसके प्रतिमन्त्र के साथ अंकारपूर्वक प्रतिगर का उच्चार करता है । अरु जो ब्रह्मा (यज्ञकर्मका कर्त्ता । वा यज्ञमें दक्षिण दिशामें स्थित होय यज्ञका रक्षण करनेवाला । ऋत्विज् विशेष) है सो 'ॐ' इस प्रकार अनुमोदन करता है अरु 'ॐ' इस प्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करता है । । अर्थात् होता करके होम करताहो, इसप्रकारके कथन कियेहुये को 'ॐ' ऐसे कहके अनुमोदन करता है । अरु जो ब्राह्मण है सो 'ॐ' इसप्रकार कहने को इच्छताहुआ, अध्ययन करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है । अर्थात् अध्ययन करने को अंकाररूपसे ग्रहण करता है । अरु ब्रह्म 'कहिये वेद' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार इच्छा करता हुआ 'ॐकारद्वारा वेदकोही प्राप्त होताहै' वा ब्रह्म 'कहिये परमात्मा' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार आत्माको प्राप्त होनेकी इच्छा को करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है । अर्थात् आत्मकामा पुरुष अंकारकी उपामना द्वारा आत्मपद को प्राप्न होता है इन सर्वका अभिप्राय यहहै कि अंकारके उच्चारण पूर्वक करीहुई सर्व क्रियाको फलवान्पनाहै, एनदर्थ अंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनी योग्यहै यह इसका तात्पर्य है ॥

इति तैत्तिरीय उपनिषद् सम्बन्धी प्रणयोपासनविचार ॥

अथ सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रण-
वोपासनविचारः ॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥

ॐमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् १ ॥

हे सौम्य! अब सामवेदीयछान्दोग्य उपनिषद्सम्बन्धी प्रणवो-
पासन विचार संक्षेपमात्र श्रवणकरो । इस उपनिषद्में 'प्राण'
आदित्यादि, अनेक दृष्टि से प्रणवोपासना कही है सो सर्व यहां न
कहके ॐकारकी रसतेमत्त्वादि श्रेष्ठता अस्त्रज्ञप्राप्तिमें मुख्यआ-
लम्बन अरु मोक्षसाधनता संक्षेपमात्र कहता हौ । अरु इसका स-
मिस्तर विचार इस उपनिषद्की व्याख्यामें होगा "ॐमित्येतद-
क्षरमुद्गीथमुपासीत" । 'ॐ' यह जो एकवर्णात्मक अक्षर है सो पर-
ब्रह्मका प्रतीक, मुख्यनाम होनेसे इसकी अपरब्रह्म रूपसे उपा-
सना कर्तव्य है, क्योंकि यह परब्रह्मका प्रतीक अरु नाम होने कर-
के इसकी उपासनासे परब्रह्म प्रसन्न होता है, जैसे लोकविषे जि-
सका प्रियनामलेके बोलावनेसे वहनामी प्रसन्न होता है तैसे, अरु
यह परब्रह्मका प्रतीक (प्रतिमा) अरु नाम है ताते इसविषे ब्रह्मबुद्धि
कर इसकी मात्राओं के विचारपूर्वक इसके लक्ष्यकी ध्यानादि
रूपसे उपासना कर्तव्य है । अर्थात् इस ॐकार अक्षरकी ध्यानादि
रूपसे उपासना कर्तव्य है अर्थात् इस ॐकार अक्षरकी जपरूपसे
वा ध्वनिरूपसे अरु मात्राओंके भेद विचाररूपसे उपासनाकरे ।
अरु मात्राओंके क्रमशः लय चिंतनपूर्वक मात्रादिकों के अधिष्ठा-
नअक्षर परब्रह्मसे अपनेको अभेद अनुभवकर तादात्म्य स्थिति
(निर्विकल्प समधि) रूपसे ध्यानरूप उपासनाकरे । जैसे शालि-
ग्राम नामक शिलाविषे विष्णुबुद्धि करके तिसका पूजनादिरूप
उपासन, अरु तिस शालिग्रामरूप आलम्बन करके तिसकरके
लक्षित लक्ष्य सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ वा श्यामसुन्दर चतुर्भुजादि

एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या अपोरसः अप्र-
मोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो
वाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ स एष
रसानां रसतमः परमः पराङ्घ्र्योऽष्टमो यदुद्गीथः १ ।
२ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुण्ठाधीश विष्णुका ध्यान लोक विषे प्र-
सिद्ध है तैसे ॥ अरु, परमात्माकी मुख्य उपासना विषे मुख्य
आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होतेसे,
इस अंकारको सर्व वेदान्त उपनिषदों विषे सर्वसे श्रेष्ठ करके
कहा है, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म, स्वाध्यायादिकोंमें
सर्व से प्रथम अंकारका स्मरण करते हैं, अरुजित जपादिकर्म
में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्मादिकोंको करते
हैं सोई फलवान् होता है, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है । अत
एव इस वर्णात्मक अंकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तम है ।
ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस अंकार
की उपासना कर्तव्य योग्य है । अरु सामवेदीय उद्गाता (सा-
मवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में अं-
कारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते हैं । अर्थात्
उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'अं' इस अक्षर के
स्मरणपूर्वक करता है । ताते अंकारको उद्गीथ विशेषण से
कहते हैं ॥ अरु यह जो अंकारकी उपासना, श्रेष्ठता, विभूति,
फलादिक है सो इस अंकारका उपव्याख्यान है ॥ अथ इस
अंकारकी सर्वोत्तमताको श्रवण करो, हे सौम्य ॥ एषां भूता-
नां पृथिवीरसः ॥ इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति,
परायण, अवस्थ) है । अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण
है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतु है,
अरु अवस्थ कहिये प्रलयमें निदान है । यह, गति, परायण,

अरु अवष्टम्भ, इनतीनों पदोंका भेद है ॥ ऐसी जो सर्वचराचिरभूतों का रस, पृथिवी तिसका जल रस है । अप्सु ह्योताच प्रोताच । यह बृहदारण्य के पञ्चमाध्यायकी श्रुति है । इस रस शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता विषे जानना । तिस जलका ओषधि रस है । शंको, ओषधि को जलके कारणत्व का अभिवा होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है । तहां समाधान कहते हैं, ओषधि जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हैं । अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष “ कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधि का परिणाम (सार) है ताते । अर्थात् “ एषां भूतानां ” यहां से लेके “ आपोरसः ” यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना । ॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते, अरु वाणीकोही लोक विषे सरस रसना रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं । अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचा है । अरु तिस ऋचाओंका सामंरसंतर है अर्थात् सार है । अरु तिस ऋचाओं के सारंतर सामं का उद्गीथ (उंकार, सारंतर है । इस प्रकार यह उद्गीतारूप उंकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसंतर है । अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड़ वा राव है, तिसका सार शकर है, तिसका सार खाड़ है, तिसका सार घूरा है, तिसका सारंतर कन्द वा मिसरी है, तैसे । ॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस उंकारको परार्ध्य कहते हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होने से यह वर्णात्मक उंकार अक्षर परमात्मावत् सुमुक्षुओं करके उपास्य है । इत्यभिप्रायः ॥ अरु पृथिव्यादिरसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जलका ओषधि ३, ओषधिका शरीर ४, शरीरका वाणी ५, वाणीका ऋचा ६,

१। एपां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपा-
मोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसो
वाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः ॥ स एष
रसानां रसतमः परमः पराङ्घ्र्योऽष्टमो यदुद्गीथः १ ।
२ । ३ ॥ इति ॥

नामरूप अवयववान् वैकुण्ठाधीश विष्णुका ध्यान लोक विषे प्र-
सिद्ध है तैसे ॥ अरु, परमात्माकी मुख्य उपासना विषे मुख्य
आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे,
इस अंकारकी सर्व वेदान्त उपनिषदों विषे सर्वसे श्रेष्ठ करके
कहा है, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु, जप, कर्म, स्वाध्यायादिकोंमें
सर्व से प्रथम अंकारका स्मरण करते हैं, अरुजिस जपादिकर्म
में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्मादिकोंको करते
हैं सोई फलवान् होता है, एतदर्थ भी यह सर्वसे श्रेष्ठ है । अत
एव इसवर्णात्मक अंकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तम है ।
ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहित चित्त होय इस अंकार
की उपासना कर्त्तव्य योग्य है । अरु सामवेदीय उद्गाता (सा-
मवेद का गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में अं-
कारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहते हैं । अर्थात्
उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'अं' इस अक्षर के
स्मरणपूर्वक करता है । ताते अंकार को उद्गीथ विशेषण से
कहते हैं ॥ अरु यह जो अंकारकी उपासना, श्रेष्ठता, विभूति,
फलादिक है सो इस अंकार का उपव्याख्यान है ॥ अत्र इस
अंकारकी सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सौम्य " एपां भूता-
नां पृथिवीरसः " इन सर्व चराचर भूतोंका पृथिवीरस (गति,
परायण, अवस्थ) है । अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण
है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतोंकी स्थिति का हेतु है,
अरु अवस्थ कहिये प्रलय में निदान है । यह, गति, परायण,

अरु अवष्टम्भ, इनतीनों पदोंका भेद है ॥ ऐसी जो सर्वचराचरभूतों का, रस, पृथिवी तिसका जल रस है " अप्सु द्योताच प्रोताच " यह बृहदारण्य के पञ्चमाध्यायकी श्रुति है । इस, रस, शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता विषे जानना । तिस जल का ओपधि रस है । शंका, ओपधि को जलके कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है । तहां समाधान कहते हैं, ओपधि जलका परिणाम सार है, एतदर्थ उसको जलका रस कहते हैं । अरु ओपधि का रस (सार) पुरुष ' कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओपधि का परिणाम (सार) है ताते । अर्थात् " एषां भूतानां " यहां से लेके " आपोरसः " यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्वजानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना । ॥ अरु शरीररूप पुरुषका रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते, अरु वाणीकोही लोक विषे सरस रसना रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं । अरु तिस वाणीका रस, कहिये सार, ऋचा है । अरु तिस ऋचाओंका सामरसतर है ' अर्थात् सार है । अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ (अंकार, सारतर है । इस प्रकार यह उद्गीताख्य अंकारचराचर भूतोंका उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है । अर्थात् जैसे इक्षु रसका सार गुड़ वा राव है, तिसका सार शकर है, तिसका सार खाड़ है, तिसका सार घूरा है, तिसका सारतर कन्द वा मिसरी है, तैसे । ॥ अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस अंकारको परार्थ कहते हैं अर्थात् परमात्माकी उपासना का स्थान होनेसे यह वर्णात्मक अंकार अक्षर परमात्मापत्त मुमुक्षुओं करके उपास्य है । इत्यभिप्रायः ॥ अरु पृथिव्यादिरसों की संख्या से यह अष्टम है, अतएव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतोंका रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जलका ओपधि ३, ओपधिका शरीर ४, शरीरका वाणी ५, वाणीका ऋचा ६

त्रयोऽधर्मस्कन्धाः ॥ यज्ञोध्ययनं दानमिति प्रथम
स्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी । तृतीयो
ऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुले ऽवसादन्सर्व एतेपुण्यलो-
का भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति इति ॥

ऋचांका साम ७, सामका उद्गीथ अंकार ८, इस प्रकार पृ-
थिव्यादि उत्तरोत्तर रसोंका अष्टम रस होने से अंकार को "रस-
तमः" सर्वोत्कृष्ट रसतर कहा है ॥ हे सौम्य ! अब इस छान्दोग्य
उपनिषद् के द्वितीय प्रपाठकके पष्ठ खण्ड त्रिपे प्रणवको अमृतं त्व
(मोक्ष) प्राप्ति का साधन कहा है, तहां तिसकी विधि के अर्थ
प्रथम "त्रयोधर्मस्कन्धाः" धर्म के तीनस्कन्ध (भेद) कहे हैं,
तहां "यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथम" : अग्निहोत्रादि कर्म
करना, अरु नियम से ऋगादि वेदों का अध्ययन करना,
अरु भिक्षुक याचक को दानदेना, यह धर्मका प्रथम स्कन्ध है,
सो मुख्य करके गृहस्थका धर्म है । यहां जो प्रथमाश्रमी ब्रह्मचारी
के धर्मको त्यागके गृहस्थ के धर्मको ग्रथम कहा है सो वानप्रस्थ
की अपेक्षा से आर्षछान्दस प्रयोग से क्रमव्यत्ययसे वा, गृहस्थ
को अन्य तीनोंका रक्षक पोषक होने से कहा जानना । अरु "तप
एव द्वितीयः" कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूपं तप, धर्मका द्वितीय
स्कंध है, सो वानप्रस्थका धर्म जानना । यहां जो वानप्रस्थ के
धर्मको । जो तृतीय है, द्वितीयकरके कहा है सो गृहस्थ के प्रथमकी
अपेक्षासे जानना । अरु "ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयो-
ऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादन्" । आचार्य कुल में वास
करनेका शील कहिये स्वभाव है जिसका, ऐसी आचार्य कुल-
वासी ब्रह्मचारी, अर्थात् केवल वेदाध्ययनकरने मात्रही को आचार्य
कुलमें वासन करके आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में वास
करके वहांही देहत्यागकरना, इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के लखावने के
अर्थ "अत्यन्त" यहपद दिया है । अर्थात् विधिपूर्वक जो नैष्ठिक

ब्रह्मचर्य्य है सो धर्मका तृतीय स्कंध है । इस उक्त प्रकारके धर्म-
वान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यहतीनों अपने अपने धर्मा-
चरणके प्रभावसे स्वर्गादि पुण्यलोकको प्राप्त होते हैं, अतएव इन
तीनोंको “पुण्यलोका” इस विशेषणसे कहा है ॥ अरु इनतीनों
की अपेक्षासे जो चतुर्थ संन्यासी है सो “ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्व
मेति” ब्रह्मजो अंकार तिसकी उपासनामें स्थित होने से तिस
उपासनाके प्रभावकरके अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है । अर्थात्
यहां जो केवल संन्यासीको ही प्रणवोपासना कहा है तिसका
हेतु यह जानना कि सामान्य रीतिसे नो चारोही आश्रमके पुरुष
प्रणवोपासनाके अधिकारी हैं परन्तु संन्यासीको अन्य अग्निहो-
त्रादि कर्मोंके त्यागपूर्वक शमदमादि करत सन्ते केवल प्रणवो-
पासनाका अधिकार है, ताते उसको प्रणवोपासनाका अधिकार
विशेष होनेसे उसको “ब्रह्मसंस्थो” यह विशेषण दिया है । अरु
पूर्वोक्त प्रकार अंकारके लक्ष्य परमात्माकी अंकाररूप आलम्बन
से उपासना करनेवाला अमरणभाव (मोक्ष) को प्राप्त होता है,
अतएव कहा है कि “ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति” प्रणवोपासक
मोक्षको प्राप्त होता है ॥ इति ॥

इति सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद् नम्वन्धी
प्रणवोपासनविचार समाप्तम् ॥

अथ यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी
प्रणवोपासन विचार प्रारम्भ्यते ॥

ॐ३ खं ब्रह्म ।

खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्मा ह कौरव्य यणी पुत्रो
वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदनेन यद्वेदितव्यम् ॥ इति ॥

हे सौम्य ! अब यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् के सप्तमा-
ध्याय सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार संक्षेपमात्र कहताहों सो
श्रवणकरो यहाँ सो " ॐ३ खं ब्रह्म " यह ब्राह्मणभागका मन्त्र
है । तिसमें अंकारका वाच्य जो ब्रह्म तिसका खं विशेषण है
। अर्थात् निराकार सर्वव्यापी परिपूर्ण एकरस ब्रह्म है सो विशेष्य
है, अरु तैसा होनेसे , खं, उसका विशेषण है । अरु विशेष्य वि-
शेषणका समानाधिकरण होनेसे इसका , नीलकमलवत्, " खं
ब्रह्म " ऐसा निर्देश (उपदेश) है अरु ब्रह्मशब्द विशेषणकरके
बृहत् (बड़े) का बोधकहै, अतएव उसको आकाशका विशेषण
देके , खं ब्रह्म, कहा है । जो सो खं विशेषणवाला ब्रह्म है सो
, ॐ, शब्दका वाच्य होनेसे ' ॐ ' यह शब्दरूप है, अरु उक्तप्रकार
के विशेष्य विशेषणकरके अरु वाच्य वाचकता करके उभयथा
भी उसका सामानाधिकरण अविरुद्ध है, अतएव ब्रह्मोपासन
साधनेके अर्थ , ॐ, यहशब्द युक्तही है । अरु श्रुत्यन्तरमें भी कहा
है तथाच " एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् " । " परमोमि-
त्यात्मानं गुंजीत " । " ॐमित्येवं ध्यायय आत्मानमित्यादि " ।
अरु अंकारका अन्यार्थ असंभवहै, जैसे अन्यत्र " ॐमिति शस-
त्योमित्युद्गायतीति " कहाहै सो, स्वाध्यायके आरम्भ अपवर्ग
के विषे अंकारका प्रयोग विनयोग होनेसे कहाहै नतु तहां अर्था-
न्तरकेहेतु एतदर्थ ध्यान साधनत्वकरके अंकारका उपदेश है ।
अरु यद्यपि ब्रह्म, अत्मा, इत्यादिक जो शब्दहै सो ब्रह्मवस्तु के

वाचकनाम है, तथापि श्रुतियों के प्रमाणसे ब्रह्मका उपदेश अंकार करके ही है, अतएव ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले को ब्रह्मप्राप्तिके अर्थ अंकार सर्वोत्तम साधन है । अरु यहां जो अंकार ब्रह्मका, खं, आकाश विशेषण है तिसकरके भूताकाशको न ग्रहण करके अंकारके लक्ष्य चिदाकाश (चैतन्याकाश) का ग्रहण है, सो कैसा है पुराण कहिये चिरन्तन है । अर्थात् उत्पत्त्य दि रहित अनादि है । अरु उसको “ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम् ” “ सूक्ष्माच्चतसूक्ष्मतरं विभाति ” इत्यादि प्रमाणकरके पृथिव्यादि भूतों से आकाश सूक्ष्म है अरु आकाशसे सर्वशक्तिकी समष्टारूप अव्याकृतनाम आकाश, जो चिदाकाशरूप अक्षरविषे ओतप्रोत है, सूक्ष्म है । अरु तिससे सूक्ष्म अंकारका लक्ष्य चैतन्याकाश परम सूक्ष्म है, अतएव उसको सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म कहते हैं । ताते उस महासूक्ष्म अक्षर आत्मा ब्रह्मको आलम्बन बिना जाननेको कोई भी शक्यनहीं, अतएव जैसे लोक विष्णुआदिक देवताके आकार से अंकित पाषाणादिकोंविषे विष्णु आदिकोंकी भावना करते हैं, तैसेही श्रद्धाभक्ति भाव विशेषकरके परब्रह्मका प्रतीक जो अंकार अपरब्रह्म तिमविषे परब्रह्मकी भावनाकर उपामना करनी । अरु “ वायुरं खमिति ”, वायुरं, कहिये जिस आकाशविषे वायु १ विद्यमान होय तिस आकाशको, वायुरं, कहते हैं । अर्थात् वायु कहिये सूत्रआत्मा समस्त जगत्को, जैसे सूत्रमें मालाके मणिके तैसे, अपनेविषे धारके जिस परमाकाशविषे स्थित है तिस चैतन्याकाश प्रणवके लक्ष्यको, वायुरं, कहते हैं, सो कौन जानता है, कौरव्यायणीका पुत्र जानता है, अतएव, खं, इस शब्दका अर्थ यहां चैतन्याकाशही युक्त है, ऐसा मानते हैं । तात्पर्य यह है कि, खं, शब्दकरके निरुपाधि ब्रह्म, अरु, वायुरं, इसकरके उपोपाधिब्रह्म, सो उभयप्रकारके ब्रह्मका बोधक अंकारही है, क्योंकि परब्रह्मका प्रतीक होनेसे, प्रतिभावत् साधनरूप जे प्रतिपाद्य है । तथाच “ एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयो-

कारइति । अरु यह अंकार वेद है, जो जानने योग्य वस्तु है सो जिसकरके जानीजाय तिसका नाम वेद है, सो मुमुक्षुओंकरके अज्ञानावस्थामें जानने योग्य ज्ञेयरूप जो परब्रह्म आत्मा सो दुर्विज्ञेय होनेसे अंकाररूप आलम्बनद्वाराही जानाजाताहै, अरु ऋगादि वेदोंका बीज (कारण) होनेसे अंकारही वेद है 'जैसे नामकरके नामी जानाजाता है तैसे, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण 'यह अंकारही वेदहै इसप्रकार जानते मानते हैं ॥

इति यजुर्वेदीयबृहदारण्यकउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवो-
पासन विचारसमाप्तम् ॥

हे सौम्य! इन ईशादि सर्व उपनिषद् करके प्रतिपाद्य अंकारोपासन कहने का अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन सर्वोत्तमहै " नातःपरमस्ति " इससे उत्तम और आलम्बन कोई नहीं । अरु विष्णुआदिकोंकी प्रतिमावत् यह अंकार परमात्मा की प्रतिमास्मारक (स्मृतिकरावनेवाला) है । अरु यही उसअनामी परमात्माका मुख्य नामहै, अतएव इसको परमात्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन जानके मुमुक्षुओंकरके इस अंकारकी उपासना अवश्य कर्त्तव्यहै ॥

इति श्रीईशादिसर्वउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन
विचारसंक्षेपतःसमाप्तम् ॥

अथ हिरण्यगर्भादिसप्तसिद्धान्तसम्बन्धीप्रणवोपासनविचार ॥

हे सौम्य! समस्त शास्त्रोंके सात सिद्धान्त हैं, तहाँप्रथम हिरण्य-

गर्भ (ब्रह्माजी) का सिद्धान्त १ । द्वितीय सांख्यशास्त्रके कर्ता कपिलदेवका सिद्धान्त २ । तृतीय कर्मवादी अपान्तरतम मुनिकासिद्धान्त ३ । चतुर्थ सनत्कुमारों का सिद्धान्त ४ । पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त ५ । षष्ठ पशुपति शिवजीका सिद्धान्त ६ । सप्तमपञ्चरात्र विष्णुजीका सिद्धान्त ७ ॥ इसप्रकार सात सिद्धान्त हैं तहां सातों सिद्धान्तकारोंने तीनमात्राके तीनतीन भेदसे एक अंकारके नवनव भेदसे उपासना किया अरु कहा है, अतएव सातों सिद्धान्तकरके एक अंकारकी मात्राके ६३ भेद द्युये हैं । अब इन प्रत्येक सिद्धान्तकारों करके कहे जे अंकारकी मात्राके भेद सो भी तुम्हारे प्रति कहता हों तिसको भी श्रवण करो ॥

१ प्रथम हिरण्यगर्भ का सिद्धान्त ॥

हे सौम्य ! हिरण्यगर्भ सिद्धान्तके मतवादी पुरुष ऐसा कहते हैं कि जिस जिज्ञासुको परमात्मयोग (परमात्मा जीवात्माका अभेद) पावनेकी इच्छा होय सो अंकारकी इसप्रकार उपासना करे कि जो परमात्माका वाच्य अंकार त्रिमात्रिकरूप है सो 'तीनमात्राका रूप है, तीन ब्रह्मरूप है, तीन अक्षररूप है, ऐसा जानके जो अंकारकी उपासना करता है सो परमपदको प्राप्त होता है, अब इसका विस्तार श्रवण करो । अग्नि, वायु, सूर्य, यह तीन अंकारकी मात्रा हैं । अरु ऋग्, यजु, साम, यह तीन वेद अंकारके ब्रह्म हैं । अरु 'अकार' उकार, मकार, यह तीन अंकारके वर्णात्मक अक्षर हैं । इसप्रकारका है स्वरूप जिसका ऐसा जो अंकार है सो परमपद है । [अर्थात् उक्त प्रकार का अंकार परब्रह्मका प्रतीक होने से इसको परमपद कहते हैं क्योंकि इसकी उपासना से मुमुक्षुओं को परमपद (ब्रह्मपद) की प्राप्ति होती है, ताते इसको परमपद कहते हैं । अरु यही अंकार परब्रह्म प्राप्तिका मुख्य आलम्बन होनेसे मुमुक्षुकी परमगति है " गतिरत्र नास्ति " यहां इस मोक्षमार्ग विषे इस अंकारोपासनसे इतर गति (आश्रय) अन्य कोई नहीं । इसप्रकार शास्त्रतः वा गुरुतः सम्यक्प्रकार जानके जो अंकार

की उपासना करते हैं सो मोक्षको प्राप्त होते हैं वो पुनः जन्म मरणको प्राप्त होते नहीं । प्रथम जो अग्नि, वायु, सूर्य, यह तीन मात्रा कही है तिनका व्याप्तिमें इसप्रकार विचार है कि जीव, ईश्वर, आत्मा, यह तीन मात्रारूप जानने, तहां सर्व अन्न का भोक्ता वै उवानररूप से सर्व देहोंमें स्थित है सो जीव है, भोक्ता होनेसे, अरु प्राणरूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ सर्व देह में व्याप्त ईश्वर है, सर्व संघातको धारणकर्त्ता सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठ होने से । अरु सूर्य, साक्षी आत्मा है, सर्व का प्रकाशक सर्व से असंग सर्व का द्रष्टा होने से । अरु ऋग्, यजु, साम इन तीनों के कहने से शब्द ब्रह्म को जानना, क्योंकि सर्व शब्दोंका बीजरूप ओंकार है । अरु अकार, उकार, मकार, यह तीन वर्णात्मक अक्षर कहे हैं, तिनकरके जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था रूप कार्य्य कारणात्मक प्रपञ्च जानना, क्योंकि मांडूक्योपनिषद् विषे जाग्रदादि अवस्थारूप पादोंकी अकारादि मात्रा के साथ एकता कही है । अतएव प्रथम कही जो मात्रा तिसको जाग्रत् स्थानादिरूप प्रथमपाद अकारमात्र रूप जानना, अरु शब्दब्रह्म को सूक्ष्म होने से सूक्ष्म स्वप्नावस्थादि स्थानरूप को उकारमात्रा रूप जानना, अरु सर्व के साक्षी आत्मा को सर्व का कारण होनेसे उसको सर्व का कारण सुषुप्तिअवस्था प्राज्ञाभिमानिरूप मकार मात्रारूप जानना । इसप्रकार व्याप्ति समष्टिकी एकताकर पुनः तिसकी मकारादि मात्रासाथ एकता विचारके इन सर्व को ओंकाररूप जानके जो मुमुक्षु परब्रह्म के पूर्तीक त्रिमात्रिक ओंकारकी उपासना करता है सो पुरुष ओंकार के लक्ष्यरूप परब्रह्मरूप परमपद को प्राप्त होता है पुनः वो संसार विषे आये नहीं । इसप्रकार हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के मतवादी प्रणवोपासन मानते करते कहते हैं ॥ इति प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धान्त १ ॥

अथ द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त २ ॥

हे सौम्य ! सारयशास्त्र के कर्त्ता कपिलदेवजी के सिद्धान्त

त्रिपे इसप्रकार कहाँ है कि, जब मुमुक्षु पुरुष, तीन ज्ञान, तीन गुण, तीन कारण इन नौ भेदवाले एक अङ्कारको जाने तब मोक्षको प्राप्त होवे । अब इनका भेदार्थ श्रवणकरो, तीनप्रकार का जो ज्ञान कहाँ है सो इसप्रकार है कि एक व्यक्त ज्ञान है दूसरा अव्यक्त ज्ञान है, तीसरा ज्ञेय ज्ञान है । तहां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पंचमहाभूत, अरु इनका कार्य घट पट देहादि प्रपंच है सो सर्व व्यक्तरूप आगमापायि अनित्य है कधी इनका भाव होता है कधी अभाव होता है । ताते यह सत्य न होयके असत्य ही है । इनका जो यथार्थ ज्ञान है सो प्रथम व्यक्त ज्ञान है । अरु इनका जो कारण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व, अरु प्रकृति, यह आठों अव्यक्तरूप हैं, ताते जो इनका यथार्थ ज्ञान है सो अव्यक्त ज्ञान है । अरु ज्ञेय, कहिये जानने योग्या अर्थात् मुमुक्षुको अज्ञानपर्यन्त जानने योग्य अरु ज्ञानहुये अपना आप ज्ञानरूप । ऐसा जो चैतन्य आत्मा पुरुष तिसका जो यथार्थ ज्ञान सो ज्ञेय ज्ञान है । इसप्रकार व्यक्त अव्यक्त अरु ज्ञेय, इन तीनोंका जो जानना है सोई तीनप्रकारका ज्ञान है । हे सौम्य ! अब इन सर्वको जिसप्रकार जानना है सो भी श्रवण करो, जो मूल प्रकृति है सो अव्यक्तरूप है अरु सूक्ष्म स्थूल सर्वका कारण है, वो कार्य किसीका भी नहीं । अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा, यह सात वारणरूप भी हैं अरु कार्यरूप भी हैं, तहां कार्यतो प्रकृतिके हैं अरु कारण, पंच महाभूत दश इन्द्रिय अरु एक मन इन, षोडश पदार्थों के हैं, अतएव इनको प्रकृति विकृति भी कहते हैं, अरु उक्त षोडश पदार्थ केवल कार्यरूप ही हैं वो कारण किसीके भी नहीं ताते उनको केवल विकृति रूप ही कहते हैं । अरु पुरुष जो चैतन्य है सो न तो किसीका कारण है न किसीका कार्य है केवल स्वयंज्योति सर्वका साक्षी निराकार निर्विकार कूटस्थ है । अर्थात् व्यक्त जो स्थूल प्रपंच है सो केवल कार्यरूप है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा यह सात

उक्त प्रकार कारणरूप भी हैं अरु कार्यरूप भी हैं, अरु अव्यक्त प्रकृति जिसको प्रधानभी कहते हैं सो केवल कारणरूप ही है, अरु पुरुष ज्ञानरूप है । इन सर्वको यथार्थ जानना तिसका नाम तीनप्रकारका ज्ञान है । अरु, सत्त्व, रज, तम, यह तीनगुण हैं, तहां सत्त्वगुणसे ज्ञान अरु दैवी सम्पदा होते हैं, रजोगुणसे काम रागादि होते हैं, तमोगुणसे प्रमाद आलस्य निद्रा क्रोध हिंसादि आसुरी सम्पदा होते हैं । अरु पुनः सत्त्वगुणसे देवतादिक होते हैं, रजोगुणसे मनुष्यादि होते हैं, तमोगुणसे पशु वृद्धादि होते हैं, पुनः सत्त्वगुणसे स्वर्गादि उत्तमलोक होते हैं, रजोगुणसे मनुष्य लोकादि मध्यम लोक होते हैं, अरु तमोगुणसे नरकादि अधम लोक होते हैं, इसप्रकार त्रिगुणात्मक सर्व कार्य जानना । यह तीन अंकारके गुण हैं ॥ अरु तीन कारण हैं तहां एक, मन, द्वितीयबुद्धि, तृतीय, अहंकार, इसही तीनकरके सर्व प्रवृत्ति होती है अतएव यह तीनों कारण हैं ॥ हे सौम्य! यह सर्व कथनसे यह जानना, जो अंकारका लक्ष्य परब्रह्म है सोई अव्यक्तरूप है अरु सोई व्यक्तरूप है अरु सोई पुरुष ज्ञेयरूप है । ताते कारणरूप भी वो ही है अरु कार्यरूप भी वोही है अरु साक्षीरूप भी वोही है, ताते सर्व अंकाररूप ही है । अरु अंकार त्रिपे जो दो मात्रा हैं अकार अरु उकार तिसको कार्य कारणात्मक प्रकृतिरूप जानना अरु यह व्यंजन जो मकार है जिसको अनुस्वार कहते हैं सो धैतन्य पुरुषरूप है । अरु अंकार तीनमात्राकरके त्रिगुणरूप है एतदर्थ समस्त प्रपंच त्रिगुणात्मक अंकार ही है, अरु व्यंजनरूप त्रिगुण परम पुरुष है ताते सर्व अंकार ही है । अरु इस अंकारका वाच्य प्रकृत्यात्मक प्रपंच है । अरु इसका लक्ष्य सर्वका साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान सच्चिदानन्द आत्मा है । ताते जो पुरुष उक्त प्रकार जानके परब्रह्मके वाचक प्रतीक अंकारकी उपासना कर ताहे सो तिस उपासनरूप आलम्बन करके परमपदको प्राप्न होता है ॥ हे सौम्य! पूर्व जो, व्यक्तज्ञान, अव्यक्तज्ञान, अरु ज्ञेयज्ञान

यह तीन प्रकारका ज्ञान, अरु सत्त्व रज तम, यह तीनिगुण, अरु मन बुद्धि अहंकार, यह तीन कारण कहे हैं । तहां स्थूलव्यक्त प्रपंचसहित व्यक्तज्ञान, अरु सत्त्वगुण अरु मन कारण, इस सर्व का समुच्चय जाग्रदवस्थारूप प्रथम पादको अकाररूप प्रथम मात्रा साथ एककरे, पुनः अव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान अरु बुद्धिकारण अरु रजोगुण इन सर्वका समुच्चयरूप स्वभावस्था को, क्योंकि स्वप्नका प्रपंच सूक्ष्महोनेसे अव्यक्त है, अरु तिसका रजोगुण है बुद्धि तिसका कर्त्ता है, ताते अव्यक्त प्रपंचसहित अव्यक्तज्ञान रजोगुण अरु बुद्धिकारण, इन तीनोंके संघातरूप स्वभावस्था द्वितीय पादको दूसरी उकारमात्रा साथ एककरे, अर्थात् सूक्ष्मप्रपंचको उकार मात्रारूप जाने, अरु ज्ञेयज्ञान, तमोगुण, अरु अहंकार कारण, इन तीनोंका संघातरूप पुसुप्त्यवस्थारूपपादको तीसरी मकारमात्रा साथ एककरे । इसकारण तीनों पादोंको विभागसे विचारके मात्राओंके साथ एककरके एक परब्रह्म सर्वाधिष्ठान अक्षर परमात्मा का प्रतीक जो अंकार तिसकी उपासना करे तब तिसउपासन विचाररूप आलम्बनके प्रभावसे उपासक मुमुक्षु अंकारके लक्ष्य सर्वके अधिष्ठान आश्रय अक्षर परमात्मरूप परमपदको प्राप्त होता है ॥ इति द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त २ ॥

अथ तृतीय अपान्तरतममुनि सिद्धान्त ३ ॥

हे सौम्य ! अपान्तरतम मुनि कहते हैं कि जो जिज्ञासु पुरुष अंकार ब्रह्मको, त्रिमुख, तीन देवता, तीन प्रयोजन, इन नव नामरूपकरके सुशोभित है, यथार्थ जानके, तिसकी सम्यक् प्रकार उपासना करना है सो परमपदको प्राप्त होता है ॥ अब इसका अर्थ सुनो । तीन जो अग्नि हैं सोई तीन मुख हैं, तहां एक गार्हपत्य नाम अग्नि है, दूसरा दक्षिणाग्नि है, अरु तीसरा आहवनीय नाम अग्नि है । तहां गृहस्थाश्रमका जो महानस (रसोईके स्थान) विषे जो अग्नि है कि जिसकरके पाक सिद्ध होता है, तिस अग्निको गार्ह-

पत्य नामसे कहते हैं, अरु जिस अग्निविषे अग्निहोत्र होता है तिसको दक्षिणाऽग्नि कहते हैं । अवइसका भेदसुनो जिसदिनइन ब्राह्मणादि वर्णत्रयीके पुरुषोंका यज्ञोपवीत संस्कार होताहै उस दिवस जो वेदोक्त मंत्रोंसे अग्निस्थापित होताहै तिसका नाम दक्षिणाऽग्निहै, तिसविषे प्रातःकाल अरु सायंकाल दोनों कालों विषे वेदोक्त मंत्रोंसे नित्य आहुति देना, इसप्रकार अग्निहोत्रहोता है तिसको वा जिसविषे वशीकरणादि प्रयोगार्थ हवनहोताहै तिसको दक्षिणाऽग्नि नामसे कहते हैं, अरु जिस अग्निविषे यज्ञादि होते हैं अरु जिसकी आराधनासे सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं तिस अग्निको आहवनीय नामसे कहते हैं । इसप्रकार जो उक्त तीन अग्निहैं तिसको त्रिमुख कहते हैं । अरु, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवताहैं । अरु धर्म अर्थ काम, यह तीन प्रयोजनहैं ॥ अव पुनः श्रवणकरो तीनजो अग्नि कही हैं सो जगत्के उत्पत्ति पालनसंहारका हेतु (कारण) है, तहां "यज्ञाद्भवति पर्जन्यो" इत्यादि प्रमाणसे आहवनीय अग्निमें यज्ञाहुतिद्वारा मेघ होते हैं मेघोंद्वारा वर्षाहोती है वर्षाद्वारा अन्नहोताहै अन्नद्वारा प्रजाहोती है, ताते आहवनीय नामवाला अग्नि जगदुत्पत्तिका कारण है । अरु गार्हपत्याग्निजो (पाकशाला) का अग्निहै सो अन्तरवाह्य का अन्न परिपक्व करताहै, ताते सो जगत्के पालन (स्थिति) का हेतु है । अरु जो अग्निहोत्रका अग्नि है तिस विषे अग्निहोत्र कर्त्ता यजमानके शरीरपातोत्तर उसके शरीरका वाह होताहै, ताते दक्षिणाऽग्नि जगत्के संहारका कारण है, अतएव उक्तप्रकारके तीनों अग्नि उक्त प्रकार जगत्के उत्पत्ति पालन संहारका कारण हैं । अरु यह सर्व जगत्के निर्वाहक ईश्वरहैं, एतदर्थ इनको त्रिमुखकरके कहते हैं ॥ अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र, यह जो तीन देवताहैं सोभी जगत्की उत्पत्तिपालन संहारका हेतु हैं, तहां ब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, अरु विष्णु जगत्का पालनकरताहै, अरु रुद्र जगत्का संहारकरताहै, ताते उक्त तीनों देवताभी जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहार

का कारण होने से जगत् के निर्वाहक ईश्वर हैं। अरु धर्म, अर्थ काम यह जो तीन प्रयोजन हैं सो भी जगत् के प्रवर्त्तक हेतु हैं, ताते सर्व्व जगत् अंकारका वाच्य होने से, अंकाररूप है अरु जगत् का वाचक अंकार ही नामनामी की एम्ता से जगत् रूप से सुशोभित है अरु अंकार ही जीव ईश्वर ब्रह्मरूप है, अर्थात् अंकारकालक्ष्य प्रत्यगात्मा अकारमात्रा स्थूल प्रपञ्च जाग्रदवस्थारूप उपाधिका अभिमानी हुआ विश्व जीवरूप है, अरु उकारमात्रा सूक्ष्म प्रपञ्च स्वप्नावस्था रूप उपाधि साथ मिले तिसका अभिमानी हुआ तैजस स्वप्नका कल्पक ईश्वर है, अरु मकारमात्रा जाग्रत् स्वप्न स्थूल सूक्ष्म, का कारण सुषुप्त्यवस्थाका अभिमानी मायाविशिष्ट सर्व्वका कारण होने से ब्रह्म है अतएव जीव ईश्वर ब्रह्म, यह तीनों रूपसे सोपाधि हुआ अंकार का लक्ष्य प्रत्यगात्मा ही सुशोभित है। इस प्रकार यथार्थ जानके जो अंकारोपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अपान्तर मुनि कहते हैं ॥ हे सौम्य ! अब इसका विचार श्रवण करो, यहां जो तीन अग्नि, तीन देवता, तीन प्रयोजन, कहे हैं तहां जगदुत्पत्तिका कारण जे आहवनीय अग्नि अरु ब्रह्मादेवता अरु धर्म; इन तीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग विश्वाभिमानी, इस स्थूल प्रथम पाद साथ अभेदकर पश्चात् उस प्रथमपादको अकार मात्रा साथ एक विचार उसको अकार मात्रारूप जाने। अरु दूसरा जो जगत् की स्थितिका हेतु जो, गार्हपत्य अग्नि, विष्णुदेवता, अरु अर्थ, इन तीनों को, स्वप्नावस्था सूक्ष्मभोग तैजसाभिमानी, इस सूक्ष्म द्वितीय पाद साथ एक कर पश्चात् उस द्वितीय पादको द्वितीय उकार मात्रा साथ अभेदकर उसको उकारमात्रा रूप जाने अरु तृतीय जो, दक्षिणाग्नि, रुद्रदेवता, अरु काम, इन तीनों को सुषुप्त्यवस्था आनन्द भोग अरु प्राज्ञाभिमानी, इस कारण तृतीयपाद साथ अभेद विचार पुनः तिस तृतीयपाद को तृतीय मकार मात्रा साथ एक कर तिसको मकार मात्रारूप जाने ॥ इस प्रकार उक्त तीनों अग्नि

देवता प्रयोजन को विभाग से अकारादि तीनों मात्रा साथ एक कर प्रपञ्च रूपनामी अरु उंकार नाम इनको अभेद जानके जो उंकारकी उपासना करताहै, अर्थात् उंकार के जप अरु पादों के भेद विचार उपासनरूप आलम्बनकरके जो तिसके अधिष्ठान अक्षर चैतन्य आत्मा को सम्यक् प्रकार जानताहै सो उपासक परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ इति अपान्तरतम मुनिका सिद्धान्तः॥

अथ चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त ४ ॥

हे सौम्य ! सनत्कुमार सिद्धान्तवाले पुरुष उंकारकी उपासना इस प्रकार करते कहते हैं कि जो जिज्ञासु पुरुष, तीनकाल, तीनलिंग, तीनसंज्ञा, यह नवनाम रूपवाला जानके उंकारकी उपासना करताहै, सोमोक्षको प्राप्तहोताहै । अब इसका अर्थ भेद श्रवणकरो तीनकाल उसको कहते हैं, जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानरूप कालहै । तहां भूतकाल उसको कहते हैं जो पूर्व व्यतीतहुआ, अरु वर्त्तमानकाल उसको कहते हैं जो वर्त्तमान है, अरु भविष्यत्काल उसको कहते हैं जो आगे आवना है, अब इसको पुनः श्रवण करो । हे सौम्य ! यह जो युग वर्त्तता है तिसके पूर्ण जो युग व्यतीत हुआ सो भूतकाल कहिये है, अरु जो युग अब वर्त्तमान है सो वर्त्तमानकाल है अरु जो युग आगे आवना है सो भविष्यत्काल है । इसही प्रकार इस वर्त्तमान युगके आवान्तर जो वर्ष व्यतीत हुये सो भूतकाल है, अरु जो वर्ष वर्त्तता है सो वर्त्तमानकाल है, अरु जो वर्ष अग्रिम आवना है सो भविष्यत्काल है, तेसेही एक वर्ष के आवान्तर जो मास व्यतीत हुये तिनको भूतकाल कहते हैं, अरु जो मास वर्त्तता है तिसको वर्त्तमानकाल कहते हैं, अरु जो मास अग्रिम आवने हैं तिनको भविष्यत्काल कहते हैं ऐसेही एक मासके आवान्तर जो दिवस व्यतीतहुये तिनकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो दिवस वर्त्तता है तिसकी वर्त्त-

मान संज्ञा है, अरु जो दिवस अग्रिम आवने हैं तिनकी भविष्य-
 त्काल संज्ञा है । इसही प्रकार एक वर्तमान दिवसमें जो प्रहर
 व्यतीत हुआ तिसकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो प्रहर वर्तता है
 तिसकी वर्तमान संज्ञा है, अरु जो प्रहर आगे आवना है तिस-
 की भविष्यत् संज्ञा है । अरु तैसेही एकप्रहरके आवान्तर जो घड़ी
 व्यतीत हुई सो भूतकाल हुआ अरु जो घड़ी वर्तती है सो वर्त-
 मान है अरु जो घड़ी आगे आगन्तुक (आवनेवाली) है तिस-
 को भविष्यत् जानो । इसप्रकार परार्द्ध से लेके घड़ी निमेषकला
 काष्ठा परमाणु पर्यन्त यावत् कालावयव हैं सो सर्व पूर्वपूर्व के आ-
 वान्तर होतसन्ते भूत वर्तमान अरु भविष्यत् भावकरके युक्तही
 हैं । अरु सर्वनाम रूपात्मक पदार्थों को अपने स्वभावसे अन्य-
 था करना यह कालका लक्षण है , जैसे आम्रका फल प्रथम-
 अतिलघु अरु कसाइला होता है पश्चात् कुछ बड़ा अरु खट्टा होने
 लगता है पुनः बड़ा होके पूर्णखट्टा होता है पुनः शनैः शनैः मधुर होता
 है पुनः उत्तर सड़के नष्ट होजाता है सो यह सर्वकाल का क्रिया
 होता है, ताते यावत् नामरूप क्रियावान् वस्तु हैं तिनको एक
 रस न रहने देना यह कालका स्वरूप स्वभाव है, अरु जो वि-
 भाग रहित एकरस एककाल है सो किसी उपाधि की विशे-
 पता सेही भूत वर्तमान अरु भविष्यत् संज्ञाको पाय परार्द्ध से
 परमाणु पर्यन्त अति दीर्घ अरु अतिअल्प संज्ञाको पावता है ।
 हे सौम्य ! इस कहने करके यह सिद्ध हुआ कि एकही काल की
 उपाधिके संबन्धसे तीन संज्ञा हुई हैं, तैसेही एकही अंकार (पर-
 मात्मा) की मायारूप उपाधि करके अनेक नामरूप संज्ञा हुई
 हैं, परन्तु वास्तवकरके निरुपाधि अक्षर अंकार एकही है । इस
 प्रकार त्रिकालको जानना । अरु , स्त्री , पुरुष , नपुंसक ,
 यह तीन अंकार के लिंग हैं , अर्थात् एक अंकार अक्षर का वि-
 स्तार यावत् शब्द ब्रह्म है सो अरु शब्दों के अर्थ पदार्थ ये सर्व
 उक्त तीनों लिंगों त्रिपेही वर्तते हैं । अरु तीन जो संधी कही हैं

तहां एक, बहिस्तन्धी है, दूसरी सन्धसन्धी है, तीसरी क्रान्त सन्धी है, सो यह तीन सन्धी हैं, सो यह विश्व, तैजस, प्राज्ञ, रूप हैं । हे सौम्य ! इस कहने से यह जानना कि एक अंकारही उक्तप्रकार तीन कालरूप, तीन लिंगरूप, अरु तीन सन्धीरूप से सुशोभित है ताते सर्व अंकार रूपही है, तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं । इसप्रकार अंकार को जानके जो मुमुक्षुपुरुष तिसकी उपासना करता है सो मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य ! अब इसकी मात्राओं का क्षेपक विचार भी श्रवण करो । भूतकाल, स्त्रीलिंग, अरु बहिस्तन्धी, इन तीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग, विज्ञाभिमानी, इस प्रथम पादसाथ एककर पुनः उस प्रथम पाद को प्रथम अकारमात्रा साथ एक विचारे । पश्चात् वर्तमानकाल पुरुषलिंग, अरु सन्धसन्धी, इन तीनों को स्वप्नावस्था, धिरलभोग, तैजस अभिमानी, इस द्वितीयपाद साथ एककर पुनः उस द्वितीयपाद को द्वितीय उकारमात्रा साथ एकता विचारे । पुनः भविष्यत्काल नवुंसकलिंग, क्रान्तसन्धी, इन तीनों को सुषुप्त्यवस्था, आनन्द भोग, प्राज्ञाभिमानी, इस तृतीयपाद साथ एककर पुनः उस तृतीयपादको मकार मात्रा साथ अभेद विचारे, अरु पुनः विचारे कि यह उक्तसर्व अंकारही है अरु इस अंकारका आश्रयअधिष्ठान अक्षर परमात्मा है, अरु तिसअक्षर परमात्माका प्रतीक अरु वाचक यह वर्णात्मक अंकार है ताते इस परब्रह्मके प्रतीक अंकारकी उपासनारूप आलम्बन से उस सर्वाधिष्ठान परमात्म पदकी प्राप्तिहोती है, अरु यह प्रणवोपासना परमपद की प्राप्तिमें सर्वोत्तम मुख्य आलम्बन है । इसप्रकार विचार के जो समाहित चित्त शमदमयान् हुआ इस अंकारकी उपासना करता है, सो मुमुक्षुपुरुष को प्राप्त होता है ॥ इति चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्तः ४ ॥

अथ पंचम ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तः ५ ॥

हे सौम्य ! ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तवाले कहते हैं कि हम ओंकारको, तीनस्थान रूप, तीन पदरूप तीन प्रज्ञारूप, जानके उपासना करते हैं तहां, हृदय, कंठ, मूर्द्धा, यह तीन स्थान हैं, क्योंकि ओंकारउच्चारकरने से इन तीनों स्थानोंविषे प्रकट होता है ताते यहतीन उसके स्थान है । अरु, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन इसके पाद हैं । अर्थात् इस संधान विशिष्ट आत्मारूप ओंकार के उक्त तीनोंपाद उक्त तीनों स्थानों विषे क्रमशःवर्तते हैं, तहां मस्तक (नेत्र) विषे जाग्रदवस्था, अरु कंठरूप स्थानविषे स्वप्नावस्था, अरु हृदयरूप स्थानविषे सुषुप्त्यवस्था, इस प्रकार उक्त तीनों स्थानों विषे क्रमशः तीनोंपाद वर्तते हैं, अरु वहिःप्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा अरु घनप्रज्ञा, यह तीन इसकी प्रज्ञा है । अर्थात् नेत्रस्थान जाग्रदवस्था विषे बाह्यके घटपटादि पदार्थों को विषय करनेवाली जो प्रज्ञा (बुद्धि) तिसको बाह्यप्रज्ञा कहते हैं । अरु कण्ठस्थान स्वप्नावस्था विषे स्वप्नके पदार्थोंको विषय करनेवाली जो प्रज्ञा तिसको अन्तःप्रज्ञा कहते हैं । अरु हृदयस्थान सुषुप्त्यवस्थाविषे सर्व विशेष प्रपंच के अभाव से कारण अविद्या विषे लय हुई जो प्रज्ञा तिसको घनप्रज्ञा कहते हैं, अरु इन तीनों प्रकारकी प्रज्ञाके सम्बन्धसे तद्विशिष्ट चिदाभास को बाह्यप्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा घनप्रज्ञा इसप्रकार तीनों प्रज्ञावाला कहते हैं । अरु "यद्भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वं ओंकारएव" इत्यादि श्रुति प्रमाण से, जो कुछ होगया, अरु जो कुछहै, अरु जो कुछ होगा, सो सर्व ओंकारही है । अतएव तीनस्थान रूप भी अरु तीन पद रूप भी अरु तीन प्रज्ञारूप भी, एक ओंकारही है, अरु इसही करके इस ओंकारको सर्वव्यापी भी कहते हैं । अथवा वहिःप्रज्ञा जो विभुहै सो विश्वरूप है, अरु अन्तःप्रज्ञा तैजसरूप है, अरु घनप्रज्ञा प्राज्ञरूप है, ताते विश्व तैजस प्राज्ञ, इन तीन प्रकारहोय के सर्व

देहोंविषे एक अकारही स्थितहै । तहां बाह्य जो स्थूल वैश्वानर नाम प्रपंच है तिस बाह्यका भोक्ता विश्व है । अरु अन्तर सूक्ष्म प्रकृति (स्वप्नके पदार्थ)का भोक्ता तैजसहै । अरु कारण आनन्द का भोक्ता प्राज्ञ है । ताते जो इन तीन प्रकार के भोग्य भोक्ताको जो जानता है सो जाननेवाला सर्वका साक्षी मुक्तरूप है । अरु जब सात्त्विकी प्रकृतिहोती है तब यह जीव (चित्तन्यपुरुष) ब्रह्माहोके स्थूल प्रपंचको रचता है अर्थात् जाग्रत् जगत् (जैसेकेतेसे पदार्थ) दृष्ट आवते हैं । अरु जब रजोगुणात्मक प्रकृतिहोती है तब यह जीव तैजसभाय को प्राप्तहुआ अन्तर प्रकृति स्वरूप सूक्ष्म जगत्को रचता है । अरु जब तमोगुणात्मक प्रकृति होती है तब स्थूल सूक्ष्म अन्तरबाह्य सर्वरा अभावपर सुषुप्तिस्थानविषे प्राप्तहुआ आनन्दको भोक्ता है । अतएव जो उक्तप्रकार के भोग्य भोक्तास्थान इनका जाननेवाला चतुर्थ सर्वका साक्षी आत्मा है सो सर्व से असंग हुआ शुद्ध शुद्ध मुक्त स्वभाव है । अरु सो सर्व संपात साध मिलाहुआ भी निमके अरु निमके धर्म परम स्वभावादिकों से लिपायमान होता नहीं, ताने मदा शुद्ध है, ताने जो , तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इन नव ६ नाम रूप करके सुशोभित है, सो एकअक्षर अकारही है । अरु सो अक्षर अकार, जैसे रज्जु सर्पका तैसे, सर्व जगत्का कारण सन्तजनों ने वर्णनरिया है । अरु वेद विषे भी कहाँ है कि अकार अक्षरही स्मरमाया परके सर्वको उत्पन्न करता है, जैसे मरुम्पल या ऊपरभासि अपने उत्पत्तरूप स्वभाव करके लहरादि संगुक्त नदी को उत्पन्न करे है या उत्पन्न गीरे है तैसे, अरु सो अक्षर चित्तन्य स्वभाव होने से सर्वका ज्ञाना है । अरु सोई अकार का लक्ष्य परमान्म पुण्य परमेश्वर परब्रह्म परम पुण्य परमात्मा आदि नामों से कहा जाना है । अरु सोई परमात्मा स्मरमाया विशिष्ट ईश्वर हुआ सर्वको उत्पन्न करता है अरु सोई जीव (चिदाभास) रूपसे सर्वका भोक्ता है अरु सोई सर्व विषे प्रवेशकरके सत्त्वान्माहुआ सर्वका साक्षी है । इसप्रकार जो

एकही अक्षर (अविनाशी अजन्मा अकारकर्ता भोक्ता अरु साक्षी रूप से सुशोभित हैं, परन्तु सो महासूक्ष्म अविषय होने से अति दुर्विज्ञेय है, ताते जो जिज्ञासु पुरुष तिसपरम अक्षर परमात्माकी तिसके प्रतीक, वाचक त्रिमात्रिक वर्णात्मक अकार रूप आलम्बन द्वारा यथोक्तरीत्या उपासना करता है सो मोक्षको प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य ! अब इसका क्षेपक विचार भी श्रवण करो । प्रथम वहा जो , तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, तिनमेंसे प्रथम मूर्द्धास्थान, जाग्रदवस्था साभिमानी पाद, अरु वहिःप्रज्ञा इन तीनों को प्रथम अकारमात्रा साथ एक करे । पश्चात् कंठ स्थान, स्वप्नावस्था साभिमानी रूप पाद, अरु अन्तःप्रज्ञा, इन तीनों को द्वितीय उकारमात्रा साथ एक करे । तिसके पश्चात् हृदय स्थान, सुषुप्ति अवस्था साभिमानी रूप पाद, अरु घनप्रज्ञा, इन तीनों को तृतीय मकारमात्रा साथ एक करे । इसप्रकार तीन स्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इनको क्रमशः अकार उकार मकार, इन तीनों मात्रा साथ एक करके पश्चात् इन सर्व बाह्यको लक्षरूप परमात्मा विषे अध्यस्थ जान इनका असद्भावसे बाधकर एक सत्यरूप सर्वाधिष्ठान चैतन्य आत्माकी अहमग्रे उपासना करनेवाला मुमुक्षु मोक्षको प्राप्त होता है । परन्तु तिसको निर्विशेष महासूक्ष्म होनेसे विना आलम्बनके तिसकी उपासना करनेको कोई समर्थ नहीं ताते तिसअक्षरपरमात्माके प्रतिकिवाचक वर्णात्मक त्रिमात्रिक अकार अक्षरके जप अरु अर्थकी भावना विचाररूप उपासनाके आलम्बनसे तिसके लक्ष अक्षर परमात्माकी उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्त होता है ॥ इति ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्त ५ ॥

अथ षष्ठपशुपतिसिद्धान्त ६ ॥

हे सौम्य ! पशुपति (शिवजी) के सिद्धान्तके मतावलम्बी पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो त्रिभु अकार नवनाम रूपसे स्थित है तिसकी इस उपासना करते हैं । तहां , तीन अवस्था रूप , तीन भोग्य रूप ,

तीन भोक्तरूप, इसप्रकार नवनामरूपकरके एक अकारही मुशो-
 भित है । तहां प्रथम तीन अवस्थाको श्रवण करो , प्रथम शान्त,
 द्वितीय घोर, तृतीय मूढ़, यह तीन अवस्था हैं । सो , जाग्रन् , स्वप्न,
 सुषुप्ति, को भी , शान्त, घोर, मूढ़, इन नामों से कहते हैं । अरु इन
 जाग्रदादि प्रत्येक अवस्थाविषे यह शान्त घोर अरु मूढ़, यह तीनों
 अवस्था वर्तनी हैं । तहां जाग्रन् अवस्था जो सत्त्वगुणात्मक है
 तिमविषे चित्त शान्तरूप होता है, अरु स्वप्नावस्था जो रजोगुणा-
 त्मक है तिसविषे चित्त घोररूप होता है, अरु सुषुप्तिअवस्था जो
 तमोगुणात्मक है तिसविषे चित्त मूढ़रूप होता है । अब इस प्रत्येक
 अवस्थाके अवान्तर भेदको भी श्रवण करो । जाग्रत्विषे जो कुछ
 पदार्थ है सो ज्यों का त्यों (जैसे का तैसा) भासता है तहां जो चित्तकी
 अवस्था है सो शान्तावस्था है, अरु जाग्रत् विषे जो विपर्यय भास-
 ता है, जैसे है तो रज्जु अरु भासता है सर्प, तहां जो चित्तकी अवस्था
 है तिमको घोर अवस्था कहते हैं, अरु जाग्रत् विषे सुषुप्तिनत् कुछ
 भी नहीं भासता तहां जो चित्तकी अवस्था है तिसका नाम मूढ़
 अवस्था है ॥ तेनेही स्वप्नावस्था विषे जो पदार्थ स्फुरण हुआ है सो
 जेमा हुआ है तैसाही भासता है तहां चित्तावस्थाका नाम शान्त
 अवस्था है, अरु स्वप्नविषे जो और ता औरही भासता है, जैसे स्फुरण
 हुआ दाधी गो भासने लगा पक्षी, ऐसी जो स्वप्न में चित्तावस्था
 है तिमका नाम घोर अवस्था है, अरु स्वप्नविषे जो पदार्थ स्फुरण
 हुआ है सो भासता नहीं (जाग्रद्दृश्य स्मरणमें आनानहीं) तहां
 जो चित्तकी अवस्था है तिमका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ अरु
 सुषुप्तिअवस्थाविषे चित्त लीन हुआ है, तिमने जाग्रद्दृश्य कहना है
 कि मैं बड़े सुगमने सोयाया, वो जो सुषुप्तिमें चित्तकी सुषुप्तावस्था
 है सो शान्त अवस्था है । अरु जो सुषुप्तिने जाग्रद्दृश्य कहना है कि
 मुक्त तो अस्थवस्त्र निद्राआई सो सुषुप्तिमें चित्तकी घोर अवस्था
 है, अरु जो सुषुप्तिने जाग्रद्दृश्य कहना है कि मैं जेमा येनु य मोरा
 कि सुगमने कुछ भी जानने रही, ऐसी गो सुषुप्तिमें चित्तावस्था है

तिसका नाम सुषुप्ति मूढ़ावस्था है ॥ हे सौम्य ! अब इन तीनोंको और प्रकारभी श्रवण करो । जाग्रत विषे जो चित्तको सुख विश्राम होता है तहां चित्तावस्था का नाम शान्तावस्था है, अरु जाग्रत विषे जो चित्तको दुःख से विश्राम होता है तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु जाग्रत विषे जो मूर्छादि अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था है, अरु जाग्रत विषे जो दैवी सम्भवा शास्त्र प्रमाण यज्ञ दान अध्ययन जप पाठ पूजा से लेके जो सात्त्विक कर्म व्यवहार हैं तिन विषे चित्तकी प्रवृत्ति जिस अवस्था विषे होती है तिसका नाम शान्तावस्था है, अरु जाग्रत विषे जो व्यवहारादिक राजसी कर्म हैं तिस विषे जब चित्त प्रवृत्त होता है तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु जाग्रत विषे जो हिंसादि तमोगुणात्मक कर्म हैं तिस विषे प्रवृत्त होने में जो चित्तावस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे प्रियदर्शन ! तिनही प्रकार स्वप्न में जो सुखानुभव होता है चित्तको जिस अवस्था में तिस अवस्था का नाम स्वप्न शान्त अवस्था है, अरु स्वप्न विषे जो चित्तको दुःखानुभव होता है जिस अवस्थामें तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न घोरावस्था है, अरु स्वप्न विषे जो चित्तकी मूर्च्छादि अचेत अवस्था है तिसका नाम स्वप्न मूढ़ावस्था है ॥ इसही प्रकार सुषुप्ति अवस्था विषे सोया हुआ पुरुष उठके कहता है कि मैं सुखसे सोया मुझको शान्ति प्राप्त हुई ऐसी जो सुषुप्ति में चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति शान्तावस्था है, अरु सुषुप्ति से उठके कहता है कि आज मुझको दुःखसे निद्रा आई मुझको कुछ सुख भान न हुआ परन्तु निद्रा आई ऐसे जे सुषुप्ति में दुःखके संस्कार युक्त चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति घोर अवस्था है, अरु सुषुप्ति से उठके कहता है कि मैं ऐसा सोया जो मुझको सुख दुःख का कुछ भी भान न रहा ऐसी जो सुषुप्ति में चित्तकी बेसुध अवस्था तिसका नाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे सौम्य ! अब एक प्रकार और भी श्रवण करो, इस जाग्रदवस्था में यथार्थ अनुभवसे अपने आप चिदानन्द

आत्माविषे जो चित्तकी स्थिति तिस चित्तावस्थाकी अरु तिसकी प्राप्तिके अर्थ जो श्रवणादि साधनों विषे चित्तके प्रवृत्त वा स्थित होनेकी जो चित्तावस्था तिसकानाम कमसे उत्तम मध्यम शान्त अवस्थाहै, अरु विषयोंविषे जो चित्तकी स्थितिहोनी जिस अवस्था करके तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु देहादि अनात्म अभिमान करके रागद्वेषादि आसुरी सम्पदाविषे जो चित्त की स्थिति तिस चित्तावस्थाका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं, इस ही प्रकार स्वप्नविषे धर्मादिक सत्त्वगुणी सम्पदाविषे जो चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिसकरके तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न शान्तावस्था है, अरु स्वप्नमें जो विषयोंविषे चित्तकी प्रवृत्तिहोनी जिस करके तिस अवस्था का नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, अरु स्वप्नविषे हिंसादिक आसुरी सम्पदा में चित्तका प्रवृत्त होनाहै जिस करके तिस चित्तावस्थाका नाम स्वप्न घोर अवस्थाहै, ॥ अरु इसही प्रकार सुषुप्ति विषे जो ब्रह्मविचार के संस्कारलेके चित्तलय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति शान्तावस्था है, अरु सुषुप्ति विषे जो विषयोंके संस्कार स्मृतिको लेके चित्तलय होताहै तिस चित्तावस्थाकानाम सुषुप्ति घोरअवस्थाहै, अरु सुषुप्तिविषे जो देहादि अनात्माभिमान संस्कारको लेके चित्त लय होताहै तिस चित्तावस्थाका नाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्थाहै ॥—॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार कहा जो अवस्थाओं का स्वरूप भेद सो यह तीनों सूक्ष्म अवस्था ॐकारकीहैं ॥ अब तीनप्रकारके जे भोग्यहैं निन सो भी श्रवणकरो, अन्न, जल, अरु सोम (चन्द्रमा) यह तीनों भोग्यहैं, भोग्य कहिये भोगनेयोग्य वस्तुहै, अर्थात् जिसकरके, तुष्टि, पुष्टि, अरु आनन्द होय तिसको भोग्य कहते हैं, तहां प्रत्यक्ष सर्व जीवोंको अन्न अरु जलकरके, पुष्टि, तुष्टि, अरु आनन्द होताहै ॥ हे सौम्य ! अद, धातुसे अन्न शब्द बनताहै अरु अद, धातु भक्षण विषे वर्तता है ताते जो भक्षण कियाजाय तिसको अन्न कहते हैं, अतएव जो जीव जिसको भक्षण करना है सो तिसका अन्न है अरु नि-

सही से उसकी तुष्टि पुष्टि अरु आनन्द होता है, अरु जल सर्व जीवों को समान है ? अरु चन्द्रमा करके ओषधी वनस्पति तुष्ट पुष्ट अरु आनन्दित होती हैं, ताते अन्न, जल, अरु चन्द्रमा यह तीनोंकरके स्थावरजंगम सर्व तुष्ट, पुष्ट, अरु आनन्दित होते हैं, एतदर्थ अन्न, जल, चन्द्रमा, यह तीनों भोग्य हैं ॥ अरु अग्नि, वायु (प्राण) अरु सूर्य, यह तीन भोक्तारूप हैं । सो यह अनुभव सर्वको प्रत्यक्ष है, देखो क्षुधापिपासा प्राणका धर्म है क्योंकि जहाँ प्राण होता है तहाँहीं क्षुधा पिपासा अरु भोगनेकी शक्ति होती है, ताते देहभोक्ता न होय के प्राण भोक्ता है । अरु अग्नि देवता भी प्रत्यक्ष भोक्ता है, कांठादिकोंके सम्वन्धसे बाह्य द्रुतभुक् है, अरु प्राणरूप समिधके समन्धसे अन्तर द्रुतभुक्, अर्थात् भोजन किये अन्नका भोक्ता है, ताते अग्निभी प्रत्यक्ष भोक्ता है । अरु सूर्य भगवान् भी अपनी किरणों द्वारा सर्व रसजातिको प्रत्यक्ष भोक्ता है, ताते प्राण, अग्नि, सूर्य, यह तीनोंहीं भोक्तारूप हैं ॥ अर्थात् अग्निबाह्य समष्टि वैश्वानररूपसे हविषादिकों को भोक्ता है अरु अन्तर व्यष्टि वैश्वानररूपसे भोजनकिये अन्नादिकों का भोक्ता है, अरु वायु बाह्य समष्टि सूत्रआत्मा रूपसे सर्वको अपने विषे धारण करनेद्वारा भोक्ता है, अरु व्यष्टि प्राणरूपसे देहादिकोंका धारण करनेरूपसे भोक्ता है, अरु सूर्य बाह्य सूर्यरूपसे सर्वका प्रकाशक होनेसे समष्टिका भोक्ता है, अरु अन्तर चक्षुरूपसे व्यष्टि का प्रकाशक भोक्ता है, इसप्रकार समष्टि व्यष्टिविषे, अग्नि, वायु, सूर्य, यह तीनों भोक्ता हैं ॥ इसप्रकार जो तीन अवस्था, तीन भोग्य, अरु तीनभोक्ता, इननव ६ नामरूप होके एक अंकारही सुशोभित है, तिसको यथार्थ जानके जो मुमुक्षु पुरुष उपासना करता है सोमोक्षको प्राप्त होता है ॥—॥ हे सोम्य ! अब उक्त तीनोंकी अकारादि तीनोंमात्राके साथ एकताका क्षेपक त्रिचारभी श्रवण करो यहाँ जो तीनअवस्था, तीनभोग्य, तीनभोक्ता, कहे हैं तहाँ शान्त अवस्था, अन्न भोग्य, अरु अग्नि भोक्ता, इन तीनोंको

प्रथम जाग्रत् अवस्था स्थूलभोग्य अरु वैश्वानरभोक्ता इसप्रथम पादके साथ एकता विचारकरे । पश्चात् घोर अवस्था जल भोग्य, अरु घ्राणभोक्ता, इन । तीनोंको , स्वप्नावस्था, विरलभोग्य तैजस भोक्ता रूप द्वितीयपादके साथ एकविचारकरे तिसके पश्चात् सूक्ष्म अवस्था चन्द्रमा भोग्य, अरु सूर्य भोक्ता, इन तीनों को, सुषुप्ति अवस्था, आनन्द भोग्य प्राज्ञभोक्ता, इस तृतीयपाद साथ एक विचारकरे । तिसके पश्चात् उक्त तीनों पादोंको क्रमशः अकारादि तीनों मात्रा अंके साथ एकविचार सर्वको अंकाररूप जानके एक अंकारकी उपासनाकरे तर्हा विचारे कि यह अंकार रूप अपरब्रह्मका जोलक्ष्य अक्षर परब्रह्म है तिसका यह वर्णात्मक अक्षर अंकार प्रतीक अरु वाचक (नाम) है ताते इस त्रिमात्रिक अंकाररूप श्रेष्ठ आलम्बनद्वारा इसके अधिष्ठान अक्षर परब्रह्म कि जिसविषे यह तीनों मात्रारूप जगत् रज्जुमें सर्पवत् अभ्यस्त है तिस परमात्मा परब्रह्मकी हम उपासना करते हैं । इसप्रकार जानके जो मुमुक्षु अंकारकी उपासना करता है सो परमपदरूप मोक्षको प्राप्त होता है ॥ इति पशुपतिसिद्धान्तः ६ ॥

अथ सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तः ७ ॥

हे ओम्ब ! अब सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्तको श्रवण करो, विष्णुपञ्चरात्रके सिद्धान्तवादी कहते हैं कि जो अंकार , तीन आत्मरूप है , तीन स्वभावरूप है, तीन व्यूहरूप है, इसप्रकार नम ६ नामरूपसे सुशोभित हुआ है जिसकी हम उपासना करते हैं, अरु और भी जो इस अंकार की उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्षको प्राप्त होता है । अब इसका भेद श्रवण करो, तर्हा , बल, वीर्य, तेज, यह तीन आत्मा हैं , तर्हा जो देहविषे सामर्थ्य है तिसका नाम बल है, अरु जो इन्द्रियों की शक्ति है तिसका नाम वीर्य कहते हैं, अरु मन विषे जो उत्साह वा उदारतादि धर्म है तिसका नाम तेज कहने हैं, अर्थात् देहसे जो चैष्ट

होती हैं सो सर्वबल की है, अरु चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियोंसे जो देखना सुनना सूँघना रसलेना मिलना आदिक क्रिया पञ्च विषयों का सेवन आदिक होता है सो सर्व वीर्य्य रूप है, अरु मन विषे जो उत्साह उदारतादिक हैं सो तेज है । सो यह बल वीर्य्य तेज तीन आत्मा हैं ॥ अरु ज्ञान, ऐश्वर्य्य, शक्ति, यह तीन स्वभाव हैं, तहां यह जो देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि चित्त अहङ्कार महत्त्व प्रकृति आदिक अनात्मरूप हैं सो सर्व असत्य भ्रान्तिमात्र हैं, अरु इनका जो साक्षी आत्मा प्रत्यक् चैतन्य कूटस्थ अन्तर्यामी है सोई सत्य सर्वका प्रकाशक परमात्मा मैं हूँ, माया से आदिलेके जो प्रपञ्च हैं सो मेरी सत्ता के विषे उपजते हैं स्थित होते हैं अभाव होते हैं, जैसे समुद्र विषे तरंग उपजते हैं वर्तते हैं लय होते हैं, तैसेही मेरे विषे जगत् है, मैं चैतन्यरूप समुद्र हूँ मेरा एक अद्वैत अखण्ड सच्चिदानन्दरूप है, ऐसा जो निश्चय सो ज्ञान है ॥ अरु अणिमासे आदिलेके जो अष्ट सिद्धि आदिक हैं सो ऐश्वर्य्य रूप हैं ॥ अरु जो अन्य किसी से न बनि आवे तिसको बनावना तिसका नाम शक्ति है । सो यह ज्ञान ऐश्वर्य्य शक्ति, तीन स्वभाव हैं ॥ अरु संकर्षण, प्रभुम्न, अनिरुद्ध यह तीन व्यूह हैं ॥ अतएव, तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीन व्यूह, यह नवनाम रूप करके एक अव्यय पुरुष ईश्वर अंकारही है । अंकार से इतर कुछ भी वस्तु नहीं । "अंकार एवेदं सर्वम्" । अरु अंकार जो नाम है सो प्रकृतिका वाचक है ताते भी सर्व अंकाररूपही है । अर्थात् जो कुछ स्थूल सूक्ष्ममूर्ति अमूर्ति कार्य्य कारणात्मक जगत् है, अरु उत्पत्ति स्थिति संहार है सो सर्व अंकार का लक्ष्य एक वासुदेवही है । तथाच "वासुदेवः सर्वमिति" । गीता अ० ७ के श्लोकप्रमाण से, ताने एक अद्वैत वासुदेवसे इतर कुछ भी नहीं "सर्वमिदमहं च वासुदेवः" इस प्रकार अंकारका लक्ष्य जो सर्वात्मा ब्रह्म है तिसकी जो मुमुक्षु उपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥—॥ हे सौम्य! अब इसका क्षेपक विचार श्रवण करो । प्रथम

कहे जे , तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीन व्यूह, तहां तिनमें से , प्रल आत्मा, अरु ज्ञान स्वभाव, अरु संकर्षणव्यूह, इन तीनों को जाग्रत् स्थानादि रूप प्रथम पाद से एकताकरे, पश्चात् , वीर्य आत्मा , ऐश्वर्य्य स्वभाव, प्रद्युम्न व्यूह, इन तीनों की , स्वप्नस्थानादि रूप द्वितीय पाद से एकताकरे, तिसके पश्चात् , तेज आत्मा , शक्ति स्वभाव, अरु अनिरुद्ध व्यूह, इन तीनोंकी सुषुप्ति स्थानादि रूप तृतीय पाद से एकता करे । पुनः उनपादों की क्रमशः अकारादि तीनों मात्राओं के साथ अभेदता करके विचारे कि इन उक्त प्रकार की मात्रा जिस अधिष्ठान परमात्मा विषे कल्पितहैं अरु जो इन मात्रारूप प्रपञ्चका साक्षी प्रकाशक चैतन्य हे तिस भगवान् वासुदेव की हम इस वर्णारमक त्रिमात्रिक अंकाररूप तिसके प्रतीक वाचकके आलम्बन से उपासना करते हैं इस प्रकार जानके जो अंकारकी उपासना करता है सो वासुदेव पद को प्राप्त होताहै ॥ इति विष्णुपञ्चरात्रसप्तम सिद्धान्तः ७ ॥

हे सौम्य ! यह जो सातो सिद्धान्तियों के मतमे सर्व का उपास्य एक अंकार अक्षर कहा है सो परब्रह्मका वाचक , नाम, होने से अरु नाम नामी की एकतामे ब्रह्मरूप है, अरु इसअक्षर ब्रह्म की उपासना करके विगत रागादि दोष हुये योगी यती जो आत्म ज्ञानी हैं सो अंकार प्रतीकके लक्ष्य सर्व्वधिष्ठान चैतन्य विषे समुद्रमें नदीयत् अभेदता से प्रवेश करते हैं । हे प्रियदर्शन ! यह जो अंकार अक्षर है तिसका स्मरण अरु अर्थ विचार करत सन्ते इसके लक्ष्य अखण्ड सच्चिदानन्द चैतन्य आत्मा हे सो मैं हों , क्योंकि इन जाग्रदादि अवस्थाओं का साक्षित्व मेरे विषे पाया जाताहै अरु यहजाग्रदादिअवस्था मेरेआश्रयवर्त्तनीहैतातेइसका अधिष्ठानभी मैंही हों , अरु यहअवस्था परस्पर अरु अपने प्रकाशक साक्षीसे व्यभिचारको पावती है ताते असत्यहैं अरु इन के लिये पायाजाताहै ताते अव्यभिचारी

सैं एक सत्यरूपही अरु चैतन्य आनन्द स्वरूप एकही तैते अवस्थादि सर्व 'उपाधि' से रहित निरुपाधि सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्मा ब्रह्म मेंही । इसप्रकार परमात्माके साथ आपको अभेद जानके एकहुये जानवान् परमात्म पदरूप परमगति प्राप्तहोते हैं । तहीं जो त्रिमात्रिक प्रणव को जापिके उपासक अपने मरणसमे ॐकारका स्मरण करताहुआ देहको त्यागता है सो 'ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमागतिम्' । इत्यादि प्रमाणों से परमगति को प्राप्तहोता है । अरु जो ॐकारको एकमात्रारूप जानके उपासना करता है सो देह त्यागके इस मनुष्य लोकको प्राप्तहोय धर्माचरण पूर्वक यहांके भोगोंको भोगता है । अरु जो ॐकारको दो मात्रारूप जानके उपासना करता है सो पितृलोक को प्राप्तहोय वहांके भोगोंको भोग पुनः इसलोक विये आवता है । अरु जो ॐकारको त्रिमात्रारूप जानके उपासना करता है सो पुरुष देह त्यागानन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है वहां ब्रह्माद्वारा ॐकारके लक्ष्यका उपदेश पाय ब्रह्मसाथ एकहुआ साक्षहोता है । अरु जो वाचकरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासनाकर पुनः आचार्यके मुखसे तिसके लक्ष्य सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्माको अपना आप आत्मत्वसे साक्षात् अनुभव करता है सो देहादि अनात्म अहंकारसे रहितहुआ ब्रह्मही होता है । ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । है । सोम्य ! यह जो सातों सिद्धान्तकारों के मतसे ॐकारकी मात्राके तिरसठ ६३ भेदकहे हैं सो सर्व वाचकरूप त्रिमात्रिक ॐकारके सगुण स्थूल रूप हैं । अरु जो इनसेरहित ॐकार का लक्ष्य चैतन्य रूप है सो केवल निर्गुणरूप है । 'केवलो निर्गुणश्च' अरु शास्त्रकारोंनेभी कहाहै कि जो विष्णु अक्षर है सो निरञ्जन, अर्थात् अविद्यारूपा श्यामतासे रहित परम शुद्ध है परमशान्त आनन्द घन है । तथाच 'निरञ्जनं शान्तमुपैति दिव्यम्' सो न स्थूल है सूक्ष्म है, न दृश्य है न

दीर्घ है, न प्लुत है, न रक्त है न पीत है न श्वेत है न श्याम है न हरित है । इत्यादि सर्ववर्णरूपसे रहित है सो न इन्द्रिया है न प्राण है न मन है, न बुद्धि है न इनका विषय है, ताते सर्वविशेषतासे रहित निर्विशेष है । निरन्तर है अबाह्य है सर्वाधिष्ठान परमशान्तसत्तामात्र है, तिसविधे एक दो संज्ञा कोई नहीं सर्व संख्यासे रहित निरक्षर है अरु सम विषम भावसे रहित सदा अच्युत है ज्योंका त्यों एक रस है ताते परम अक्षर है सो कैसा परम अक्षर है जो अधोक्षज है, अर्थात् शब्द ध्वनिसे रहित है, अरु जो अक्षर परापश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी इनचारो वाचाके आश्रय होठ कंठ तालू नासिका, इत्यादि स्थानोंद्वारा प्रकट होते हैं सो क्षररूप हैं वो होते ही भूतसंज्ञा को प्राप्त होते हैं वा भविष्यत् में रहते हैं वर्तमान में उनका अभाव है ताते सो क्षररूप हैं, अरु जो होठ तालू कंठादि स्थानों से प्रकट होता नहीं अरु सर्व का प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान है सो सदा वर्तमानरूप अक्षर है स्वयंभू है, अर्थात् अपनेआप करके आपही सिद्ध है, ऐसा जो परम अक्षर है सो अचिन्त्य सर्व प्रमाणों का अविषय होने से अप्रमेय नित्य है अचल है पूर्ण है परम शिवरूप है सनातन पुरुष है, अरु सोई विष्णु का परम पद, कहिये पावनेयोग्य, है तिसकी प्राप्ति से पुनः संसार भ्रम होता नहीं, ताते सोई परमधाम है, सोई क्षराक्षरसे रहित उत्तम पुरुष परम अक्षर है, अर्थात् सर्व कार्य कारणसे रहित निराकार सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वका अपना आपग्रस्यक् आत्मा है तिसही के सम्पक् ज्ञानसे मोक्ष होता है तिससे इतर मोक्षका मार्ग कोई भी विद्यमान नहीं तथाच "नान्यः पन्था विमुक्तये" "नान्यः पन्थाविद्यते अयनाय" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे ॥

इति सप्तसिद्धान्तकारोंके मतानुसार अक्षरारोपासन

विचार समाप्तम् ॥

अथ ओंकारस्य एकादिमात्रोपासन विचार प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! अब ओंकारके अन्य विद्वान् उपासकों ने जिस प्रकार मात्राओंके भेदसे उपासना किया है सो भी तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहता हूँ तिसको भी श्रवण करो हे प्रियदर्शन ! वाष्क-
ह्यऋषि के मतावलम्बी पुरुष ओंकार को एकमात्रा रूप जान-
के भजते हैं । अरु साल अरु काण्डित्य, इन आचार्यों के मता-
वलम्बी पुरुष ओंकार को दोमात्रा रूप जान के भजते हैं । अरु
नारदऋषिके मतविषे ओंकारको ढाई २॥ मात्रारूप जानके भजते
हैं, अरु मांडल किंवा मांडूक्य ऋषिके मतविषे ओंकारको तीन
मात्रारूप जानके भजते हैं, अरु सप्त सिद्धान्ती आदि अन्यऋषि-
योंने भी ओंकारको तीनमात्रारूप जानके ही भजन किया है । अरु
पराशरादिक जे अध्यात्म चिन्तक मुनि हैं तिनके मतविषे ओंकार
को चारमात्रारूप जानके उपासना करते हैं । अरु भगवान् वशिष्ठ
ऋषिके मतविषे ओंकार को साढ़े चार ४॥ मात्रारूप जानके उपा-
सना करते हैं । अरु अन्य ऋषियोंने अन्य अन्य मात्रारूप से
ओंकारका भजन किया है । अरु भगवान् याज्ञवल्क्यजीने ओंकार
अक्षर को अमात्रारूप भजन किया है ॥ अतएव वेद शास्त्रद्वारा
किंवा आचार्य्य वा अपने अनुभवद्वारा जैसा जिसने ओंकारका
स्वरूपमात्रा जाना है तैसेही उसने उपासना किया है । अरु सर्व
काही भजना सफल है क्योंकि ओंकार ब्रह्मकी अनन्तमात्रा है
तोते जिसने जैसा जानके भजन किया है तिसने एक ओंकारही
का भजन किया है एतदर्थ सर्वका भजन सफल है सो यह विशेष
वाच्यरूप ओंकारका भजन है, अरु जो लक्ष्यरूप निर्विशेष ओंकार
ब्रह्म है सो वास्तवकरके सर्वमात्रासे रहित अमात्रिक है उसविषे
मात्रारूप विशेषतानहीं । हे सौम्य ! इस ओंकारके पर अरु अपर, वा
समात्रिक अरु अमात्रिक, वा वाच्यरूप अरु लक्ष्यरूप, इत्यादि

प्रकार दो रूप हैं सो पूर्व प्रश्नोपनिषद् सम्बन्धी अंकार की व्याख्या में कह आय है । तहाँ एक सगुणरूप है दूसरा निर्गुण रूप है, तहाँ सगुणतो समात्रिक शब्दमय वाच्यरूप अंकार अक्षर ब्रह्म है अरु दूसरा निर्गुण शब्दसे रहित अमात्रिक लक्ष्यरूप परब्रह्म है । तहाँ अब सगुण अंकार ब्रह्म की मात्राओं के भेदसे ऋषियों ने जिस जिस प्रकार उपासना किया अरु कहा है तिसको भी संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥

हे सौम्य ! जो वाष्कल्पऋषि हैं कि जिनके मतविषे अंकार को एकमात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि जितना कुछ स्थूल सूक्ष्म विराट्-वपु है सो सर्व अंकारका ही स्वरूप है तिससे इतर कुछ भी नहीं । अर्थात् अंकार जो ईश्वर है सो दो प्रकारका है, तहाँ एक सगुणरूप दूसरा निर्गुण रूप, तिनके भजन करनेवाले अपने २ अधिकारानुसार भजन करते हैं, तहाँ सगुण अंकारके उपासक जानते हैं कि इस सगुण रूपका अधिष्ठान (आश्रय) निर्गुण है ताते यह अपने अधिष्ठानसे अपृथक् होनेसे यही अंकार ब्रह्म है इससे इतर निर्गुण नहीं, अरु निर्गुण ब्रह्मके उपासक जानते हैं कि अंकार निर्गुण ब्रह्म है सो अपनी इच्छा शक्ति करके सगुणरूप हुआ है, ताते निर्गुणसे इतर सगुण नहीं वोहीरूप है । इसप्रकार सगुण निर्गुणकी एकता होनेसे एक अंकार ब्रह्म ही उभयप्रकारसे सुशोभित है, ताते उभयप्रकार के उपासक कल्याणको प्राप्त होते हैं, अरु उस एकही अंकारब्रह्म का यह स्थूल सूक्ष्म कार्य्य कारणात्मक विराटात्मा उसका वपु है ताते अंकार एकमात्रा रूपही है, अतएव हम इस एकमात्रारूप अंकार की उपासना करते हैं । यह अंकार को एक मात्रारूपसे जानके भजन करनेवाले ऋषियों का मत है १ ॥

हे सौम्य ! अब, साल अरु कइस्त आदिक जे अंकार की दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि अंकार दो मात्रारूप है, तहाँ एक स्थूलरूप कार्य्य

मात्रा है, अरु दूसरी सूक्ष्मरूप अव्याकृत कारण मात्रा है, इस प्रकार काय कारणरूप स्थूल सूक्ष्म दो मात्रा हैं जिसकी तिस अंकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा जो अंकार चैतन्य ब्रह्म है तिसकी दो मात्रा हैं, तहां एक यह स्थूलरूप जाग्रत जगत् अरु दूसरी सूक्ष्मरूप स्वप्न जगत्, इन दोनों मात्राओं का लक्ष्यरूप साक्षी चैतन्य है कि जिसके आश्रय उक्त दोनों मात्रा हैं अरु वा आप मात्राओं से रहित असात्रिक है तिसकी हम इस समात्रिक अंकार के आलम्बनसे उपासना करते हैं ॥ यह अंकार की दो मात्रारूपसे उपासना करनेवाले ऋषियों का मत है ॥

हे सौम्य! नारद ऋषि आदिक जे अंकारको ढाई २ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि जो अकार जाग्रतरूप जगत् है, अरु उकार स्वप्नरूप जगत् है, अरु मकार सुषुप्तिरूप अर्धमात्रा है कि जिसविषे जाग्रत स्वप्न दोनों लीन होते हैं तातेही इसका नाम सुषुप्ति अर्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २ ॥ मात्रारूप जगत् है वपु जिसका तिस अंकार ब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। अथवा अकार स्थूलदेह जाग्रत जगत् समेत प्रथम मात्रा, अरु उकार सूक्ष्म देह स्वप्नरूप जगत् समेत द्वितीय मात्रा अरु अर्धमात्रा चैतन्य तत्त्व है सो सर्व का ज्ञाता है तिसका ज्ञाता कोई नहीं, अतएव उसका नाम अर्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २ ॥ मात्रारूप वपु है जिसका तिस अंकार परब्रह्मकी हम इस ढाई मात्रावाले वाच्यरूप अपरब्रह्म अंकार के आलम्बन से उपासना करते हैं। यह अंकारको ढाई २ ॥ मात्रा रूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मत है ॥

हे सौम्य! मौडल ऋषि आदिक जे अंकारको तीन मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इस प्रकार कहते हैं जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, यह तीन अवस्था अरु अकार उकार मकार, यह तीन मात्रा, अरु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवता, इनका संघातरूप है वपु जिसका, अरु जो है इस स्थूल सूक्ष्म

कारणरूप सर्व जगत् का आश्रय अधिष्ठान, अरु जिसविषे स्वरूपकरके मात्रादि उपाधि अभ्यस्त (कल्पित) होने से कोई नहीं, तिस सर्वाधिष्ठान निर्विशेष लक्ष्यरूप अंकार की हम उपासना करते हैं । अरु अंकार की तीन मात्रारूप से उपासना अनेक प्रकार से कही है, अरु सप्तसिद्धान्तकारोंने भी तीनमात्रारूपसे कही है, यह अंकार को तीन मात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मत है ३ ॥

हे सौम्य ! अब अंकार को साढ़ेतीन ३ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले ऋषि इसप्रकार कहते हैं कि, अकार, उकार, मकार, रूप, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन मात्रा हैं अरु अर्ध मात्रारूप चैतन्य ब्रह्म है । अथवा कोई एक ऐसा कहते हैं कि, प्रथम मात्रा अकार स्थूल जगत्, अरु दूसरी मात्रा उकार सूक्ष्म जगत् अरु तीसरी मात्रा जीव कला, अरु अर्धमात्रा सर्वाधिष्ठान चैतन्य परमपद रूप है कि जिसविषे जीवकला संयुक्त स्थूल सूक्ष्म सर्व मात्रा लीन होती हैं, अरु जिसविषे मात्रा कोई नहीं ऐसा जो लक्ष्यरूप अंकार है तिसकी हम समांत्रिक अंकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह अंकारको साढ़ेतीन ३ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ३ ॥

हे सौम्य ! अब पराशरआदिक ऋषि जो अंकारको चारमात्रारूपजानके उपासना करनेवाले हैं सो इसप्रकार कहते हैं कि, प्रथम मात्रा अकाररूप स्थूलनिराद् पुरुष, अरु द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, अरु तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत, अरु चतुर्थ विन्दुरूप चैतन्य पुरुष, कि जिस अधिष्ठानके आश्रय अभ्यस्तरूपसे स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि समष्टि तीनों शरीररूप प्रपंच है, सो सर्वाधार चैतन्य परमपद है, अतएव अभ्यस्तकी पृथक् सत्ताके अभावसे सर्व चैतन्यही है, तातेहम अंकारके लक्ष्य निर्विशेष सर्वाधिष्ठान अमांत्रिक अंकारकी इस चारमात्रारूप समांत्रिक अंकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह अंकारको

चारमात्रारूपसे जानके उपासना करनेवालों का मत है ४ ॥

हे सौम्य ! वशिष्ठादिक ऋषि जो ओंकारको साढ़ेचार ४ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं, सो इसप्रकार कहते हैं कि अकार प्रथममात्रा यह स्थूल जगत् है, अरु उकार दूसरीमात्रा यह सूक्ष्म जगत् है, अरु मकार तृतीयमात्रा सुषुप्ति है, अरु चतुर्थमात्रा नादरूप परमशक्ति है, अरु अर्धमात्रा चैतन्यपुरुष है, कि जिसके आश्रय चारोमात्रा सिद्ध हैं अरु वो आपमात्रासे रहित अमात्रिक है, तिस लक्ष्यरूप ओंकारकी हम इस साढ़ेचार मात्रात्मक वाच्य रूप ओंकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह ओंकारको साढ़े चारमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ४ ॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि इस ओंकारको पांचमात्रारूप विचारके भजन करते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि अकार अन्नमयकोश, अरु उकार प्राणमयकोश, अरु मकार मनोमय कोश, अरु अर्धमात्रा विज्ञानमयकोश, अरु विन्दुरूप आनन्दमय कोश है । यह उक्त पांचोमात्रा जिस चैतन्य अधिष्ठानके आश्रय अध्यस्त हैं, अरु जो इनमात्राओं से रहित पंचकोशातीत है, तिस लक्ष्यरूप ओंकारकी उक्त समात्रिक ओंकारके आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह ओंकारको पांचमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ५ । ५ ॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि ओंकारको षट्मात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि जो अकाररूप जाग्रत् जगत् है उकाररूप स्वप्न जगत् है, अरु मकाररूप सुषुप्ति है, अरु अनहद शब्दसे आदिलेके जो वाचा है सो शब्दरूपा चतुर्थमात्रा है, अरु विन्दुरूप कारणप्रकृति पञ्चममात्रा है, अरु षष्ठरूप साक्षी चैतन्य आत्मा है । ऐसा है विशेष स्वरूप जिसका अरु आप अपने स्वरूप से निर्विशेष है तिस लक्ष्यरूप ओंकारकी हम सविशेषरूप वाचक ओंकार के आलम्बनसे उपासना करते हैं । यह ओंकारको षष्ठमात्रारूप जानके उपासना करनेवालों का मत है ६ । ६ ॥

हे सौम्य ! कोई एक आचार्य्य अंकारको सप्तमात्रारूप जान-
के भजते हैं सो ऐसा कहते हैं कि पृथिवी, अप, तेज, वायु
आकाश, यह भूतोंकी शब्दादिरूप पञ्चमात्रा पञ्चतत्त्व अरु अहं-
कार अरु महत्तत्त्व, यह सात मात्राहें अरु अष्टम आप चैतन्यपुरुष
है । तिसकी हम सप्तमात्रात्मक अंकारके आलम्बन (आश्रय)
से उपासना करते हैं । यह अंकारको सप्तमात्रारूप जानके भजन
करनेवाले उपासकोंका मत है ७।१०॥

हे सौम्य ! इसप्रकार ३८, ४६, ५२, ६३, ६४, मात्रापार्यन्त
अंकारकी उपासना करते हैं सो आचार्य्य ऐसा कहते हैं कि यावत्
स्वर व्यञ्जनादिक वर्णअक्षर है सो सर्व अंकारकी मात्राहें क्योंकि सो
सर्वकारण अंकारसे फुरी है अरु स्फुरण होता है अतएव सर्वमात्रा
अंकारकाही है, इसही से सर्व जगत् अंकार रूप है जिस किसी
पदार्थ का नाम है सो सर्व उक्त मात्राओं के अन्तरगत है, अरु जे-
तने कुछ वर्णाक्षर हैं सो सर्व अंकारकी मात्राहें, ताते वर्णात्मक
जो अंकार अक्षर है सो सर्व नामोंके विषे ओतप्रोत है, एतदर्थ भी
अंकार रूपही सर्व जगत् है, अंकारही वाच्यरूप होयके इस
प्रकार सर्व नामों के मध्य आदि अन्त मध्य ओत प्रोत है अरु
लक्ष्यरूप जो चैतन्य आत्मा है सो अस्ति भाति प्रियरूप करके
व्याप्त है ताते भी वाच्य वाचक सर्व अंकारही है ॥

इति अंकार की एक आदि मात्राओंकी उपासनविचार ॥

अथ अंकारके अंकारादि दश नामोंका अर्थ
विचार प्रारम्भ्यते ॥

अंकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिनमेव च । अनन्तञ्च
तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेव च ॥ तूर्यं हंस परब्रह्म इति
नामानि जानते ॥ यह सार्द्ध श्लोक है ॥

हे सौम्य ! इस अंकार ईश्वरके दश नाम मुख्य हैं सो सर्व

सार्थ कहियो अर्थ सहित हैं अरु जिज्ञासु करके जानने योग्य हैं
अतएवाव इसके नामों के अर्थको भी संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥

अथ प्रथम नाम अंकार १ ॥

हे सौम्य ! प्रथम नाम अंकार है तिसका यह अर्थ है कि जब
शरीर-जीवा अरु शिर, इनको सम सीधेकर पद्मासन बैठ इन्द्रि-
योंको विषयों से अरु मत्तको संकल्पों से रोक ह्रस्व दीर्घ प्लुत
ध्वनिपूर्वक अंकारका यथास्थानसे उच्चारण करते हैं तब चरण
से लेके मस्तक पर्यन्त सब शरीरगत नाड़ियोंको ऊंचा करता
है, अथवा प्राणायामकी रीति से इसका उच्चार करता है तब प्राण
ब्रह्मरंध्र ऊंचे स्थानको प्राप्त होता है, एतदर्थ इसका नाम अंकार
है ॥ १ ॥ अथवा जो योग कियाकी रीतिसे प्राणायाम द्वारा स्थान
विशेष में ध्वनिको साधके अंकार का अन्तर्ग उच्चारण करता है
तिसके प्राण ब्रह्मरंध्रको प्राप्त होते हैं, अरु देहान्त समय उसके
प्राण " तयोध्वमाय ब्रह्म तत्त्वमेति " इत्यादि प्रमाण से सुपुष्पा
नाड़ी द्वारा ब्रह्मरंध्रसे निकल ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, अतएव
इसका नाम अंकार है ॥ २ ॥ अथवा अंकारके दो अक्षर कहिये-
मात्रा, हैं तिनका अर्थ योग क्षेम (पालन अरु रक्षा) है अर्थात्
जो पुरुष इस अंकार की उपासना करते हैं तिनकी रक्षा अरु
पालन अंकार करता है, अर्थ यह जो उपासक को वांछित पदार्थ
को प्राप्त कर देता है अरु प्राप्ति की रक्षा करता है, इस प्रकार अपने
उपासक का योगक्षेम अंकार करता है । अर्थात् सकाम उपासकको
संसारके भोग्यपदार्थ प्राप्त करके पालन, अरु रक्षा करता है, अरु जो
उसके निष्काम जिज्ञासु उपासक हैं तिनको प्राप्त हुई जो ज्ञान भू-
मिका तिसका पालन (वृद्धि) अरु रक्षा करता है । अथवा अपने उपा-
सक जिज्ञासुको जो कदापि ज्ञानभूमिका अप्राप्य है तो तिसकी प्राप्ति
कर देता है अरु जो ज्ञानभूमिका प्राप्त है तो ज्ञानको वादि आसुरी सम्प-
दासे तिसकी रक्षा करता है अतएव इसका नाम अंकार है । अथवा

ॐकारका अर्थ अंगीकार भी है, अर्थात् जो कोई ॐकारकी सम्यक् प्रकार भजन करनेवाला उपासक है तिसके कहे हुये वर शापादिक वाक्य देवता आदिक सर्वही अंगीकार करते हैं, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥ ४ ॥ अथवा ॐकार का अर्थ ब्रह्म भी है क्योंकि जो इसकी समाहित चित्तसे सम्यक् प्रकार उपासना करते हैं तिनको अपने आप आत्मा ब्रह्म की अभेदता प्राप्त करता है, अर्थात् उस उपासकको ब्रह्म आत्मा का अभेद ज्ञान होता है, एतदर्थ भी इसको ॐकार कहते हैं ॥ ५ ॥ यह सर्व ॐकार नामके अर्थ हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयनाम प्रणव २ ॥

हे सोम्य ! अयं ॐकार के प्रणव नामका अर्थ श्रवण करो । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, अरु ब्रह्मा आदिक सर्व देवता ऋषि मुनि मनुष्य दैत्य आदिक जो हैं सो सर्व तीन अक्षररूप हैं जो ॐकार तिसको मन्त्र वाणी शरीरकरके प्रणाम करते हैं, ताते ॐकार का नाम प्रणव है । “सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति” ॥ २ ॥

अथ तृतीयनाम सर्वव्यापि ३ ॥

हे सोम्य ! अयं ॐकार के तृतीय सर्वव्यापि नामका अर्थ श्रवण करो । यह जो स्थूल सूक्ष्म स्थावर जंगम कार्य कारणारमक शरीर है, यावत् वेद स्मृति पुराण इतिहास शास्त्रादिक विद्या हैं, तिन सर्व विषे व्यापक है । अर्थात् उस सर्व विषे नाना भेद भावकरके एक विष्णु ॐकारही को वर्णन किया है, ताते इस ॐकार को सर्वव्यापि वर्णन किया है वा कहते हैं । अथवा एक ॐकारही अनेक मात्रा होयके वेदादि सर्व विद्याविषे ओत प्रोत है, क्योंकि वाचन आदि यावत् स्वर व्यञ्जनात्मक मात्रा हैं सो सर्व ॐकारका ही विस्तार है, ताते ॐकार सर्वव्यापि है ॥ २ ॥ अथवा जो अक्षर आत्मा अस्ति भाति प्रियरूपहोके स्थित है अरु सोई

ॐकारका वाच्यलक्ष्य है ताते भी ॐकार को सर्वव्यापि कहते हैं ॥ ३ ॥ यह ॐकारके तृतीय सर्वव्यापिनामका अर्थ है ॥ इति ३ ॥

अथ चतुर्थनाम अनन्त ४ ॥

हेसौम्य ! अब ॐकारके चतुर्थ अनन्तनामका अर्थ श्रवणकरो जब जिज्ञासु इस ॐकारका सम्यक् प्रकार यथाविधि भजन करता है तब तिस अपने उपासकको अपने अनन्त ब्रह्मपद विषे प्राप्त करता है, ताते ॐकारकानाम अनन्त है ॥ १ ॥ अथवा इस ॐकार ब्रह्मका देशकाल वस्तुकरके अन्तपाया जाता नहीं, क्योंकि वायु अग्नि जल पृथिवी आदिकोंकी अपेक्षा आकाशका अन्त नहीं ताते सो अनन्त है उसहीके अन्तरगत वायु आदि तत्त्वोंका अन्त होता है, अतएव चारों तत्त्वोंकी अन्तताकी अपेक्षा आकाशकी अनन्तता है, सो आकाशकी अनन्तता ॐकारके लक्ष सर्वाधिष्ठान आत्माके भरपूर अस्तित्वके ज्ञानहुये एक परमाणुमात्र भी न रहके अपने अन्तको प्राप्त होती है, ताते ॐकारका नाम अनन्त है ॥ २ ॥ अथवा ॐकारके वाच्यनाम रूपात्मक जगत्का अन्त बिना सर्वाधिष्ठान चैतन्यआत्माके साक्षात् ज्ञानके अन्य किसी देवता दैत्य ऋषि मुनि आदिकों करके पाया जाता नहीं, एतदर्थ भी ॐकारका नाम अनन्त है ॥ ३ ॥ यह ॐकारके चतुर्थ अनन्त नाम का अर्थ है ॥ ४ ॥

अथ पंचम नाम तारका अर्थ ५ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकारका पंचमनाम जो तार है तसका भाव अर्थ श्रवणकरो । सर्व जे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, दुःख है, तहाँ काम क्रोध तृष्णा चिन्ता आदिकों के क्षोभसे जो अन्तःकरण विषे दुःख होता है तिसकानाम आध्यात्मिक दुःख है, अरु ज्वरादिक रोग जन्य, अथवा सर्प सिंहादिकों के भय जन्य जे दुःख है तिनकानाम आधिभौतिक दुःख है । अरु ग्रहादि देवताओंके कोपजन्य जे दुःख है तिनकानाम आधिदैविक दुःख है ।

इत्यादि सर्व दुःखों से अप्रति उपासक को तार देता है, एतदर्थं अंकारका नाम तार है ॥ १ ॥ अथवा यह जो नामरूप क्रियात्मक महा दुःखमय अपार संसार सागर है, तिसविषे जन्म-जरा मरण काम क्रोध लोभ मोहादिरूप बड़े बड़े ग्राह मंकरादि, सर्वको ग्रास करने वाले हैं, अरु तृष्णा कामना अभिलाषा इच्छा आदिक बड़ी शैषलोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त उछलती सर्वको अपने विषे आकर्षण कर तृणवत् अधो ऊर्ध्वको ग्रास करती तरंगें हैं, तिसविषे ज्ञानरूपा तारुविद्या से रहित जे अज्ञानी जीव हैं सो पड़े मग्न होते हैं अरु दुःख पावते हैं पुकारते रावते हाडूवे हाडूवे शब्द करते हैं, अरु इस संसार सागरमें मग्न होते जीव सो देवता आदिक बड़े श्रेष्ठ पूजनीय भजनीय हैं तिनको अपना त्राण (रक्षक) समझके उनका आश्रय लेते हैं, परन्तु उनको भी उक्त सागरमें मग्न होते सुनते अरु जानते हैं तम उनकी ओर से भी निराश निराधार हुये जन्म जन्मान्तर पर्यन्त दुःख ही पावते हैं। ऐसा जो परम दुःखमय अपार संसार महादुस्तर सागर, तिस सागर से अपने उपासक को यह अंकार तार देता है, अतएव अंकारका नाम तार है ॥ २ ॥ अर्थात् ऋगादि सर्व वेदों करके यह अंकार ही तारक प्रख्यात प्रतिपाद्य है, ताते जिन वर्णत्रयी के मनुष्यों को संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन का अधिकार है तिनको संसार दुःख की सकारण निवृत्तिके अर्थ सर्वोत्तम तारक अंकार की यथाशास्त्रविधि उपासना करना योग्य है। अरु जे वर्णत्रयी से इतर वेदाध्ययनादिक के अनधिकारी पुरुष हैं तिनको अपने कल्याणार्थ यथाविधि पुराणोक्त रामनामादि तारक की उपासना कर्तव्य योग्य है क्योंकि उनका कल्याण उन्हीं से है "स्वधर्म विगुणश्रेयो" यह अंकार के पंचम तार नाम का अर्थ है ॥ ५ ॥

अथ पष्ठः नाम शुक्ल का अर्थ ६ ॥

हे सोम्य! अब अंकार के शुक्ल नाम का अर्थ श्रवण करो। वर्ण करके जो शुक्ल होय कहिये शुद्ध होय, सो कहिये शुक्ल। अर्थात् जो

सर्व मलसे रहित निर्मल शुद्ध होवे तिसका नाम शुक्ल कहते हैं
 तहां सर्वमलोंका कारण अविद्या है तिसअविद्यारूप महामलसे
 रहित सदाशुद्ध एक अकारही है एतदर्थ अकारकानाम शुक्ल है।
 “शुद्धमपापविद्धम्”। “तदेवशुक्तं तद्भूतदेवामृतमुच्यते” इत्यादि
 अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे ॥१॥ अथवा अकार अपने उपासकको
 शुद्ध अपने लक्ष्य आत्मपद विषे प्राप्त करता है ताते अकार का
 नाम शुक्ल है ॥२॥ अथवा तीन प्रकारके जे कायिक वाचिक मानसिक,
 पाप हैं तिनको नाश करके अपने उपासकको शुद्ध करता है एतद-
 र्थ अकारकानाम शुक्ल है ॥३॥ अथवा तीन प्रकारके जे कर्मरूप पाप
 हैं तिन पापोंसे अपने भक्तोंको शुद्ध करता है ताते अकार का
 नाम शुक्ल है ॥४॥ हे सौम्य ! अब इनतीन प्रकारके कर्मरूप पापोंको
 श्रवण करो। प्रथम एतु क्रियमाण कर्म है दूसरा संचित कर्म है,
 तीसरा प्रारब्ध कर्म है। सो यह तीन प्रकारके कर्मरूप पाप तर्क
 समे धाणवत अन्तःकरणरूप तर्कसविषे रहते हैं। सो कैसा है
 अन्तःकरणरूप तर्कस जो साक्षी आत्माके आभास वा प्रति-
 बिम्ब करके युक्त है अरु अविद्याका कार्य होने से अज्ञान अज्ञ
 करके भी युक्त है तिस अन्तःकरणरूप तर्कसविषे तीनों प्रकारके कर्म
 रूप बाण रहते हैं, अरु स्वतः अन्तःकरण जड़ है ताते विना चैतन्या-
 भास अरु अज्ञानके कर्मधारने में समर्थ नहीं जब अन्तःकरण चै-
 तन्याभास अरु अज्ञान करके युक्त होता है तबही कर्मोंको धारने विषे
 समर्थ होता है ॥ हे सौम्य ! अब अन्तःकरणका स्वरूप श्रवण करो जो
 क्या है। अरु अज्ञान क्या है, अरु चैतन्य क्या है, अरु सो कर्मों को
 धारता कैसा है, सो सर्व श्रवण करो जैसे मृत्तिका, अरु जल, अरु
 आकाश, यह तीनों मिलते हैं तब घट उत्पन्न होय पदार्थों को धा-
 रता है तहां न तो केवल मृत्तिका ही पदार्थ को धारसक्ती है न
 केवल जल ही पदार्थ को धारसक्ता है, अरु न केवल आकाश ही
 पदार्थ को धारसक्ता है, जब मृत्तिका, जल, अरु आकाश तीनों
 मिलते हैं तब घटरूप होय पदार्थको धारते हैं, तैसे ही सत्त्वगुणरूप

मृत्तिकां अरु अज्ञानरूप जल अरु चैतन्यरूप आकाश यह तीनों मिलते हैं तब अविद्याके सत्त्वगुण भागका परिणाम अन्तःकरण होय तीनों प्रकारके कर्मोंको धारता है सोभी प्राणरूप सूत्रके आश्रय धारता है । ऐसा जो अन्तःकरणरूप तर्कस है तिसविषे कर्मरूप बाण रहते हैं, अथवा अन्तःकरणरूप मन्दिर है तिसविषे तीनों प्रकारके कर्मरूप अन्नकेदाने भरेहुये हैं, तहाँ व्यतीतहुये जे अनेकजन्म तिनके कर्मोंके सूक्ष्म संस्कार जे अन्तःकरण विषे संचित हैं तिनका नाम संचित कर्म है तिन कर्मोंमें से जो कर्मोंको अपना फल सुख दुःखादि भोगावना है अरु जिन कर्मों ने यह शरीर रचा है तिनकानाम प्रारब्धकर्म है । अरु जो वर्तमान शरीरकरके अहंकारपूर्वककर्म कियेजाते हैं तिनकानाम क्रियमाण कर्म है । अरु सो क्रियमाण कर्मही तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है । तहाँ कर्मकरने के समय उसको क्रियमाण कहते हैं, अरु करने केपंद्रचात् उसही कर्मकी संचितसंज्ञा होती है । अरु जब उसके फलभोग का समय आवता है तब उस कर्मकी प्रारब्धसंज्ञा होती है । जैसे एकहीकाल भूतभविष्यत् अरु वर्तमान तीनसंज्ञाको प्राप्त हुआ है, तैसेही एक क्रियमाण कर्म क्रियमाण संचित अरु प्रारब्ध, इन तीनसंज्ञाको प्राप्तहुआ है । तिसविषे जे प्रारब्धकर्म हैं तिसकाफल, जाति, आयुष्य, अरुभोग, इन तीनरूपसे प्राप्त होता है । तहां जाति कहिये, देव दैत्य मनुष्य पशु पक्षी वृक्षआदिक तिनविषेभी, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, अरु अधम, सो सर्वजीवों को अपने अपने प्रारब्धका फल है । अरु आयुष्य जोहि मो लव निमेषादिकों से लेके पराग्य ब्रह्माके आयुष्यन्त न्यूनाधिक्य सो सर्व प्रारब्ध कर्मके फल हैं । अरु भोग जोहि नानाप्रकारके स्वर्ग नरकादिकों के उत्तम मध्यम निरुष्टरूप सुख दुःख मो सर्व प्रारब्धका फल है सो अवश्यमेव देहधारियों से भोक्तव्य है । हे मोक्ष्य ! यह प्रारब्ध भोग, साधारण, अरु असाधारण, उभय प्रकार के भी चिन्तनीय है, तहां जैसे ज्वरादिक रोग हैं मो भी प्राग्बन्धक

की फल है परन्तु तिनकी ओषधी आदिक यत्न करनेसे निवृत्ति होती है सो साधारण है, अरु जिन रोगादिकोंकी प्रयत्न करनेसे भी निवृत्ति होती नहीं सो असाधारण कहिये असाध्य जानना । अरु यह तीनों प्रकारके प्रारब्ध कर्मके फल भोग भोगनेहीसे निवृत्त होते हैं अन्य किसी प्रकारसे भी इनकी निवृत्ति होती नहीं । अरु संचित क्रियमाण, यह दोनों कर्म ज्ञानवान् के ज्ञानाग्निकरके नष्ट होजाते हैं । अरु प्रारब्ध कर्म देहके आश्रय रहता है सो अपना फल देहके नष्ट होता है मध्यमें मिटतानहीं । जैसे किसी शस्त्रधारीके तर्कसंक्षिप्त जो बाण होता है तिसको अरु जो बाण चलावनेके लिये हाथमें धारण किया है तिसको नाश करनेको वो शस्त्रधारी समर्थ होता है, अरु जो बाण उसके धनुषसे चल चुका है तिसको नाश करनेमें वो समर्थ होता नहीं वो बाण जो धनुषसे चल चुका है सो जब अपने वेगसे रहित होता है तब गिर पड़ता है पुनः आगे चलतानहीं, तेसेही तर्कसंक्षिप्त बाणोवत् संचित कर्म हैं, अरु हाथके बाणोवत् क्रियमाण कर्म हैं, सो यह संचित अरु क्रियमाण दोनों कर्म आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुये नाश होजाते हैं । अरु जो तीसरा प्रारब्ध कर्म है सो धनुषसे चले हुये बाणोवत् है, सो ज्ञानप्राप्त हुये भी रहता है वो जब अपने भोगदातव्यरूप वेगसे रहित होता है तब अपने आश्रय शरीरसे रहित गिर पड़ता है पुनः आगेको चलता नहीं । अर्थात् ज्ञानवान् का प्रारब्ध जब अपना भोग देवकता है तब सशरीर के तट होजाता है तब उस विद्वान् को पुनः जन्मके आरंभक कोई भी कर्म अवशेष रहते नहीं, क्योंकि जब वो आचार्य से तत्त्वमस्यादि महावक्यों को श्रवण करता है तब अपने आप जो जानती है कि मैं अविद्यात्मक स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरों से रहित अशरीरी आत्मा हूँ ताते अजन्मा अक्रिय हूँ, अतएव मेरे साथ शरीर अरु तदाश्रित कर्म कोई नहीं, मैं इतने काल से अपने अज्ञानरूप पिशाचके वश हुआ अपने को कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी मानता रहा, परन्तु अब श्रुति अरु आचार्य की कृपा

से मेरा उक्त पिशाच निवृत्त हुआ तब जानो जो मैं तो सर्व शरीरादि उपाधिसं रहित निर्विकार निराकार निःक्रिय असंग आत्मा हों मैं कर्ता भोक्ता नहीं, अतएव न मैं पूर्व कर्ता रहो न मुझे कोई अंग को कुछ कर्तव्य है, मैं तो सर्वदा अकर्ता अभोक्ता एकरस चैतन्य आत्मा हों। इस प्रकार विद्वान् को अपने आप आत्मस्वरूप का साक्षात् सम्यक् ज्ञान होनेसे तिसही ज्ञानरूप, अग्निद्वारा संचितकर्म जो तर्कसे वाणवत् हैं सर्व भस्म होते हैं। तथाच “क्षीयन्ते चास्य कर्माणि” “ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणि” इत्यादि श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणसे। अरु सम्यक् आत्मज्ञान होने के उत्तर कुछ भी कर्तव्य अवशेष रहतानहीं, क्योंकि कर्म के हेतु कामना का उस विषे अत्यन्त भाव है। अरु अवशेष रहा जो प्रारब्धकर्म तो अपना भोग देके नष्ट होता है, अरु तिस प्रारब्धकर्म भोगकालमें भी वो विद्वान् प्रारब्ध का भोक्ता नहीं क्योंकि आत्मा अभोक्ता है। ताते प्रारब्ध के सुख दुःखादि भोगों का भोक्ता सा-भास लिंगशरीर जीवात्मा है, अरु स्थूलशरीर भोगालय है, अरु इन दोनों का वारण अधिया है। अरु मैं तो इन सर्व से पृथक् इन सर्व का प्रकाशक साक्षी हों ते सोम्य! इस प्रकार अपने आप अकर्ता अभोक्ता सत्यस्वरूप आत्मा को यथार्थ अनुभव करके ज्ञानवान् संचितादि सर्व कर्म से अरु निनक फल सुख दुःखादिकों से रहित सर्वदा अकर्ता अभोक्ता ज्यों का त्यों है। अरु यावत् लोक दृष्टया ज्ञानी का देह भासता है नायत् प्रारब्ध भी भासता है वा यावत् प्रारब्ध भासता है नायत् नदाश्रित शरीर भी भासता है, तथापि ज्ञानी के स्वरूप में देह अरु प्रारब्ध अरु नदाश्रित सुख दुःखादि भोग इत्यादि कुछ भी नहीं। अतएव ज्ञानवान् का प्रारब्ध कर्म अपना फल देके नष्ट हुआ पुनः शरीरांश वा वारण होता नहीं क्योंकि उसका संचितकर्म जो प्रारब्ध रूप में फलकी प्रवृत्ति का हेतु है सो ज्ञानाग्नि करके नाश हो प्राप्त होता है ताने। अरु ज्ञानी तो एक जगत् का जगत् अरु उन शरीर करके

अपने फल सुख दुःखोंदिकों का भोगानेवाला प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त होनेपर अंधता है तबहीं उसके संचित कर्मोंमें से जो कर्म अपना फल देनेको सम्मुख होते हैं तब वो प्रारब्धरूप से पुनः शरीरके आरंभक अरु सुखे दुःखके भोगाने वाले अरु अपने अनुसार कर्मों के करावनेवाले होते हैं, ताते अज्ञानी को क्रियमाण अरु क्रियमाण से संचित अरु संचित से पुनः प्रारब्ध, प्रारब्ध से पुनः क्रियमाण, इसप्रकार घटी चन्द्रवत् कर्मचक्र भ्रमावताही रहता है उसके कर्मविना सम्यक् ज्ञान के हुये अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होते नहीं ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रारब्ध भोग जो ज्ञानी अरु अज्ञानी के विषे तुल्य हैं सोभी तीन प्रकारके हैं; तहां एक इच्छितरूप है, दूसरा अनिच्छितरूप है, तिसरा पारेच्छितरूप है । सो यह तीनप्रकारके प्रारब्धके अनुसार तिनके फलक्रिया भोग सर्व जीवोंको प्राप्त होते हैं । सो तीनोंप्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग श्रीकृष्ण परमात्माने गीताविषे निरूपण किया है सो ज्ञानी अज्ञानी दोनोंको तुल्य है, परन्तु अज्ञानीको सा-भिमान है ताते बन्धनका कारण है, अरु ज्ञानवान् निरभिमान है ताते उसको बन्धन का कारण है नहीं । अब तीनों प्रकार की प्रारब्ध क्रिया-भोग, देखावते हैं । तथाच भगवानुवाच । "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि, प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति, " अर्थ भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! अपने प्रारब्ध कर्मके अनुसार सर्व प्राणी चेष्टा करते हैं, अर्थात् ज्ञानवान् भी अरु अज्ञानी भी सर्व अपने २ पूर्व कर्म संस्कारों के आश्रय चेष्टा करते हैं, अरु उसही स्वभाव (प्रकृति) को प्राप्त होते हैं तब पुनः निग्रह किसका करिये । अर्थात् पूर्व शरीरों से किये जे कर्म सो संस्कार रूपसे अन्तःकरणविषे स्थित हैं, तिन संस्कारों का जो प्रबुद्ध होना (जागना) है, तिसही के आश्रय ज्ञानी अरु अज्ञानी सर्व चेष्टा करते हैं, तब उनका निग्रह क्यों करिये । यह तो इच्छापूर्वक क्रिया भोग हैं, क्योंकि पूर्व जन्मों

के क्रिये जे इच्छापूर्वकं शुभाशुभ कर्मों सो संस्काररूपसे अन्तःकरण में स्थित होय, इन शरीरोंको अपने आश्रय वर्त्तावे हैं, एतदर्थ, इस स्वाभाविक चेष्टाका नाम इच्छापूर्वक चेष्टा है, अर्थात् इच्छित, आरब्ध, किया भोग है ॥ हे सौम्य ! अब अनिच्छित को भी श्रवण करी, पूर्व अर्जुन ने श्रीकृष्ण परमात्मा प्रति प्रश्न किया है कि, "अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापंचरति पुरुषः, अनिच्छन्नपि त्राप्येय विलादपिनियोजितः" हे भगवान् ! उत्तम पुण्यरूप किया करने की इच्छा सर्वको होती है, सुखप्राप्तिवास्ते, पापकर्म की इच्छा कोई भी करता नहीं, दुःख की अप्राप्तिवास्ते, तथापि जिस पापकर्म की इसको इच्छा नहीं, तिसही पाप कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, सो किसकी प्रेरणासे होते हैं, जैसे राजाकी प्रेरणासे, बिनाही अपनी इच्छाके भृत्य युद्धरूप कर्म करता है कि जिस क्रिया में मरण पर्यन्त का भय है, तैसेही यह पुरुष जो बिना अपनी इच्छाके पापरूप कर्म, कि जिसमें परिणाम नरकादिकों का भय है, करता है सो किसकी प्रेरणासे करता है, यह आवे कृपाकर मुझसे कहिये ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब अर्जुन ने प्रश्न किया तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर कहा कि "कामएव क्रोधएव रजोगुण समुद्भवः, महाशनो महापाप्मा विद्मेनामिह चैरिणोम्" हे अर्जुन ! यह जो काम अरु क्रोध है सो रजोगुण से उपजे हैं अरु बड़े भोजन के करनेवाले पापात्मा हैं, अरु जिज्ञासु के नित्यही बेरी हैं । तिनकी प्रेरणासे यह जीव अनिच्छित भी पापकर्मों में प्रवृत्त होते हैं । अर्थात् यह जो कामना हैं सोई अपनी अपूर्णतासे क्रोधरूप परिणाम को पावती है, क्योंकि जब कोई किसी पदार्थ की कामना से किसी क्रियामें प्रवृत्त होता है, तिस क्रियामें जब कोई द्वेषी पुरुष विघ्नकरता है तब वोही कामना जो पूर्व रजोगुणात्मक रही सो क्रोधरूप से तमोगुणात्मक परिणामको प्राप्त होती है, सो विवेक शून्य पापात्मा है, अरु कामना भोगोंकरके तृप्त होती नहीं, आहुतिसे अग्निवत्, अतएव सो

महाशना है अरु जिज्ञासुकी तो यह नित्यही तैरी है ॥ हे सौम्य ! इसही कारणसे श्रीकृष्णपरमात्मा ने कहा है कि 'जहिं शत्रुम-
हावाहो' कामरूपदुरासदम्' हे अर्जुन ! इस कामरूप बलवान्
शत्रुको जयकरो, तिस बिना कल्याण नहीं ॥ अरु पूर्व जन्मों के
जे रजोगुणात्मक कर्मों के समूह सो, सूक्ष्म संस्कार रूपसे अन्तः
करण विषे स्थित हैं, सो जब अपना फल देने को सम्मुख होते
हैं तब प्रारब्धरूप भावको प्राप्त होय, कामना रूप से प्रवृद्ध होते
(जागते), हैं, तब तिसके वश हुआ जीव अनिच्छित भी पाप
कर्मों में प्रवृत्त होता है, सो क्रिया अरु तिसका फल भोग, सो
सर्व अनिच्छित क्रिया भोग है । ताते इसको अनिच्छित क्रिया
भोग कहते हैं ॥ अब परइच्छित प्रारब्धको श्रवण करो । हे सौम्य !
श्रीकृष्ण, भगवान् ने कहा है कि, हे अर्जुन ! अपने पूर्वकर्मों
के संस्कारजन्य प्रकृति 'कहिये स्वभाव' तिसके वश हुआ जो
तू, सो अपने अज्ञानभ्रम करके भ्रमा हुआ अपना धर्मरूप जे
युद्ध-कर्म सो नहीं भी करता, तथापि परवश हुआ युद्ध-कर्म
करेहीगा, इसविषे संशय कुछ नहीं, ताते यह जो तेरी युद्धरूप
क्रिया है अरु तिसका जो परिणाम फलभोग है सो दोनों पर
इच्छित है । अरु कामना अरु क्रिया यह परस्पर ओत प्रोत है,
क्योंकि कामनाविना क्रिया होवे नहीं, अरु क्रिया है सो कामना
को लखावती है, अरु यह दोनों अविद्या के आश्रय है, अरु सो
अविद्या अनादि होनेसे तदाश्रित काम क्रिया भी अनादि है, त-
थापि सर्वोधिष्ठान आत्मसत्ता के साक्षात् ज्ञानसे अविद्या अरु
तदाश्रित सर्व काम कर्मादिकों का अभाव होता है, ताते अवि-
द्या अरु तिसका कार्य समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् असत्य
है । अरु अज्ञानावस्था पर्यंत जे अनादि, कालमे अनेक-जन्मों
के काम कर्मादिकों के संस्कार, सो जब अपना फल भोग देने
के अर्थ सम्मुख होते हैं, तब बोही संचित से प्रारब्ध संज्ञाको
प्राप्त होय 'इच्छित' अनिच्छित, अरु परेच्छित, इन तीन प्रकार

से प्रवृत्त होते हैं, तात्पर्य प्रारब्ध क्रिया भोग तीन प्रकार के हैं ॥
 हे सौम्य ! तुम्हारी दृढ़ता के अर्थ पुनः कहते हैं तिसको भी
 श्रवण करो, तहां प्रथम इच्छारूप क्रियाभोग श्रवण करो, जैसे
 कोई एकरोगी पुरुष है तिसको औषधकर्त्ता वैद्यने आज्ञा किया कि
 तू कुपथ्य भोजन मतकरियो जो करेगा तो दुःख भोगेगा, सो
 यह आज्ञा वैद्यकी श्रवण करके भी चो रोगी पुरुष कुपथ्य की
 इच्छाकर पुनः सोई भोजनकरके दुःख भोगता है । सो कुपथ्य
 भोजनरूप क्रियाको वैद्यद्वारा क्लेशदायक जानके भी पुनः सोई
 कुपथ्य भोजन करना अरु दुःख भोगना, सो यह क्रिया अरु भोग
 दोनों स्वइच्छित प्रारब्ध है । तैसे चौर्यादि निषिद्ध कर्मोंके ता-
 डनादि दुःखरूप फलको जानके भी तिस चौर्यादि कर्ममें प्रवृत्त
 होना अरु तिसके फल ताडनादि दुःखोंको भोगना, सो यह सर्व
 क्रिया भोग स्वइच्छित प्रारब्ध है ॥ अब अनिच्छित कोभी श्रवण
 करो, हे सौम्य ! जैसे कोई एक पुरुष किसी ग्रामको जाता है सो
 उसग्रामके मार्गपर चलते २ उसमार्ग को भूलके अन्यग्राम के
 मार्गपर चलने लगा तब उसमार्गविषे उसको कंटकादि चुभने
 से अति दुःखहुआ वा किसी उत्तम पदार्थ की प्राप्तिसे उसको
 हर्षहुआ ' सो उस पुरुषकी उसमार्ग में ' कि जिसपर भूलके
 चलता है, गमन किया, अरु दुःख सुखका भोग सो उस पुरुषको
 अनिच्छित क्रिया भोग है, क्योंकि उस पुरुषको उस मार्ग पर
 चलने की वा तिस मार्गजन्य सुख दुःख भोगनेकी पूर्ण ईच्छा
 नहीं ॥ हे सौम्य ! अब परेच्छितकोभी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन ! सोई
 एक निर्धन पुरुष अपने किसी प्रयोजनार्थ कहींको जातारहा किंवा
 कहीं घेठारहा तिसको अकस्मात् किसी राजकीय चलवान् पुरुषने
 अपने वन्धनमें कर अपना जो कुछ सामान (भार) वा सो चलात्कार
 से उसके भस्तकपर धरके उसको ताडना सहित अपने अनुकूल
 मार्गपर चलावने लगा । सो उस निर्धन मनुष्यका उस राजकीय
 मनुष्यके वशाहोय उसके भारको उठावना उसके अनुकूल मार्गपर

चलना, अरु उसकी की हुई तो इनके क्लेश को भोगना, सो सर्व किया भोग उसकी परेच्छित है ॥ हे सौम्य! अब इसपर वृद्धों की साध्य श्रवण करो जैसे अपनी सत्यवती माता के वश हुये व्यासदेवजी ने राजा पांडु, धृतराष्ट्र, अरु विदुर इनकी माता के साथ उनके संतानार्थ विषय भोग किया सो व्यासदेवजी ने अपनी इच्छा पूर्वक नहीं किया किन्तु केवल अपनी माता की आज्ञा के वश होय के किया सो उनका परेच्छित प्रारब्ध किया भोग है ॥ हे सौम्य! एक प्रारब्ध के तीन प्रकार के किया भोग भेद तुम से कह, सो सर्व को समान भोक्तव्य है क्योंकि प्रारब्ध कर्म विना भोगे अन्य किसी प्रकार से भी अभाव होते नहीं। तिन तीनों में से आत्मज्ञानी को इच्छित अरु अनिच्छित दो प्रकार की प्रारब्ध किया भोग अभाव हो जाते हैं। क्योंकि उस ज्ञानवान् को सर्व आत्म भाव उदय हुआ है, तब वो इच्छा अनिच्छा कौन की करे, क्योंकि "यत्र द्वैतमिव भवति तदितर इतरम् पश्यति" इत्यादि प्रमाणों से इच्छा अनिच्छा द्वैत भाव प्रिय अप्रिय वस्तु विषे होती है, अरु द्वैत भाव अविद्या के आश्रय होता है, सो द्वैत भाव का आश्रय अविद्या ज्ञानवान् की अभाव होती है ताते ज्ञानी विषे इच्छा अनिच्छा का भी अभाव है। अरु एक लोक दृष्ट्या शरीर यात्रा मात्र जो ज्ञानी विषे भोजनादि किया भासती है सो परेच्छित है, क्योंकि जो किसीने कुछ भोजन करा दिया तो किरलिया वा किसीने वस्त्र ओढ़ाया तो ओढ़ लिया, अरु जो कोई तर्क करे कि उस ज्ञानी के मुख में घ्रास किसी अन्य ने दे दिया परन्तु उसको चबाय के कंठ के नीचे उदर में उतारना यह जो किया है सो तो ज्ञानवान् विषे स्वइच्छित होने से उसको चन्वन का हेतु होगी, सो कहना बने नहीं क्योंकि ज्ञानवान् के विषे जो शरीर की स्थिति मात्र के अर्थ भोजन शौचादिक किया है सो निरभिमानता से होने कर के बंधन का कारण होवे नहीं। तथाच "शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्", "लिप्यते न स पापेभ्यो पद्मपत्रमिव", "भासते" "न लिप्यते कर्मणा पापक्रेनेति" इत्यादि प्रमाणों से

अरुवास्तव करके, ज्ञानीके स्वरूपमें, सो प्रेक्षितभी नहीं क्योंकि उसकी दृष्टिमें सर्वात्मभाव होनेसे स्वपरका भेद नहीं; उसको तो सर्व भेद भावसे रहित एक अपना आप आत्माही भासता है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "ब्रह्मैवेदं सर्वम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" "पुरुष एवेदं सर्वम्" "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतिओं के प्रमाणसे एक अद्वितीय आत्माही है, इतर रंचकमात्रभी नहीं । ताते ज्ञानीके विषे, संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों प्रकारके कर्मोंका अभाव है । अरु जो लोकदृष्ट्या ज्ञानीविषे क्रिया भोग प्रत्यक्ष देखते हैं सो देहके आश्रय इच्छा आनिच्छासे रहित साधारण आभासमात्र है क्योंकि देहका होना प्रारब्धकर्म संस्कारके आश्रय है ताते ज्ञानीका यावत् देह है तावत् प्रारब्ध है यावत् प्रारब्ध है तावत् देह है, इस प्रकार देह अरु प्रारब्धका व्यापार अन्योन्याश्रय है, एतदर्थ यावत् ज्ञानी का देह है तावत् देह सम्बन्धसे ज्ञानीके विषे प्रारब्ध, क्रिया भोग भासते हैं सो ज्ञानी के स्वरूप विषे उपाधिभूत आभासमात्र सिध्दा है ज्ञानी के स्वरूपमें प्रारब्ध क्रिया भोग नहीं । ताते प्रणवोपासक ज्ञानवान् के, संचित, आगामी, प्रारब्ध तीनों कर्मोंका अभाव होता है अर्थात् अंकारके उपासक मुमुक्षु को तीनों प्रकारके कर्मरूप पापों से अङ्कार शुद्ध करता है ताते अंकार का नाम शुद्ध है ॥ हे सौम्य! अन्न और श्रवण करो, यह संचित ॥ दि तिन प्रकारके जे कर्म हैं सो देहाभिमानी अज्ञानी को सत्य हैं, अरु ज्ञानयानके तीनों कर्म अभाव हो जाते हैं, तहां संचितकर्म तो ज्ञान होनेही ज्ञानाग्नि करके नष्ट हो जाते हैं, ताते उनको आगे पुनर्जन्म का अभाव होता है, जैसे कोई पुरुष अपने अन्न करके भरे दृष्टे मन्दिर को भस्म करे तब वो अग्नि करके दग्ध दृष्टे अन्नके दाने अपने अंशुर उपजावने को समर्थ होते नहीं । तेनेही ज्ञानवान् का अन्न कर्णरूप मन्दिर संचितकर्मरूप अन्नके दाने सहित ज्ञानाग्नि करके दग्ध हो जाना है तो पुनः शरीररूप अंशुर उपजावने को समर्थ होना नहीं । सो अन्नः

करणका अभाव इस प्रकार होता है, जो ज्ञानवान् का चित्तसंत्यक्त को प्राप्त होता है। हे मौन्य ! जिस कर के असम्यक् ज्ञान दर्शन होय, अर्थात् संत्यक्त आत्मा विषे असत्य बुद्धि होय, अरु असत्य देहादिकों विषे सत्यात्म बुद्धि होय तिसका नाम असम्यक् ज्ञान दर्शन मन है, अरु अज्ञान, जीव, है। अरु जब आचार्य के उपदेश द्वारा सत्य आत्मानुभव विज्ञान होता है तब अज्ञानरूप जीव, मन, भाव नष्ट हो जाती है, तब केवल शुद्ध आत्मपद ज्यों का त्यों शेष रहता है, तिसकी चित्सत् कहते हैं। इस प्रकार जब चित्सत् पद को प्राप्त होता है, तब अन्तःकरण जो है मनभाव सों सञ्चित कर्मों सहित, अज्ञान के मन्दिरवत्, नष्ट हो जाता है तब पुनः सो देह उपजावने को समर्थ होता नहीं ॥ अरु जो क्रियमाण कर्म हैं सो ज्ञानी के विषे उपजते ही नहीं, क्योंकि क्रियमाण कर्म जो उपजते हैं सो अज्ञान के आश्रय अन्तःकरण विषे उपजते हैं, सो अन्तःकरण ज्ञानवान् का सहित अज्ञान के नष्ट होता है, ताते वा ज्ञानवान् सदा अक्रिय आत्मपद विषे प्राप्त हुआ है ताते, उस विषे क्रियमाण (अर्थात् गामी कर्म उपजते नहीं) अरु ज्ञानी की जीवन्मुक्त अवस्था विषे जो देह क्रिया दिखती है, सो देह के प्रारब्ध से है सो सर्व को समान होती है, परन्तु सोई क्रिया जब अनात्म अहंकार पूर्वक होती है तब क्रियमाण भाव को प्राप्त होय पुनः सञ्चित संज्ञा को पाय अपना फल जे सुख दुःखादिक सो प्रारब्धरूप से भोगावे है, अरु नाना प्रकार के देव मनुष्य पशु तिर्यगादि उत्तम मध्यम निरृष्ट अभ्रमादि देहों को उपजावे है। ताते देहाभिमान अज्ञानी को उसकी साभिमान क्रिया जन्मदायक होती है। अरु बोही क्रिया जो पूर्व संस्कार से प्रारब्धवशात् देह विषे दीखती है सो जब अहंकार पूर्वक नहीं होती तब वो क्रियमाण संज्ञा को न प्राप्त होने से सञ्चित अरु प्रारब्ध इ भाव को भी प्राप्त होती नहीं क्योंकि क्रियावन्धन का मूल अनात्म अभिमान ही है, सो जिसका अज्ञान कारण सहित अभाव हुआ है, तिसकी जो वर्तमान शरीर विषे क्रिया है सो, क्रिय-

माण, संचित, अरु प्रारब्ध, इन संज्ञाको प्राप्त होय। पुनः जन्मका कारण होती नहीं। अरु देह करके जो क्रिया होती है सो पूर्वजन्म के केवल प्रारब्ध संस्कारसे होती है । पूर्वसंस्कारवातेन चेष्टते शुष्क पर्णवत् । सो प्रारब्ध देहके साथ है सो देहके साथ ही नाशवान् होनहार है । क्योंकि प्रारब्धके अभावसे देहका अभाव अरु देहके अभावसे प्रारब्धका अभाव यह अन्योन्य अनुमान सिद्ध है अरु प्रारब्ध अरु शरीर अन्योन्याश्रय दोषयुक्त होने से दोनों ही असत्य हैं । अतएव हे सौम्य ! ज्ञानवान् को क्रियमाण कर्म नहीं, क्यों जो ज्ञानवान् सर्व अनात्म अभिमानसे रहित अक्रिय आत्मपदको प्राप्त हुआ है, एतदर्थ ज्ञानवान् के शरीरकी क्रिया क्रियमाणभावको प्राप्त होती नहीं ॥ जैसे भोजनरूप जो क्रिया है सो मानो पूर्व संस्कारजन्य प्रारब्ध जन्य क्रिया है, सो क्रिया जब होती है तब वो नीरोगी पुरुषके देहविषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्त होती है, अरु वोही प्रारब्धजन्य भोजनक्रिया सरीर पुरुषके देह विषे पुष्टिरूप क्रियमाण संज्ञाको प्राप्त होती नहीं । तैसेही जिज्ञासु पुरुष जब साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोगकरके युक्त होता है तब उसके शरीरविषे प्रारब्धजन्य क्रिया भोगदृष्ट आवते हैं, तथापि वो क्रिया क्रियमाणतारूप पुष्टताको प्राप्त होती नहीं अरु जिस पुरुषको साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोग नहीं ऐसा जो नीरोगी अज्ञानी है तिसको प्रारब्धरूप क्रियासे क्रियमाण क्रिया उपजती है नीरोगीके भोजनवत् यह वैयर्मीदृष्टान्त जानना, । अतएव हे सौम्य ! उक्तप्रकार ज्ञानीपुरुष विषे संचित अरु क्रियमाण ये दोनों क्रिया नहीं, अरु जो पूर्व कर्मसंस्कारों से प्रारब्धजन्य क्रिया है सो क्रियमाणवत् भासती है परन्तु वास्तवकरके ज्ञानवान् के स्वरूपविषे सो भी नहीं देह के आश्रय प्रतीत होती है सो ज्ञानवान् अरु अज्ञानी दोनों को तुल्य है, परन्तु अज्ञानी तो तिसविषे अहंकारपूर्वक रागद्वेष सहित अपनेआप को अज्ञानवश हुआकर्ता भोक्ता माने है, ताते उसकी क्रिया, क्रियमाण, संचित, अरु प्रारब्ध,

इन्ने तीनों संज्ञा को प्राप्त होय पुनः शरीरोत्पत्ति अरु सुख दुःख, रूप भोगका कारण होती है । अरु ज्ञानवान् की शरीराक्रिया पूर्व के प्रारब्धवशात् होती है, परन्तु तिसविधे ज्ञानवान् को अहंकार रागद्वेष कर्त्ता भोक्ता बुद्धि नहीं, ताते ज्ञानवान् की क्रिया पुनर्जन्म अरु सुखदुःखरूप भोगोंका कारण होती नहीं । ताते हे प्रियदर्शन ! अंकार के उपासक ज्ञानवान् के संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों कर्म-नाशकरके उसको उसका उपास्य अंकार अपने लक्ष्य सदा शुद्ध शुद्ध मुक्त स्वभाव अक्रिय आत्मपदविधे प्राप्तकरता है, अतएव अंकार का नाम शुद्ध है ॥ अथवा स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों शरीरों का अभिमानरूप पाप है तिसको भी नाशकरके अपने उपासकको शुद्धकरता है एतदर्थ भी अंकारका नाम शुद्ध है ॥ अथवा तीन जे त्रिपुटियां ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्यान ध्येय, कर्त्ता कर्म क्रिया, इत्यादिक हैं, तिन अज्ञान जन्य त्रिपुटियोंको नाशकरके अपने उपासकको अंकार शुद्ध करता है ताते अंकारका नाम शुद्ध है ॥ अथवा अज्ञान अनात्मा देहादिकोंके आश्रय जे ध्रुवनका हेतु वर्णाश्रमका अभिमान अरु तिस के आश्रय कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभिनिवेश, तिन रूपसर्व पापोंसे अपने उपासक को मुक्त शुद्धकरके अंकार अपने लक्ष्य परब्रह्म परमात्मपद को प्राप्तकरता है ताते अंकारका नाम शुद्ध है "यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवैस पाप्मना विनिर्मुक्तः" इत्यादि ॥ हे सौम्य ! यह तुम्हारे प्रति अंकार के षष्ठशुद्धनामका अर्थ संक्षेपमात्र कहा तिसका विचारकर शुद्ध होगो ६ ॥

अथ सप्तमनाम वैद्युत ७ ॥

हे सौम्य ! अब अंकार के सप्तम वैद्युतनाम का अर्थ संक्षेप मात्र श्रवणकरो । विद्युत नाम है प्रकाश का सो अंकार अपने ज्ञानरूप प्रकाश करके अपने उपासक के अज्ञानरूप अंधकारको कि जिसके आश्रय धारण्यार जन्ममरणके महाभयका देनेवाला

संसाररूप अंसत्य सर्प अपनेआप शुद्ध अद्वैत जन्म मरण से रहित अज अविनाशी आत्माविषे, सत्य प्रतीत होता है, अभाव करके, अपनाआप रज्जुस्थानीय आत्मरूप पदार्थ ज्यों का त्यों प्रत्यक्षकर देखावता है "ज्ञानदीपेन भास्वतः" इत्यादि प्रमाणसे ताते ओंकार का नाम विद्युत है ॥ अथवा ओंकार अपने उपासक को विद्युतवत् विशेष प्रकट दर्शनदे पुनः अपने सामान्यरूप को प्राप्त होता है "यदेतद्विदुतोव्यद्युतदा" इत्यादि केनोपनिषद् के प्रमाणसे । एतदर्थ भी ओंकार का नाम विद्युत है ७ ॥

अथ अष्टमनाम हंस ८ ॥

हे सौम्य ! अब ओंकारके अष्टम हंसनाम का अर्थ श्रवण करो । हंसनाम सूर्यका है, जैसे सूर्यरात्रिको अरुतज्जन्य अंधकार को अरु तज्जन्य अभास को नाश करता है । तैसेही ओंकाररूप सूर्य है तिसकी जो पुरुष, विचार ध्यान उच्चार जप आदि, क्रमसे उपासना करता है, तिस उपासक के अन्तःकरण में सूर्यवत् ज्ञानरूपसे उदयहोय मूलाग्नि रूपा रात्रि, अरु तदाश्रित तमोगुणरूप अन्धकार, अरु तदाश्रित स्वरूप का अनाभास, तिनको अभावकरके अपने लक्ष्य शुद्ध तुरीयरूप आत्माको प्रकाशना है । ताते ओंकार का नाम हंस है । तथाच "आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः", इत्यादि श्रुति के प्रमाणसे ॥ अथवा हंस उस पक्षीविशेषको भी कहते हैं कि जो मिश्रित हुये दुग्ध अरु जलको पृथक् कर करता है, तैसेही ओंकाररूप हंस अपने उपासक के हृदय की चिज्जड़ग्रंथी जो दुग्ध अरु जलवत् मिश्रित, है तिस चिज्जड़ग्रंथी को खोल के चैतन्यरूप दुग्ध अरु जड़रूप जल को पृथक् करके अपने उपासक को आत्मरूप दुग्धकी प्राप्ति कराये अजर अमर अभयपद को प्राप्त करता है, अतएव ओंकार का नाम हंस है । तथाच "हंशश्च शुचिः" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे । अर्थात् ओंकार अपने उपासक की अविद्यारूपा रात्रि अरु अनात्म जड़रूप

जलको नाशकरके स्वयंज्योतिःसर्व का परमसार नित्य निरंजन निर्विकार अपने आप आत्मपद विषे प्राप्त करता है, अतएव ओंकार का नाम हंस है ८ ॥

अथ नवमनाम तुरीय ६ ॥

हे सौम्य ! अब ओंकारके नवमनाम तुरीयका भी अर्थ श्रवण करो । हे प्रियदर्शन ! तुरीय उसको कहते हैं, जो सूक्ष्म स्थूलकारण, यह तीन शरीर, अरु जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, यह तीन अवस्था, अरु विश्व तैजस प्राज्ञ, यह तीन अभिमानी, अरु स्थूल विरल अरु आनन्द, यह तीन भोग्य, इत्यादिकोंका जो साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान अरु उक्त सर्व से पृथक् है तिस निर्विशेष चैतन्य आत्माका नाम तुरीय है । अरु सोई त्रिमात्रिक वाचक ओंकारका लक्ष्य है अरु त्रिमात्रिक ओंकारके आलम्बनसे यही सुसुक्ष्मों करके उपास्यदेव है, अरु यही एक अद्वितीय सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है इसही के साक्षात् सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होती है । तिस अपने लक्ष्यरूप तुरीय आत्माकी प्राप्ति, अपने उपासक को कराये तीनों अवस्था रूप नामरूप क्रियात्मक असत्य संसार सागर से तार देता है, ताते ओंकारका नाम तुरीय कहते हैं ६ ॥

अथ दशम नाम परब्रह्म १० ॥

हे सौम्य ! अब ओंकार के दशम ब्रह्म नामका अर्थ श्रवण करो । परा पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी, इनचारों वाचाकरके जो प्रकट होता है सो ओंकारका वाच्य शब्दमय ब्रह्म है । तहां परा उसको कहते हैं, पश्यन्ति मध्यमा अरु वैखरी, इन तीनोंकी समावस्था है वा सामान्य शब्दके उत्थान से रहित केवल ध्वनिमात्र है । वा जहांसे पश्यन्ती का उत्थान होता है, सो परावाचा है । अरु पश्यन्ति स्फुरणरूप तिसविषे यह स्फुरण होता है जो कुल कहो, इसस्फुरणका नाम पश्यन्ती वाचा है । अरु जब वो स्फुरण निश्चयात्मक होता है कि अब यह कहोही, तिसका नाम

मध्यमावाचा है । अरु उसही निश्चय से करके ही ठीक ही महिलाय के प्रकट कहा तब तिसको वैखरीवाचा कहते हैं । तिस वैखरी विषे चारोवेद पद आदिशास्त्र अष्टादशादिस्मृति अष्टादशपुराण इतिहासादि जो विद्या हैं अरु नानाप्रकार की नानादेश की भाषा हैं, अरु नानाप्रकार के पशु पक्षी आदिकोंकी नानाभाषा हैं सो सर्व स्थूलरूप वैखरी विषे स्थित हैं । तथाच " सर्वेषां वेदानां वागेक्यतम् । " वाग्वैनामनो भूआति । " इत्यादि श्रुतिः । तहां से स्वर वर्णात्मक शब्दरूप से प्रकट होयहै, सो सर्व अंकार का वाच्य शब्दब्रह्म है तहां वेदरूप शब्दमय ब्रह्मअंकार तिसकी उपासना । अध्ययन विचार रूप से, करने करके शब्दमय ब्रह्मकरके प्रतिपाद्यजे अंकारका लक्ष्य निर्विशेष परब्रह्म परमात्मा तिसकी अपने आप आत्मत्व से प्राप्तिहोती है । तथाच " शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति । " इति ॥ ताते इस अंकार को परब्रह्म कहते हैं १० ॥

इति अंकारस्य दशनाम अर्थविचार समाप्तम् ॥

अथ अन्य प्रकार से अंकार की मात्रादि विचार ॥

| १ | अकार | वकार | मकार | यह तीन मात्रा |
|----|------------|---------------|-----------------|--------------------------|
| २ | अग्नि | गान्ध | सूर्य | यह तीन अग्नि |
| ३ | गायत्री | त्रिपुण्ड्र | बृहती | यह तीन छंद |
| ४ | ब्रह्मा | विष्णु | शुद्ध | यह तीन देवता |
| ५ | इन्द्र | रत्न | वृष्ण | यह तीन वर्ण |
| ६ | जायत | रत्न | सुपुति | यह तीन अवस्था |
| ७ | भू 'भूलोक' | भुव 'वितृणाक' | स्वर् 'सर्गलोक' | यह तीन व्यावृत्ति वा साग |
| ८ | वदन्त | अनन्त | स्वरित | यह तीन स्वर |
| ९ | अक्ष | यक्ष | साम | यह तीन ऋषि |
| १० | गार्ग्य | दक्षिणाग्नि | आहवनीय | यह तीन अग्नि |
| ११ | मात | मध्याह्न | साय | यह तीन संहि |
| १२ | भूत | भविष्य | वर्तमान | यह तीन काल |
| १३ | राज | रज | तम | यह तीन गुण |
| १४ | उत्पत्ति | पाला | सहार | यह तीन त्रिषा |
| १५ | वर्ग | उपासन | ज्ञान | यह तीन काण्ड |
| १६ | विश्व | द्विष्यगर्भ | अन्तराह्न | यह तीन शरीर |
| १७ | वी | रुद्र | नपुंसक | यह तीन लिंग |
| १८ | हीता | प्रत्यय | उद्गाता | यह तीन ब्राह्मण |
| १९ | ज्ञान | उदाय | जति | यह तीन स्वभाव |
| २० | यदि | अन्तर | घन | यह तीन प्रज्ञा |
| २१ | धन | जल | अध्रमा | यह तीन भाग |
| २२ | शक्ति | वायु | गृह्य | यह तीन भाषा |

हे सौम्य ! यह जो अंकार की मात्राओं का नेद मकर्य कहा है सो अकार उकार मकार इन तीन मात्राओं का विस्तार है यह समस्त जगत् इनके अग्रान्तर्गद् होने अकार योग्य मकर्य है ॥

अथरामगीताकेअनुसारमात्राओं कालयचितवन ॥

पूर्वसमाधेरखिलं विचिन्तयेदोकारमात्रं सचराचरं जगत् । तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाष्यतेऽज्ञानवशाच्च बोधतः १।४८ ॥

हे सौम्य ! अब परब्रह्म की प्राप्ति में सर्वोत्तम जे प्रणवोपासन तिसकी मात्राओं के क्रमशः लय चिन्तवन द्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्मकी आत्मत्वभावसे जिसप्रकार साक्षात् प्राप्ति होती है सो प्रकार तुम्हारे प्रति संक्षेपसे कहताहों तिसको सावधान होयके श्रवण करो ॥ तहां प्रथम, श्लोकका अक्षरार्थ "समाधि से पूर्व सम्पूर्ण जे चराचर जगत् [तिसको] अंकार मात्रही चिन्तवन करे निश्चय करके प्रणव (अंकार) नामहै [अरु] तो (जगत्) ही नामी है [सो नाम नामीका भेद] अज्ञानवशात्है ज्ञान से नहीं " हे प्रियदर्शन ! जो विवेकी साधन सम्यग् आत्मजिज्ञासु पुरुष है सो निर्विकल्प समाधि के प्राप्त होनेके पूर्व सम्पूर्ण चराचर जगत्को एक अंकारमात्रही चिन्तवनकरे । क्योंकि "अंकार एवेदं सर्वम्" । यह सर्व अंकारही है । ऐसी श्रुतिकी आज्ञा है, ताते निश्चय करके प्रणव जो अंकार सो नाम है अरु जगत्ही उसका वाच्य कहिये नामीहै । क्योंकि "तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वं अंकार एव" । इस मांडूक्यउपनिषद्की श्रुति प्रमाणसे । अर्थात् अंकार नामहै अरु जगत् नामीहै ताते निर्विकल्प समाधिके पूर्व (सर्विकल्प समाधि विषे) जगत्को अंकार रूपही चिन्तवन करे, सो नाम नामीभी मुमुक्षुके समभावनेके अर्थ आचार्यों ने कहलिया है वास्तव करके तो नाम नामीका भी भेदनहीं जो भेद भासताहै सो अज्ञान वशसे भासताहै, सम्यक् ज्ञान होनेसे नाम नामीका भेदनहीं । अर्थात् जब

अकारसंज्ञः-पुरुषोहिविश्वकोह्युकारकस्तैजसैर्यतेकं
मात् । प्राज्ञोमकारःपरिपठ्यतेऽखिलैःसमाधिपूर्वनतुत
त्वतोभवेत् २ । ४९ ॥

वाच्यरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासक को उस उपासना के प्रभाव
से लक्ष्यरूप अमात्रिक निर्विशेष निरुपाधि आत्मतत्त्वका साक्षा-
त्काररूप अपरोक्ष सम्यक्ज्ञान होता है तब वृत्ति के अभावसे, नाम,
नामी, यह भी संज्ञा रहती नहीं, केवल एक अद्वैत परमशांत शिव
विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है । शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं
सम्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय । इत्यादि प्रमाणसे १ । ४८ ॥

हे सौम्य ! यह जो वर्णात्मक ओंकार है तिसके तीन अक्षर
(मात्रा) हैं, तहां प्रथम अकार, द्वितीय उकार, तृतीय मकार,
अरु इसका वाच्य जो जगत् है तिसके तीनपाद हैं, प्रथम स्थूल
विराट्, द्वितीय सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, तृतीय कारण अव्याकृत, अरु
क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन अभिमानी देवता हैं । अरु
ओंकारका लक्ष्य जो प्रत्यगात्मा है तिसकी तीनमात्रा हैं, जाग्रत्,
स्वप्न, सुषुप्ति, अरु इनके अभिमानी आत्मा को क्रमसे , विश्व,
तैजस, प्राज्ञ, कहते हैं अतएव , अक्षर, पद, मात्रा, इन तीनोंका
एकही पर्याय है ताते वाचक जे वर्णात्मक ओंकार तिसका जो
वाच्य समष्टि व्यष्टि जगत् सो परस्पर अभेद है एतदर्थही जाग्रद-
भिमानी विश्व पुरुष अकार संज्ञक है, तिसकी स्थूल विराट् अभि-
मानी ब्रह्मा देवताके साथ एकता है । अरु क्रमशः स्वप्नाभिमानी
तैजसको उकार ऐसा कहते हैं, तिसकी सूक्ष्माभिमानी हिरण्यगर्भ
विष्णुदेवता के साथ एकता है । अरु सम्पूर्ण ज्ञानवान् प्राज्ञको
मकार कहते हैं, अर्थात् सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञकी अरु अव्याकृता-
भिमानी रुद्रकी मकार मात्राके साथ एकता है । सो यह सर्व
निर्विकल्प समाधि के पूर्व है । अर्थात् मुमुक्षुमुखको यावत् अ-
मात्रिक सर्वाधिष्ठान निर्विशेष आत्मस्थिति को प्राप्त होने रूप

विश्वत्कारं पुरुषं विलापयेत्कारमध्ये बहुधाध्यक्ष-
स्थितम् । ततोम्कारे प्रविलाप्यतेजसं द्वितीयवर्णं प्रण-
वस्यचान्तिमे ३ ॥ ५० ॥

निर्विकल्पसमाधि न प्राप्त होय तावत् उक्तप्रकारे चिन्तन न कर्तव्य है, अरु जे तिसविचारसे निर्विकल्प आरम्भस्थितिकी प्राप्त होवे तब नहीं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण, ब्रह्मा विष्णु रुद्र, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, विश्व तेजस प्राज्ञ, अकार उकार मकार, इत्यादि विशेषता का भेद भाव रचकमात्र भी रहता है नहीं किन्तु सब लक्षणवत् एक विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है २ । ४६ ॥

हे सौम्य! इस श्लोक का उत्तर श्लोक से अन्वय है ताते इन दोनों श्लोकों का मिश्रित अक्षरार्थ कहते हैं । बहुत प्रकार से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुषकी ओर उकार में लयकर तदनन्तर प्रणवका द्वितीयवर्ण तेजस संज्ञक (उकारको) पिछले अकार मकार विषे लयकर ॥ तदनन्तर पुनः प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इसपर चैतन्यघन आत्मोविषे विलीनकर [तदनन्तर] सोमैं सर्वकाल नित्य मुक्त विज्ञान दृष्टि उपाधिसे रहित निर्मल परब्रह्म-हों [ऐसी निश्चय भावनाकरे] ॥ हे प्रियदर्शन! जो बुद्धिमान् साधन सम्पन्न मुमुक्षु पुरुष है सो आत्मदेवकी प्राप्ति के अर्थ यह विचारकरे कि अनेकप्रकार नानारूपसे स्थित विश्व संज्ञक अकार पुरुषको उकार विषे लीनकरे । तदनन्तर अकार का द्वितीय-अक्षर जो सूक्ष्म तेजस संज्ञक उकार तिसकी भी कि जिसविषे प्रथम विश्व अकार पुरुषको लीन किया है । प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार विषे लीनकर । पुनः तिसके अनन्तर प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इस सर्वसेपर चैतन्य घन आत्मा विषे लीनकर इस प्रकार मात्राओं के लय चिन्तनके अनन्तर, सो सर्वाधिष्ठान कि जिसविषे उक्त समाधि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्मसर्व प्रपञ्चमात्रा अध्यस्त (अभिया करत कल्पित) है, सो मैं सर्वकाल

नित्यमुक्त सर्वज्ञ विज्ञान दृष्टि सर्व-उपाधिसे रहित शुद्धनिर्मल
 प्रकृतिसे पर साक्षात् निर्विशेष ब्रह्महो ॥ तथाच ॥ “अयमात्मा
 ब्रह्म” शुद्धमपापविद्धम् ” । “शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते सआत्मा
 सविज्ञेय ” । “सआत्मा तत्त्वमसि ” । “अहंब्रह्मास्मीति ” इ-
 त्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे अहंब्रह्म भावनाविषे, प्रत्यादृढकरके
 सर्व उपाधिके अभावसे निर्विकार निराकार अपने आप आत्मा
 को प्राप्तहोवे ॥ - ॥ हे सौम्य ! यह कही जो मात्राओं की लीनता
 तिसको व्यष्टि समाष्टि की एकतासे पुनः सविस्तर करते हैं, हे
 प्रियदर्शन ! प्रथम कहा कि अकार जो प्रथम मात्रा है तिसको
 उकार रूप द्वितीय मात्राविषे लयकरे, निसत्ता अर्थ यह है जो
 अकार जाग्रतरूप जगत् है अरु विद्यत तिसका अभिमानी है,
 तिसको वैश्वानर भी कहते हैं, अरु ब्रह्मा इसका देवता है, अरु
 सत्त्वगुणहै । ऐसी जो प्रथम अकार मात्राहै तिसको उकारस्वप्न
 तेजसरूप जानो । अर्थात् जाग्रत् जगत्को सूक्ष्मस्वप्नरूप जानो,
 क्योंकि स्वप्नही अपने तीव्र संवेगकरके जाग्रतरूपहो भासताहै
 , जैसेस्वप्नमें सोयाहुआ पुष्प स्वप्नको देवता तिसके तीव्रसंवेगसे-
 ही बिनाजाग्रत्के प्राप्तहुये उठके चञ्चल देता है, अरु भूत संज्ञाको
 प्राप्तहुये जाग्रत् अरु स्वप्नही स्मृतिमात्र नुन्यहै ताते जाग्रत् जगत्
 को स्वप्नरूप जानो । अरु स्थूल जाग्रदभिमानी तो सूक्ष्मस्वप्नाभि-
 मानी तेजस का स्वरूप जानो क्योंकि जैसे स्वप्नतीव्र संवेग करके
 जाग्रतरूपहो भासताहै तैसे तिसस्वप्नका अभिमानी जाग्रत्का अ-
 भिमानीहो भासताहै ताते । अरु ब्रह्मा जो स्थूल जाग्रत् जगत्का
 देवताहै तिसको सूक्ष्मस्वप्न जगत्का देवता जो विष्णु है निम्नही
 कारण जानो क्योंकि सूक्ष्मसे स्थूल अरु विष्णुमें ब्रह्मापुरे हैं । अ-
 र्थात् यह जो स्थूल जाग्रत् जगत्है सो सूक्ष्मस्वप्नरूपहै । अरु जाग्रद-
 भिमानी विश्वको स्वप्नाभिमानी तेजसरूप जानो अरु ब्रह्माको
 विष्णुरूप जानो । इसब्रह्मके चिन्तनने प्रथम अकारमात्राको
 द्वितीय उकार मात्रा विषे लयकरो । अरु यह जो उकार स्वप्न

मात्रा है कि जिसविषे स्थूल अकार मात्रा लीन हुई है उस उकार मात्राको मकार मात्रा विषे लीनकरो अर्थात् सूक्ष्म स्वप्न जगत् को सुषुप्तिरूप जानो, अरु स्वप्नाभिमानि तैजसको सुषुप्त्यभिमानि प्राज्ञरूप जानो, अरु विष्णु जो सूक्ष्मका देवता है तिसको कारणको देवता रुद्ररूप जानो । अर्थात् स्वप्न सुषुप्तिरूपही है, अरु तैजस प्राज्ञरूप है, अरु विष्णुरुद्र रूप है । इस प्रकारके चिन्तनसे सूक्ष्म उकार को कारण मकार विषे लीनकरो । अब कारण मकार जो तृतीय मात्रा है तिसको भी अमात्रिक रूप परमात्मा विषे लयकरो । अर्थात् सर्व परमात्म रूपही जानो । तथाच । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" । "ॐकार एवेदं सर्वं" । "ब्रह्मैवेदं सर्वं" । "पुरुष एवेदं सर्वम्" । "आत्मैवेदं सर्वम्" । "अहमेवेदं सर्वम्" । "वासुदेवः सर्वमिति" । "मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति" इत्यादि श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणसे यह सर्व अध्यस्तप्रपञ्च अपना अधिष्ठान परमात्म स्वरूपही है क्योंकि अध्यस्तकी अधिष्ठानसे पृथक्स्तुति का अभाव है । अर्थात् यह जाग्रतरूप स्थूल जगत् संयुक्त स्थूल शरीर अरु विश्व इसका अभिमानि अरु ब्रह्मादेवता, इन सर्वको सूक्ष्म उकारविषे लीनकरो तहाँ इसप्रकार जानो जो उकार रूप सूक्ष्म स्वप्न सम्पूर्ण लिंगशरीरोंका अभिमानि तैजस विष्णुदेव हिरण्यगर्भ है तिससे सम्पूर्ण स्थूलशरीर विराट् पुरुष ब्रह्मादेवता जाग्रदवस्था फुरी है ताते यह सर्वबोहीरूप है । इसप्रकार के विचारसे अकारमात्रा स्थूलजगत्को सूक्ष्म उकाररूप जानो ॥ अरु जो सूक्ष्म उकार मात्रा है, तिसको कारण मकार मात्रारूप जानो । अर्थात् सर्व कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था अरु तिसका अभिमानि प्राज्ञ, अरु रुद्र देवता सर्वका कारण अव्याकृत तिससे सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था तिसका अभिमानि तैजस तिस सर्वकी समष्टिताका अभिमानि जो हिरण्यगर्भ सो फुरा है । तथाच । "अव्याकृतं वा इदमग्र आसीत्" । "हिरण्यगर्भो जायमानः" इन श्रुति वाक्योंकी ऐक्यतासे । ताते स्थूल सूक्ष्म सर्व कार्य्य कारण

अव्यक्त रूप है । तथाच “अव्यक्तादीनि-भूतानि” गीतोक्तिप्रमाणरो । ऐसी जे सर्वका कारण मकारमात्रा । अर्थात् समस्तव्यष्टि कारण शरीरों की समष्टिता अव्याकृत, अरु समस्त सुषुप्ति अवस्थाकी समष्टिना अविद्या अरु सम्पूर्ण सुषुप्त्यभिमान-प्राज्ञ की समष्टिता रुद्रदेवता यह सर्व कारणरूप मकार मात्रा, सो अक्षरमात्रारूप, अर्थात् अमात्रिक परमात्मा चैतन्यवन निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मासेही फुरेहैं, ताते आदिकारण प्रकृति अरु तिसका कार्य स्थूल सूक्ष्म सम्पूर्ण जगत् रूपसे एक परमात्माही प्रकाशित है अर्थात् अस्ति भाति प्रियरूपसे एक परमात्माही सुशोभित है, तिससे इतर द्वैत कुछभी नहीं । तथाच “सद्धिदं सर्वम्” । “चिद्धिदं सर्वम्” । “पुरुषएवेदं सर्वम्” । “ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्” । “मायामात्रमिदं द्वैतं” । “नेह नानास्ति किञ्चन” इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे सर्व ब्रह्मरूपही है । हे प्रियदर्शन ! इस प्रकारके विचारसे अकार, उकार, मकार, यह तीनमात्रा रूप स्थूल सूक्ष्म कारणरूप प्रपञ्च है अकारका लक्ष्य परमात्म रूप ही है, अरु सो परमात्मा अज है एतदर्थ वो कार्यरूपसे जन्मभाव को प्राप्तहोता नहीं किन्तु सर्वाधिष्ठान होनेसे सर्व रूपसे सुशोभित है, जैसे सीपि रजतरूप कार्य भावको प्राप्तहुये बिनाही अपने स्वभावकरके रजतरूप से सुशोभित है सोभी शक्ति के अज्ञान पर्यन्तही है, ज्ञानहुये रजत कहनेमात्र को भी नहीं तैसेही एक परमात्माही कार्यभाव को न प्राप्तहोयके जगत् रूपसे सुशोभित है हुआ कुछनहीं, एक अद्वैत चिन्मात्र सत्ताही है-तिससे इतर एक परमाणुमात्र भी नहीं, जैसे जलसे इतर समुद्र अरु तद्रूप लहर झाग बुद्बुदादि कुछभी नहीं, जैसे अग्निसे भिन्न दाहकता उष्णता प्रकाशकतादि कुछ नहीं, वा जैसे वायुसे भिन्न स्पंदना निस्पंदता नहीं, जैसे आकाशसे इतर शून्यता नीलिमादि कुछ नहीं, तैसेही अकार के लक्ष्य परमात्मा से इतर वाच्यरूप-जगत् कुछ नहीं, अरु इतग्वत्-भामता है सोई भ्रान्ति वा उसकी

स्वभावभूत माया है- हे प्रियदर्शन ! यहीं जो परमात्मा के विषे स्वभाव वा माया कही है तिसकरके सांख्यवत् पृथक् प्रकृति का ग्रहण नहीं- क्योंकि- " अव्यक्तात्पुरुषः परः " अव्याकृत कहिये प्रकृतिसे-पर कहिये श्रेष्ठ है कार्यभाव को न-प्राप्त होने से । ताते सांख्यमत कल्पित, प्रकृतिवत् स्वभाव को न-ग्रहण करके परमात्माका-जो सर्व से विलक्षण भाव है सोई उसका स्वभाव जानना, जैसे मरुस्थल वा ऊपर पृथ्वीका जो पृथ्वीके अन्यदेश भाव से, विलक्षणपना है- सोई उसका स्वभाव (अपनेआप होना) है तिस अपने स्वभाव करके, वो पृथ्वी तरंगादिकों सहित जलरूप हो भासती है परन्तु जलरूप होती नहीं, तैसेही चैतन्यतत्त्व परमात्माका-जो सर्व से, विलक्षण अपनेआप चैतन्य भावरूप स्वभाव है, सोई उसकी अभिन्न माया है, तिस अपना, स्वभाव वा सायाकरके वो, परमात्मा, कार्य, कारणात्मक स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत् रूप हो भासता है हुआ-कुछनहीं, अरु बिनाही हुये जो नाना प्रपंच हुये-गत् भासता है सोई उसकी अघटघटनापटीर्यसी, उक्त माया है, अतएव-एक अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व जो अंकार का लक्ष्य है तिससे इतरवाच्य नहीं, वाच्य अरु वाचक सर्व परमात्मतत्त्व ही है । ताते-हे प्रियदर्शन ! सम्पूर्ण जगत् को उक्तप्रकारसे एक अंकार का लक्ष्य-परमात्मरूप जानके मुमुक्षुपुरुष अपने मोक्षार्थ निर्विकल्प-समाधि, (निर्विशेष आत्मस्वरूपस्थिति) के अर्थ उक्त प्रकार, अंकारोपासनाको-शमादि साधन पूर्वक शास्त्रप्रमाण से आलम्बन (आश्रय) करे॥ हे सौम्य ! इस अंकारोपासनासे इतरथा-वत् उपासना है तो सर्व अंकार की अंगभूत उपासना है, अरु अंकार की जो उपासना है-तो अंगीउपासना है । अर्थात् ब्रह्म की उपासना में अंकारमे इतर जो उपासना है तो सर्वगौण उपासना है, अरु अंकार की जो उपासना है तो मुख्य उपासना है, अरु परमात्मा के, नामों मे जो अंकार नाम है, तो मुख्य नाम है अरु और जे नाम हैं सो, गौण नाम हैं, क्योंकि गुणों के सम्बन्ध से हैं ।, जैसे सूर्यके कर्ता ई-

इवर आदिक जे नाम हैं सो गुणों के सम्बन्ध करके गौण हैं। अरु भानु जो नाम है सो मुख्य स्वाभाविक नाम है। अथवा देवदत्त विषे जे, पिता पुत्र भ्राता आदिक नाम हैं सो गौण हैं, अर्थात् गुण सम्बन्धसे कल्पित हैं, अरु पुरुष जो नाम है सो स्वाभाविक मुख्य नाम है। तैसेही परमात्माका जो अंकारनाम है सो मुख्य नाम है, ताते अंकारकी जो उपासना है सो प्रतीकोपासना की रीतिसे त्रिमात्रिक वाच्य की अरु अहमग्रे उपासना की रीतिसे अमात्रिक लक्ष्य परमात्मा की मुख्योपासना है, अतएव सर्व उपासनाओं में श्रेष्ठ एक प्रणवोपासना है अन्य नहीं। सो अंकार ब्रह्मरूप है, तहां एक अपर त्रिमात्रिक शब्द ब्रह्म है एकपरब्रह्म है। तहां जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों करके जानने विषे आवता है, अर्थात् जो मन इन्द्रियादिकों का विषय है सो सर्व अर्थरूप होनेसे शब्द ब्रह्मके अन्तर्गत है क्योंकि किसी शब्दका अर्थरूपही है अरु सोई अंकारका वाच्य है। अरु जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का विषयन होत सन्ते सर्वका प्रकाशक साक्षी विज्ञानघन चैतन्य आत्मा है सोई अंकारकालक्ष्य परब्रह्म है, तिस लक्ष्य रूपकी जो उपासना है सो निरालम्बन होनेसे वाच्यरूप अंकारके आलम्बनसे होती है। जैसे मनकी वा जीवात्मा की जो सन्तुष्टता प्रसन्नता होती है सो शरीरके लालन पालनरूप आलम्बनद्वाराही होती है तैसे। अतएव जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुष अपने आप सत्यस्वरूप आत्मदेव की प्राप्तिके अर्थ अंकार की उपासना करे, यही उपासना सर्ववेदोंने कही है। तथाच “ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांमि सर्वाणि च यद्वदन्ति यद्विच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योम् ”। “ ओमित्येनदक्षरमुद्गीथमुपासीत ” इत्यादिक अनेक श्रुतियों ने मुमुक्षुके मोक्षार्थ एक प्रणवोपासनाही मुख्य करके कहा है, अतएव मोक्षार्थी को अपने मोक्षार्थ एक अंकारोपासना को आलम्बन करना श्रेय है। तथाच “ एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परमं ।

खींचना इसका नाम पूरक है। पश्चात् उस छिद्र कीभी अंगूठा सों दबाय बन्दकर प्राण को अन्तर रोकना तिसका नाम कुम्भक है; अरु जब प्राण न रुके तब नासिका का, वांछिद्र खोल उस मार्ग से धीरेधीरे प्राण को बाहर छोड़ना इसका नाम रेचक है तहां प्राण का जो पूरक है तिसविषे अंकार का ३२ बार मनो-मये उच्चार करना, अरु कुम्भकविषे अंकार का ६४ बार उच्चार करना, अरु रेचकविषे १६ बार अंकार का उच्चार करना। इस प्रकार एकवार पूरक कुम्भक रेचक करने से एक प्राणायाम होता है। सो इसप्रकारके प्राणायाम जितने होयसकें तैतने करना इनके अभ्यास करने से प्राणवायु वंश अरु पापों का नाश होता है एतदर्थ कोई एक पुरुष उक्तप्रकार के प्राणायामोंद्वारा अंकार का जपकरते हैं। अरु कोई एक पुरुष इसप्रकार भी करते हैं कि अंकारकी जो, अकार, उकार, मकार, यह तीनमात्राहैं तिनको क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, रूप स्वरसहित अंकारका उच्चारकरते हैं, सो मूलाधारसे मस्तकके ब्रह्मरंध्र पर्यन्त ध्वनिको प्राप्त होतेहैं। इत्यादि अनेकप्रकार प्राणवके जपके हैं, तिनमें से जिसप्रकार अपनेसे श्रद्धासहित होताजाने तिसप्रकार करे। यह तो अंकारके जपकरनेका क्रम संक्षेपमात्र तुमसेकहा। अब इस अंकारके अर्थकी भावना भी श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन! अंकारके अर्थकी जो भावना करनी है सो दो प्रकार की है तहां एक सगुण वाच्यरूप अरु द्वितीय निर्गुण लक्ष्यरूप, तहां जो सप्त सिद्धान्तकारोंके मतमे ६३ तिरसठि नामरूप भेद करके कही है, सो अरु अंकारके मात्रा ऋषि, छन्द देवता आदि ६६ छियासठ भेदसे कही है सो। अथवा जो एक मात्रासेलेके ३८, ४६, ५२, ६३, ६४, मात्रापर्यन्त कही है सो, १, इन तीनों प्रकार से जो अंकारत्रय के अर्थकी भावना कही है सो अंकारके वाच्य सगुण त्रय की भावना है। अरु अंकारके लक्ष्य निर्गुण त्रय की भावना प्रणवोपासक इस प्रकार करते हैं कि जिस अंकार त्रयकी हम उपासना करते हैं

तिसे त्रिमात्रिक अपरब्रह्म रूप प्रणव शब्दका वाच्य तिसका जो ज्ञाता प्रकाशके साक्षी सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूपलक्षणवान् परब्रह्म आत्मा है, सोई सर्वत्र, सर्व, अस्ति, भाति, प्रियरूप होके व्याप्त होरहा है, तहां अस्ति कहिये, यह है, यह है, यह है, इस प्रकार से है है है यह अस्ति सत्तारूप जो व्याप्त होरही है, अरु जोकि यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं, इसप्रकार सर्व निषेध के अन्त में निषेध के भावका प्रकाशके कि जिस करके अस्ति नास्ति सिद्ध होते हैं, अरु अस्ति नास्ति शब्दके अर्थ के अनुभवका आश्रय कि जिसविषे अनुभव होता है । अरु जो अस्ति नास्ति भावनारूप कल्पना का आश्रय आदि अन्त अवशेष है अरु अस्ति नास्ति आदिक कल्पना का अधिष्ठान परम अस्ति रूप सत्ता है, सोई अपने पूर्वोक्त स्वभाव करके अस्ति नास्ति भावाभाव रूप का आश्रय हुआ सुशोभित है ताते वोही सर्वाधिष्ठान सत्ता सर्वरूप से सुशोभित है ॥ अरु भाति कहिये जो प्रकाशता है । अर्थात् जो पदार्थ भासता है सो भातिरूप है, क्योंकि एक दूसरेको प्रकाशता है, जैसे अन्धकार के अभावको प्रकाश प्रकाशता है, अथवा रात्रिके अभावको दिवस प्रकाशता है जो इस समय रात्रिवा अन्धकार का अभाव है । अरु दिवस किंवा प्रकाश में रात्रि किंवा अन्धकार का अभाव है, सो दिवस किंवा प्रकाश में जो अपने अभावरूप से रात्रि किंवा प्रकाश सो अपने अभावरूप से दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाश है, क्योंकि जो कदापि उस दिवस किंवा प्रकाशके भावकालमें रात्रि किंवा अन्धकारका अभावरूप अस्तित्व न होता तो इसकाल में दिवस किंवा प्रकाश है, इस प्रकार दिवस किंवा प्रकाश के अस्तित्वको प्रकाशता कौन । ताते अभाव रूप हुये रात्रि किंवा प्रकाश, सो दिवस किंवा प्रकाशके भावको प्रकाशते हैं ॥ अथवा दीपक जो प्रकाशरूप है सो अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ सो अपि अप्रकाश रूप होत सन्ते भी प्रकाश रूप

दीपकको वा दीपककी प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इसप्रकार दीपककी प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधारसे सिद्ध होती अतएव अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ दीपककी प्रकाशरूपताको प्रकाश है ॥ हे प्रियदर्शन ! उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्ति-मात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप से सुशोभित है । तथाच "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अरु प्रिय कहते हैं आनन्दको 'क्योंकि सद्य को आनन्दही प्रिय है, सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्त है अतएव सर्वही आनन्द रूप है । ताते जो बहुत कर्त्तव्य अकर्त्तव्य गुण दोष पाप पुण्य राग द्वेष ग्रहण त्याग, इत्यादि हैं सो सर्व आनन्द रूप ही है क्योंकि जिसमें जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्दके अर्थ ही करता है । अरु जो कोई जो कुछ करता है उसको उसही में आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे । अरु जो जिन आनन्दके अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करते हैं सो आपही परमानन्द रूप है, अरु सोई सर्वानन्द हुआ है । तथाच । "आनन्दा होवत्खल्विमानिभूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुपत्न्युक्ती श्रुतिप्रमाणसे । अतएव जहाँ है जो है सो सर्वानन्द ही है ॥ इसप्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म ही इसप्रकार अस्ति भातिप्रियरूप होकर सुशोभित हो रहा है । ताते अंकार एवेदं सर्वम् । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" । "नेह नानाभिनि किञ्चन" । सर्व अंकार ब्रह्म ही है निमसे इतर रंचकमात्र भी नहीं । इसप्रकार अम्बार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्मकी भावनारूप उपासना करते हैं, भावना कहिये मोहभाव से निदिध्यासन करते हैं ॥ हे

प्रियदर्शन ! उक्तप्रकार अंकारका जप अरु तिसके अर्थकी भावना करनी, जो प्रत्यक् चैतन्य सर्वका अन्तर्यामि सर्व अवस्थाका साक्षी अखंड अज अविनाश चैतन्य ब्रह्म सो मेंहो, इसप्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं । तथाच "ततः प्रत्यक् चैतन्याधिगमोप्यन्तराया भावश्च" यह पातञ्जल शास्त्र के प्रथमपाद का २६ सूत्र प्रमाण है ॥

शिष्य उवाच ॥ वो निर्विकल्प समाधि में विघ्न करनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये ॥

श्रीगुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! अन्तराय विघ्नों के नाम अरु स्वरूप पातञ्जलशास्त्र के ३०, ३१, दां सूत्रों करके कहे हैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवणकरो "व्याधि स्यान् संशय प्रमादालस्यविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । ३० । दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सह भुवः । ३१ । व्याधि, स्यान्, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व । दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास, ॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरविघ्न समाधिमें चित्त को विक्षेप करनेवाले हैं । अब इनके स्वरूप श्रवणकरो, व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अन्नरस धातु है सो, कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से विगड़ता है तब उस धातु के विषम होने से ज्वर, आदि व्याधि होती है तिसका नाम व्याधि है १ । अरु, स्यान्, उसको कहते हैं जो चित्तको अकर्मण्यता है, अर्थात् शुभकर्म प्राणायामादि, विषे चित्तका न प्रवर्त होना तिसका नाम, स्यान्, है २ । अरु, संशय, उसको कहते हैं जो ईश्वर है या नहीं अरु जो है तो ज्ञानयोग से साध्य है वा नहीं, अर्थात् ज्ञानयोगाभ्यास से सो प्राप्त होना है वा नहीं, इसप्रकार की जो भावना तिसका नाम संशय है ३ । अरु, प्रमाद, उसको कहते हैं कि समाधि के यम नियमादि सा

दीपकको वा दीपककी प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इसप्रकार दीपककी प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधारसे सिद्ध होती अतएव अप्रकाश रूप घटपटादि पदार्थ दीपककी प्रकाशरूपताको प्रकाश है ॥ हे प्रियदर्शन ! उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्ति-मात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप से सुशोभित है । तथाच "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अरु प्रिय कहते हैं आनन्दको 'क्योंकि सब को आनन्दही प्रिय है, सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्त है अतएव सर्वही आनन्द रूप है । ताते जो कछु कर्त्तव्य अकर्त्तव्य गुण दोष पाप पुण्य राग द्वेष ग्रहण त्याग, इत्यादि है सो सर्व आनन्द रूप ही है क्योंकि जिसमें जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्दके अर्थही करता है । अरु जो कोई जो कुछ करता है उसको उसही में आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे । अरु जो जिस आनन्दके अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करते हैं सो आपही परमानन्द रूप है, अरु सोई सर्वानन्द हुआ है । तथाच । "आनन्दा ह्येव खल्विदं मानिभूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुवल्लीकी श्रुतिप्रमाणसे । अतएव जहां है जो है सो सर्व आनन्दही है ॥ इसप्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म ही इसप्रकार अस्ति भातिप्रियरूप होकर सुशोभित हो रहा है । ताते अंकार एवेदं सर्वम् । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" । "नेह नानास्ति किञ्चन" । सर्व अंकार ब्रह्म ही है तिससे इतर रंचकमात्र भी नहीं । इसप्रकार अंकार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्मकी भावनारूप उपासना करते हैं, भावना कहिये सोहंभाव से निदिध्यासन करते हैं ॥ हे

प्रियदर्शन ! उक्तप्रकार अंकारका जप अरु तिसके अर्थकी भावना करनी, जो प्रत्यक् चैतन्य सर्वका अन्तर्यामि सर्व अवस्थाका साक्षी अखंड अंज अविनाश चैतन्य ब्रह्म सो मैं हों, इसप्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं। तथाच "ततः प्रत्यक् चैतन्योधिगमोप्यन्तराया भावश्च" यह पातञ्जल शास्त्र के प्रथमपाद का २६ सूत्र प्रमाण है ॥

शिष्यउवाच ॥ वो निर्विकल्प समाधि में विघ्नकरनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये ॥

श्रीगुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! अन्तराय विघ्नों के नाम अरु स्वरूप पातञ्जलशास्त्र के ३०, ३१, दो सूत्रों करके कहे हैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवणकरो "व्याधि स्यान् संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । ३० । दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सह भुवः । ३१ । व्याधि, स्यान्, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व, दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास, ॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरविघ्न समाधिमें चित्त को विक्षेप करनेवाले हैं । अब इनके स्वरूप श्रवणकरो, व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अक्षरस धातु है सो, कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से विगड़ता है तब उस धातु के विषम होने से ज्वर, दि व्याधि होती है तिसका नाम व्याधि है १ ।

धनो विषे चित्तको उदासीनता होनी, तिसका नाम, प्रमाद, है ४। अरु, आलस्य, उसको कहते हैं कि जो देह अरु चित्त का गुरुत्वभाव होना, अर्थात् देह अरु चित्तका जो जड़वत् होरहना है सो ज्ञान में प्रवृत्ति के अभावका कारण है अतएव तिसको आलस्य कहते हैं, ५। अरु अविरति उसको कहते हैं जो विषयों के संयोगसे भोगकी इच्छाका होना, तिसका नाम, अविरति है ६। अरु, भ्रान्तिदर्शन, उसको कहते हैं कि जो विपर्यय ज्ञानदर्शन है अर्थात् जैसे सीपी विषे रूपे के भासना, तैसेही शुद्ध निष्क्रियादि लक्षणवान् आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनष्टम धर्मका भासना, तिसका नाम भ्रान्तिदर्शन है ७। अरु, अलब्धभूमिकत्व, उसको कहते हैं कि जो ज्ञानकी, शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमांसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावनि, अरु तुरीया, यह सप्तभूमिका कही हैं तिनमें से कोई भी भूमिका, अरु योगकी जो चित्त को निरोधतारुपी एकाग्रता सो विसी विक्षेप के निमित्त से न प्राप्तहोनी तिसकानाम, अलब्धभूमिकत्व है ८। अरु, अनवस्थितत्व, उसको कहते हैं जो ज्ञानकी उक्त भूमिका में से कोई एक प्राप्तहुई भूमिकाविषे भी चित्तकी स्थिरता नहोनी तिसका नाम, अनवस्थितत्व है, ९। हेसौम्य! इसरुहे प्रकार नवअन्तरायविघ्न हैं अरु इनकेहोने से पांच ओर होते हैं तिनकोभी श्रवणकरो । दुःख, उसको कहते हैं कि जो, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, यह जो तीनप्रकारके दुःख हैं तिनकानाम दुःख है १०। अरु, दोर्मनस्य, उसको कहते हैं कि जो अन्तर घात्यके कोईभी कारणों करके चित्तकी विक्षेपता, अर्थात् चित्तकी असमाधानता, निमका नाम दोर्मनस्य है ११। अरु अहमे जयत्य, उसको कहते हैं कि जो गंगादिमेंसे शरीरका पांपना है १२ अरु, श्वास, उसको कहते हैं जो प्राणका शीघ्र शीघ्र चलना वा सुषुप्तासिकाके मार्ग घात्यका जाना है, तिसकानाम श्वास है १३। अरु, प्रश्वास, उसको कहते हैं जो प्राणका घात्यसे अन्तर आयना है, निमका नाम प्रश्वास है ॥

हे सौम्य ! यह जो १४ चतुर्दश विघ्न कहे हैं सो चित्तको वि-
क्षेप करके आत्मलाभार्थ जे समाधि तिस बिषे विघ्नके कर्ता हैं
“तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः” तिसकी निवृत्तिके अर्थ ए-
कत्वका अभ्यासकरे, अर्थात् उक्त विघ्नों के अभावकरने के अर्थ
अरु आत्मदेवकी साक्षात् प्राप्तिके अर्थ ॐकार ब्रह्मके अर्थ भा-
वना अरु जप निर्जन एकान्त पवित्र देशविषे स्थित होय यम नि-
यमादि योगांग साधन पूर्वक करे । जे कोई ॐकारके वाज्य की
उपासना करते हैं अर्थात् त्रिमात्रिक प्रणवोपासना करते हैं, तिन
के जे निर्विकल्प समाधि में विक्षेपकर्ता विघ्न हैं सो सर्व अभाव
होजाते हैं, अरु वो उपासक समाधि विचारद्वारा सर्व बन्धनों से
रहित हुआ अपनेआप चैतन्य स्वरूप आत्मा ब्रह्ममें अभेद स्थिति
पाय मोक्ष होता है ॥

हे सौम्य ! यह जो त्रिमात्रिक ॐकारका लक्ष्य आत्मा है तिस
को सर्व उपनिषद् चिन्मात्र ब्रह्मकरके कहते हैं “अयमात्मा ब्रह्म”
जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का अविषय है तिसको नेति नेति,
इत्यादि श्रुतिके निषेध मुख वाक्यों करके सर्व विशेषताके अभा-
वसे निर्विशेष सर्वका अपना आप लक्ष्य करावे हैं, अतएव यही
चैतन्य आत्मा अक्षर ब्रह्म है । अरु इसही को बृहदारण्यक उप-
निषद् बिषे भगवान् याज्ञवल्क्यजीने गार्गिके प्रति निर्विशेष अक्षर-
ब्रह्म कहा है । तथाच । सहोवाचैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणं अमिव द-
न्त्यस्थूलमनण्वं ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवायव
नाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुमश्रोत्रमिवार्गमनोऽतेजस्कमप्राणं
संमुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति विञ्चन न तदश्नाति
कश्चन ॥ अर्थ याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गार्गी ! जिसके
बिषे तू प्रश्न करती है तिसको ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अक्षर कहते
हैं । प्रश्न । हे याज्ञवल्क्य ! उस वचनातीत को ब्राह्मण अक्षर कैसे
कहते हैं वो तो वाणीआदिक किसीका भी विषय नहीं । उत्तर ।
हे गार्गी ! उसको ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि वो स्थूल नहीं अस्थूल

है, तो सूक्ष्म होगा, वो असूक्ष्म है, तो छोटा होगा, वा अह्रस्व है, तो दीर्घ होगा, वो अदीर्घ है इसप्रकार वो द्रव्योंके धर्मसे रहित अद्रव्य है । 'तो वो लोहित गुणवान् होगा, वो अग्नि आदिकोंके लोहितादि गुण रहित है, ताते अलोहित है ' तो वो स्नेहादिक जलके धर्मवाला होगा, वो जलके स्नेहादि धर्म रहित अस्नेह है ' तो वो छाया होगा, वो अछाया है ' तो वो तम होगा, वो अतम है ' तो वो वायु होगा, वो अवायु है ' तो वो आकाश होगा, वो अनाकाश है ' तो वो सर्वका सद्भात होगा, वो असंग है ' तो वो रस होगा, वो अरस है ' तो वो गन्ध होगा ' तो वो अगन्ध है ' तो वो चक्षुष्मान् होगा, वो अचक्षु है ' तो वो श्रोत्र होगा, वो अश्रोत्र है ' तो वो वाग् होगा, वो अवाग् है ' तो वो मन होगा, वो अमन है ' तो वो तेज होगा, वो अतेज है ' तो वो प्राण होगा, वो अप्राण है ' तो वो मुखादिद्वार होगा, वो द्वाररहित अमुख है ' तो वो मांत्रा होगा, वो अमांत्र है, तो वो अन्तर होगा, वो अनन्तर है, ' तो वो बाह्य होगा, वो अबाह्य है, अर्थात् वो न भोग्य है न भोक्ता है, सर्व विशेषणों से रहित निर्विशेष है । हे गार्गी ! इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने उस को निषेध मुख करके कहा है क्योंकि वो सर्व के निषेधकी अवधि है ताते " साकाष्ठासांपरागतिम् " । सो इन विशेष सत्ता पराकाष्ठा अरु मुमुक्षुओं की परागति है ॥ हे सौम्य ! ऐसा जो परम अक्षर है सो ईश्वर्णात्मक अंकाररूप अक्षरका लक्ष्य परब्रह्म है, अरु सोई अक्षर सर्वका अन्तरात्मा होयके सर्वका प्रेरक है, उसही की आज्ञा से सूर्य चन्द्र पृथिवी आदिक अपनेअपने व्यापारमें नियमपूर्वक प्रवर्त हो रहे हैं उसअक्षर की जैसी जिसको आज्ञा है सो तैसेही करता है, अरु सोई सर्व का नियामक स्वामी है अतएव उसके किये नियमसे बाह्य वर्तने को कोई भी समर्थ नहीं । तथात्र " एतस्य वा अक्षरस्य प्रशामने गार्गी सूर्याचन्द्रमसो विधृतो निष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशामने गार्गि वायुः पृथिव्या विधृतो निष्ठतः ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशामने गार्गि निमेषा मुद्गन्ता अहो-

रात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराइति विधृतास्तिष्ठन्त्ये
तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वे
तेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां याश्च दिशो मन्वेति ॥ एतस्य वा
अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशस्त्यसन्ति यजमानं दे-
वा दर्वीपितरोऽन्वायन्ताः ॥ इत्यादि ॥ हे सौम्य ! उक्त प्रकार जो
सूर्यादि सर्वका नियामक प्रेरक स्वामी सर्वाधिष्ठान परम अक्षर
ॐकारक लक्ष्य है, तिसका त्रिमात्रिक ॐकार प्रतीक अरु वाचक है
अतएव त्रिमात्रिक प्रणवके आलम्बन से जो उस लक्ष्यरूप
परम अक्षरकी अभेद अहममे उपासना करता है सोई ब्रह्मवेत्ता
ब्राह्मण है अरु सोई मोक्षको प्राप्त होता है ॥

शिष्य उवाच ॥ हे गुरो ! हे भगवन् ! जिस अक्षरका आप ऐसा
प्रभाव अरु प्रताप कहते हैं, तिसको हम प्रत्यक्ष कैसे जानें सो
आप कृपाकर आज्ञा करिये ॥

गुरु उवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! ऐसा प्रदत्त क्यों करते हैं वो तो स-
र्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है अरु यही सर्वका अनुभवक-
र्ता अनुभव रूप अक्षर है, अरु यही सर्वका द्रष्टा श्रोता मन्ता
बोद्धा है इससे इतर न कोई द्रष्टा है न श्रोता है न मन्ता है न बो-
द्धा है, हे सौम्य ! ऐसा जो सर्वका ज्ञाता अनुभवी, अक्षर आत्मा है
सो " तत्त्वमसि " सो तू है तेरा क्षय कदापि नहीं ताते सर्वका
ज्ञाता तूही है तेरा ज्ञाता अन्य कोई नहीं, तूही चक्षुरादि सर्वका
द्रष्टा है तेरा द्रष्टा कोई नहीं, तूही सर्व का श्रोता है तेरा श्रोता
अन्य कोई नहीं, तूही सर्वका मनन करता है तेरा मन्ता कोई
नहीं, अरु तूही सर्वका विज्ञाता है तेरा विज्ञाता कोई नहीं, अत
एव सर्व क्षराक्षर का ज्ञाता प्रकाशक अधिष्ठान परम अक्षर तूही
है तू अपने आपको अनुभवकर ॥

हे सौम्य ! यह जो सर्व वेद शास्त्रोंद्वारा निर्णय करके निर्वि-
शेष प्रत्यगात्मा अक्षर कहा है सोई वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐ-
कार अक्षर का लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म परम अक्षर है, अरु सोई

सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है इसही के सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है, ताते अंकारके लक्ष्य प्रत्यगात्मा के जानने के अर्थ त्रिमात्रिक अंकार की जप अरु अर्थ की भावना रूप उपासना कर्त्तव्य योग्य है क्योंकि यह परब्रह्मकी आत्मत्वसे प्राप्ति में परमोत्तम आलम्बन है । अतएव इस त्रिमात्रिक अंकारकी यथा शास्त्र उपासनारूप आलम्बनसे अपने आप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ अनुभव कर पराशान्तिकी प्राप्ति होवे, आगे जो तुम्हारी इच्छा ॥-॥ इति ॥-॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषद्गौडपादीयकारिकाअरुक्षेपक
भाषा भाष्यकारकृतसंग्रहप्रकरणसंहिता समाप्ता ॥

ॐ हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ ॥